डा० करणीसिंहजी, महाराजा बीकानेर, संसद सदस्य

प्रकाशकीय

मूल पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गई थी। पहले अंग्रेजी का ही संस्करण छपवाने का विचार था परन्तु बाद में हिन्दी अनुवाद पहले निकालने का निश्चय किया गया।

अनुवाद हिन्दी व राजस्थानी के प्रख्यात विद्वान ठाकुर रामसिंहजी तंवर व श्री चन्द्रदान जी चारण ने किया है। जिस तत्परता से आप लोगों ने समय निकाल कर सहयोग दिया है उसके लिये हम आभारी हैं।

प्रकाशन में हमारा यह प्रथम प्रयास है और हिज़ हाईनेस महाराजा डा॰ करणीसिंह जी ने अपनी अमूल्य पुस्तक का प्रकाशन हमें सौंप कर जो प्रोत्साहन दिया है उसके लिये हम उनके सदा कृतज्ञ रहेंगे।

अन्त में, जैसा भी बन पड़ा है वह सहृदय पाठकों के सामने है। आशा है हमारे प्रथम प्रयास का ध्यान रखते हुये वे हमें आगे के लिये अपने सुझाव व सहयोग से प्रोत्साहन देंगे।

बीकानेर
६-४-१९६८।

प्रकाशक
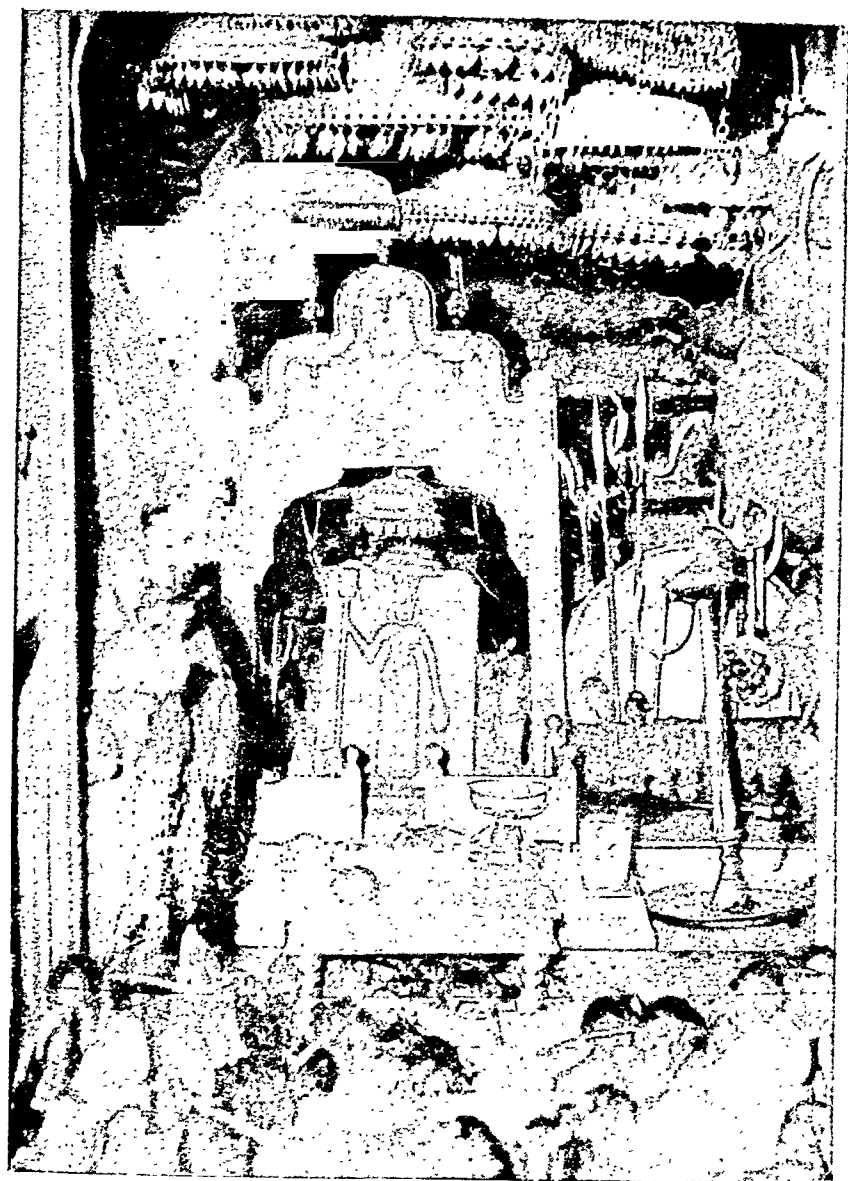
श्री करनी जी, बीकानेर के राज्य कुल की इष्ट देवी

समर्पण

माता करणी जी की पवित्र स्मृति को समर्पित, जिनके आशीर्वाद और दैवी पथ-प्रदर्शन द्वारा राव बीकाजी से लेकर उनके आज तक के वंशजों की पीढ़ियों के बहादुर लोग दृढ़ता से खड़े रहे हैं और ईमानदारी, वीरता, दयालुता तथा जनता की सेवा, जो हमेशा उन्हें बहुत ही प्रिय थे, की शानदार परम्परा को कायम रखने के लिये जिन्होंने अनेक बार लड़ते हुये मृत्यु का वरण किया है।

यह उन लोगों को भी समर्पित है जो भारत की आजादी के लिये लड़े ताकि हम भारतीय एक स्वतंत्र देश के स्वतंत्र नागरिकों की तरह स्वतंत्र वातावरण में सांस ले सकें।

विषय सूची

(१) राव बीकाजी (२) राव नारोजी (३) राव लूणकरणजी (४) राव जैतसीजी (५) राव कल्याणमलजी (६) राजा रायसिंहजी (७) राजा दलपतसिंहजी (८) राजा सूरसिंहजी (९) राजा करणसिंहजी (१०) महाराजा अनूपसिंहजी (११) महाराजा सरुपसिंहजी (१२) महाराजा सुजानसिंहजी (१३) महाराजा जोरावरसिंहजी (१४) महाराजा गजसिंहजी (१५) महाराजा राजसिंहजी (१६) महाराजा प्रतापसिंहजी (१७) महाराजा सूरतसिंहजी (१८) महाराजा रतनसिंहजी (१९) महाराजा सरदारसिंहजी (२०) महाराजा डूंगरसिंहजी (२१) महाराजा गंगासिंहजी (२२) महाराजा सादूलसिंहजी (२३) महाराजा करणीसिंहजी

भूमिका

लगभग ५०० वर्षों की अवधि में बीकानेर के राजघराने का दिल्ली के शासकों के साथ जो सम्बन्ध रहा उसका एक विस्तृत रिकार्ड देने का प्रयत्न इस शोध प्रबन्ध में किया गया है। शोध प्रबन्ध की सामग्री मूल स्रोतों और आधुनिक लेखों के असंख्य ग्रन्थों, दोनों रूपों में मिलती हैं। यह सम्बन्ध दो ऐसे पक्षों में था जिनके लक्ष्य और उद्देश्य इतने भिन्न थे कि सदियों तक फैले इतिहास के परिवर्तित रूप के अनुसार एक शोध अध्येता को बहुधा अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ता है। इस प्रकार के सम्बन्ध का रूप अधिकांशतः केन्द्रीय सत्ताधारियों और बीकानेर के शासकों के भाव और चरित्र पर निर्भर करता था। एक महाराजा के शासन में दिल्ली के शासकों के साथ राजनैतिक और निजी सम्बन्ध इतनी बार बदला कि इसने थोड़े-थोड़े समय के बाद असंख्य करवटें ली। इस शोध प्रबन्ध में विस्तार के साथ उन सब प्रतिक्रियाओं और परिवर्तनों के कारणों और परिणामों की जांच करने का एक प्रयत्न किया गया है जिन्होंने कभी सम्बन्ध के शांत रहने में बाधा डाली, कभी इस सम्बन्ध में तनाव उत्पन्न किया और कभी इसे और मजबूत बनाया।

यह वृतान्त एक जबरदस्त युद्ध और कोलाहल के बीच आरम्भ होता है जबकि मध्य एशिया के अपने पूर्वजों का स्थान पाने की आशा में निराश होकर बाबर ने भारत पर आक्रमण किया, लोदी वंश को हराया और एक नया साम्राज्य स्थापित करने की दृष्टि से कनवाहा की ओर बढ़ा। कनवाहा के रक्त रंजित युद्ध में मृत्यु के समय भी निर्भय रहने वाला राजपूती शौर्य बाबर के भयंकर तुर्की तोपखाने के समक्ष नष्ट हो गया। राव कल्याणमल ने युवराज काल में ही आक्रमणकारी मुगल सेना के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। राव जैतसी ने सफलता से एक मुगल आक्रमण को रोक दिया और कामरां को वापस भागने के लिये विवश किया। इस युद्ध और संघर्ष के समय के बाद तैमूर के वंशजों और बीकानेर के राजघराने दोनों ने एक दूसरे की महत्ता समझी। दोनों ने ऐसा सम्बन्ध जोड़ा जो

प्रेमपूर्ण और सहकारी था। अफगान शक्ति को रोकने के लिये मुगल बादशाह हमेशा बहादुर योद्धाओं का सम्मान करने के लिये तैयार रहते थे। उन्हें उनकी सहायता की आवश्यकता थी। बीकानेर के शासकों ने देखा कि शाही सेवा में उन्हें अपनी राजनीति और युद्ध कला दिखाने का पूर्ण अवसर मिल सकेगा। उनमें ये दोनों गुण प्रचुर मात्रा में थे। इससे एक सुखद सम्बन्ध बना। राजा रायसिंह सम्राट अकबर के सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध सेनापतियों में से एक थे। उन्होंने साम्राज्य की सभी सीमाओं पर लड़ाइयां लड़ीं। उन्हे पांच हजारी मनसबदार बनाया गया, जागीर और राजा की उपाधि दी गयी।

बीकानेर के राजघराने में शाही सेवा की परम्परा दृढ़ता से स्थापित होने पर शानदार मुगल साम्राज्य की रक्षा में बीकानेर के कई राजाओं ने यश और सम्मान प्राप्त किया। बीकानेर के राजघराने ने बहुत समय तक और बहुत स्वामि भक्ति से जिस साम्राज्य का समर्थन किया था वह अंत में क्षीण होने लगा। एक ऐसा समय आया जब यह अपनी ही सीमा में व्यवस्था कायम नहीं रख सका और एक बड़े नाम की केवल छाया मात्र रह गया। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही राजनैतिक और सैनिक सम्बन्ध का एक शानदार युग समाप्त होता है। इस युग में ही यह सम्भव हुआ कि बीकानेर के शासक भारत के विभिन्न भागों में अपना शौर्य दिखा पाये और दूर-दूर तक अपना नाम पहुंचा पाये।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद, अँग्रेजों के आने तक बीकानेर एक तरह से पूर्ण स्वतन्त्र रहा। राजपूताना की रियासतों में बिलकुल उत्तर की ओर सबसे अलग होने की स्थिति के कारण बीकानेर के राठौड़ राज्य को न तो पिंडारियों की लूट और न मरहठों के हमले कोई हानि पहुँचा सके। तो भी बीकानेर के राठौड़ शासकों ने देखा कि आंतरिक गड़बड़ी करने वालों के कारण उनकी स्थिति काबू से बाहर है। इससे विवश होकर महाराजा सूरतसिंह को अंग्रेजों की नवोदित शक्ति के साथ समझौता करना पड़ा। सन् १८१८ में निरंतर मैत्री, पारस्परिक मेल और स्वार्थों के ऐक्य के समझौतों पर हस्ताक्षर हुये। सन् १९४७ में ब्रिटिश सत्ता के भारत से हटने तक दोनों पक्षों ने इस समझौते का हर तरह से पूर्ण पालन किया। ब्रिटिश आधिपत्य काल में जब भी जरूरत पड़ी बीकानेर का राजघराना ब्रिटिश साम्राज्य के समर्थन में हमेशा एक मित्र की तरह खड़ा रहा। प्रथम अफगान युद्ध (१८३८-४२) में काबुल पर चढ़ाई करने के लिये ऊंट दिये गये और १८४५-४६ के प्रथम

सिक्ख युद्ध में बीकानेर की सेना ने लड़ाई में भाग लिया। इस अवसर पर तोपें और गोला बारूद दिया गया। इसके अलावा रसद को सुरक्षित पहुँचाने और लुटेरों का दमन करने के लिए भी सहयोग दिया गया। दूसरे सिक्ख-युद्ध (१८४८-४६) के समय फिरोजपुर में अंग्रेजी सेना की सहायता के लिये घुड़सवार और तोपखाना भेजा गया। अंग्रेजी सेना के उपयोग के लिये ऊंट भी दिये गये। बीकानेर की परम्परागत सैनिक वीरता, विद्रोह (१८५७) को दबाने में दिखाई गई। इस समय अंग्रेजों को बचाया गया, उनके भोलेभाले रिश्तेदारों को शरण दी गई, उनको आवश्यक वस्तुयें दी गई तथा हांसी और हिसार में अंग्रेजी चढ़ाइयों में सक्रिय सहयोग दिया गया। सन् १८७८-७६ के द्वितीय अफगान युद्ध में रियासत की सारी सेना अंग्रेज सरकार की सेवा के लिये देने की बात कही गई। लेकिन यद्यपि सारी सेना लेना आवश्यक नहीं समझा गया, इस युद्ध में उपयोग के लिये अंग्रेजी सेना को ८०० ऊंट दिये गये। महाराजा गंगासिंह के स्वयं के सेनापतित्व में बीकानेर की सेना ने चीन युद्ध (१६००-०१) में सक्रिय भाग लिया। इनका मुरासिलों में उल्लेख हुआ। सोमालीलेंड की चढ़ाई (१६०२-०४) में गंगारिसाले (बीकानेर की ऊँट सेना) ने भाग लिया और कई मौकों पर युद्ध किया। प्रथम विश्वयुद्ध (१६१४-१६१८) में बीकानेर रियासत की सेनाओं ने कई प्रकार की सेवायें प्रदान की। मुख्य ग्रन्थ में इसका संक्षेप में उल्लेख किया गया है। तीसरे अफगान युद्ध (१६१६) में भी महाराजा गंगासिंह ने लड़ने के लिये अपनी तथा बीकानेर रियासत की सेना की सेवायें अर्पित कीं लेकिन उनकी सेवाओं का लाभ नहीं उठाया गया। दूसरे महायुद्ध के आरम्भ होने पर महाराजा गंगासिंह तथा महाराजा सादूलसिंह (जो उस समय युवराज थे) ने लड़ने के लिये अपनी सेवायें अर्पित की। लेखक के साथ महाराजा गंगासिंह मध्य पूर्व के दौरे पर भी गये। बीकानेर की सेना लड़ने के लिये बर्मा, अदन और मध्य पूर्व में गई।

पाँच शताब्दियों की अवधि में २२ राजाओं ने बीकानेर पर शासन किया। उनमें से १८ ने विभिन्न युद्धों, चढ़ाइयों अथवा आन्तरिक सैनिक कार्यवाहियों में स्वयं भाग लिया। इससे निसंदेह सिद्ध होता है कि बीकानेर के राजघराने ने दिल्ली के शासकों के साथ जो सम्बन्ध स्थापित किया वह गहरा और अत्यधिक महत्वपूर्ण था। इस प्रकार इस खोज और शोध का मुख्य उद्देश्य उन कारणों की आलोचना दृष्टि से जाँच करना है, जिन्होंने ऐसे सम्बन्ध की आवश्यकता को स्थिर किया और इसे आगे

चालू रक्खा। समझौता करने वाले पक्षों के उद्देश्यों में गहराई से जाने के विशेष प्रयत्न किये गये हैं। इसके साथ इस समझौते के चालू रहने में बाधा डालने वाले कई परिवर्तनों का विषय दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है।

इस विषय पर जो ग्रन्थ प्राप्त हैं वे विभिन्न दृष्टिकोणों से लिखे गये थे। फलस्वरूप इन ५०० वर्षों में बीकानेर और दिल्ली के शासकों में जो सम्बन्ध बना उसकी ओर केवल लापरवाही से ध्यान दिया गया है। इस सम्बन्ध के बारे में जो भी आकस्मिक उल्लेख हुआ है वह इतना बिखरा हुआ है कि इसे एक जगह करने और इससे एक सुसम्बद्ध कथा बनाने का एक महान् प्रयत्न करना पड़ा है। राजनैतिक और सैनिक अस्थिरता को ध्यान में रखते हुये कई जगह तथ्यों की एक बिल्कुल ही भिन्न रूप में पुनर्व्याख्या करनी पड़ी है। डा० ओझा ने बिना अनुमान या व्याख्या के घटित घटनाओं को केवल कालानुसार लिख दिया है। अतः इस बात का प्रयत्न करना पड़ा है कि एक सम्बन्धित कथा तैयार की जाय और हरएक स्तर पर सम्बन्ध की व्याख्या करते हुये वैज्ञानिक आधार पर उसके परिणाम समझाये जायँ। उदाहरण के लिये इस इलाके की भौगोलिक, राजनैतिक सामाजिक, महत्वपूर्ण स्थिति और व्यापारिक स्वरूप का विश्लेषण करते हुये यह बताया गया है कि बीकानेर का बंजर इलाका और उसके रेगिस्तानी मैदान कैसे मुगल बादशाहों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सके। इसी प्रकार उन परिस्थितियों का युक्तिपूर्वक विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है, जिन्होंने बीकानेर के शासकों को दिल्ली के शासकों से सहायता मांगने के लिये विवश किया तथा दिल्ली के शासकों को बीकानेर के राठौड़ों से पारस्परिक मैत्री करने के लिये ललचाया।

उन कारणों की पुनर्व्याख्या की गई है, जो पहले राजा रायसिंह को प्रकाश में लाने तथा बाद में बादशाह की कृपा से वंचित करने के लिये उत्तरदायी थे। जहाँगीर के शासन के आरम्भिक काल में बीकानेर राजघराने ने जो अभूतपूर्व उन्नति और श्रेष्ठता प्राप्त की उसे समझने के लिये एक बिलकुल नये दृष्टिकोण की आवश्यकता है। तभी रायसिंह की सहायता पाने के लिये जहाँगीर की उत्सुकता को अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है। समय-समय पर बीकानेर के राजघराने के प्रति मुगल बादशाहों के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन हुये उन्हें समझने के लिये उन कारणों के मूल्यांकन का प्रयत्न किया गया है जिनसे स्थापित नीति में परिवर्तन का अवसर उत्पन्न हुआ। औरंगजेब ने महाराजा करणसिंह और

बाद में महाराजा अनूपसिंह के प्रति शत्रु भाव क्यों अपनाया इसके कारण पूरी तरह समझाये गये हैं।

अंग्रेजों से सहायता मांगने में महाराजा सूरतसिंह की उत्सुकता समझाने के लिये एक बिलकुल नई दृष्टि अपनायी गई है। इस बात को बताने का प्रयत्न भी किया गया है कि कैसे अंग्रेजों ने सन् १८१८ के निरंतर मैत्री, पारस्परिक मेल और स्वार्थों के ऐक्य के समझौते की दुष्प्रवृत्ति से व्याख्या की और बीकानेर के शासक को अधिक आधीन बना लिया। अब तक यह प्रवृत्ति रही है कि समझौते की व्याख्या भारत के राजाओं की मजाक उड़ाने अथवा उन्हें गुमराह करने के लिये की जाय।

बीकानेर के आंतरिक प्रशासन में अंग्रेजी हस्तक्षेप के प्रयत्नों की अब विषय प्रधान ढंग से व्याख्या की गई है और यह दिखाया गया है कि किस प्रकार धीरे धीरे अंग्रेजों ने रियासत के आंतरिक प्रशासन के कार्यों में दखल दिया। इस विषय के तथ्य पर विशेष रूप से नवीन प्रकाश डाला गया है जो अब तक लोगों को ठीक तरह से मालूम न था। बीकानेर प्रशासन पर अंग्रेजी प्रभाव और महाराजा गंगासिंह द्वारा इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये किया गया विरोध तथा राजनैतिक व्यवहार पुनः लागू करने संबंधी नई सामग्री शोध प्रबंध में जोड़ी गई है। यह सामग्री लालगढ़ पैलेस तथा राजस्थान राज्य पुरालेख विभाग बीकानेर के रेकार्ड से खोज कर निकाली गई है। भारत सरकार के साथ महाराजा गंगासिंह के समस्त सम्बन्ध को पहली बार अपने सही रूप में बताया गया है।

इस प्रकार शोध प्रबन्ध में किये गये प्रयत्नों को तीन अलग वर्गों में बांटा जा सकता है :—

(१) अनेक प्रकार के रेकार्ड और ग्रंथों का अध्ययन करके बीकानेर के साथ दिल्ली के सम्बन्ध निश्चित करने और सारी सामग्री को क्रमानुसार रखने, जिससे कि घटनाओं की एक अटूट कहानी बन जाय, का प्रयत्न किया गया है।

(२) मुख्य घटनाओं के कारणों और परिणामों की जांच करने के लिये इतिहास के तथ्यों की पुनर्व्याख्या की गई है।

(३) पुराने कागजों से अब तक अज्ञात कुछ तथ्य इकट्ठे किये गये हैं और बीकानेर के इतिहास के स्वरूप पर नया प्रकाश डाला गया है।

ये ही कुछ बातें हैं जो शोध प्रबन्ध में मौलिक हैं । सारे शोध प्रबन्ध में बीकानेर के केन्द्रीय सत्ता के साथ सम्बन्धों पर ही अधिक जोर दिया गया है और बीकानेर के आंतरिक इतिहास का विवरण यथा-सम्भव नहीं दिया गया है ।

यह लेखक का सौभाग्य है कि उसके स्वयं के अधिकार में बीकानेर महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइलों की सामग्री है । इनमें बीकानेर के शासकों और अंग्रेज अधिकारियों के बीच हुआ पत्र व्यवहार है । बीकानेर रियासत के समय "बीकानेर का राजघराना" शीर्षक सहकारी ग्रन्थ प्रकाशित करने के लिये जो सामग्री संग्रहीत की गई थी उसका उपयोग भी लेखक के लिये सम्भव हो गया । इसके अतिरिक्त लालगढ़ पैलेस में स्थित प्रसिद्ध अनूप संस्कृत पुस्तकालय लेखक को सुलभ रहा है । यहाँ पर बीकानेर के इतिहास से सम्बन्धित फारसी और राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थों की सर्वश्रेष्ठ प्रतिलिपियां मिलती हैं । लेखक राजस्थान राज्य पुरालेख विभाग के निदेशक श्री नाथूराम खड़गावत का कृतज्ञ और आभारी है, जिन्होंने ये सुविधायें प्रदान कीं । लेखक की एक बहुत ही महत्वपूर्ण देन यह है कि वह अनेक ऐसे कागजों की खोज कर सका है जो अब तक बड़ा कारखाना और तोशाखाना में पड़े हुये थे । इन कागजों में सैकड़ों बहियाँ, खरीते, खतूत अहल-कारान, वकील रिपोर्ट, खतूत महाराजगान और जनानी तहरीर सम्मिलित हैं । खोज के समय लेखक को मुगल बादशाहों द्वारा बीकानेर के शासकों को लिखे गये मूल फरमान, निशान और मंसूर मिले । इनमें से अनेक लेखक के निजी अधिकार में हैं ।

उपर्युक्त स्रोतों के साथ २ लेखक को बम्बई, बीकानेर, दिल्ली और जोधपुर स्थित कई पुस्तकालयों को भी देखना पड़ा । जब लेखक एक बार लंदन गया तो वहाँ उसे ब्रिटिश म्यूजियम लायब्रेरी में कुछ पुस्तकें देखने का अवसर प्राप्त हुआ । मूल अप्रकाशित स्रोतों में शोध का क्षेत्र बीकानेर के इतिहास के आखिरी काल तक सीमित है । आरम्भिक समय का वर्णन अधिकांशतः प्रकाशित स्रोतों, साहित्य और परम्पराओं पर आधारित है । यह पहला अवसर है कि सन् १६३७ के बाद के बीकानेर के इतिहास पर कुछ लिखा गया है ।

इतिहास के अभी हाल ही के तथ्यों की व्याख्या करने की दृष्टि से महाराजा गंगासिंह के साथ काम करने वाले वृद्ध और अवकाश प्राप्त कर्मचारियों से बहुधा बात करनी पड़ी । उनमें कंवर जसवन्तसिंह

दाऊदसर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये महाराजा गंगासिंह के निजी सचिव थे और इंग्लैंड में गोलमेज सम्मेलन में महाराजा के कार्य से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित थे। महाराजा सादूलसिंह के समय बाद में ये बीकानेर रियासत के प्रधान मन्त्री भी थे। बीसवीं शताब्दी के इतिहास का पुनर्गठन करने में इन सज्जनों द्वारा दी गई मौखिक गवाही और उनकी जानकार सलाह अमूल्य सहायता पहुंचाने वाली थी।

अंतिम दो महाराजाओं के समय से सम्बन्धित सामग्री इतनी अधिक और वैविध्यपूर्ण थी कि उस सब को सम्बन्ध के ऐसे संक्षिप्त सर्वेक्षण में शामिल करना मानवीय दृष्टि से असम्भव था। लेकिन जैसे और जब लेखक को अवसर मिलेगा तो अलग से इस सारी सामग्री पर विस्तार से काम करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

अंग्रेजों और बीकानेर के सम्बन्ध के बारे में लेखक का दावा है कि उसने विशेषतः महाराजा डूंगरसिंह, गंगासिंह और सादूलसिंह के शासन के कुछ नये तथ्यों का पता लगाया है। अभी हाल के समय का इतिहास पहली बार लिखा गया है। इस प्रकार लेखक की मौलिक देन अंग्रेजों द्वारा अपनाये गये उन तरीकों का उद्घाटन करती है जिनसे उन्होंने भारतीय राजाओं को धोखा दिया और उससे अपने हस्तक्षेप का क्षेत्र बढ़ाया। इससे निसंदेह रूप से इतिहास के विद्यार्थियों को ब्रिटिश आधिपत्य की प्रकृति को और अधिक अच्छी तरह समझने में सहायता मिलेगी।

एक और दिशा जिसकी ओर सत्य के उद्घाटन का प्रयत्न किया गया है, भारतीय रियासतों में विद्रोही जागीरदारों के प्रति अंग्रेजों की नीति से सम्बन्धित है। यही वह विशेष क्षेत्र है जिसमें अंग्रेजों ने अपनी "फूट डालो और शासन करो" की नीति का बहुत उत्साह से पालन किया तथा जब और जहाँ सामंतों ने असन्तोष की आवाज उठाई वहीं अपनी हस्तक्षेप की कार्यवाही को तेज कर दिया। अंग्रेजी साम्राज्य और ब्रिटिश भारत की राजनीति में महाराजा गंगासिंह ने जो काम किया उससे इस बात का गहरा सन्तोष होता है कि राजा लोग भी देश को स्वतन्त्र कराने के लिये सच्चे मन से इच्छुक थे और शीघ्र ही होने वाले परिवर्तन के सम्बन्ध में भी आशंकित थे। इस शोध प्रबन्ध के अध्ययन से पाठक को यह ज्ञात होगा कि राजाओं ने सर्वोच्च सत्ता (अंग्रेजों) को अपने तरीके से रोका और उन्होंने भी ब्रिटिश उच्छृंखलता का कड़ा विरोध किया। अन्तिम देन जो

कम महत्व पूर्ण नहीं है, यह है कि बाद के दो शासकों— महाराजा गंगासिंह और महाराजा सादूलसिंह द्वारा राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिये भारत की इच्छाओं को समझने और आजादी की लड़ाई में योग देने के काम को प्रकाश में लाया गया ।

मूलतः शोध प्रबन्ध का शोध कार्य स्वर्गीय फादर हेरास के निर्देशन में आरम्भ हुआ । कुछ समय तक अध्ययन रोकने के बाद यह कार्य सेंट जेवियर कालेज बम्बई के भारतीय इतिहास और संस्कृति के हेरास संस्थान के प्रोफेसर विलियम कोयलो के निर्देशन में चालू किया गया । बम्बई विश्वविद्यालय को पी एच० डी० की उपाधि के लिये प्रस्तुत करने हेतु यह शोध प्रबन्ध तैयार किया गया है ।

लेखक अपने निर्देशकों और भूमिका में वर्णित पुस्तकालयों और पुरालेख विभाग के अधिकारियों का आभारी है ।

सन् १९४९ में एकीकरण के समय बीकानेर राज्य के विस्तार का नकशा

विषय-प्रवेश

वर्तमान बीकानेर, चुरू और गंगानगर जिले का क्षेत्र, अप्रैल १६४६ में बीकानेर रियासत के राजस्थान संघ में एकीकरण से पूर्व बीकानेर के राठौड़ राज्य के नाम से ज्ञात था। यह २७°-१२' और ३०°-१२' उत्तरी अक्षांश तथा ७२°-१२' और ७५°-४१ पूर्व देशान्तर के बीच स्थित था। यह उत्तर और पश्चिम में भावलपुर रियासत, और दक्षिण-पश्चिम में जैसलमेर रियासत, दक्षिण में जोधपुर रियासत, दक्षिण-पूर्व में जयपुर रियासत, पूर्व में लोहारू रियासत व हिसार जिले एवं उत्तर-पूर्व में फिरोजपुर जिले से घिरा हुआ था।[1] इसका क्षेत्रफल २३,३१७ वर्ग मील था और क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत की समस्त रियासतों में छठी[2] और राजपूताना में दूसरी[3] सबसे बड़ी रियासत थी। इस क्षेत्र का उत्तरी भाग समतल और उपजाऊ है। वह गंग नहर द्वारा सिंचित ६ लाख २० हजार एकड़ भूमि के अतिरिक्त, वर्षा के वर्षों में रबी और खरीफ दोनों फसल उगाने की दृष्टि से काफी उपजाऊ है। यह क्षेत्र शीघ्र ही राजस्थान

---

१. दि इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया, भाग ८, पृ. २०२।
अर्सकिन-गजेटियर आफ बीकानेर, पृ० ३०६।
बीकानेर और इसके शासकों का संक्षिप्त इतिहास, पृ. ५।
कैप्टेन पाउलेट ने बीकानेर राज्य के अपने गजेटियर में [पृ. ६१] उत्तर अक्षांश २७-°३०' और २६°-३५' तथा पूर्व देशान्तर ७२°-३०' व ७५°-४०' एवं क्षेत्रफल २२,५०० वर्ग मील लिखा है जो स्पष्ट रूप से गलत है।

२. क्षेत्रफल की दृष्टि से छः बड़ी रियासतें इस प्रकार थीं —

(१) जम्मू और काश्मीर	८५८८५	वर्ग मील
(२) हैदराबाद	८२६६८	” ”
(३) जोधपुर	३५०६६	” ”
(४) मैसूर	२६४७५	” ”
(५) ग्वालियर	२६३६७	” ”
(६) बीकानेर	२३३१७	” ”

३. राजपूताना की रियासतों में केवल जोधपुर का क्षेत्रफल ही अधिक था अर्थात् ३५०६६ वर्ग मील था।

नहर-द्वारा-कृषि की सम्भावना वाले इलाके में बदल जायेगा।[1] शेष भाग अधिकांशतः रेतीला व सूखा है। दक्षिण पश्चिमी भाग विशाल भारतीय मरुस्थल में है और दक्षिणी पूर्वी भाग में कुछ पहाड़ी श्रेणियाँ हैं।[2]

इन प्राकृतिक रूपों ने इलाके को दो स्पष्ट भागों में बाँट दिया है जो घग्घर द्वारा एक दूसरे से अलग किये गये हैं, इनमें मध्य और दक्षिणी भाग 'धोरा' तथा उत्तरी भाग 'बग्गी' के नाम से प्रसिद्ध है। बग्गी क्षेत्र के एक भाग ने नहरी इलाके के विकास के कारण महत्वपूर्ण रूप प्राप्त कर लिया है और बग्गी से भिन्न यह अब नहरी कहलाने लगा है। धोरा नाम से प्रसिद्ध इलाके को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है- (१) मगरा--यह अधिकांशतः पथरीला लेकिन समतल है और अच्छी वर्षा होने पर पैदावार ठीक हो जाती है। (२) थली- यह अधिकांशतः रेतीले टीलों से ढका हुआ है।[3] वर्षा कम होती है। वर्षा का औसत लगभग १० इंच है।[4] इस इलाके के कुल क्षेत्र का

---

१. बीकानेर और उसके शासकों का संक्षिप्त इतिहास, पृ. ५-६।
इम्पीरियल गजेटियर आफ इन्डिया, भाग ८, पृ. २०२-२०३।
बीकानेर राज्य जनगणना रिपोर्ट १९४३, भाग १, पृ. २।
महाराजा गंगासिंह जी ने ही सर्व प्रथम सारे इलाके की जांच करवाई थी। सर ऑरैल स्टेन और मिस्टर जी. डी रडकिन द्वारा की गई जाँच के आधार पर गंग नहर क्षेत्र के अलावा भूमि को सिंचित करने की एक विशेष योजना तैयार की गई थी। इन सिंचाई की योजनाओं को कार्य रूप देने के लिए महाराजा सादूलसिंह जी काफी रकम पोते बाकी में छोड़ गए थे पर राजस्थान सरकार ही इस योजना को लागू कर सकती थी। राजस्थान फीडर अक्टूबर सन् १९६० में खोला गया। इससे एक लाख छब्बीस हजार छह सौ चौपन एकड़ भूमि सींची जानी थी। अप्रेल १९६१ में राजस्थान नहर से सिंचाई होने लगी और इससे ३,२३,६७७ एकड़ भूमि सींची जानी थी। इसकी सीधी नालियों से २,२१,६३१ एकड़ भूमि सींची जानी है जबकि नीची सतह का कुल इलाका ५२,१०,०५९ एकड़ और राजस्थान नहर से सींचा जाने वाला कुल इलाका ११,९३,४९१ एकड़ है।

२. बीकानेर और उसके शासकों का संक्षिप्त इतिहास, पृ. ६।
अर्सकिन-गजेटियर, पृ ३०९।

३. बीकानेर राज्य जनगणना रिपोर्ट, १९४३, भाग १, पृ. ३।

४. बीकानेर राज्य जनगणना रिपोर्ट १९४३, भाग १, पृ. ७।
बीकानेर राज्य की प्रशासकीय रिपोर्ट में निम्नलिखित वर्षों में वर्षा का औसत इस

काफी भाग वंजर और कम बसा हुआ है। यह आबादी भी सूखे और अकाल के वर्षों में पड़ोस के अधिक उपजाऊ भागों में चली जाती है।[1]

यहाँ नदियाँ नहीं हैं और इस इलाके में केवल दो, ताजा पानी की, झीलें हैं जो बीकानेर के दक्षिण पश्चिम में चट्टानी भू-भाग के नालों से भर जाती हैं। प्रदेश में तह में केवल थोड़ा अन्तर होते हुए भी पानी बहुत भिन्न गहराइयों में मिलता है और नगर के अधिकांश कुएँ ३०० फीट से ज्यादा गहरे हैं।[2]

प्रकार दिया गया है।

सन् १९२०-२१	६.६६	इंच
सन् १९३०-३१	१०.७६	इंच
सन् १९४०-४१	१०.२६	इंच

१. बीकानेर और उसके शासकों का संक्षिप्त इतिहास, पृ. ६।
इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इन्डिया, भाग ८, पृ. २१३ पर लिखा है कि सन् १८६९ के अकाल में कुल आबादी का लगभग २२ प्रतिशत भाग दूसरी जगह चला गया।

२. पाऊलेट–बीकानेर राज्य का गजेटियर, पृ. ९३ और १४९। इस सम्बन्ध में पाऊलेट ने डा० मूरे की जांच का उद्धरण दिया है जिसने नोखा में ४०० फीट गहरा एक कुआँ देखा। उसने भूगर्भ के सम्बन्ध में भी डा० मूरे को उद्धृत किया है जो कहता हैं "बीकानेर में पानी सतह से ३०० या ४०० फीट गहराई में ही मिलता है। मैंने एक ऐसे कुएँ की सामग्री की जांच की जिसमें पहले पानी ३१६ फीट की गहराई में ही मिल गया था। इस तह में पहले काफी कंकर थी बाद में लाल मिट्टी, फिर रेतीला पत्थर और अन्त में सफेद पथरी थी। यह पथरी एक मटर के दाने से लेकर एक अंडे के आकार तक थी। इसमें क्वार्टज थी। यह यद्यपि गोल नहीं थे पर इनका तला और कोण इतने कोमल थे जिससे यह विचार उत्पन्न होता था कि किसी समय वे अवश्य ही बहते हुए पानी में रहे होंगे। मेरा विश्वास है कि भूगर्भ शास्त्री कार्टर ने जो यह मत प्रगट किया है कि पश्चिमी भारत का यह समस्त अर्ध रेगिस्तान भाग किसी समय समुद्र की सतह रही होगी, जो समुद्र के वर्तमान किनारों से अरावली की पहाड़ी शृंखला तक फैला हुआ था, बीकानेर के गहरे कुओं में भूगर्भ की जो विशेषताएँ मिलती है, उनसे इस मत का समर्थन होता है।"

मिस्टर जार्ज थॉमस अपने सैनिक संस्मरणों में लिखता है "भू भाग उठा हुआ है, मिट्टी हल्के भूरे रंग की रेत है जिससे ज्योंही वर्षा होती है इसमें समा जाती है। इस स्थिति में इस प्रदेश के सभी भागों में कुओं का बनना

लेकिन पानी बहुत बढ़िया है ।[१] इलाके का अधिकांश भाग मैदानी और स्थान बदलने वाले रेत के टीलों से बना हुआ है जिसके ढाल समुद्र तट की तरह अनुमानित होते हैं ।[२]

इस इलाके के विभिन्न भागों में चूना, बढ़िया किस्म का लाल पत्थर, फुल्लर्स अर्थ, जिप्सम, तांबा आदि पाये जाते हैं । यद्यपि इलाका निर्जन और सुनसान है[३] पर यहाँ घास, जंगली झाड़ियाँ, फोग और सज्जी काफी होती है । इस

जरूरी हो जाता है । ये ईंटों से बनाये जाते हैं और सामान्यतः १०० से २०० फीट गहरे हैं यद्यपि जैसलमेर की सीमा की ओर उनकी गहराई ३०० फीट से कम नहीं है ।

राज्य के उत्तरी भागों में पानी की गहराई कुछ भिन्न रही है । औसत गहराई सतह से निम्नलिखित है —

मिर्जावाला तहसील	१२५ फीट
अनूपगढ़ तहसील	१३५ फीट
हनुमानगढ़ तहसील	१८० फीट
सूरतगढ़ तहसील	१६० फीट
टीबी तहसील	१५० फीट

इस प्रकार सारे इलाके की औसत गहराई १५० फीट से अधिक मानी जा सकती है । बहुत से कुएँ १८० से २०० फीट तक गहरे हैं और उनमें से ८ प्रतिशत का पानी खारा है तथा मनुष्यों और पशुओं के पीने के काम में नहीं आता । कुओं की गहराई १५० फीट से लेकर ४५० फीट तक है और राज्य के गावों में पीने के पानी के लिये बनाये गये ३६८४ कुओं में से ४० प्रतिशत का पानी खारा होने के कारण पीने योग्य नहीं था । कई और कुएँ अच्छे और बुरे की सीमा रेखा पर हैं और किसी मौसम के आरम्भ में खारे हो जाते हैं ।

१. पाऊलेट–वही, पृ. ६३ ।

२. अर्सकिन–वही, पृ. ३०६ ।
इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इन्डिया, भाग ८, पृ. २०३ ।
टॉड–अनाल्स एन्ड अन्टीक्विटीज आफ राजस्थान, भाग २, पृ. ११५२–५३ ।
डॉ. मूरे जैसा कि पाऊलेट ने उद्धृत किया है, वही, पृ. १४६ ।

३. पाऊलेट–वही, पृ. ६२–६३ ।
टॉड–वही, भाग २, पृ. ११५४ ।
इम्पीरियल गजेटियर आफ इन्डिया, भाग ८, पृ. २११ ।
ए. सी. बनर्जी–राजपूत स्टेट्स एन्ड ईस्ट इन्डिया कम्पनी, पृ. १८३ ।

इलाके के दक्षिणी भाग में भुरट आम घास है, दूसरे प्रकार की घास धामन, माकड़ा, गंठीला, फुलेर आदि हैं ।[1]

यहाँ के प्राकृतिक रूप, विशेषताओं, जलवायु और दूसरे भौगोलिक विषयों ने बीकानेर के आस पास रहने वाले लोगों के जीवन को इतना अधिक प्रभावित किया है कि इसका यहाँ के इतिहास के प्रवाह पर निश्चित प्रभाव पड़ा है । सिवाय एक छोटे भू भाग के उत्तर पश्चिम का समतल क्षेत्र ऊँचे रेतीले टीलों का है जो स्थान बदलते रहते हैं । सतह का आकार इस प्रकार का है कि रेगिस्तान में से निकलना लगभग असम्भव हो जाता है । सूरतगढ़ तक का भाग निर्जन है और रेत के ढलवां टीलों वाला है जो जंगली झाड़ियों से ढका हुआ है । यद्यपि यहां से आगे चिकनी मिट्टी का समतल मैदान है जहां बनस्पति ज्यादा है और गांव भी अधिक हैं लेकिन यह समस्त क्षेत्र बंजर भूमि वाला और डाकुओं व लुटेरों का अड्डा था । यहां की जमीन ऐसी है कि वर्षा के सारे पानी को बरसते ही सोख लेती है । इससे बहुत गहरे कुओं का निर्माण आवश्यक हो जाता है । जीवन के सामान्य कार्यों और घरेलू उपयोग के लिए भी वर्षा के पानी को कुन्डों में इकट्ठा करने के सभी सम्भव प्रयत्न किये जाते हैं । भूतकाल में पानी की कमी से बहुधा यहां के निवासियों को अपने पूरे परिवार के साथ अधिक उपजाऊ भूमि में चले जाने को विवश किया ।[2] पानी का अभाव, वर्षा की

---

१. ए. सी. बनर्जी—वही, पृ० १८१ ।

२. जार्ज थॉमस अपने सैनिक संस्मरणों में लिखता है "जीवन के साधारण कामों और घरेलू खपत के लिये प्रत्येक परिवार वर्षा के पानी को एकत्रित करने के लिये एक कुण्ड बनाने का ध्यान रखता है इसके फलस्वरूप इस मूल्यवान वस्तु (पानी) का अभाव निवासियों को बहुधा विवश करता है कि वे सारे परिवार के साथ अच्छी जगह में चले जायँ ।"

निरन्तर पड़ने वाले अकालों की कठिनाइयों से संघर्ष करने वाली यहां की आबादी को मुक्त करने की सारी आशायें उत्तरी भाग पर, जिसमें घग्घर की तली का भाग भी है, केन्द्रित हैं। यह भाग ३२०० वर्ग मील का है और सतलज से सींचा जाता है । यह इलाका भी १९वीं शताब्दी के आरम्भ में सारा का सारा बंजर था और लुटेरों व डाकुओं का अड्डा था । ६० वर्ष पहले तक यहां कोई गांव नहीं था । रणियां के भाटी लोगों ने इसके समस्त उत्तरी भाग को लूटा और इससे यह उजाड़ हो गया । यहां के पशुओं और भेड़ों की संख्या भिन्न-भिन्न वर्षों में चारे और पानी के काफी मात्रा में मिलने के अनुसार भिन्न रही है । निम्नलिखित आंकड़ों पर

कमी और नदियों के न होने से यहां के लोग अपने आवश्यक अनाज के लिये अपने पड़ोसियों पर निर्भर होने को बाध्य हो गये हैं। खास इलाके, जो खेती के

एक दृष्टि डालने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा:—

वर्ष	भेड़ें व बकरियां	बैल, गायें, भैंस आदि
१८९६	२,४९,२९४	२,२५,७४१
१८९८	३,३८,७६३	१,३५,९९५
१८९९	१,६३,३२८	३८,७६६
१९००	१,४१,१८७	५१,५१५
१९०४	२,९६,६२८	४८,८७५
१९०८	४,५७,५१६	१,०९,५१९

कभी-कभी तो पानी की कमी और चारे के अभाव के कारण इस भाग के कम से कम ७५ प्रतिशत पशुओं को बाहर ले जाना पड़ा। प्रत्येक अकाल के वर्ष के बाद प्रशासन को यहां के लोगों को अपनी जमीन जोतने के लिए काफी पशु जुटाने के लिए कठिनाई का सामना करना पड़ा। सूखे वर्षों में मेहनती ऊंटों को, जो कम पानी पर रह जाते हैं और मोटी से मोटी वनस्पति खा लेते है, भी दूसरी जगह जाना पड़ता है। अपने पत्रांक १३९० दिनांक २२-९-१८९९ में बीकानेर के पोलिटिकल एजेन्ट ने दरबार को लिखा कि बीकानेर से आवश्यकता से अधिक लोगों के चले जाने से पंजाब सरकार को बहुत अधिक असुविधा हो गई। उसने सुझाव दिया कि दूसरी जगह जाने वाले इन लोगों पर किसी तरह की रोक लगाई जाये और बीकानेर–भटिन्डा रेल्वे लाइन का मिट्टी का काम हाथ में लिया जाये। अपने पत्रांक १९२० दिनांक ३०-९-१८९९ में पोलिटिकल एजेन्ट ने पुनः लिखा कि गवर्नर जनरल के एजेन्ट के पास इस बात की निरन्तर शिकायतें आ रही हैं कि राजपूताना से उठ कर आने वाले लोग अंग्रेजी जिलों के सहायता कार्यों और पड़ोसी रियासतों में भीड़ मचा रहे हैं। अपने पत्रांक ९१८ दिनांक २८-३-१९०० में उसने दरबार से मांग की कि वे ऐसे लोगों को पंजाब से हटाकर उन्हें अपने-अपने गांवों को भेज दें। सी. एम. केन की सिरसा और फाजिलका तहसीलों की अन्तिम भू प्रबन्ध रिपोर्ट में बताया गया है कि फाजिलका के लोग बीकानेर और सिरसा के अपने हजारों रिश्तेदारों की मदद करने में समर्थ थे। सन् १९११ में भी पंजाब के उप–राज्य–पाल ने गवर्नर जनरल के राजपूताना रियासतों में एजेन्ट को लिखा कि राजपूताना से हमेशा की तरह लोग पंजाब जाने शुरू हो गये हैं। १८९९–१९०० के अकाल में कम से कम ३ लाख लोग बीकानेर छोड़कर पास के अंग्रेजी जिलों और रियासतों के भूखों मरने वाले निवासियों की संख्या बढ़ाने गये। सन् १९०१ की जनगणना के समय

लिए कुछ अधिक उपयुक्त हैं, भी इतना कम उत्पन्न करते हैं कि उससे किसान की मेहनत का भी पूरा फल नही मिलता। स्पष्ट है कि इसी से यहां के लोग खेती की अपेक्षा पशु चराने के व्यवसाय को ज्यादा अच्छा समझते हैं।[1] बीकानेर के राठौड़ शासकों ने इस प्रकार का ऐसा आतिथ्य-विहीन प्रदेश रक्खा कि बाहर के बहुत कम लोग यहां के धोरों में आने और इलाके की शान्ति भंग करने का साहस कर सके।[2] इससे बाहरी हमलों से यह इलाका बहुत सुरक्षित रहा और बीकानेर के शासक अपने राज्य का स्वतन्त्रता से स्वयं निर्माण कर सके। इसका मतलब था स्वायत्त

बीकानेर रियासत की जन संख्या ५,८४,७२७ रह गई जबकि सन् १८६१ में यह ८,२१,६६५ थी।

(रायस्थान राज्य पुरालेख विभाग, बीकानेर, में प्राप्त एक लेख के अंश से उद्धृत)

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० १३५।

इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, भाग ८, पृ० २१०।

सन् १८६६ में कुल वर्षा पश्चिमी भाग में १·६५ इन्च और पूर्वी भाग में २·२१ इन्च थी। वर्षा की अनिश्चितता बहुत अधिक है और आम तौर पर यह काफी अस्थिर, दूर दूर तक और ठीक ठीक होती है; पर ऐसा कभी २ होता है। कुओं से सिंचाई असम्भव है और खेती पूरी तरह अनिश्चित और कम होने वाली वर्षा पर निर्भर है। फसल तो वास्तव में और भी अधिक अनिश्चित है। इसलिये लोगों को भेड़ और पशु पालने का धन्धा अपनाना पड़ा है।

२. बीकानेर राज्य बाहरी हमलों से सुरक्षित रहा। उत्तर की ओर से बीकानेर पर हमला करने वालों में भावलपुर या रणिया के भाटी लुटेरे थे। संगठित हमले दो बार किये गये, एक बार मिर्जा कामरां द्वारा और फिर जार्ज थॉमस द्वारा। ये दोनों ही आक्रमण कोई प्रभाव नहीं डाल सके और उनका अन्त असफलता में हुआ। न तो मराठों ने और न पिण्डारियों ने कभी यहाँ की शान्ति भंग की। दक्षिण से जोधपुर राज्य ने अवश्य आक्रमण किया और एक बार तो राव मालदेव के शासन काल में जोधपुर की सेना ने बीकानेर पर वास्तविक अधिकार भी कर लिया था। इन हमलों के अतिरिक्त बीकानेर सुरक्षित रहा और आम तौर पर इसकी भौगोलिक स्थिति ने इसकी रक्षा की।

शासन जो उच्च संस्कृति के विकास और अभंग प्रेम के लिये उपयुक्त था।[1]

भूमिगत बनावट द्वारा उत्पन्न बाधा और बीकानेर राज्य की जलवायु के कारण बाहर के लोगों में इस इलाके में आने का आकर्षण कभी पैदा न होता और बीकानेर का इतिहास सामान्यतः स्थानीय महत्व के मामलों तक सीमित रह कर घटनाहीन बातों का संग्रह होता लेकिन कुछ दूसरी ऐसी बातें थीं जिन्होंने इस अनाकर्षक भू-भाग को काफी महत्वपूर्ण बना दिया। इससे घटनाओं की शृंखला ने एक ऐसा मार्ग बनाया, जो यद्यपि कठिन था पर जिसने अन्त में बीकानेर राज्य के शासकों और दिल्ली के बादशाहों में राजनैतिक सम्बन्ध का नव-प्रभात दिखाया।

वास्तव में इस प्रदेश की दिल्ली साम्राज्य के अत्यधिक निकटता ने दिल्ली के शासकों के लिये यह अनिवार्य कर दिया कि वे अपने इतने निकट स्थित एक राज्य को सैनिक महत्व की दृष्टि से कम न समझें।[2] राज्य की उत्तरी सीमा पर स्थित दो दुर्जय दुर्गों, भटिण्डा और भटनेर[3]

---

१. इस इलाके में रहने वाले लोगों को सुरक्षा की भावना मिली उसी का यह परिणाम था कि यहाँ सेठ साहूकार और दूसरी व्यापार करने वाली जातियाँ समृद्ध हो सकीं, यद्यपि अन्य सभी दृष्टियों से बीकानेर की बंजर भूमि समृद्धि का कोई अवसर नहीं दे पाई। बीकानेर के सेठ साहूकार जब समस्त भारत में व्यापार करते थे और अधिकांशतः राज्य से बाहर कलकत्ता और बम्बई जैसे दूर २ के स्थानों में निवास करते थे, बीकानेर में अपने धन को केवल इसलिये ही एकत्रित करके रखते थे क्योंकि यहां की प्राकृतिक बनावट ने सुरक्षा प्रदान कर रक्खी थी। इतना ही नहीं प्रकृति द्वारा प्रदत्त सुरक्षा ने साहित्यकारों को भी इस इलाके में अपने हस्तलिखित ग्रंथ लेकर आने के लिये प्रेरित किया। यही कारण है कि बीकानेर राज्य में आज भी हजारों हस्तलिखित ग्रंथ मौजूद हैं। जगद्गुरू का प्रसिद्ध संग्रह आज भी बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में उपलब्ध है।

२. दिल्ली से बीकानेर राज्य की सीमा लगभग ११७ मील और भटनेर (हनुमानगढ़) से लगभग १६६ मील दूर है।

३. अर्सकिन—पूर्व उद्धृत, पृ० ३६७।
भटनेर हनुमानगढ़ का पुराना नाम था। सन् १८०५ में यह मंगलवार के दिन महाराजा सूरतसिंह जी द्वारा जीता गया अतः इसका नाम हनुमानगढ़ रक्खा गया। इसका भटनेर नाम मूलतः इस पर भट्टियों—मुसलमान भट्टियों का अधिकार होने से पड़ा। भटनेर एक बहुत ही मजबूत और अच्छी तरह किले बन्द गढ़ था जो सारे हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध था।

के कारण यहां का सैनिक महत्व और भी बढ़ गया। कोई भी सैनिक शक्ति इन दोनों दुर्गों पर अधिकार किये बिना पूर्वी पंजाब पर अधिकार करने का दावा नहीं कर सकती थी।[१]

इस प्रकार राठौड़ राज्य ने भटनेर और भटिंडा के चारों ओर एक ऐसे व्यूह का निर्माण किया जिससे प्रभावित होकर दिल्ली के शासकों ने इस पर किसी प्रकार का अधिकार रखना चाहा और इसी भावना के कारण बीकानेर के शासकों और दिल्ली के बादशाहों में सम्बन्ध बना। अफगानों के विरुद्ध एक शक्तिशाली विरोध कायम करने की भावना ने मुगल बादशाहों को बीकानेर के राठौड़ों का सहयोग प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया ताकि वे अपने साम्राज्य को सुदृढ करने का प्रयत्न कर सकें।[२] इस प्रकार मुगल साम्राज्य की नींव केवल राजपूत योद्धाओं की सहायता से ही सुदृढ़ बन सकी।[३]

---

१. उत्तर पश्चिम से आने वाले प्रायः सभी हमलावर सिरसा के आस पास वाले इलाके को, जो सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध था, अधिकार में करने की भावना रखते थे। सुलतान मुहम्मद गौरी और उसके सेनापतियों के आक्रमण के समय में यह इलाका बहुत उल्लेखनीय बन गया। तबकाते-नासीरी में सरस्वती नामक जिस दुर्ग का उल्लेख है वह वास्तव में सरस्वती नदी, जो घग्घर भी कहलाती है, के पास में था। इसी इलाके के बिल्कुल निकट भटनेर और भटिण्डा के किले स्थित थे। इसका सैनिक महत्व इस बात में है कि इस इलाके को जीतने के बाद प्रत्येक हमलावर दिल्ली की ओर बढने के लिये इसे अपना अड्डा बना लेता था।

२. बाबर के सभी प्रयत्न अफगान भुजंग को केवल घायल ही कर सके और फल-स्वरूप हुमायूं ने अपना सिंहासन खो दिया तथा शेरशाह भारत में अफगान साम्राज्य स्थापित कर सका। पानीपत की दूसरी लड़ाई में अकबर ने हेमू को हरा दिया था तो भी अफगान खतरा मुगल साम्राज्य के भाग्य पर इतनी गहरी काली छाया डाल रहा था कि मुगल बादशाहों को उनके विरुद्ध राजपूतों का सहयोग प्राप्त करने के लिये विवश होना पड़ा।

३. बादशाह बनने के तुरन्त बाद ही अकबर ने अफगानों के निकट खतरे को महसूस किया। साथ ही इस तथ्य को भी अनुभव किया कि राजस्थान के शासकों की सहायता और सहयोग के बिना वह सफलता से इसका मुकाबला नहीं कर सकता। इसलिये उसने उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध करने की नीति अपनाई। सन् १५६२ में भारमल से समझौता करके उसने कच्छवाहों की मित्रता प्राप्त की इससे राजस्थान के राजपूत शासकों में इतनी फूट पड़ गई कि अकबर का साम्राज्य बढ़ाने के लिये वे आपस में ही एक दूसरे के विरुद्ध सन् १५६२ में मेड़ता में,

बीकानेर राज्य को महत्व देने का दूसरा कारण यह था कि इस इलाके में रहने वाले लोग यौधेयों की भूमि में पले होने के कारण युद्ध के लिये आवश्यक सभी गुणों से युक्त थे और इसलिये दिल्ली की शाही सेना में भर्ती करने के लिये यह इलाका एक अच्छा स्थान था। इतना ही नहीं इस इलाके में निवास करने वाली लड़ाकू जातियां खतरे का कारण बन सकती थीं और पंजाब की शान्ति और स्थिरता को भंग कर सकती थीं। इसके अलावा हज जाने वाले तीर्थ यात्रियों का रास्ता भी इसी भाग में से होकर था।

निश्चय ही यह केवल दिल्ली के बादशाहों की ही इच्छा नहीं थी कि वे बीकानेर के राजघराने के साथ सम्बन्ध जोड़ें बल्कि यह बीकानेर के शासकों की भी आवश्यकता थी। यद्यपि बीकानेर पर किसी बाहरी हमले का खतरा नहीं था पर वह आंतरिक विप्लव[1] का शिकार था जो अधिकांशतः

सन् १५६२ में जोधपुर में, सन् १५६७-१५६८ में चितौड़ में और सन् १५६९ में रणथम्भौर और कालिंजर में लड़े। उसकी कूटनीति इतनी सफल थी कि सन् १५७० में जब वह नागौर आया तो उसकी सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करने और उसकी कृपा पाने के लिये राजपूत राजा एक दूसरे से स्पर्द्धा करने लगे।

१. राव बीका और उसके उत्तराधिकारियों की विस्तारवादी नीति ने यहां पहले बसे हुऐ लोगों में काफी रोष उत्पन्न कर दिया था। इनमें सबसे महत्वपूर्ण उत्तर-पश्चिम के भाटी और भटनेर के भट्टी थे। जब राव बीका ने कोड़मदेसर में एक किला बनाना चाहा तो भाटियों ने इस विचार का विरोध किया और अन्त में लड़ने पर उतर आये। उनके निरंतर विरोध की सम्भावना से प्रभावित होकर राव बीका ने अन्त में बीकानेर में एक किला बनाने का निश्चय किया। भट्टी भी जो भाटियों से मुसलमान बन गये थे और जिनका भटनेर और उसके आस पास के इलाके पर अधिकार था, राव बीका द्वारा दमित हुए। लेकिन इस इलाके ने कई बार अपनी सत्ता बदली और केवल सूरतसिंह जी के शासन काल में ही भट्टी अन्तिम रूप से पराजित हुए।

इस प्रकार के विप्लव का दूसरा कारण राव बीका के कुछ उत्तराधिकारियों का कमजोर शासन और उनकी अदूरदर्शी नीति थी जैसे कि करों में वृद्धि करना, बिना सन्देह किये जागीरें देना और फिर उन्हें वापिस ले लेना। इससे उनके अपने ही जागीरदारों में असन्तोष उत्पन्न हो गया जिन्हें कुछ मामलों में तो षड्यन्त्र करने और शासक की सत्ता के विरुद्ध खुला विद्रोह करने का साहस किया।

भट्टियों[1] जोहियों[2] और इस इलाके के दूसरे देशी तत्वों[3] की गैर कानूनी हरकतों के कारण उत्पन्न हो रहा था। बीका द्वारा इस इलाके की विजय और यहां के गणतांत्रिक समूहों[4], जो वहां मिल कर बन गये थे और जिनका अपने २ क्षेत्र पर अधिकार था, को अधीन कर लेने पर स्वाभाविक था कि वे शोर मचाते और जब भी उनको अवसर मिलता घृणित कार्यों में लग कर शान्ति भंग करते और इस इलाके के प्रशासन को सुव्यवस्थित चालू रखना कठिन बनाते। अपने इलाके में अव्यवस्था फैलाने वाली इन शक्तियों के विरुद्ध लड़ने के लिये बीकानेर के शासकों को बाहरी मदद लेनी पड़ी। आन्तरिक अव्यवस्था से भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण जोधपुर राज्य की महत्वाकांक्षा सिद्ध हुई, जिसके शासकों ने बीकानेर पर कई हमले किये और यहां के शासक राव कल्याणमल को शेरशाह से सहायता प्राप्त करने के लिये विवश होना पड़ा।[5] इस प्रकार जोधपुर राज्य के साथ पारस्परिक विनाशकारी युद्धों, आंतरिक विप्लव और सीमा पर भट्टियों एवं स्वेच्छाचारी डाकुओं द्वारा उत्पन्न कष्टों से तंग आकर बीकानेर के शासकों ने दिल्ली के बादशाहों के साथ सम्बन्ध

इसके साथ ही राजदरबारों में चलने वाले षड्यन्त्र और सरकारी अधिकारियों की अपना स्वार्थ सिद्ध करने की इच्छा भी थी चाहे इससे राजा और प्रजा को हानि ही हो।

१. बीकानेर की स्थापना से पूर्व बीकानेर के उत्तर पश्चिम का सारा इलाका जो जैसलमेर से आरम्भ होकर पंजाब की सीमा तक जाता था, भाटियों के अधिकार में था। ये दो श्रेणियों में बंटे हुये थे। हिन्दू भाटियों का जैसलमेर के नजदीक और पूगल के भू भाग पर अधिकार था और मुसलमान भाटियों का उत्तर में भटनेर के पास अधिकार था। ये मुसलमान भाटी भट्टी कहलाते थे।

२. पृ० १८ देखें।

३. ये दूसरे देशी तत्व जागीरदार थे जिनमें अजीतपुरा, चूरू और भादरा के ठाकुर मुख्य थे।

४. ये गणतान्त्रिक समूह मुख्यतः जाटों के थे और निम्नलिखित जातियों से बने थे—
१. गोदारा २. सारण ३. कस्वां ४. बेणीवाल ५. पूनिया ६. सिहाग ७. सोहुआ।

५. राव कल्याणमल के शासनकाल तक बीकानेर के विरुद्ध जोधपुर के दो आक्रमण हो चुके थे और उसके बाद सुजानसिंह जोरावरसिंह और गजसिंह के शासन के समय ५ और हमले किये गये।

जोड़ा। यह संबंध अकबर की हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता की नीति से और भी सरल तथा मजबूत बन गया।

दिल्ली के बिल्कुल निकट होने के कारण बीकानेर राज्य का सैनिक महत्व तो था ही, इसके अतिरिक्त इसका व्यापारिक महत्व भी था। राजगढ़ एक बहुत बड़ा व्यापारिक स्थान था और उत्तरी भारत के सभी भागों से काफिले यहां आकर ठहरते थे। पंजाब और काश्मीर की चीजें हांसी और हिसार होकर सीधी यहां आती थीं और पूर्वी भागों से दिल्ली, रेवाड़ी और दादरी होते हुये यहां रेशम, बढ़िया कपड़ा, नील, चीनी, लोहा, तम्बाकू आदि आती थी। हाड़ोती और मालवा की तरफ से अफीम आता था जो राजपूताना की सभी रियासतों को जाता था। सिंध घाटी के प्रसिद्ध व्यापारिक स्थानों शिकारपुर और मुलतान से खजूर, गेहूँ चावल, लुँगी (औरतों के लिये रेशमी घाघरा) और फल आते थे। मारवाड़ में पाली से विदेशों से समुद्री रास्ते आया हुआ आयात का माल, जैसे मसाले दवाइयां, नारियल आता था।[2]

यद्यपि इस व्यापार का कुछ माल तो स्थानीय लोगों की आवश्यकता को पूरा करता था पर उसका अधिकांश भाग यहां से दूसरे स्थानों पर चला जाता था और इससे काफी आमदनी होती थी। ऊन, व्यापार और उत्पादन के लिये एक मुख्य सामग्री थी। इस इलाके के लोग लोहे के काम में भी निपुण थे और उनकी दुकानें राजधानी तथा दूसरे बड़े नगरों में थीं जहां उच्चकोटि की तलवार, ताले, कटार भाले आदि बनाये जाते थे। तलवारों की बहुत मांग

---

१. स्मिथ— आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया, पृ० २६६--२७०। अकबर की हिन्दू नीति सहिष्णुता की थी जो उन्हें अपने धर्म को मानने की समान स्वतन्त्रता प्रदान करती थी। उसने जजिया हटा दिया और नियुक्ति या मनसब देने में वह हिन्दू मुसलमानों में भेद नहीं रखता था। यद्यपि कुछ लोगों का मत है कि उसकी यह नीति राजनैतिक योग्यता का परिणाम थी पर इस मत का समर्थन करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत हम अबुल फजल का अधिकृत हवाला दे सकते है कि अकबर का समस्त जीवन सत्य की खोज के लिये था और उसका वास्तव में विश्वास था कि प्रत्येक धर्म में सत्य है।

२. ए. सी. बनर्जी—पूर्व उद्धृत, पृ १८३–१८४।
टॉड—पूर्व उद्धृत, पृ०११५४--११५५।
असँकिन—पूर्व उद्धृत, पृ० ३५१--३५२।

थी और वे भारत के विभिन्न भागों में भेजी जाती थीं ।[1]

बीकानेर के राजगढ़ को उत्तर की ओर से जोड़ने वाले मुख्य व्यापारिक मार्ग दिल्ली, भिवानी और हिसार होकर आते थे । राजगढ़ से तीन मुख्य मार्ग जाते थे । एक रीणी होकर बीकानेर जाता था; दूसरा चुरू, रतनगढ़ और सुजानगढ़ होकर फलौदी, नागौर, जोधपुर और पाली जाता था और तीसरा पूगल होकर भावलपुर जाता था । इनके अलावा दूसरे भी मार्ग थे और व्यापारी अपने माल को ले जाने के लिये अपने ऊपर लगायी गई शर्तों के अनुसार एक अथवा दूसरे मार्ग को ज्यादा पसन्द करते थे । उदाहरण के लिये व्यापारी भिवानी और मारवाड़ के बीच शेखावटी मार्ग की अपेक्षा बीकानेर मार्ग को अधिक पसन्द करते थे क्योंकि शेखावटी मार्ग पर अनेक ठाकुरों द्वारा जकात ली जाती थी जबकि बीकानेर मार्ग में जकात केवल एक बार राजगढ़ में ही ली जाती थी ।[2] इसके अतिरिक्त यह इलाका दूसरी जगहों के व्यापारिक मार्गों से भी जुड़ा हुआ था, यद्यपि अब जैसलमेर के व्यापारिक केन्द्र न रहने से ये मार्ग विस्मृत हो गये हैं । विभिन्न मार्ग कई भागों में तय किये जाते थे जो कि काफिलों के ठहरने के स्थान थे और उनकी दूरी, पानी, भोजन और चारे आदि की सुविधाओं पर निर्भर रहते हुये, ३ से २० मील तक होती थी । उदाहरण के लिये राजगढ़ से अमरकोट होता हुआ हैदराबाद सिन्ध का मार्ग २६ भागों में पूरा किया जाता था । इस व्यापारिक महत्व के इलाके के कारण भी दिल्ली के अफगान और मुगल शासक दोनों इस राज्य की ओर आकर्षित हुए बिना न रह सके ।

---

१. ए. सी. बनर्जी—पूर्व उद्धृत, पृ० १८४ ।
टॉड—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ११५५ ।
अर्सकिन—पूर्व उद्धृत, पृ० ३५२ ।

३. पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ० १५७-१५८ ।
परिशिष्ट १—कैप्टन बर्टन की सन् १८७२-१८७३ की रिपोर्ट से बीकानेर की जकात और व्यापार पर तैयार की गई टिप्पणियाँ ।

मुख्य मार्गों की दूरी पाउलेट ने अपने गजेटियर में पृ० १०८-१०९ पर इस प्रकार दी है--

बीकानेर से अजमेर	—	१५० मील
बीकानेर से भावलपुर	—	१५० मील
बीकानेर से भिवानी	—	१८० मील
बीकानेर से सिरसा	—	१६० मील

इस इलाके का देश के दूसरे भागों से सामान्य रूप से तथा केन्द्रीय सत्ता से विशेष रूप में जो सम्बन्ध बना वह दिल्ली के मुगल और अंग्रेज शासकों तक सीमित न रहा। मुसलमानों के आने से पूर्व भी यहाँ के लोगों ने अपने युग की राजनीति में जो महत्वपूर्ण भाग अदा किया उससे इस क्षेत्र का सैनिक महत्व स्पष्ट रूप से प्रकट हो गया। इस इलाके की ऐतिहासिकता अतीत में भारतीय इतिहास के आरम्भिक युग और इस भाग में स्थित सरस्वती घाटी जो हड़प्पा संस्कृति की पूर्वी सीमा थी, के प्रागऐतिहासिक युग से जोड़ी जा सकती है। अब यह माना जाता है कि "यदि हड़प्पा और मोहनजोदाड़ो हड़प्पा साम्राज्य की दो राजधानियाँ थीं-- एक उत्तर में और दूसरी दक्षिण में तो गंगानगर जिले में स्थित कालीबंगा पूर्व में तीसरी राजधानी थी।[1]

महाभारत काल में यह प्रदेश कुरू राज्य का एक भाग था।[2] यह कहना बहुत कठिन है कि मौर्य, ग्रीक, गुप्त और प्रतिहार अधिकार काल में यहाँ कौन शासन कर रहा था लेकिन बीकानेर के वर्तमान प्रदेश का मौर्य, शुंग और कुषाण कालों में जो गौरव रहा है वह काव्यों और शिलालेखों के प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है। इस क्षेत्र पर एक बार यौद्धेयों का भी अधिकार रहा जिन्होंने शकों और कुषाणों के विरुद्ध सफलता से लड़ कर न केवल अपनी, बल्कि शेष भारत की भी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त की। डा० टैस्सीटोरी ने सोचा कि घग्घर के क्षेत्र के आरम्भिक मिट्टी के टीलों को यौधेयों से जोड़ा जा सकता

---

१. डा० दशरथ शर्मा--विभिन्न युगों में राजस्थान, भूमिका पृ० १-४।

२. बीकानेर के राठौड़ राज्य के क्षेत्र का प्राचीन नाम "जांगलदेश" था। इसके उत्तर में कुरु और मद्र थे। यही कारण है कि महाभारत में "जांगल" शब्द कई बार अकेला और कई बार कुरु और मद्र के साथ आया है। महाभारत में हमें कुरू पांचाल माद्रेय जांगल (कुरूपांचालः माद्रेय जांगलाः) और कुरु जांगल (कुरू जांगलाः) शब्द मिलते हैं जिसका तात्पर्य है कि पांचाल कुरू से और जांगल मद्र से जुड़ा हुआ था। इस सम्बन्ध में महाभारत के श्लोकों के निम्नलिखित अंश इस तथ्य को प्रमाणित करेंगे।

"कच्छा गोपालकक्षाश्च जांगलाः कुरुवर्णकाः"

—महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय ९, श्लोक ५६।

"तत्रेमे कुरू पाञ्चालाः शाल्वा माद्रेय जांगलाः"

--महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय ९, श्लोक ३९।

"तीर्थयात्रामनुक्रामन्प्राप्तोस्मि कुरू जांगलान्"

—महाभारत, वन पर्व, अध्याय १०, श्लोक ११।

है,[1] लेकिन अब यह ज्ञात हो चुका है कि उनमें बहुत से और भी अधिक प्राचीन हैं। सूरतगढ़, रंगमहल, और बडोपल के इलाके में बौद्ध अवशेष मिले हैं। इस इलाके में खुदाई से पत्थर जैसी मूर्तियां मिली हैं जिनसे संकेत मिलता है कि यहां एक उन्नत सभ्यता थी। ये मूर्तियां बाहरी आकार में भारत यूनानी तथा धार्मिक परम्परा में शैव और वैष्णव मूर्तियों से मिलती जुलती हैं। गुप्तकाल में इस क्षेत्र ने गुप्त संस्कृति के सर्व श्रेष्ठ रूप को अपनाया और कला साहित्य तथा विज्ञान को एक महत्वपूर्ण देन दी। गुप्तकाल के बाद में यहां के कलाकार उच्चकोटि की परम्परा से प्रभावित होकर अनुपम सौन्दर्य की मूर्तियाँ बनाते

---

१. डा० गौरी शंकर हीराचन्द ओझा -- बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० ६९-७० ।

मरूभारती (पिलानी) में प्रकाशित "राजस्थान में गणराज्यों का युग" तथा राजस्थान में प्रकाशित "राजस्थान की संस्कृति" शीर्षक डा० दशरथ शर्मा के लेख देखें। "यौधेय जिनका गणतन्त्र सरस्वती के कांठे में था, सम्भवतः राजस्थान पश्चिमी उत्तर प्रदेश और दक्षिणी पूर्वी पंजाब की गणतन्त्रात्मक जातियों में सबसे शक्तिशाली थी। जैन कथाओं में रोहितक को यौधेयों की राजधानी बताया गया है लेकिन उनकी एक से अधिक शाखा और एक से अधिक राजधानी होना सम्भव है। सतलज नदी के दोनों ओर का प्रदेश और पुराने भावलपुर राज्य की सीमाओं पर स्थित जोहिया बाड़ नाम का भू भाग आज भी जोहिया बाड़ या जोहिया अथवा योधेयों की भूमि कहलाता है। ईसा की दूसरी शताब्दी में योधेयों का शक्तिशाली शासक रूद्रदामन के साथ संघर्ष हुआ। यद्यपि उसने उनको पराजित कर दिया फिर भी उनके गौरव के कारण उनका अधिकार में न होने योग्य कहलाना वह सहन नहीं कर सका। फलस्वरूप सभी क्षत्रियों में उन्हें वीर की उपाधि से विभूषित करके उल्लेख किया गया। लुधियाना से प्राप्त उनकी मिट्टी की एक मोहर में भी यही भाव व्यक्त किया गया है जिसमें लिखा है "योधेया नाम जय मंत्र धारणम" अर्थात् विजय मन्त्र को अधिकार में रखने वाले योधेयों की मोहर। अनेक विजयों ने ही उन्हें इतना गर्वीला और विश्वासी बनाया होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध उनका व्यवसाय था। देव सेनापति कुमार कार्तिकेय उनके इष्टदेव थे और योद्धेय राज्य के सर्वोच्च शासक माने जाते थे। जैन कथाओं में चण्डमारी उनकी इष्ट देवी कही गई है और वह सुब्रह्मन्यु या कुमार से भी अधिक रक्त को पसंद करती थी"

--डा० दशरथ शर्मा, मरुभारती, भाग ८, अङ्क ३, पृ० ३-६ और "विभिन्न युगों में राजस्थान" में इसका अंग्रेजी अनुवाद ।

थे। पल्लू गांव के निकट और प्राप्त बीकानेर के राजकीय संग्रहालय तथा दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में प्रदर्शित जैन सरस्वती की प्रतिमाओं से यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है।[1]

कन्नोज के शासक हर्ष के समय में इस राज्य के दक्षिणी राज्य के संबंध में हमें कुछ सूचना मिलती है। डा० गोएट्ज के अनुसार चीनी यात्री ह्वेनचांग द्वारा वर्णित ओच-अली प्रदेश बीकानेर की हालत से बिल्कुल मिलता जुलता है।[2] बाद की शताब्दी के बारे में हम प्रायः कुछ नहीं जानते। कहा जाता है कि पूगल के राजा का सिंहासन[3] गजनी से लाया गया था। यह अब भी पूगल के राव के अधिकार में है। यद्यपि यह काफी पुराना है तो भी गजनी-काल से अधिक पुराना नहीं हो सकता। देवी की छोटी मूर्ति[4] जो एक प्रतिरूप है और जो लगभग ८०० वर्ष पूर्व जैसलमेर से लाई गई बताई जाती है, अधिक से अधिक १४वीं शताब्दी की हो सकती है। कोलायत भादरा और मोरखाना की बारहवीं शताब्दी की तथा राशीसर, कँवलीसर और छापर की तेहरवीं शताब्दी की देवलियां अर्द्ध बर्बर स्तर से अंकित हैं। केवल उत्तरी भाग में कुछ सुन्दर हिन्दू और जैन मूर्तियों के प्रमाण मिलते हैं और ऐसा लगता है कि वे मध्य राजपूताना से वहां लाई गयी हैं। १५वीं और १६वीं शताब्दी में जाकर ही हमें संभवतः गुजरात से प्रभावित पुनर्जागरण के संकेत, एक विनम्र माप दण्ड पर मिलते हैं।[5] श्री लक्ष्मीनाथजी के मन्दिर के पास बीकाजी की टेकरी और पूगल के पुराने किले छोटे और मिट्टी की कच्ची ईटों से बने हुए हैं। यह भी संदिग्ध है कि नागणेचीजी की अष्टादश भुजा तथा हिरण्यगर्भ एवं श्री लक्ष्मीनाथ जी की मूर्तियां १५वीं शताब्दी से पूर्व की हैं। यद्यपि कन्नोज के प्रसिद्ध सिंहासन के

---

१. डा० दशरथ शर्मा--'राजस्थान : एक सिम्पोजियम' राजस्थान सरकार के जनसंपर्क विभाग द्वारा प्रकाशित।
'राजस्थान--भारती' भाग १, अंक २-३, जुलाई--अक्टूबर १६४६, पृ० ३।
डा. एच. गोएट्ज--'बीकानेर के कला इतिहास की रूप रेखा' [आउट लाइन आफ एन आर्ट हिस्ट्री आफ बीकानेर]

२. वही।

३. यह सिंहासन अब भी पूगल के राव के अधिकार में हैं।

४. मन्दिर में पास पास दो मूर्तियाँ हैं-एक बड़ी और एक छोटी।

५. राजस्थान--भारती, भाग १, अंक २-३, जुलाई-अक्टूबर १६४६, पृ० ४।

सबसे पूर्व अलंकृत भाग राव बीका के समय से पहले के हैं पर अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि इस सिंहासन के कुछ काष्ट फलक सम्भवतः कन्नौज से आये हों। कोलायत और कोडमदेसर के १५वीं शताब्दी के स्मारक प्रस्तरों में केवल एक आकृति दिखाई गई है जो बहुत अप्रौढ़, छोटी और ठोस है। लेकिन इसमें शरीर का वास्तविक विस्तार दिखाया गया है जो पहले की देवलियों में नहीं मिलता। इस शताब्दी के अन्त की देवलियों में काफी कलात्मक सुधार मिलता है और कुछ आकृतियों के महत्वपूर्ण दृश्य सजीव मुद्राओं में हैं यद्यपि रूप रेखा अब भी परंपरागत, परिमाण, स्वच्छन्द और संक्षेप की अपेक्षा विस्तार का भाव लिये हुये है।[1] इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि राठौड़ों के आने से पूर्व भी इस क्षेत्र की अपनी स्वयं की सांस्कृतिक संपत्ति थी।

राठौड़ों के आने से पूर्व की शताब्दियों में यह इलाका जो बाद में बीकानेर राज्य के नाम से पुकारा जाने लगा ऐसी जातियों से बसा हुआ और शासित था जो यहीं पैदा हुई थीं। यह बहुत से भागों में विभाजित था और इनमें से कुछ जोहियों, चौहानों, साखलों, परमारों, भाटियों और जाटों द्वारा शासित थे। यह ज्ञात करना कठिन है कि उनका किस २ प्रदेश पर अधिकार था और वे किस २ समय दूसरों से उन्नत थे।[2]

जोहिये प्रसिद्ध यौद्धेयों, जिनकी उत्पत्ति प्राचीन क्षत्रियों में ढूंढ़ी जा सकती है, के वंशज थे। लगभग सभी शिलालेखों में उनका ऐसा ही वर्णन मिलता है। यौद्धेय एक वीर जाति थी और क्षत्रियों में उनका महत्वपूर्ण स्थान था। यौद्धेय शब्द युद्ध से बना है जिसका अर्थ है लड़ाई। प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण पाणिनी ने, जो मौर्य साम्राज्य की स्थापना से कुछ शताब्दी पूर्व हो चुका था, अपनी रचना अष्टाध्यायी में यौद्धेय जाति का भी उल्लेख किया है। यौद्धेय आरम्भ में पंजाब के थे। भूतपूर्व भावलपुर रियासत के पास सतलज नदी के किनारों के दोनों ओर स्थित प्रदेश मूलतः इसलिये जोहिया बाड़ कहलाता था क्योंकि यहां जोहिये बसे हुये थे। आज भी जोहिया राजपूत काफी संख्या में हिसार (पूर्वी पंजाब) और मांटगुमरी (पश्चिमी पाकिस्तान) के जिलों में बसे हुये मिलते हैं। प्राचीन काल में ये लोग स्वतन्त्र समूह के रूप में रहते थे और समूह का नेता गणतन्त्र का शासक या मुख्य सेनापति माना जाता था। गिरनार में रुद्रदामन के शिलालेख से पता चलता है कि उसने यौद्धेयों को, जो उस

---

१. राजस्थान भारती, भाग १, अंक २-३, जुलाई–अक्टूबर, १९४६, पृ० ५।
२. ओझा--पूर्व उद्धृत, प्रथम खंड, पृ० ६६।

समय योद्धाओं के रूप में जाने जाते थे, काफी संख्या में मारा। रुद्रदामन के उपरान्त समुद्रगुप्त ने उन्हें अपने अधीन किया। धीरे २ वे पंजाब के अपने निवास से राजपूताना चले गये। वे हिन्दू देवताओं के मुख्य सेनापति कुमार कार्तिकेय की पूजा करते थे। उनके सिक्कों के एक ओर कुमार कार्तिकेय की षण्मुखी मूर्ति और दूसरी ओर उनके मुख्य सेनापति का नाम होता था। धीरे २ ये जोहिये मुसलमान बन गये और आजकल बीकानेर क्षेत्र में पाये जाने वाले अधिकांश जोहिये मुसलमान हैं। १६वीं शताब्दी में जब राव बीका मारवाड़ से जांगलू की ओर बढ़ा तो उनको उनके विरुद्ध निरन्तर युद्ध करना पड़ा। उन्होंने भी उनकी बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव को अनुभव करके अन्त में उन्हें अपना स्वामी स्वीकार कर लिया।[1]

चौहान अहिच्छत्रपुर के थे।[2] यह आजकल नागौर[3] के नाम से पुकारा जाता है। बाद में वे वहां से सांभर की ओर आगे बढ़ गये जो बाद में उनकी राजधानी बन गई। सांभर के आस पास का क्षेत्र उस समय सपाद देश

---

१. ओझा–पूर्व उद्धृत, प्रथम खण्ड, पृ० ६६–७० ।

२. भारत में अनेक अहिच्छत्रपुर रहे हैं। ह्वेनचांग ने अपनी पुस्तक "सी–यु–की" में उत्तर पांचाल की राजधानी का नाम अहिच्छत्रपुर लिखा है।— बील, बुद्धिस्ट रेकार्डस् ऑफ दी वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग १, पृ० २०० ।

जैन ग्रंथों में जांगल देश की राजधानी का नाम अहिच्छत्रपुर लिखा है— यति ज्ञानचन्द्र मण्डल, मेवाड़ का संग्रह।

एक अहिच्छत्रपुर सिन्ध में भी था (भैरोंमत्ती का शिलालेख) (एपिग्राफीका इन्डिका भाग ३, पृ० २३५) बम्बई गजेटियर प्रथम खण्ड भाग २, पृ० ५६० की पाद टिप्पणी भी देखें।

३. डा० ओझा ने जांगल देश की राजधानी अहिच्छत्रपुर को ही नागौर मानने का एक कारण दिया है। उनके अनुसार नागौर नागपुर शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है जिसका अर्थ है नागों का नगर। अहिच्छत्रपुर का तात्पर्य है "नाग है छत्र जिस नगर का" नाग और अहि दोनों शब्दों का अर्थ सांप है उन्होंने अपने तर्क की पुष्टि में भागवत और महाभारत के उदाहरण उद्धृत किये हैं। दूसरे सोमेश्वर के फागुन बदी तीज सम्वत् १२२६ के बिजोलिया शिलालेख में अहिच्छत्रपुर के शासक को चौहान लिखा है :–

विप्र श्रीवत्सगोत्रे भूदहिछत्र पुरे पुरा ।
सामंतोनंत सामन्तः पूर्णतल्ले नृपस्ततः ॥ श्लोक १२

कहलाता था। बीकानेर क्षेत्र में प्राप्त शिलालेखों[1] से विदित होता है कि चौहान इस इलाके में १२वीं शताब्दी में ही बस गये थे। १३वीं शताब्दी में प्रसिद्ध चौहान शासक विग्रहराज चतुर्थ ने दिल्ली, हांसी और हिसार पर अधिकार कर लिया था। सन् १६३२ में हनुमानगढ़ के पास चौहान शासक अजयराज का एक तांबे का सिक्का मिला जिस पर उसकी रानी सोमलदेवी का नाम अंकित था। बीकानेर राज्य में बहुत से चौहान सिक्के पाये गये हैं। अतः यह सम्भव है कि चौहन साम्राज्य इस इलाके तक फैला हुआ रहा हो।

छापर और द्रोणपुर के पास का प्रदेश मोहिलवाटी के नाम से प्रसिद्ध था और मोहिल चौहानों की ही एक शाखा थी। नैणसी लिखता है कि मोहिलों ने इस इलाके में बसने वाले बगड़िया राजपूतों को हराया जिन्होंने पहले द्रोणपुर के आसपास के इलाके को शिशुपाल के वंशजों, जो डाहलिये कहलाते थे, से छीना था।[2] रासीसर के एक शिलालेख में जिसमें विक्रमसिंह चौहान की मृत्यु जेठ बदी अमावस सम्वत् १२८८ को हुई लिखा है, प्रमाणित करता है कि मोहिल चौहान देशनोक के पास रासीसर तक शासन करते थे।[3] कहा जाता है कि रासीसर गांव सांखला रायसिंह ने बसाया था अतः यह सम्भव है कि किसी समय सांखलों (परमारों) ने उनके इलाके के एक भाग को जीतकर अपने साथ मिला लिया हो। यह एक विदित तथ्य है कि बीकानेर का दक्षिणी पूर्वी भाग और लाडनू का परगना कभी मोहिलों के अधीन थे।[4] राठौड़ और मोहिल आपस में शत्रु थे। इसका मूल कारण राव जोधा द्वारा मोहिल चौहान अजीतसिंह का मारा जाना था। दोनों में अनेक युद्ध हुये और बाद में जब आंतरिक झगड़ों से मोहिल कमजोर हो गये तो राव जोधा ने उन पर आक्रमण किया और उनके समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया। लेकिन मोहिलों ने हिसार

इसी प्रकार पृथ्वीराज विजय महाकाव्य में लिखा है कि वासुदेव शिकार खेलने को गये और उसे शाकम्बर नामक एक झील मिली। इसके आधार पर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि अहिच्छत्रपुर सांभर के बिल्कुल निकट था और इस प्रकार यह केवल नागौर से ही मिलता जुलता है।

१. ओझा-- पूर्व उद्धृत, प्रथम खन्ड, पृ. ७० ।
२. मुहणोत नैणसी--मुहणोत नैणसी की ख्यात, भाग १, पृ. १८६--६६ ।
३. विक्रमसिंह की देवली पर जेठ बदी अमावस सम्वत् १२८८ का रासीसर का शिलालेख ।
४. ओझा--पूर्व उद्धृत, प्रथम खण्ड, पृ० ७०--७१ ।

में तैनात मुस्लिम सूबेदार सारंगखां की सहायता से पुनः इस पर कब्जा कर लिया। अन्त में राव बीका ने उन पर आक्रमण करके उन्हें हरा दिया और उनका प्रदेश अपने भाई बीदा को दे दिया।[1]

विक्रम सं० १३८१ के एक शिलालेख में सांखला परमारों को शंखकुल कहा गया है।[2] उनकी एक शाखा जोधपुर इलाके में रूंण में रहती थी और वे राणा कहलाते थे। १२ शताब्दी के आस पास महिपाल सांखला का पुत्र रायसिंह जांगलू के इलाके में बस गया। रासीसर गांव में प्राप्त एक देवली पर जेठ बदी अमावस सम्वत १२२८ का जो शिलालेख है उससे स्पष्ट है कि सांखलों का वास्तव में जांगलू पर अधिकार था।[3] यह सम्भव है कि जांगलू पर सांखलों के अधिकार से पूर्व यह प्रदेश चौहानों के अधीन रहा हो और सभवतः रायसी ने लाखन चौहान के पुत्र विक्रमसिंह को मार कर इस इलाके पर कब्जा किया हो। रायसी के बाद उसका पुत्र अणखसी जांगलू का स्वामी बना और उसने अपने नाम से अणखीसर गांव बसाया। अणखसी का पुत्र खींवसी और फिर खींवसी का पुत्र कुमरसी वहां के स्वामी बने। कुमरसी के बाद क्रमशः राजसी, मूंजा ऊदा, पुन्यपाल और माणकपाल उत्तराधिकारी हुये। माणकपाल का उत्तराधिकारी नापा हुआ। उसके समय में इस इलाके पर बिलोचियों के कई बार हमले हुये इससे सांखले कमजोर हो गये। तब नापा जोधपुर चला गया और राव जोधा के दरबार में रहा। जब उसने राव बीका को एक नये राज्य की स्थापना के लिए तत्पर देखा तो उसने राव बीका को जांगलू जीतने की सलाह दी। वह इस अभियान में उनके साथ आया और राव बीका का विश्वासपात्र बन गया।[4]

बीकानेर राज्य की स्थापना से पूर्व जैसलमेर की सीमा से पंजाब तक फैला हुआ बीकानेर का उत्तरी पश्चिमी भाग भाटियों के अधिकार में था। ये लोग डाकेजनी, मारकाट और लूटपाट की गैर कानूनी प्रवृतियों में लगे हुये थे। ये दो समूह में बंटे हुए थे। जैसलमेर की सीमा के पास पूगल के इलाके में भाटी राजपूत थे और भटनेर के आसपास के क्षेत्र में भट्टी मुसलमान

---

१. ओझा--वही, भाग १, पृ. ७१।
मुहणोत नैणसी-पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ० १६५-६६।

२. सम्वत् १३८१ का रूंण का शिलालेख।

३. जेठ बदी अमावस सम्वत् १२८८ का रासीसर का शिलालेख।

४. ओझा—पूर्व उद्धृत, प्रथम खन्ड, पृ. ७१।
नैणसी—पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ. २३९-२४०।

थे। राव बीका ने जांगलू पर अधिकार करने के समय पूगल का भाटी सरदार राव शेखा मुसलमानों द्वारा पकड़ लिया गया। राव शेखा की पत्नी ने राव बीका से सहायता की प्रार्थना की। राव बीका ने राव शेखा को कैद से छुड़ाया जिस पर शेखा की पुत्री का विवाह राव बीका से हो गया। लेकिन बाद में जब राव बीका ने कोडमदेसर में एक किला बनाने का निश्चय किया तो वे डर गये। जब वहां किला न बनाने की उनकी प्रार्थना पर बीका ने ध्यान नहीं दिया तो उन्होंने शेखा से सहायता मांगी और राव बीका से युद्ध किया। भाटियों से निरन्तर झगड़ा होने की सम्भावना देख राव बीका बीकानेर की ओर आ गया जहां उसने एक किला बनवाया। अन्त में राव शेखा ने राव बीका की अधीनता स्वीकार कर ली और पूगल बीकानेर के राठौड़ राज्य की एक जागीर बन गया।[2] बीका को भटनेर के भट्टियों से भी लड़ना पड़ा। भटनेर दिल्ली के बिल्कुल निकट होने के कारण समय समय पर भिन्न २ लोगों के अधिकार में रहा और केवल मुगल साम्राज्य के पतन के उपरान्त ही यह अन्त में बीकानेर के शासकों के अधिकार में आया।

बीकानेर के आसपास बहुत सा इलाका जाटों के अधिकार में था। केन्द्रीय सत्ता ने उनकी ओर कभी ध्यान नहीं दिया अतः वे पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। जाटों की यहां कई जातियां थी और प्रत्येक का अपना प्रदेश था।[3] पर वे बहुधा आपस में लड़ते रहते थे। राव बीका ने सारण

---

१. सिंढायच दयाल दास--दयाल दास री ख्यात, भाग २, पृ. ४।
मुंशी देवी प्रसाद--राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ. ६-७।
कविराजा श्यामलदास- वीर विनोद, भाग २, पृ. ४७८।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. २-३।
जयसोम- कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकम्काव्यम, श्लोक १२६।
इस हस्तलिखित ग्रंथ में बीका की पत्नी का नाम रंगदेवी लिखा है।

२. दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ५-६।
मुंशी देवी प्रसाद-- राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ. ८-१०।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. ३।
नैणसी लिखता है कि जब बीकानेर का किला बन गया तो जैसलमेर के शासक के एक छोटे पुत्र कालीकरण ने बीकानेर पर आक्रमण किया और घेरे के समय लड़ता हुआ मारा गया। लेकिन नैणसी की यह बात सत्य नहीं लगती क्योंकि कालीकरण एक पूर्व युद्ध में मारा गया था।

३. दयालदास के अनुसार (पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ७) निम्नलिखित सात प्रदेश जाटों के अधिकार में थे--

जाटों के विरुद्ध गोदारों का पक्ष लिया और पूला को हरा दिया। अन्त में जाटों ने राव बीका की अधीनता स्वीकार कर ली और वह अपनी विजयों को स्थिर कर सका।[१]

---

(१) गोदारा पांडू के अधिकार में लाघड़िया और शेखसर,
(२) सारण पूला के अधिकार में भाडंग,
(३) कवरपाल के अधिकार में सीधमुख,
(४) वैणीवाल रायसाल के अधिकार में रायसलाणा,
(५) पूनिया काहना के अधिकार में लूंघी,
(६) सिहांगां चोखा के अधिकार में सुंई और
(७) सोहुआ अमरा के अधिकार में धानसी।

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ७–११।
नैणसी–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. २०१ से २०३।
देवीप्रसाद– राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ. ११–१८।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ४–६।
बीठू सूजा– राव जैतसी रो छन्द, संख्या ४२।

अध्याय १

बीकानेर के राठौड़ राज्य की उत्पत्ति और स्थापना

१५वीं शताब्दी के आरम्भ में बीकानेर के असत्कारी रेगिस्तान में आकर बसने वाले राठौड़ वीर थे और उन्हें अपने विजय के अधिकार में अटूट विश्वास था। बीकानेर के राठौड़ राज्य की स्थापना करने वाला राव बीका[1]

---

१. भारत सरकार का प्रकाशन— राजपूताना के राजा और मुख्य घराने, १८९४, १९०३, १९१२ और १९१६ के संस्करण।

सुखदेव प्रसाद— राठौड़, उनकी उत्पत्ति और विकास, पृ० १०।

मुन्शी देवी प्रसाद— राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० ३०–३१।

बांकी दास— ऐतिहासिक बातों का संग्रह, विवरण संख्या २६११।

श्यामलदास— पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४१८। उसने बीका की जन्म तिथि ईस्वी सन् १४३८ लिखी है।

जयसोम— पूर्व उद्धृत, छन्द १०६–११५।

दयालदास— पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २१।

पाउलेट ने अपने गजेटियर में बीका को छठा पुत्र लिखा है पर यह किसी भी हालत में सही नहीं हो सकता। दयालदास के अनुसार बीका का जन्म ईस्वी १४३८ में हुआ। डा. टैसीटोरी द्वारा सही मानी गई जोधपुर की अन्य ख्यातों में बीका का जन्म ईस्वी १४४० (सम्वत् १४९७) में हुआ। डा. टैसीटोरी का यह मत बंगाल की ऐशियाटिक सोसायटी पत्रिका भाग १५ सन् १९१९ संख्या १ पृ० १६ पर "सन् १९१७ में राजपूताना के वीर काव्य और ऐतिहासिक खोज के सम्बन्ध में किये गये कार्य की प्रगति की रिपोर्ट" में है। डा. टैसीटोरी ने जोधपुर की एक दूसरी ख्यात में सुरजा का जन्म ईस्वी सन् १४४२ (सम्वत् १४९९) लिखा हुआ पाया।

राव जोधा[1] का दूसरा एवं जीवित पुत्रों में सबसे बड़ा था। राव जोधा के कई पुत्र थे। चूँकि उसकी मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार के लिये झगड़ा होने की अधिक सम्भावना थी, उसने बीका से कहा कि वह अपने पिता के सिंहासन को उत्तराधिकार में पाने की प्रतीक्षा करने की अपेक्षा अपने लिये एक नया राज्य बनाकर अपनी योग्यता प्रमाणित करने का प्रयत्न करे।[2] इस प्रकार ३० सितम्बर सन् १४६५ को राव बीका नये प्रदेश जीतने की दृढ़ इच्छा से अपने चाचा काँधल और नापा-साँखला को साथ लेकर मारवाड़ से रवाना हुआ। उसके साथ बहुत से स्वामी-भक्त हित-चिन्तक भी थे। जिनमें रूपा,

---

१. कन्नौज पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने पर सैतराम का पुत्र राठौड़ सीहा सन् १२४३ के लगभग राजपूताना में आया और पाली एवं उसके आस पास के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। सीहा से दशवीं पीढ़ी में मल्लीनाथ ने मालाणी को जीता। मल्लीनाथ का एक छोटा भाई वीरम मालाणी छोड़कर चला गया क्योंकि उसे अपने भाई से निर्वाह के लिये भूमि नहीं मिली थी। उसके पुत्र चूण्डा ने अपने वीर कार्यों से प्रसिद्धि प्राप्त की। मण्डोर के ईन्दा प्रतिहारों से मण्डोर का इलाका उसे दहेज में मिला और वहाँ उसने अपना राज्य स्थापित किया। चूँकि चूण्डा अपने बड़े पुत्र रणमल की जगह अपने छोटे पुत्र कान्हा को अपना उत्ताराधिकारी बनाना अधिक पसन्द करता था अतः रणमल मण्डोर छोड़कर मेवाड़ चला गया। कान्हा चूण्डा के बाद स्वामी बना पर वह छोटी ही उम्र में मर गया अतः उसका छोटा भाई सत्ता उसके बाद उत्तराधिकारी हुआ। रणमल ने मेवाड़ की सेना की सहायता से मण्डोर पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। लेकिन वह अपने पुत्र जोधा के साथ मेवाड़ में ही निवास करता रहा। बाद में सन् १४३९ से कुछ समय पूर्व किन्हीं कारणों से रणमल सिसोदियों द्वारा मार डाला गया। जोधा उस समय मेवाड़ में था। जान बचाने के लिये वह वहाँ से भागा। सिसोदियों ने उसका पीछा किया। उन्होंने मण्डोर पर अधिकार कर लिया पर जोधा बचकर निकल गया। सिसोदियों से अपना राज्य पुनः पाने के लिये जोधा तत्परता से लड़ता रहा और लगभग सन् १४५३ में उसने उस पर अधिकार कर लिया। सन् १४५९ में उसने जोधपुर बसाया और अपने राज्य का विस्तार किया।

२. दयालदास की ख्यात (भाग २ पृ० १-२) के अनुसार एक दिन बीका अपने पिता के दरबार में कुछ देर से पहुंचा और पिता को प्रणाम करके अपने चाचा काँधल के पास बैठ गया। चाचा भतीजे कानाफूसी करने लगे। इस पर राव

मण्डला, नाथू और बीका के भाई जोगा व बीदा के अलावा पड़िहार बेला भी था। बीका के साथ एक सौ सवार तथा पाँच सौ पैदल सैनिक थे।[1] बीका रेगिस्तानी भाग को मील–मील करके जीतता गया जो बाद में बीकानेर राज्य बना। उसे इस इलाके में रहने वाले लोगों के हमलों को रोकना पड़ा। इस इलाके से उत्तर और पश्चिम की ओर भाटियों का अधिकार था। उत्तर पूर्व और दक्षिण पूर्व में जाटों के स्वाधीन शासक थे। इसके अलावा भट्टी, चायल और जोहिया थे। थोड़ी ही दूर हिसार में दिल्ली के बादशाह का मुस्लिम सूबेदार शासन करता था। क्यामखानी, जिनका शेखावटी पर अधिकार था और बीदावत क्षेत्र के मोहिल और खींची बिना विरोध किये अपने इतने अधिक पास एक नई शक्ति का उदय नहीं देखना चाहते थे। घर से चल कर राव बीका पहले दिन मण्डोर ठहरा और वहां उसने गौरीजी की पूजा की। वहां से आगे चलकर बीका देशनोक में ठहरा और करणी जी के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की। करणी जी चारण जाति में उत्पन्न एक देवी थी। अपनी अति प्राकृत शक्तियों के कारण वह लोगों द्वारा पूजी जाती थी। बीकानेर के आगे के

जोधा ने व्यंग्य में पूछा कि वे दोनों किस विजय की योजना बना रहे हैं, काँधल तुरन्त खड़ा हुआ। उसने चुनौती स्वीकार की और नये प्रदेश जीतने का प्रण लिया। नापा सांखला जो पहले जांगलू का शासक था और वहां से बिलोचियों द्वारा हटा दिया गया था, उस समय दरबार में हाजिर था। उसने सुझाव दिया कि बीका जांगलू जीते।

जयसोम (पूर्व उद्धृत श्लोक ११०–११६) के अनुसार बीका की सौतेली माता और राव जोधा की रानियों में से एक जसमादे ने उसे विवश किया कि वह बीका को अपने लिये एक नया राज्य स्थापित करने को कहे ताकि जोधपुर की गद्दी उसके स्वयं के पुत्र को मिल सके।

१. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ३।

२. करणी जी का जन्म सन् १३८७ में जोधपुर राज्य के सुवाप नामक गाँव में एक चारण परिवार में हुआ था। वह मेहा की पुत्री थी और बीकानेर राज्य में साठीका गांव के बीठू केलू के पुत्र देपा को ब्याही थी। लोग उसे देवी का अवतार मानते थे। भविष्य कथन की उनमें अद्भुत शक्ति थी। उनके आशीर्वाद से ही राव बीका ने बीकानेर राज्य की स्थापना की। वे अब भी बीकानेर राजघराने द्वारा और साधारण जनता द्वारा पूजी जाती हैं। उनके भक्त केवल बीकानेर क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि दूर २ तक हैं। उनका स्वर्गवास सन् १५३८ में हुआ।

राव जोधा[1] का दूसरा एवं जीवित पुत्रों में सबसे बड़ा था। राव जोधा के कई पुत्र थे। चूँकि उसकी मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार के लिये झगड़ा होने की अधिक सम्भावना थी, उसने बीका से कहा कि वह अपने पिता के सिंहासन को उत्तराधिकार में पाने की प्रतीक्षा करने की अपेक्षा अपने लिये एक नया राज्य बनाकर अपनी योग्यता प्रमाणित करने का प्रयत्न करे।[2] इस प्रकार ३० सितम्बर सन् १४६५ को राव बीका नये प्रदेश जीतने की दृढ़ इच्छा से अपने चाचा काँधल और नापा-साँखला को साथ लेकर मारवाड़ से रवाना हुआ। उसके साथ बहुत से स्वामी-भक्त हित-चिन्तक भी थे। जिनमें रूपा,

---

१. कन्नौज पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने पर सैतराम का पुत्र राठौड़ सीहा सन् १२४३ के लगभग राजपूताना में आया और पाली एवं उसके आस पास के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। सीहा से दसवीं पीढ़ी में मल्लीनाथ ने मालाणी को जीता। मल्लीनाथ का एक छोटा भाई वीरम मालाणी छोड़कर चला गया क्योंकि उसे अपने भाई से निर्वाह के लिये भूमि नहीं मिली थी। उसके पुत्र चूण्डा ने अपने वीर कार्यों से प्रसिद्धि प्राप्त की। मण्डोर के ईन्दा प्रतिहारों से मण्डोर का इलाका उसे दहेज में मिला और वहाँ उसने अपना राज्य स्थापित किया। चूँकि चूण्डा अपने बड़े पुत्र रणमल की जगह अपने छोटे पुत्र कान्हा को अपना उत्तराधिकारी बनाना अधिक पसन्द करता था अतः रणमल मण्डोर छोड़कर मेवाड़ चला गया। कान्हा चूण्डा के बाद स्वामी बना पर वह छोटी ही उम्र में मर गया अतः उसका छोटा भाई सत्ता उसके बाद उत्तराधिकारी हुआ। रणमल ने मेवाड़ की सेना की सहायता से मण्डोर पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। लेकिन वह अपने पुत्र जोधा के साथ मेवाड़ में ही निवास करता रहा। बाद में सन् १४३८ में कुछ समय पूर्व किन्हीं कारणों से रणमल सिसोदियों द्वारा मार डाला गया। जोधा उस समय मेवाड़ में था। जान बचाने के लिये वह वहाँ से भागा। सिसोदियों ने उसका पीछा किया। उन्होंने मण्डोर पर अधिकार कर लिया पर जोधा बचकर निकल गया। सिसोदियों से अपना राज्य पुनः पाने के लिये जोधा तत्परता से लड़ता रहा और लगभग सन् १४५३ में उसने उस पर अधिकार कर लिया। सन् १४५९ में उसने जोधपुर बसाया और अपने राज्य का विस्तार किया।

२. दयालदास की ख्यात (भाग २ पृ० १-२) के अनुसार एक दिन बीका अपने पिता के दरबार में कुछ देर से पहुंचा और पिता को प्रणाम करके अपने चाचा काँधल के पास बैठ गया। चाचा भतीजे कानाफूसी करने लगे। इस पर राव

मण्डला, नाथू और बीका के भाई जोगा व बीदा के अलावा पड़िहार वेला भी था। बीका के साथ एक सौ सवार तथा पाँच सौ पैदल सैनिक थे।[1] बीका रेगिस्तानी भाग को मील–मील करके जीतता गया जो बाद में बीकानेर राज्य बना। उसे इस इलाके में रहने वाले लोगों के हमलों को रोकना पड़ा। इस इलाके से उत्तर और पश्चिम की ओर भाटियों का अधिकार था। उत्तर पूर्व और दक्षिण पूर्व में जाटों के स्वाधीन शासक थे। इसके अलावा भट्टी, चायल और जोहिया थे। थोड़ी ही दूर हिसार में दिल्ली के बादशाह का मुस्लिम सूबेदार शासन करता था। क्यामखानी, जिनका शेखावटी पर अधिकार था और बीदावत क्षेत्र के मोहिल और खींची बिना विरोध किये अपने इतने अधिक पास एक नई शक्ति का उदय नहीं देखना चाहते थे। घर से चल कर राव बीका पहले दिन मण्डोर ठहरा और वहां उसने गौरीजी की पूजा की। वहां से आगे चलकर बीका देशनोक में ठहरा और करणी जी के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की। करणी जी चारण जाति में उत्पन्न एक देवी थी। अपनी अति प्राकृत शक्तियों के कारण वह लोगों द्वारा पूजी जाती थी। बीकानेर के आगे के

जोधा ने व्यंग्य में पूछा कि वे दोनों किस विजय की योजना बना रहे हैं, काँधल तुरन्त खड़ा हुआ। उसने चुनौती स्वीकार की और नये प्रदेश जीतने का प्रण लिया। नापा सांखला जो पहले जांगलू का शासक था और वहां से बिलोचियों द्वारा हटा दिया गया था, उस समय दरबार में हाजिर था। उसने सुझाव दिया कि बीका जांगलू जीते।

जयसोम (पूर्व उद्धृत श्लोक ११०–११६) के अनुसार बीका की सौतेली माता और राव जोधा की रानियों में से एक जसमादे ने उसे विवश किया कि वह बीका को अपने लिये एक नया राज्य स्थापित करने को कहे ताकि जोधपुर की गद्दी उसके स्वयं के पुत्र को मिल सके।

१. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ३।
२. करणी जी का जन्म सन् १३८७ में जोधपुर राज्य के सुवाप नामक गाँव में एक चारण परिवार में हुआ था। वह मेहा की पुत्री थी और बीकानेर राज्य में साठीका गांव के बीठू केलू के पुत्र देपा को ब्याही थी। लोग उसे देवी का अवतार मानते थे। भविष्य कथन की उनमें अद्भुत शक्ति थी। उनके आशीर्वाद से ही राव बीका ने बीकानेर राज्य की स्थापना की। वे अब भी बीकानेर राजघराने द्वारा और साधारण जनता द्वारा पूजी जाती हैं। उनके भक्त केवल बीकानेर क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि दूर २ तक हैं। उनका स्वर्गवास सन् १५३८ में हुआ।

इतिहास से यह स्पष्ट होगा कि आने वाली पीढियों में किस प्रकार करणी जी बीकानेर के शासकों के लिए एक महान शक्ति मानी जाकर उनका पथ प्रदर्शन करती रहीं। कहा जाता है कि करणी जी ने भविष्यवाणी की कि बीका यश और शक्ति में अपने पिता से भी बढ़कर होगा और बहुत से बड़े २ लोग उसे अपना स्वामी मान कर गौरवन्वित होंगे।[1]

करणी जी के निर्देशानुसार राव बीका चाण्डासर के निकट बस गया जहां वह ३ वर्ष तक रहा। उसके बाद वह देशनोक चला गया जहां वह बहुधा करणी जी के दर्शन करता था। बाद में उसने आस पास के इलाके जीत लिये और कोडमदेसर में जाकर बस गया। सन् १४७२ में उसने अपने को राजा घोषित किया।[3]

ख्यातों के अनुसार पूगल का शासक राव शेखा लूट मार किया करता था। एक बार जब वह मुल्तान की ओर से लूटकर आ रहा था तो मुल्तान के सूबेदार की सेना से उसकी मुठभेड़ हो गई। इसमें उसके कई आदमी मारे गये और वह पकड़ लिया गया। शेखा को छुड़ाने के लिए उसकी पत्नी ने राव बीका से सहायता मांगी। राव बीका द्वारा राव शेखा को कैद से[4] छुड़ाने पर राव शेखा की पुत्री रंगदे अथवा रंगकुमारी का विवाह राव बीका से कर दिया।[5]

सन् १४७८ में राव बीका ने कोडमदेसर के तालाब के पास एक

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ३।
२. वही।
३. श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४७८।
मुन्शी देवी प्रसाद–राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० ५।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० २।
नैणसी–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १९८।
४. बीठू सूजा–पूर्व उद्धृत, छन्द ४८।
५. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४–५।
मुन्शी देवीप्रसाद–राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० ६–७।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४७८।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० २–३।

किला बनवाना चाहा।[1] राव शेखा ने इसका विरोध किया। राव बीका अपनी योजना के अनुसार काम करता रहा। इस पर भाटी नाराज हो गये और कलिकर्ण, जो जैसलमेर के रावल का छोटा पुत्र था, की सहायता से एक शक्तिशाली सेना लेकर बीका पर आक्रमण किया। बीका ने अपने भाई बीदा और चाचा क़ान्धल की सहायता से भाटियों को बुरी तरह हराया।[2] हार के बावजूद भाटियों की नाराजी बराबर बनी रही अतः बीका ने किले के लिए कोई दूसरा स्थान ढूंढ़ने का निश्चय किया। उसने नापा और कई दूसरे लोगों को जगह ढूंढ़ने के लिये भेजा। खोज करने वाले राती घाटी नामक स्थान पर आये। इसे उन्होंने शुभ समझा[3] और बीका ने यहां किले की नींव रक्खी। लेकिन नापा और उसके साथियों द्वारा इससे भी अधिक अनुकूल स्थान की खोज जारी रही। नापा ने एक दूसरा और अधिक बड़ा किला बनाने के लिये एक अन्य स्थान का चयन किया।[4] यहाँ सन् १४८५ में बीका के किले की नींव रक्खी गई और सन् १४८५ में नगर निर्माण आरम्भ हुआ।[5] उदयपुर का राणा ऊदा, जिसे

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५।
पाउलेट–बीकानेर राज्य के अपने गजेटियर (पृ० ३) में लिखता है कि बीका ने कोडमदेसर में किला बनवाया।

२. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ३।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५–६।

३. जब नापा इस जगह पर आया तो उसने देखा कि कैर के नीचे एक भेड़ अपने दो मेमनों को लिये हुये भेड़ियों के एक झुण्ड का विरोध कर रही थी। उसने भेड़ियों को भगाया और उस स्थान को शुभ घोषित किया।

४. पहली जगह के निकट ही उन्होंने भुरूट घास के ढ़ेर पर एक आदमी को सिर रख कर सोये हुए देखा। वहां एक सांप कुण्डली मारे हुये था। नापा और उसके साथी सांप की क्रियाओं को देखने के लिये बैठ गये। कुछ देर बाद सांप कुण्डली छोड़ कर पहले चुने हुये स्थान की ओर चला गया। नापा और उसके साथियों द्वारा यह दूसरा स्थान अधिक शुभ माना गया।

५. पाऊलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ४।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६–७।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४७८–७६।
नैणसी–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १६६।
टैसीटोरी–पूर्व उद्धृत, पृ० ७२।

अपने राज्य से भगा दिया गया था। अपने दो बेटों— सैसमल और सूरजमल के साथ सन् १४७३ में बीकानेर आया। राव बीका ने उसे शरण दी पर अपना राज्य पुनः प्राप्त करने के लिये उसकी सहायता नहीं की। तब राणा ऊदा ने माण्डू के सुल्तान गयासुद्दीन खिल्जी के यहाँ शरण ली।[1]

उत्तरी पूर्वी सीमा पर जाटों का अधिकार था। इनमें से गोदारों[2] ने जोहियों और भाटियों के हमले से बचने के लिये बीका की सत्ता स्वेच्छा से स्वीकार कर ली। बाद में जब बीका ने सारणों के मुखिया पूला के विरुद्ध गोदारों के मुखिया पाँडु की सहायता की और पूला को बुरी तरह से हराया तो धीरे धीरे जाटों की दूसरी जातियों ने भी बीका की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार जाटों की विभिन्न जातियों के १६६४ गाँव बीकानेर राज्य में मिल गये।[3]

तब बीका ने सिंघाणा पर आक्रमण किया और जोहियों को अपने अधीन कर लिया। बाद में उसने खीचियों पर हमला किया जिनके पास बीकानेर के बीच में १४० गाँव थे। बीका ने देवराज को मार डाला और उसके

बीकानेर की स्थापना की तिथि के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

पनरै सै पैतालवे, सुद वैसाख सुमेर।
थावर बीज थरपियो, बीके बीकानेर॥

१. नैणसी—पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ० ३६।
श्यामलदास—पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ० ३६८।

२. गोदारों की स्वामी-भक्ति और स्वेच्छा से बीका की अधीनता स्वीकार करने के बदले उन्हें बीकानेर के शासकों का राजतिलक करने का सम्मान दिया गया। यह परम्परा आज भी चालू है। गोदारों के मुखिया द्वारा अपना अंगूठा काट कर रक्त से तिलक किया जाता है।

३. पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ० ४। उसने उनका विवरण इस प्रकार दिया है—

जाति का नाम	गाँव की संख्या	मुख्य गांव	मुखिया का नाम
गोदारा	३६०	लाधड़िया और शेखसर	पाँडू
सारण	३६०	भाड़ंग	पूला
कसवां	३६०	सीधमुख	कुँवर पाल
बेणीवाल	——	रायसलाना	रायसाल
पूनियाँ	३६०	बड़ी लूंबी	कान्हा
सीहागां	१४०	सुई	चोखा
सौहुआ	८४	धानसी	अमरा

गांवों को अपने राज्य में मिला लिया। उसने सिंध की ओर त्रिलोचियों के कुछ इलाके पर भी कब्जा कर लिया और क्यामखानियों से शेखावाटी और हिसार के पठानों से कर्ण वाटी का कुछ क्षेत्र छीन लिया। इस प्रकार अब बीका का राज्य ३ हजार गांव तक फैला हुआ था और इसकी सीमा पंजाब तक पहुंच गई थी।[1]

शीघ्र ही बीका का झगड़ा दिल्ली के मुस्लिम शासकों से हो गया। बीदा ने अपने ससुर के कहने पर उसके कई रिश्तेदारों को खत्म कर दिया। जब वह द्रोणपुर और छापर पर राठौड़ों का अधिकार दृढ़ कर रहा था तो बरसल और नरबद (कांधल के पुत्र बाघा के भतीजे) जिन्हें अपने घर से निकाल दिया गया था, कांधल के एक असन्तुष्ट पुत्र बाघा के साथ दिल्ली चले गये। दिल्ली में उन्होंने सुल्तान बहलोल लोदी की ऐसी अच्छी सेवा की कि सुल्तान ने हिसार के सूबेदार को आज्ञा दी कि वह बरसल को उसका प्रदेश वापस दिलाने में मदद करे। हिसार का सूबेदार सारंग खां अपनी सेना लेकर द्रोणपुर आ पहुँचा। पर चूँकि बीदा मुसलमानों और मोहिलों की सम्मिलित सेना का मुकाबला करने में समर्थ नहीं था अतः उसने छापर द्रोणपुर देकर बरसल से सन्धि कर ली और बीकानेर में अपने भाई बीका के पास चला आया।[2]

अपने भाई के खोये हुये अधिकार को पुनः प्राप्त करने के लिये बीका ने अपने पिता राव जोधा से सहायता मांगी; पर वह व्यर्थ रही। बीदा ने अपने पिता राव जोधा को सुजानगढ़ के निकट लाडनूं देने से इन्कार करके अप्रसन्न कर दिया था। बीका ने अपने ससुर राव शेखा और सिंघाणा के सरदार की सहायता से ८ हजार सैनिक एकत्रित किये और करणी जी का आशीर्वाद पाकर शत्रु के विरुद्ध चल पड़ा। नापा सांखला को उसने बीकानेर के किले की देखभाल के लिये छोड़ दिया। जब वह द्रोणपुर से ८ मील दूर रहा तो उसने अपनी सेना को रोक लिया क्योंकि सारंग खां द्रोणपुर में था और बीका की गति रोकने के लिये उसने अपनी सेना को तैयार रहने का आदेश दे दिया था। बीका बाघा से एकान्त में मिला और उसे झिड़कते हुए कहा "काका कांधल तो मेरे पर इतने कृपालु हैं कि अपना सर्वस्व खतरे में डाल कर भी जाटों की शक्ति को नष्ट करके मुझे बीकानेर का राज्य दिलाया। लेकिन तुम, उनके पुत्र मेरे विरुद्ध मोहिलों की सहायता करके अपने पिता के किये पर पानी फेर रहे हो। कांधल

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १२।
   पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ६।
२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १२।

के पुत्र के लिये यह ठीक नहीं" इन शब्दों का आधा पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने दूसरे दिन के युद्ध में मोहिलों की सहायता न करने का वचन दिया। उसने कहा कि वह मोहिलों को पैदल लड़ने की सलाह देगा और सारंग खां की सेना उनके दाहिनी ओर रहेगी। इससे बीका अपने घोड़े पर मोहिलों को तितर बितर करने में समर्थ हो सकेगा। दूसरे दिन युद्ध के मैदान में ऐसा ही हुआ। मोहिल और मुसलमान रणक्षेत्र से भाग गये और नरबद और अरसल दोनों युद्ध में मारे गये। विजयी बीका कुछ दिन द्रोणपुर में रहा। उसने वहां की सारी भूमि बीदा को सौंप दी और उसे अपना जागीरदार बना लिया।[1]

मोहिलों की इस घटना के बाद कांधल ने राजासर को अपना कैम्प बनाया। यहां से वह हिसार पर हमले करता रहता था। लूट का काफी माल एकत्रित करने के बाद वह साहवा की ओर बढ़ा। सारंग खां ने एक शक्तिशाली सेना एकत्रित की और कांधल के हमलों को समाप्त करने को निकल पड़ा। अपने तीन पुत्रों राजसी, नीम्बा, और सूरा के साथ कांधल ने अपने साथियों को एकत्रित किया और सारंग खां से लड़ने निकल पड़ा। अपने घोड़े को शत्रु की ओर दौड़ाते समय कांधल के घोड़े का तंग टूट गया। इसे ठीक करने वह घोड़े से नीचे उतरा लेकिन घोड़े पर पुनः सवार होने से पहले ही सारंग खां ने उसे घेर लिया और जोरदार हमला करके कांधल की सेना को तितर बितर कर दिया। राठौड़ योद्धा केवल १५ साथियों के साथ ७३ वर्ष की उम्र में बड़ी बहादुरी से सारंग खां से लड़ा और आमने-सामने की लड़ाई में २३ शत्रुओं को मारकर पौष बदी ५ सम्वत् १५४६ (ईस्वी सन् १४८९) को रणखेत रहा।[2] जब बीका ने कांधल की मृत्यु का समाचार सुना तो उसे बहुत क्रोध आया। उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक कांधल की मृत्यु का बदला नहीं ले लेगा, तब तक भोजन ग्रहण नहीं करेगा। उसने अपने पिता राव जोधा से सहायता मांगी जो उसे तुरन्त मिली। राव जोधा स्वयं अपनी सेना के साथ आया और द्रोणपुर में बीका के साथ मिला। यहां से दोनों की सम्मिलित सेना हिसार के विरुद्ध चल पड़ी और झांस नामक गांव में शत्रु से उनका मुकाबला हुआ युद्ध में नरा के हाथों सारंग खां मारा गया पर स्वयं बीका का एक पुत्र भी

---

१. दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १४--१५।
पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ० ६--८।
मुन्शी देवी प्रसाद--राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० २१--२२।

२. दयालदास- पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १५--१६।

मारा गया।[१]

कांधल की मृत्यु का बदला लेने के उपरान्त राव बीका और राव जोधा द्रोणपुर लौटे। राव जोधा ने राव बीका से दो बातें चाही कि वह लाडनू उसे दे दे और अपने ही जीते हुए भाग से सन्तुष्ट रहकर अपने भाइयों से जोधपुर का कोई पैतृक भाग न छीने। राव बीका ने ये बातें मानली पर साथ में यह शर्त रखी कि चूंकि वह उनके जीवित पुत्रों में सबसे बड़ा है अतः वंश के राज्य-चिन्ह (तख्त छत्र आदि) मिलने की उसकी पूर्व प्रार्थना स्वीकार की जाय। राव जोधा ने स्वीकार किया कि वह इन्हें बीकानेर भेज देगा।[२] इस वचन को पूरा किये बिना ही राव जोधा का स्वर्गवास हो गया। जब राव बीका ने वेला पड़िहार को राव सूजा[३] के पास राज्य चिन्ह लाने के लिये भेजा तो सूजा ने उन्हें देने से इन्कार कर दिया। इस वचन भंग से क्रोधित होकर राव बीका ने ३० हजार सैनिकों[४] की एक बड़ी सेना को एकत्रित किया और अपने उद्देश्य की सफलता के लिये करणी जी से आशीर्वाद पाकर जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। राव बीका की सेना को रोकने के लिये राव सूजा ने अपनी सेना भेजी। जोधपुर से लगभग १ कोस दूर दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई। जोधपुर की सेना शीघ्र ही भाग गई और राव बीका की सेना ने आगे बढ़ कर जोधपुर के किले को घेर लिया। अन्त में राव सूजा की माता जसमादे जी ने बीका के पास आकर राज्य चिन्ह और बीका द्वारा चाही गई कुछ अन्य चीजें दे दी। इन्हें पाकर राव बीका बीकानेर लौट आया।[५]

---

१. नैणसी–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २०६।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ८।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १७–१८।
मुन्शी देवी प्रसाद–राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० २८–३०।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १८।
मुन्शी देवी प्रसाद–राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० ३०–३१।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ९।

३. राव जोधा का पुत्र, जोधपुर का तत्कालीन शासक।

४. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ९।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, पृ० १९।

५. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २०–२१।
मुन्शी देवी प्रसाद–राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० ३५–३६।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४७९–८०।

उन दिनों मेड़ता पर बीका के दो भाइयों--दूदा और वरसिंह का अधिकार था। वरसिंह इधर-उधर लूट मार किया करता था। एक बार उसने अजमेर के इलाके पर हमला करके काफी माल लूटा। वरसिंह के हमले को रोकने में अजमेर के सूवेदार मल्लुखां ने अपने को असमर्थ पाया। अतः उसने उसे एक मित्र की तरह निमंत्रित किया। लेकिन जब वरसिंह आया तो उसे वन्दी बना लिया गया। यह खबर सुनकर दूदा ने राव बीका से सहायता मांगी जिसने तुरन्त आने का वचन दिया। दूदा ने जोधपुर के राव सूजा को भी सहायता करने के लिये कहा। उसने भी अपनी सेना भेज दी। बीकानेर और जोधपुर की सम्मिलित सेना ने अजमेर पर चढ़ाई की। मल्लुखां ने शान्ति समझौता कर लिया और वरसिंह को छोड़ दिया।[1]

शेखावाटी क्षेत्र के खन्डेला का ठाकुर प्रायः बीकानेर के इलाके पर हमले किया करता था। एक बार उसने बहुत नुकसान पहुँचाया। इस पर बीका इसके विरुद्ध चल पड़ा। दोनों की सेनाओं में युद्ध हुआ और रिड़मल हार गया।[2]

कुछ समय से बीका की यह इच्छा थी कि दिल्ली की ओर अपने अधिकार को बढ़ाये। उसने एक बड़ी सेना एकत्रित की और रेवाड़ी की ओर रवाना

बांकीदास–पूर्व उद्धृत, विवरण संख्या २६११।
जोधपुर से लाये गये राज्य चिन्ह ये थे :—

(१) चन्दन का तख्त (२) छत्र (३) चँवर (४) राव जोधाजी की तलवार (५) राव जोधाजी की ढ़ाल (६) हरभूजी सांखला की कटार (७) हिरण्य गर्भ लक्ष्मी नारायण की मूर्ति (८) देवी नागणेचीजी की चांदी की मूर्ति (९) करण्ड (१०) दक्षिणावृत शंख (११) भंवर ढ़ोल (१२) वैरी साल नगारा (१३) भुज्जाई की देग और (१४) दल सिंगार।

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २१–२२।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४७९।
मुन्शी देवीप्रसाद–राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० ३९–४१।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ६।

२. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० १०।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २४।
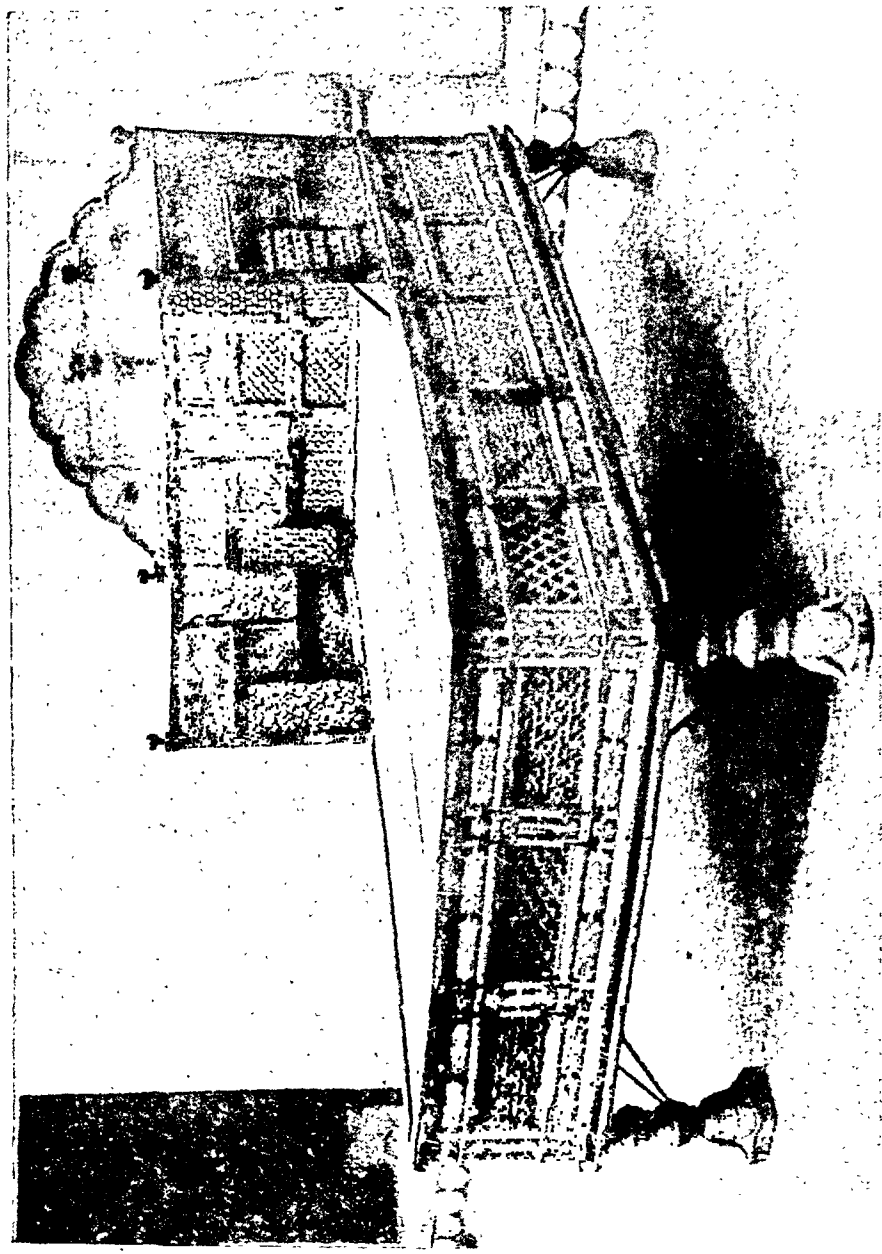
ोज से लाया हुआ पुश्तैनी चन्दन का तख्त जो राव बीकाजी जोधपुर से लाये थे

हुआ। उसने उस इलाके का काफी भाग दबा लिया।[1] खन्डेला का ठाकुर रिड़मल सहायता के लिये दिल्ली के सुल्तान के पास पहुँचा। और हिन्दाल के सेनापतित्व में बादशाही सेना की सहायता से बीका पर चढ़ाई कर दी। लेकिन रिड़मल बीका की सेना का मुकाबला नहीं कर सका और युद्ध में राव बीका ने रिड़मल और हिन्दाल दोनों को मार डाला। यह राव बीका का अन्तिम युद्ध था।[2]

टॉड के शब्दों में बीका के अभियान, जो स्पष्ट रूप से विजय के लिये थे, प्रायः हमेशा सफल रहे। पाउलेट लिखता है कि अपेक्षाकृत थोड़े ही समय में उसके राज्य में ३ हजार से अधिक गांव हो गये। इनमें रेवाड़ी या हिसार का इलाका सम्मिलित नहीं है। बीका का राज्य उत्तर में दीपालपुर और भटिण्डा (अब पंजाब में) से लेकर शेखावाटी में फतेहपुर और नरेन्दा तथा नागौर हिसार और सिरसा से देरावर तक फैला हुआ था। इसका क्षेत्रफल ४०,००० वर्गमील से कम नहीं था।

राव बीका से बीकानेर का अलग इतिहास आरम्भ हुआ। उसने अपनी मातृभूमि छोड़ी और जांगलू के साँखलों में उत्तरी सीमाओं पर बसने आया। यहां से उसकी दृष्टि उत्तर पूर्व की ओर गई जिसके बहुत बड़े इलाके का कुछ भाग शान्ति प्रिय जाटों के अधिकार में था और कुछ भाग लड़ाकू मोहिलों के। उसने अपनी महत्वाकांक्षा से विजय का अभियान आरम्भ किया। फलस्वरूप थोड़े ही समय में वह पूगल की सीमा से हिसार तक और घग्घर से नागौर की सीमा तक सारे रेगिस्तान का स्वामी बन गया। अपनी विजयी तलवार से उसने देरावर, दीपालपुर, भटनेर, भटिण्डा, नागौर और फतेहपुर के द्वार खटखटाये। इस प्रकार बीका का इतिहास मानव की महत्वकांक्षा और दृढ़ निश्चय के उज्ज्वल स्मारक का प्रतीक है।

राव बीका की मृत्यु ११ सितम्बर सन् १५०४ को हुई। उसका जयेष्ठ पुत्र राव नरा उसका उत्तराधिकारी बना। उसने केवल ५ महिनों तक राज्य किया और निःसन्तान मर गया। २३ जनवरी सन् १५०५ को उसका छोटा

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २४।
   पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० १०।
   मुन्शी देवीप्रसाद–राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० ४३–४४।
२. श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २४–२५।

भाई राव लूणकरण उसका उत्तराधिकारी बना ।[1]

अपने अल्प कालीन शासन में राव नरा राज्य के दूरवर्ती जिलों पर अपनी सत्ता प्रभावशाली ढंग से रखने में असमर्थ रहा । गैरकानूनी तत्वों ने बीकानेर के अधिकार से छुटकारा पाने के लिये अचानक प्रयत्न किया । लेकिन उन्होंने राव लूणकरण की योग्यता को कम आंका था । गद्दी पर बैठने के तुरन्त बाद उसने अपने इलाके में व्यवस्था करनी आरम्भ करदी और आस पास के इलाकों के जिन मालिकों ने उसकी भूमि पर पुनः अधिकार कर लिया था उनका दमन किया ।[2]

सन् १५०६ में उसने दद्रेवा के विद्रोही सरदार मानसिंह चौहान पर आक्रमण किया । ७ महिनों के विरोध के बाद मानसिंह युद्ध में मारा गया और दद्रेवा बीकानेर में मिला लिया गया [3]

उस समय फतेहपुर पर क्यामखानियों का अधिकार था । वहाँ के शासक दौलत खां और रंग खां में निरन्तर झगड़ा चलता रहता था । राव लूण-करण ने इस स्थिति का लाभ उठाया और फतेहपुर पर चढ़ाई कर दी । फलस्व-रूप दौलत खां और रंग खां मिल गये और संयुक्त रूप से लड़ने आये । लेकिन वे हार गये और उन्होंने लूणकरण को १२० गाँव देकर सन्धि की । वहां लूण-करण ने अपनी चौकियाँ स्थापित कर दी ।[4] फिर उसने चायल राजपूतों पर

---

१. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २७ ।
श्यामलदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४८१ ।
मुन्शी देवीप्रसाद-राव लूणकरण का जीवन चरित्र, पृ० ४८ ।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० १० ।
राव नरा की मृत्यु की तिथि १३ जनवरी सन् १५०५ है ।

२. ओझा-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ११२ ।

३. श्यामलदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २८ ।
श्यामलदास-भाग २, पृ० ४८१ ।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ११ ।
मुन्शी देवी प्रसाद-राव लूणकरण जी का जीवन चरित्र, पृ० ४८-५१ ।

४. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २८ ।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ११ ।
मुन्शी देवीप्रसाद-राव लूणकरण जी का जीवन चरित्र, पृ० ५१-५२ ।

हमला किया और ४४० गांवों को अपने अधिकार में कर लिया।[1]

सन् १५१३ में जब नागौर के स्वामी मुहम्मद खां ने बीकानेर पर चढ़ाई की तो राव लूणकरण अपनी सेना के साथ उसका मुकाबला करने के लिये गया। रात्रि में हमला करके उसने खान की सेना को तितर बितर कर दिया। खान भी युद्ध में घायल होकर अपने इलाके में लौट गया।[2] लेकिन बाद में जब जोधपुर के राव गांगा ने नागौर पर हमला किया और नागौर के खान ने राव लूणकरण से सहायता मांगी तो वह तुरन्त वहां गया और लड़कर शत्रु सेना को भगा दिया। अन्त में उसने राव गांगा और खान में मेल करा दिया।[3]

नागौर से लौटने के कुछ समय बाद राव लूणकरण ने अपने राज्य विस्तार के कार्य को पुनः आरम्भ किया। उसने अपने कुछ मुस्लिम पड़ोसियों पर हमला किया और काठलियाँ, डीडवाना, वागड़, नरबद सिंघाणा आदि कई गांवों पर अधिकार कर लिया।[4] तब वह नारनौल की ओर बढ़ा। नारनौल के नवाब ने राठौड़ों के विरुद्ध लड़ने में अपने को दुर्बल पाकर मेल करना चाहा पर राव लूणकरण ने इन्कार कर दिया। जैसलमेर के रावल ने अपने पहले की हार का कष्ट अनुभव करते हुये स्थिति का लाभ उठाया और नवाब से मिल कर लूणकरण से लड़ने आगे आया। अपनी अक्रामक योजनाओं से राव लूणकरण ने अपने सरदारों की सहानुभूति खो दी अतः जब युद्ध हुआ तो वे राव लूणकरण और उसके पुत्रों प्रतापसी, नैतसी और वैरसी तथा थोड़े से सैनिकों को छोड़कर मैदान से हट गये। उनके विरोधियों की संख्या बहुत अधिक थी। अतः युद्ध में वे सब मारे गये। यह युद्ध नारनौल से ३ मील दूर ढ़ोसी नामक स्थान पर २४ जून सन् १५२६ को हुआ था।[5] हम कह सकते हैं कि अपने अस्तित्व काल से ही बीकानेर राज घराने को दिल्ली के शासकों से

---

१. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. २८–२९।
   मुन्शी देवीप्रसाद–राव लूणकरण जी का जीवन चरित्र, पृ० ५२-५३।
   पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ११।
२. वीठू सूजा-पूर्व उद्धृत, छन्द ५७–६१।
३. वही, छन्द ७४–७५।
४. वही, छन्द ७५–७६–७८, ८०–८१।
५. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ३४–३६।
   वीठू सूजा–पूर्व उद्धृत, छन्द ८४–९३।

संघर्ष करना पड़ा। उस समय बहलोल लोदी ने एक अफगान मंडल का संगठन किया था। वह स्वयं दिल्ली का सुल्तान था। और बाकी सल्तनत विभिन्न अफगान सरदारों में बंटी हुई थी। हिसार सारंग खां के अधिकार में था और मल्लूखां अजमेर पर शासन कर रहा था। यहां तक कि नागौर भी एक अफगान सरदार के अधीन था। स्वाभाविक था कि राव बीका की राज्य विस्तार और राज्य संस्थापित करने की महत्वाकांक्षा से अफगान सरदारों का संघर्ष होता जो स्वयं अपनी सल्तनत का विस्तार करना चाहते थे। यह पहले कहा जा चुका है कि किस प्रकार मोहिलों का सरदार सहायता के लिये बहलोल लोदी के पास गया जिस पर हिसार का सूबेदार सारंग खां मोहिलवाटी भेजा गया। इस प्रकार एक ऐसा संघर्ष आरम्भ हुआ जो बीका के शेष शासन काल में बराबर भयंकर रूप में चलता रहा। बीका की सबसे महत्वपूर्ण देन यह है कि उसने दिल्ली सल्तनत की अधीनता अथवा अधिकार माने बिना अपने लिये एक स्वाधीन राज्य बनाने का सफल प्रयत्न किया। सच्चे वीर और साम्राज्य निर्माता की भांति उसमें असीम साहस था। इससे दिल्ली सल्तनत के प्रति उसका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। उसने इस इलाके में, जहां उसने अपना राज्य स्थापित किया, बसने वाले लोगों को ही सफलता से नहीं हराया, बल्कि दिल्ली के लोदियों और उसके सूबेदारों से भी मोर्चा लिया, जिन्होंने आरम्भ से ही उसके प्रति शत्रुता का भाव अपना लिया था।

राव लूणकरण ने अपने पिता के पदचिन्हों का अनुकरण किया एवं राज्य का और भी विस्तार किया। वास्तव में राज्य-विस्तार की इस महत्वाकांक्षा ने ही उसके प्राण लिये।

अध्याय २

आरम्भिक मुगलों के साथ बीकानेर के सम्बन्ध

सन् १५२६ में बीकानेर की गद्दी पर राव जैतसी का आरूढ़ होना न केवल बीकानेर के इतिहास में बल्कि उत्तरी भारत के इतिहास में भी एक नये युग के आरम्भ का सूचक है। पानीपत के मैदान में (२१ अप्रेल सन् १५२६) बाबर और इब्राहिम लोदी की सेनाओं के संघर्ष से, जिसमें सुल्तान इब्राहिम हार गया,[1] कुछ ही समय पूर्व वह (जैतसी) अपने पिता का उत्तराधिकारी बना था। अपने नवीन हथियार "तोपखाने" की सहायता से बाबर ने जो विजय प्राप्त की उसने अफगान सत्ता को समाप्त कर दिया। इसके कारण बीकानेर राज्य भी बहुत अशान्त रहा। बाबर ने पंजाब और मुल्तान पर अधिकार कर लिया। उसके क्षेत्र की दक्षिणी पश्चिमी सीमा वर्तमान पंजाब से मिलती जुलती थी जिसमें अबोहर, सिरसा, हांसी और हिसार सम्मिलित थे। लेकिन गणेशगढ़, हनुमानगढ़ और अजीतपुरा उसकी सीमाओं से परे थे। दक्षिण में सिन्ध का राज्य था जिस पर अरघुन साह बेग और उसका पुत्र मिर्जाशाह हुसेन राज्य करते थे।[2] हुँमायू बदख्शां का, कामरां काबुल, गजनी और कन्धार का तथा अस्करी मुल्तान का सूबेदार नियुक्त था।[3]

१६ मार्च सन् १५२७ को कणवाहा के युद्ध में राणा सांगा पर बाबर की विजय ने राजपूतों के मण्डल राज्य के अन्तिम चिन्ह को भी मिटा दिया जो कि लोदी बादशाहों के लिये निरन्तर खतरे का कारण बना हुआ था।[4]

---

१. स्मिथ–पूर्व उद्धृत, पृ० ३२२।
२. एस. के. बनर्जी–हुमायूं बादशाह, पृ० २६।
३. वही।
४. स्मिथ–पूर्व उद्धृत, पृ० ३२३।

भारत में आने के थोड़े ही समय के भीतर मुगलों ने अपने आप को उत्तरी भारत का स्वामी बना लिया और सन् १५२८ में प्रबल मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई। यद्यपि बाबर ने एक साम्राज्य जीत लिया था, और उसके विभिन्न सूबे परस्पर शिथिलता से जुड़े हुये थे लेकिन उसके विरुद्ध कोई स्थानीय विद्रोह प्रकट नहीं हुआ। तो भी राजनैतिक स्थिति सुदृढ़ नहीं थी। नवोदित मुगल राज्य के बहुत बलवान विरोधियों में अफगान थे। वे बहलोल लोदी के समय देश के शासक थे और उन्होंने राज्य को सैनिक शक्ति प्रदान की थी। देश में उन्होंने एक राजनैतिक शक्ति प्राप्त कर ली थी। आरम्भ में अफगानों ने ही सुल्तान इब्राहिम को हटाने में मदद करने के लिये बाबर को निमन्त्रित किया था। पर बाबर ने अपनी विजय को कायम रखने का निश्चय किया। अतः वे उसके विरोधी बन गये और उसे अपहरण कर्ता मानने लगे। अफगान मुगलों की इस घृणा की छाया के नीचे राव जैतसी ने बीकानेर शासक के रूप में अपना राजनैतिक जीवन आरम्भ किया। दिल्ली साम्राज्य के बहुत निकट होने के कारण यह स्वाभाविक था कि वहाँ की उथल पुथल का इस पर प्रभाव पड़ता।[1]

राव जैतसी के राज्य काल के आरम्भिक वर्ष चिन्ता और सन्देह से भरे थे। राव जैतसी का पिता राव लूणकरण नारनौल के नवाब से, जिसकी सहायता में जैसलमेर का राव था, लड़ते हुये मारा गया। चूँकि राठौड़ों ने बीकानेर राज्य की स्थापना बड़े विरोध के बावजूद की थी अतः यहां पहले बसने वाले लोग जिनकी अपनी जागीरें थी और जिनका इलाके में प्रभाव था वे राठौड़ों की किसी भी कमजोरी का फायदा उठाने को सदा तत्पर रहते थे। वे अपने असन्तोष को प्रकट करने का कोई भी अवसर नहीं चूकते थे। भट्टी और मोहिलों ने तो राव बीका के शासन काल में भी इस इलाके में अशान्ति उत्पन्न की थी। बीका की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारियों के दुर्बल शासन ने, उनके लिये गड़बड़ी उत्पन्न करना, केन्द्रीय सत्ता से अलग होने की भावना बढ़ाना और शासन को चलाने में कठिनाइयां उत्पन्न करना और भी सम्भव बना दिया। जैसलमेर और नारनौल के शासकों से राव लूणकरण के झगड़े का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम उसकी मृत्यु में हुआ और इससे अव्यवस्था फैलाने वाले

---

१. एस. के. बनर्जी—पूर्व उद्धृत, पृ० ३०–३२।

तत्वों को वढ़ावा मिला। इस प्रकार राव जैतसी ने पाया कि उसका नवोदित राज्य गम्भीर संकटों से घिरा हुआ था। एक ओर नागौर और नारनौल के अफगान शासक राज्य की वर्तमान परिस्थितियों का लाभ उठाने को उत्सुक थे, तो दूसरी ओर जैसलमेर का राव अलग कष्ट दे रहा था।

अतः राव जैतसी ने यह समझ कर, सन् १५२६ में, ज्योंही वह गद्दी पर वैठा, सबसे पहले अपने यहां सुव्यवस्था कायम करना आरम्भ किया। उसने अपने पिता राव लूणकरण की मृत्यु के लिये उत्तरदायी कल्याणमल बीदा[1] से युद्ध किया। कल्याणमल पर यह आक्रमण ४ अक्टूबर सन् १५२७ को हुआ था। कल्याणमल बच निकला और उसने नागौर के खान के यहां शरण ली। इस पर राव जैतसी ने द्रोणपुर की खाली गद्दी पर राव बीदा के पौत्र और संसार चन्द्र के पुत्र सांगा को बैठा दिया।[2]

इस समय मुगल साम्राज्य का राजनैतिक संगठन भी ध्यान देने योग्य है। अपने पुत्रों में प्रेम बनाये रखने के लिये बाबर सब के साथ समान व्यवहार में विश्वास रखता था। उसने अपने बड़े पुत्रों को उत्तरी पश्चिमी और पश्चिमी भागों के सूबेदार नियुक्त किया, ताकि सरकार मजबूत बनी रहे। इसी का परिणाम था कि उसने अपने पुत्रों हुमायूं, कामरां और असकरी को पूर्वोक्त क्षेत्रों में नियुक्त किया। उसने अपनी मृत्यु के समय हुमायूं को निर्देश दिया था कि वह परिवार के सदस्यों में एकता की भावना न केवल कायम रखे बल्कि और भी बढ़ाये। इस प्रकार हुमायूं की घरेलू नीति उसके पिता द्वारा पहले से ही निर्धारित कर दी गई थी। लेकिन कामरां एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और हुमायूं के सिंहासनारूढ होते ही उसने अपने राज्य विस्तार का प्रथम अवसर प्राप्त किया और लाहौर को अपने राज्य में मिला लिया। वाद में बाबर के आदेशानुसार पारिवारिक एकता बनाये रखने के लिये हुमायूं ने पंजाब का सूबा कामरां को दे दिया। उसने काबुल, कन्धार और पंजाब के देने का एक फरमान जारी किया और शीघ्र ही हिसार फिरोजा भी कामरां को दे दिया।[3] बाबर की मृत्यु

---

१. यह कल्याणमल राव जैतसी का पुत्र राव कल्याणमल नहीं है जो कि सन् १५४२ में बीकानेर के राज सिंहासन पर बैठा।

२. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ३७–३८।

३. एस. के. बनर्जी—पूर्व उद्धृत, पृ० ५२–५७।

पर कामरां ने अपने को पंजाब और अफगानिस्तान का स्वतन्त्र शासक बना लिया और लाहौर को अपनी राजधानी बनाया। सन् १५३७ तक हुमायूं और कामरां ने अपना अधिकार और भी बढ़ाया और अपने पास के इलाकों को अधीन कर लिया। लेकिन बीकानेर स्वतन्त्र रहा। घमण्डी कामरां को यह बात कांटे की तरह खटकी। अतः उसने बीकानेर पर आक्रमण के लिये अपनी सेना को तैयार करने का आदेश दिया। बीकानेर पर कामरां के आक्रमण का एक दूसरा कारण यह बताया जाता है कि जैतसी के आदेश पर जब कान्धल के पौत्र खेतसी ने भटनेर पर अधिकार किया तो एक जैन यति बीकानेर के सैनिकों के व्यवहार से अप्रसन्न हो गया था। जैन यति तब दिल्ली में कामरां के पास गया और उसे बीकानेर पर आक्रमण करने के लिये कहा कामरां सन् १५३८ में एक बहुत शक्ति शाली सेना लेकर भटनेर पर चढ़ आया। किला उस समय खेतसी के अधिकार में था। खेतसी और उसके मुट्ठी भर साथी बड़ी बहादुरी से लड़े। पर किले पर मुगलों का अधिकार हो गया।[1] इस विजय से उत्साहित होकर उन्होंने बीकानेर पर चढ़ाई की। उन्होंने बहुत सा धन भेंट करने और कामरां की अधीनता स्वीकार करने की मांग की।[2] राव जैतसी बहुत क्रोधित हुआ और कामरां के दूत को लौटा दिया। दूसरे दिन प्रातः बहुत बड़ी मुगल सेना ने नगर पर आक्रमण किया और बीकानेर के किले को घेर लिया। राव जैतसी शीघ्र ही देशनोक पहुँचा और करणी जी की प्रार्थना कर दैवी सहायता चाही। जब उसे इसका विश्वास हो गया तो उसने शत्रुओं पर रात्रि में हमला किया। मुगल सेना हक्की बक्की रह गई और पूर्ण रूप से पराजित हुई।[3] जनश्रुति है कि राव जैतसी को

---

१. नैणसी—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १६२।

२. अगरचन्द नाहटा—बीकानेर जैन लेख संग्रह, भूमिका पृ० १० पुस्तक पृ० २ —शिलालेख २ (ख) संवत् १५६१ वर्ष मुद्रलाधिप कामरां पातसाहि समागमे विनाशित परिकरस्य उद्र (द्ध) रित श्री आदिनाथ मूलनायकस्य वोहियरा गोत्रे म० वच्छा पुत्रो मं० वरसिंह भार्या श्री ठीऊल (१ बीझल) दे पुत्र मं० मेघा —भार्या महिगल दे पुत्र मं० वयरसिंह ··· ··· श्री जयतसिंह विजय राज्ये।"

३. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५४।
जर्नल ऑफ इन्डियन हिस्ट्री, भाग ११, अंक १–३, १९३२ पृ० १९४ पर लाहौर के प्रोफेसर श्रीराम शर्मा का "हुमायूं और मालदेव" शीर्षक लेख। डा० टैसीटोरी द्वारा अनुवादित बीठू सूजा के ग्रन्थ राव जैतसी रो छन्द में इस युद्ध का सजीव वर्णन मिलता है—

दैवी सहायता प्राप्त हुई। कामरां ने देखा कि हजारों चारणियां उसकी सेना को नष्ट कर रही हैं। सवेरा होने पर बची खुची मुगल सेना अपनी जान बचाने के लिये लाहौर की ओर भागती नजर आई।[१] वास्तव में कामरां इतनी शीघ्रता से पीछे हटा और घबराहट इतनी अधिक थी कि जब गांव छोटड़िया में उसका शाही छत्र गिरा तो उसे उठाने के लिये भी वह नहीं

"भाले रूपी संडासी से उसने इसे ग्रहण किया और मोड़ा, तब अत्यधिक शक्ति से उसे (भट्टी में) फूँक मारी, इसे पिघलाया इसका पिण्ड बनाया तब उसने इसे अपने शस्त्र रूपी हथोड़े से पीटा और पहले जो टेढ़ा था उसे सीधा करके उसने इसे चमकाया, तब तलवार से उसने इसके टुकड़े टुकड़े किये और बाद में उसने इसे सोने के बराबर तोला। कवि शिवा ऐसा कहता है। लूणकरण के पुत्र ने शीघ्रता से शत्रु की शरीरों की जन्त्री में से भाले के रूप में से इसे बाहर निकाला। इस प्रकार राव जैतसी ने कामरां की सेना को वैसे ही तोड़ा और ढ़ाला जैसे सुनार सोने को तोड़ता और ढ़ालता है।

घोड़े और हाथियों की घंटियाँ नुपूर ध्वनि को तरह झनझनाने लगी, चोले की जगह कवच धारण किया गया। साधारण बाजों की जगह रण-वाद्य बजाये गये, सिर पर पुष्पों की जगह शिरस्त्राण रक्खे गये तलवारों से ताल दी गई। युद्ध के लिये कमर कसी गई और प्रहारों से शत्रु के शरीर को मोड़ दिया गया। कवि शिवा कहता है कि मैं सत्य कह रहा हूं इस प्रकार राव लूणकरण के अजेय पुत्र राव जैतसी ने कामरां की सेना को नट की तरह नचाया।

अपनी सेना को ३ भागों में बांट कर उसने उसे कुन्ड की तरह सजाया और जब अनेक घावों से रक्त घी की तरह प्रवाहित हो रहा था तो आटे की तरह घोड़ों आदमियों और हाथियों को उसमें उड़ेल कर उसने उनकी शीघ्र बलि चढ़ाने का निश्चय कर लिया। रेत का बादल धुयें के समान मालूम पड़ा और चमकती हुई तलवारें ज्वालाओं की तरह लपलपाई। तब शत्रुओं के मस्तकों को नारियल की भांति लेकर जबकि गिद्ध मांस के लिये ब्राह्मणों की भांति बलि भूमि में एकत्रित हो रहे थे, लूणकरण के पुत्र ने युद्ध की आहुति दी कवि शिवा कहता है कि इस प्रकार राव जैतसी ने अपने शत्रुओं की अग्नि में बलि दी और शंकर ने खोपड़ियों को पहना और बलि की अग्नि से बची भस्म को लगाया।

१. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५४।

रुका ।[1] यह गांव बाद में राव जैतसी ने करणी जी के परिवार के चारणों को दे दिया[2] और जो मुगलों पर राठौड़ों की विजय स्वरूप आज भी उस छत्र को रक्खे हुये हैं ।

जोधपुर के राव गांगा का पुत्र मालदेव अपने पिता से असन्तुष्ट था क्योंकि राज्य का अधिकांश भाग उसके हाथ से निकल गया था अतः उसने अपने पिता को झरोखे से नीचे गिरा कर मार डाला और जोधपुर की गद्दी पर अधिकार कर लिया । महत्वाकांक्षी होने के कारण सन् १५४१ में उसने बीकानेर पर चढ़ाई की । जयसोम[3] के अनुसार जैतसी ने मालदेव को अपने से अधिक शक्तिशाली पाकर अपने मन्त्री नगराज को भेंट देकर शेरशाह के पास सहायता के लिये भेजा । लेकिन इसी बीच मालदेव ने हमला कर दिया और राव जैतसी २६ फरवरी सन् १५४२ को युद्ध में लड़ते हुए मारा गया ।[4]

इस समय बीकानेर के शासकों की संरक्षक इष्टदेवी करणी जी का स्वर्गवास हो गया । बीकानेर की स्थापना की तिथि से लेकर आज तक न केवल बीकानेर का राजघराना बल्कि साधारण लोग भी उनकी पूजा करते रहे हैं और

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५४ ।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० १५ ।
२. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० १५ ।
३. जयसोम–पूर्व उद्धृत, श्लोक २०५–२१८ ।
४. लेकिन दयालदास अपनी ख्यात (पृ० ५७) में लिखता है कि जब मालदेव बीकानेर पर हमला करने आया तो राव जैतसी अपनी सेना के साथ उसका मुकाबला करने गया और साहेवा नामक गाँव में डेरे डाल दिये । यहाँ पर कुछ पठान जिनसे राव जैतसी ने कुछ घोड़े खरीदे थे और जिन्हें कामदारों की असावधानी से मूल्य नहीं चुकाया गया था, आये और कीमत माँगी । इस पर राव जैतसी ने अपने लोगों से कहा कि वह पठानों को रुपये देने का प्रबन्ध करने के लिये बीकानेर जा रहा है और डेरे में किसी को भी उसके जाने की बात न बताई जाय । राव जैतसी की वापसी में देर हो गई और डेरे से उसके जाने की बात खुल गई । इसके फलस्वरूप उसके बहुत से सरदार अपनी सेना लेकर चले गये । जब राव जैतसी डेरे में लौटा तो मालदेव ने उस पर आक्रमण कर दिया । राव जैतसी अपने अनेक बहादुर योद्धाओं के साथ मारा गया ।

पाउलेट ने भी अपने बीकानेर राज्य के गजेटियर में पृ० १६ पर इस घटना का उल्लेख किया है ।

उनकी चमत्कारी शक्तियों की प्रशंसा करते रहे हैं। अतः बीकानेर के इतिहास में उनके चमत्कारों का उल्लेख पाकर आश्चर्य नहीं होता। इस महान् देवी ने जो चमत्कार दिखाये उनके बारे में चाहे लोग सन्देह करें और उन्हें न मानें लेकिन ईसाइयों और दूसरे लोगों में हुये चमत्कारों में वे पूर्ण विश्वास प्रकट करते हुये प्रतीत होते हैं। कहावत है कि राव जैतसी की पीठ के फोड़े को केवल स्पर्श मात्र से ठीक करके करणी माता एकाएक अदृश्य हो गई। बाद में उनके द्वारा एक अन्धे खाती (सुथार) को पुनः दृष्टि देने की बात भी कही जाती है। कहा जाता है कि कारदिया तलाई पर उन्होंने अपने को एक कम्बल में लपेट लिया और समाधि लगा ली। सहसा अपने आप लपटें फूट पड़ी और वे अदृश्य हो गईं। बीकानेर से २० मील दूर देशनोक में उनका मन्दिर एक तीर्थ स्थान है और प्रति वर्ष सारे राजस्थान से हजारों लोग वहां दर्शन करने आते हैं। उनका मन्दिर और यश दक्षिण में अहमदनगर तक है जहां महाराजा कर्णसिंह द्वारा निर्मित करणी जी का मन्दिर आज भी है।

बीकानेर का पतन निकट जान राव जैतसी का मन्त्री नगराज उनके वड़े पुत्र और बीकानेर की गद्दी के उत्तराधिकारी राव कल्याणमल और राजघराने के दूसरे सदस्यों को, जब वह शेरशाह से सहायता मांगने के लिये गया तो अपने साथ ले गया और उन्हें सिरसा में छोड़ दिया जो उस समय बीकानेर के इलाके में था और बीकानेर से काफी दूर था।[1] जैतसी की मृत्यु का बदला लेने का भार उसके पुत्र और उत्तराधिकारी कल्याणमल पर पड़ा जो ६ जनवरी सन् १५१९ को उत्पन्न हुआ था। सन् १५४२ में जब वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा[2] तो बीकानेर राज्य का कुछ भाग जोधपुर के मालदेव के अधिकार में था। राव कल्याणमल ने खोई हुई भूमि पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसमें शेखसर के गोदारा जाट सरदार ने भी उसकी सहायता की पर सफलता नहीं मिली।[3] अतः राव कल्याणमल और उसके छोटे भाई भीमराज ने दिल्ली के बादशाह (शेरशाह) से सहायता लेने का निश्चय किया और भीमराज ५० सैनिकों के साथ दिल्ली के लिये रवाना हो गया[4] चूँकि हुमायूं सूरों

---

१. जयसोम–पूर्व उद्धृत, छन्द २१५।

२. दलपत विलास (पृ० ४) के अनुसार राव कल्याणमल का राजतिलक ठाकुरियासर गाँव में किया गया था।

३. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० १७।

४. वही।

से हार कर भाग गया था, राव मालदेव ने महत्वाकांक्षी होने के कारण इसे हुमायूं की सद्भावना प्राप्त करने का एक अच्छा अवसर समझा। अतः राव मालदेव ने हुमायूं के पास भक्कर में जहां वह २६ जनवरी सन् १५४१ को पहुँचा था, अपनी सहायता का सन्देश भेजा।[1] पर हुमायूं को थट्टा के शासक शाहहुसैन से सहयोग मिलने की आशा थी, उसने मालदेव के सन्देश पर ध्यान नहीं दिया। लेकिन कहीं से सहायता न मिलते देखकर शाहहुसैन पर आक्रमण किया। इसमें वह असफल रहा अतः हुमायूं ने मालदेव से सहायता लेने का निश्चय किया। वह फलोदी पहुँचा। वहां उसने अपने डेरे लगा दिये और अपने दूत अत्काखां को मालदेव के पास भेजा।[2] मालदेव को इसी बीच शेरशाह की श्रेष्ठतर शक्ति का पता चल गया था। तब तक शेरशाह ने नागौर जीत लिया था अतः मालदेव ने हुमायूं की सहायता करने का अपना विचार बदल दिया। उसने किसी बहाने से अत्काखां को जोधपुर में रोक रखने की कोशिश की लेकिन अत्काखां को मालदेव के विचारों का पता चल गया। वह फलोदी भाग गया और उसने हुमायूं को सारी स्थिति से परिचित करा दिया।[3] शेरशाह बंगाल के सूबेदार को हराने के लिये गया हुआ था। जब वह वहां से आगरा लौटा तब हुमायूं फलोदी में ही था। उसे पता चल गया कि हुमायूं ने जोधपुर के इलाके में शरण ले रक्खी है अतः उसने एक बड़ी सेना के साथ जोधपुर पर चढ़ाई की। उसने मालदेव को कहलवाया कि या तो हुमायूं को अपने राज्य से निकाल दो या लड़ने के लिये तैयार हो

---

१. एच. डबलू. इलियट–हिस्ट्री ऑफ इन्डिया एज टोल्ड वाई इट्स हिस्टोरियन्स, भाग ५, पृ० २११।
बी. डे.–तबकाते अकबरी, भाग २, पृ० ८३–८४।

२. इलियट–पूर्व उद्धृत, भाग ५, पृ० २०७–११।
बी. डे.–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ८४।
मिर्जा कलिचबेग फ्रेदुनवी–हिस्ट्री ऑफ सिन्ध, भाग २, पृ० ८५।
जर्नल ऑफ इन्डियन हिस्ट्री, भाग ११, अङ्क १–३, १९३२ पृ० १९२–२०२।
लाहौर के प्रोफेसर श्रीराम शर्मा का "हुमायूं और मालदेव" शीर्षक लेख (इसमें तारीखे हिन्दो सिन्ध पृ० २८२ का हवाला दिया है।)
सी. स्टुवर्ट–तजकिरात–उल–वाकियात, पृ० ३६–३८।

३. इलियट–पूर्व उद्धृत, भाग ५, पृ० २११–१२।

जाओ । हुमायूँ को जब शेरशाह के आने और मालदेव के धोखे की खबर मिली तो वह अमरकोट भाग गया ।[1]

इस घटना ने शेरशाह को मालदेव के प्रति सन्देहशील बना दिया क्योंकि उसकी महत्वाकांक्षी प्रकृति को वह अच्छी तरह से जानता था । इसी समय मालदेव की शिकायत लेकर नागौर का वीरमदेव भी शेरशाह के पास पहुँच गया था । बीकानेर के मन्त्री नागराज ने इन सब अवसरों का लाभ उठाया और उसने शेरशाह को जोधपुर पर आक्रमण करने के लिये सहमत कर लिया ।[2] शेरशाह अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिये प्रभावशाली व्यक्तियों को अपने पक्ष में करना चाहता था । अतः सहायता मांगने वालों को वह तुरन्त दी गई[3] और जनवरी सन् १५४४ में शेरशाह एक शक्तिशाली सेना के साथ रवाना हुआ । मेड़ता पहुँचने पर सिरसा से राव कल्याणमल उससे आ मिला । मालदेव की सेना उस समय अजमेर में डेरे डाले हुये थी । शेरशाह की सेना भी वहीं पहुँची । एक महीने तक दोनों सेनायें एक दूसरे के आक्रमण की प्रतीक्षा करती रहीं । अन्त में मालदेव पीछे हट गया । शेरशाह ने उसका पीछा किया । अन्त में मालदेव की पूर्ण पराजय हुई और जोधपुर पर शेरशाह का अधिकार हो गया ।[4] इसी

---

१. के. आर. कानूनगो-शेरशाह, पृ० २७५-७६ ।
   इलियट--पूर्व उद्धृत, भाग ५, पृ० २१३ ।
२. जयसोम-पूर्व उद्धृत, छन्द २१३-१५ ।
३. दलपत विलास (पृ० ५) के अनुसार एक बार संकट के समय बीकानेर के राव लूणकरण ने शेरशाह और उसके पुत्र सलीम शाह को शरण दी थी और सेवा की थी। अतः इस उपकार का बदला चुकाने के लिये इस अवसर पर सहायता देने हेतु शेरशाह बहुत उत्सुक था ।
४. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० २१ ।
   नैणसी-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १५८-१५६ ।
   डा० टैसीटोरी द्वारा अनुवादित बीठू सूजा के ग्रन्थ "राव जैतसी रो छन्द" में इस युद्ध का सजीव वर्णन मिलता है— "जब बिजली की तरह गड़गड़ाहट की प्रतिध्वनि होने पर दूसरे राजा अपने हृदय में कांपे, तभी विश्व जैतसी के पुत्र के कार्य को जान सका । कल्याण मंडोवर वालों को कुचलने के लिये एक असीम चट्टान की भांति बादशाह को ले आया था । एक ओर से मुस्लिम योद्धाओं ने अपनी पैदल सेना और घुड़सवारों से हमला किया । एक शक्तिशाली हल्के पत्थर के समान धमाके की आवाज करते हुए

बीच रावत किशनसिंह[१] ने मालदेव द्वारा बीकानेर में स्थापित थानों पर अधिकार कर लिया था यहां तक कि उसने मालदेव के सूवेदार से बीकानेर का किला भी छीन लिया और कल्याणमल को शासक घोषित कर दिया। जोधपुर पर अधिकार करने के बाद शेरशाह ने कल्याणमल का राजतिलक किया[3] कल्याणमल बीकानेर लौट गया। नगराज शेरशाह के साथ दिल्ली चला गया और कुछ समय बाद जब वह वापस बीकानेर लौट रहा था तो मार्ग में अजमेर में उसकी मृत्यु हो गई। कल्याणमल भी जो अपना पक्ष प्रस्तुत करने हेतु शेरशाह के साथ दिल्ली गया था, उसकी आज्ञा से वापस बीकानेर लौट आया। इस दिन के बाद से बीकानेर के शासक केन्द्र की शाही सत्ता से सीधे राजनैतिक सम्बन्ध में आ गये।

बीकानेर लौटने पर राव कल्याणमल ने एक दरबार किया और अपने भाई भीमराज द्वारा दी गई सहायता की सार्वजनिक प्रशंसा करते हुये उसे "गई भूमिका वाहड़" विरुद दिया। रावत किशनसिंह को जैतपुर मिला।[४]

२४ मई सन् १५४५ को कालिंजर के युद्ध में शेरशाह की मृत्यु के शीघ्र बाद राव मालदेव ने जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लिया। उसने

सुलतान राव मालदेव की छाती पर जा गिरा। पहले ही हमले में मालदेव अपना राज्य और युद्ध की भावना छोड़कर भाग गया। सूरों ने, जिन्हें कल्याणमल राव जैतसी का बदला लेने के लिये और जोधपुर को कुचलने के लिये एक बड़ी चट्टान की भांति ले आया था, अपने चरणों से वहां की धरती को रौंद डाला।

शत्रु कुचले गये। विरोध का बदला लिया गया। मालदेव बर्बाद हुवा और राठौड़ वंशावतंस लूणकरण का पौत्र बहुत हर्षित हुआ। महान राव हटा दिया गया। बीका की नगरी जीत ली गई और धरती अपने रक्षक कल्याण राठौड़ के नीचे सुरक्षित हो गई।

१. बीकानेर राज्य के मुख्य सरदारों में से एक — रावतसर का ठाकुर।
२. जयसोम–पूर्व उद्धृत, श्लोक २१३–२२। इन श्लोकों में विक्रमपुर शब्द आया है जो बीकानेर के लिये है।
३. वही।
४. पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ० २१।
दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ७६।

मेड़ता पर भी आक्रमण किया जो वीरमदेव के पुत्र जयमल[१] के अधिकार में था। बिना किसी की सहायता के इस आक्रमण का मुकाबला करने में अपने को असमर्थ पाकर जयमल ने कल्याणमल से सहायता मांगी। वह उसे तुरन्त मिली। फलस्वरूप जोधपुर की सेना हार गई।[२]

जब अकबर राज्य सिंहासन पर बैठा तो हाजी खां नामक एक शक्तिशाली सेनापति अलवर का सूबेदार था। अकबर ने वहां से उसे निकालने के लिये मोहम्मद सर्वानी (नासिरउलमुल्क) की अधीनता में अपनी सेना भेजी। हाजी खां अजमेर भाग गया।[3] राव मालदेव को जब इसका पता चला तो उसने भागते हुये हाजी खां को लूटने के लिये पृथ्वीराज जयतावत को भेजा। हाजी खां अकेला पृथ्वीराज के हमलों का मुकाबला करने में असमर्थ था अतः उसने उदयपुर के महाराणा उदयसिंह से और राव कल्याण-मल से सहायता मांगी। उसे तुरन्त सहायता दी गई। पृथ्वीराज और उसके सैनिक बिना लड़े ही वापस लौट गये। राव कल्याणमल की सेना भी वापस लौट आई।[४] सन् १५६० में जब बैरामखां अकबर द्वारा प्रधानमन्त्री पद से हटाया गया तो उसने मक्का की तीर्थ यात्रा पर जाने देने की आज्ञा मांगी। लेकिन जल्दी ही स्पष्ट हो गया कि वह पंजाब में जाकर विद्रोह फैलाना चाहता था। अतः अकबर ने उस पर चढ़ाई कर दी। बैरामखां मारवाड़ होकर गुजरात भाग जाना चाहता था लेकिन जब उसको मालूम हुआ कि राव मालदेव ने उसका रास्ता रोक लिया है; वह वापस लौटा और उसने राव कल्याणमल और उनके पुत्र रायसिंह से शरण मांगी जिन्होंने उसे अपना परम्परागत राजपूती आतिथ्य दिया।[५]

---

१. मालदेव को हराने और जोधपुर को जीतने के बाद शेरशाह ने मेड़ता पर पुनः वीरमदेव का अधिकार करा दिया था।

२. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ७८–८२।

३. बेवरिज–अकबरनामा, भाग २, पृ० ७१–७२।
ईलियट–पूर्व उद्धृत, भाग ६, पृ० २१–२२।

४. दयालदास–वही, भाग २, पृ० ८७–८८।
ईलियट–वही, भाग २, पृ० २१–२२।

५. वी. डे.–वही, भाग २, पृ० २४३।
ईलियट–वही, भाग ५, पृ० २६५।
एच. ब्लाकमेन--आईन-ए-अकबरी, भाग १, पृ० ३१६।
एच. बेवरिज–अकबरनामा, भाग २, पृ० १५६।
मुन्शी देवीप्रसाद–राव कल्याणमल जी का जीवन चरित्र, पृ० १०६।

राव कल्याणमल के भाई ठाकुरसी ने पहले ही भटनेर के प्रधान अहमद से वहां का किला छीन लिया था। कुछ समय से उसका इस पर अधिकार था। उसने पड़ोस के सिरसा, फतेहाबाद और सिवाड़ी परगनों पर भी अधिकार कर लिया था। एक बार बादशाही खजाना डाकुओं द्वारा उसके इलाके में लूटा गया अतः अकबर ने हिसार के सूबेदार निजामुल्मुल्क को भटनेर पर हमला करने का हुक्म दिया। किला घेर लिया गया। लेकिन काफी समय तक कोई सफलता नहीं मिली। अन्त में जब किले पर दबाव ज्यादा हो गया और किले में रसद पहुँचनी बन्द हो गई तो राजपूत शत्रु पर टूट पड़े। ठाकुरसिंह और उसके साथी लड़ते हुये मारे गये और निजामुल्मुल्क ने किले पर अधिकार कर लिया।[1] इस पर ठाकुरसी का ज्येष्ठ पुत्र बाघा बीकानेर चला गया जहां वह कुछ समय तक अपने चाचा के पास रहा और बाद में राव कल्याणमल से स्वीकृति लेकर दिल्ली में बादशाह की सेवा में चला गया। वहां उसने अपनी असाधारण शक्ति और वीरता से बादशाह का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। एक बार एक फारसी धनुष को बादशाह के दरबार में कोई न चढ़ा सका पर बाघा ने उसे चढ़ा दिया। एक दूसरे अवसर पर उसने अपने हाथों से ही एक बाघ को मार डाला। बादशाह उससे बहुत प्रसन्न हुआ और उनसे कहा– "बाघा जो तुम्हारी इच्छा हो मांगो।" बाघा ने भटनेर मांगा और बादशाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। बाघा ने भटनेर में श्री गोरखनाथजी का एक मन्दिर बना कर इस शुभ अवसर को मनाया।[2]

राव कल्याणमल दूरदर्शी और चतुर शासक था। उसने शीघ्र ही अनुभव किया कि दिनों दिन बढ़ती हुई सत्ता और शक्ति वाले मुगल बादशाह से मित्रता करने में ही उसका हित है। जब हम पड़ौसी राज्य जोधपुर के बीकानेर पर बराबर हमलों को ध्यान में लाते हैं तो उसके इस निर्णय की समझदारी में कोई मतभेद नहीं हो सकता। अतः १५७० ई० में जब अकबर अजमेर के ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की जियारत से वापस लौटते हुए नागौर आया तो राव कल्याणमल अपने पुत्र महाराज कुमार रायसिंह के साथ नागौर पहुंचा। वह कई

१. पाउलेट–वही, पृ० २२–२३।
दयालदास–वही, भाग २, पृ० ८३–८६।
मुन्शी देवीप्रसाद–राव कल्याणमल जी का जीवन चरित्र, पृ० १०६।
२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ८७।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २३।

दिन बादशाह की सेवा में रहा। जब बादशाह ने पंजाब की ओर प्रस्थान किया तो राव कल्याणमल बीकानेर लौट आया लेकिन उसका पुत्र रायसिंह बादशाह के साथ रहा।[1] सन् १५७० में राव कल्याणमल को दो हजार का जाति मनसब और दो हजार सवारों का मनसब मिला।[2]

इस प्रेमपूर्ण सम्बन्ध का कारण अकबर की वह नीति भी थी जो खून खराबी और युद्ध की विरोधी थी। अकबर महान् कूटनीतिज्ञ था और अपने लक्ष्य को पाने के लिये वह हमेशा दूसरे सभी तरीके पहले काम में लाता था। इसी से उसे काफी सफलता मिली। उसने यह अनुभव किया कि मुगल साम्राज्य को अफगान खतरे की सम्भावना पूर्णतः मिटी नहीं है और इसे मिटाने में राजपूतों की सहायता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उसने सफलता से उनका सहयोग और समर्थन प्राप्त किया। इस कार्य में वह इतना सफल हुआ कि उसके राज्य विस्तार के लिये राजपूत आपस में ही सन् १५६२ में मेड़ता में, सन् १५६३ में जोधपुर में, सन् १५६७–६८ में चितौड़ में, सन् १५६९–७० में रणथम्भोर में और १५६९ में कालिन्जर में लड़े। सन् १५७० में जब अकबर नागौर में डेरा डाले हुये था तो उन्होंने जल्दी से जल्दी वहां पहुंचकर उसे अपना बादशाह स्वीकार करने में भी एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा दिखाई। अतः बीकानेर कोई अपवाद नहीं था। इस कार्य में अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति तथा जजिया हटाने ने बहुत बल दिया। यद्यपि यह कहा जाता है कि अकबर की धार्मिक नीति राजनीतिक कारणों से निर्देशित थी पर इस मत के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं मिलता। दूसरी ओर अबुल फजल के आधार पर हम अधिकृत रूप से कह सकते हैं कि अकबर एक गहन धार्मिक व्यक्ति था। चूंकि स्वयं राजपूत बहुत धार्मिक थे अतः यह स्वाभाविक है कि वे उससे बड़ी सरलता से प्रभावित हो सके।

यह मान लेना चाहिये कि राज्यारोहण के शीघ्र बाद अकबर ने यह अनुभव किया कि अफगानों का खतरा बड़ा जबरदस्त है और बिना राजपूतों की सक्रिय सैनिक शक्ति के न तो अफगानों को हराना सम्भव है और न मुगल साम्राज्य को शक्तिशाली बनाना सम्भव है।

---

१. बेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५१६–१९।
डब्लू. एच. लो–मुंतखबुत्तवारीख, भाग २, पृ० १३७।
दलपत विलास, पृ० १३।

२. ब्लाकमैन–पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ० ३५७।
मोहम्मद सईद अहमद–उमराय हनूद (हिन्दी), पृ० २८४।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सन् १५२६ से सन् १५७४ की अवधि में बीकानेर के राजघराने और केन्द्रीय शासकों में जो सम्बन्ध बना वह बीकानेर के शासकों की आवश्यकता से बना क्योंकि वे जोधपुर राज्य के हमलों और अपने राज्य के लुटेरों और उपद्रवी लोगों से अपनी रक्षा चाहते थे। साथ ही केन्द्रीय शासक भी अपने इलाके को मजबूत बनाने के लिये बीकानेर से सहायता चाहते थे। यह बात ध्यान में रखने की है कि सन् १५७० तक बीकानेर स्वाधीन रहा और सन् १५७० में जब यहाँ का शासक मुगल दरबार का मनसबदार बन गया तो बीकानेर के शासक मुगल दरबार में उच्च सम्मान और इज्जत तथा पूर्ण विश्वास प्राप्त करते रहे।

अध्याय ३

रायसिंह और मुगल बादशाह

रायसिंह का जन्म २० जुलाई सन् १५५१ को हुआ था। वे सन् १५७४[1] में गद्दी पर विराजे और अपने पूर्व शासकों की राव उपाधि के स्थान पर अपनी उपाधि महाराजाधिराज और महाराजा रखी।[2] राव रायसिंह अकबर के समकालीन थे।

रायसिंह एक प्रसिद्ध योद्धा थे। मुगल साम्राज्य को मज़बूत बनाने में उन्होंने महत्वपूर्ण भाग अदा किया। मुगलों की ओर से वे बराबर किसी न किसी संघर्ष में लगे रहे। कहा जाता है कि उनके घोड़े

---

१. नैणसी-पूर्व उद्धृत, भाग २ पृ. १६६।
टॉड-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११३२।
इन दोनों ने उनका राज्यारोहण सन् १५७३ लिखा है। राव कल्याणमल की छत्री के शिलालेख में उनकी मृत्यु सन् १५७४ में होनी लिखी है पर पाउलेट और दयालदास ने रायसिंह का राज्यारोहण सन् १५७१ माना है।

२. संवत् १६३१ वर्षे श्रावन सुदि ८ सोमदिने घटी १६ पल ३५ विशाखा नक्षत्रे घटी ३१।४४ ब्रह्मनामयोग घटी ५४।१० अचलदास खीची री वचनिका॥ महाराजा धिराय महाराय श्री राइसींघजी विजैराज्ये॥ ······
डा० टैसीटोरी, बारडिक एन्ड हिस्टॉरिकल मेन्युस्क्रिप्ट्स सेक्शन २, पोइट्री, बीकानेर स्टेट, पृष्ठ ४१।
········· अथ सम्वत १६५० वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठयां गुरौ रेवती नक्षत्रे साध्यनाम्नि योगे महाराजाधिराज श्री श्री श्री २ रायसिंह ने दुर्गा प्रतोलो संपूर्णकारिता ········॥

३. टॉड-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ११३५ "अकबर के सभी युद्धों में राजा रायसिंह ने अपने बहादुर राठौड़ सैनिकों का नेतृत्व किया।"

की काठी ही उनका सिंहासन थी। सच्चे राजपूतों की वीर परम्परा में पल कर बड़े होने के कारण, उनमें युद्ध और साहसिक कार्यों के प्रति एक सहज लगाव था। युवावस्था में ही वे एक ऐसे भयंकर पठान सरदार[1] से भिड़ गये थे जिसने न केवल उदयपुर के राना को बुरी तरह से हराया था[2] बल्कि अकबर की सेनाओं की भी दाल न गलने दी थी।[3] इस भिड़न्त में सफलता पाकर उनमें एक ऐसा आत्म विश्वास उत्पन्न हुआ जो बाद के वर्षों में उनके लिये हमेशा बहुत काम का सिद्ध हुआ। उनकी सैनिक प्रतिभा, अत्यधिक वीरता और प्रशासन की क्षमता उनके कुछ ऐसे गुण थे जिन्होंने दिल्ली के केन्द्रीय शासन से सम्बन्ध स्थापित करने में महत्वपूर्ण योग दिया। लेकिन यदि उस समय देश की राजनीतिक दशा वैसी न होती तो सम्भव है उनके ये गुण अज्ञात रहते। राणा प्रताप मुगल विरोधी कार्यों में लगे हुये थे और सिरोही तथा जालौर के शासक[4] भी उनसे मिले हुये थे। बीकानेर के निकट जोधपुर की दशा, चन्द्रसेन की अयोग्यता[5] और अन्याय के सत्ता ग्रहण करने के कारण, खराब हो गई थी। अपनी माता स्वरूपदे, जो मालदेव की प्रिय रानी थी, के प्रभाव से राज्य के सच्चे उत्तराधिकारी रामसिंह के स्थान पर चन्द्रसेन राजगद्दी पर बैठा। इसके अतिरिक्त गुजरात की स्थिति भी दिल्ली के मुगल शासकों के लिये चिन्ता उत्पन्न कर रही थी। इन परिस्थितियों ने अकबर को वाध्य कर दिया कि वह बीकानेर और दूसरे राजपूत राजाओं से सहायता मांगे। सहायता के लिये उसकी उत्सुकता ने रायसिंह को मुगलों के लिये अपना राजनीतिक चातुर्य और सैनिक शक्ति उपयोग में लाने का अवसर प्रदान

---

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० २४।
शेरशाह का एक सेनापति हाजीखाँ जो इस समय नागौर परगने और किले पर अधिकार किये हुये था।

२. अलखधारी–राजा रायसिंह, पृ० २२।

३. वही, पृ० २२–२४।

४. सिरोही का सुल्तान देवड़ा और जालौर का ताजखां।

५. चन्द्रसेन मालदेव का तीसरा पुत्र था पर अपने पिता की इच्छानुसार उसे जोधपुर की गद्दी मिली। इससे उसके दोनों बड़े भाई रामसिंह और उदयसिंह नाराज हो गये। उसके अन्याय से गद्दी हथियाने व दुर्व्यवहार के कारण उसके जागीरदार भी उससे असन्तुष्ट हो गये और रामसिंह को गद्दी पर बैठाने के लिये उससे जा मिले।

किया इससे केन्द्रीय सत्ता के साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित हुआ जो बहुत ही प्रेम-पूर्ण था, जिसे दोनों ही पक्ष बहुत महत्व देते थे और जो कई पीढियों तक चलने वाला था।

चन्द्रसेन के अन्याय से गद्दी हथियाने के कारण उसके बहुत से सरदार उससे अप्रसन्न हो गये। वे रामसिंह तथा मालदेव के अन्य पुत्रों के पास पहुँचे और चन्द्रसेन को राजगद्दी से हटाने का प्रस्ताव रखा जिसे उन्होंने प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। अतः वे जोधपुर पर हमले करने लगे पर सफलता न मिली। तब रामसिंह ने अकबर से सहायता मांगी जो उसे तुरन्त मिली।[1] इस सैनिक सहायता से रामसिंह ने जोधपुर का किला घेर लिया लेकिन सतरह दिन के बाद घेरा उठा लिया गया और प्रभावशाली सरदारों के बीच-बचाव से परस्पर समझौता हो गया। इसके अनुसार चन्द्रसेन ने रामसिंह और उदयसिंह को और अधिक इलाका दे दिया।[2] यद्यपि उस समय शाही सेना लौट गई पर उसने हुसेन कुलीखां के सेनापतित्व में जोधपुर पर पुनः आक्रमण किया। चन्द्रसेन ने चार लाख रुपये देकर उससे सुलह कर ली[3] लेकिन यह अस्थायी थी और हुसेन कुलीखां ने एक शक्तिशाली सेना लेकर जोधपुर पर पुनः हमला किया। इस बार चन्द्रसेन उससे लड़ा पर उसे जोधपुर छोड़ना पड़ा और भाद्राजूण में शरण लेनी पड़ी।[4]

ये सब घटनायें सन् १५७० से पहले हुई जबकि अकबर नागौर आया था और बीकानेर की गद्दी पर कल्याणमल थे। अधिकार-च्युत दोनों राजकुमार रामसिंह और उदयसिंह अपने पक्ष के लिये बादशाह की सद्भावना प्राप्त करने की आशा से उसके पास नागौर आये। चन्द्रसेन भी अपने पुत्र रायसिंह के साथ पुनः जोधपुर राज्य पाने की आशा से बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। कुछ समय के बाद निराश होकर चन्द्रसेन भाद्राजूण चला गया और अपने पुत्र रायसिंह को बादशाह की सेवा में छोड़ गया। जैसा पहले कहा जा चुका है इसी समय कल्याणमल भी यह अनुभव करके कि बीकानेर राज्य की सुरक्षा और हित, शक्ति में दिनोंदिन बढ़ती हुई मुगल सत्ता से मित्रता के सम्बन्ध कायम करने में है, इस अवसर का लाभ उठाकर

---

१. ओझा-पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ० १६४-६५।
२. वही।
३. ओझा-पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ० १६४-६५।
४. वही।

बादशाह के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये उपस्थित हुआ। वह अपने पुत्र रायसिंह के साथ नागौर में बादशाह की सेवा में गया। वहां वे कुछ समय तक ठहरे। जब अकबर पंजाब की ओर गया तो अपने पुत्र रायसिंह को दरबार में बात चीत चालू रखने के लिये छोड़कर कल्याणमल बीकानेर लौट गया।[१]

अफगान राजवंश के पतन के बाद गुजरात स्वतन्त्र हो गया था। इस समय वहां गड़बड़ी और अव्यवस्था, दमन और विद्रोह फैला हुआ था। देश के दूसरे भागों में गड़बड़ी को मिटा कर और कुछ अवकाश पाकर अकबर ने अपना ध्यान अब गुजरात की ओर दिया। २ जुलाई सन् १५७२ को उसने अपनी सेना के साथ आगरा से प्रस्थान किया। अजमेर पहुँच कर उसने मीर मोहम्मद खाने कलां को एक बड़ी सेना देकर आगे भेजा और एक और भी बड़ी सेना के साथ स्वयं उसके पीछे पीछे गया। इस समय महाराज कुमार रायसिंह उसके साथ था। मेड़ता पहुँचने पर उसे ज्ञात हुवा कि सिरोही से मीरमोहम्मद खाने कलां के पास मेल करने के लिये गये हुये दूतों ने धोखे से उस पर वार कर दिया। जब अकबर सिरोही पहुँचा तो एक सौ पचास राजपूतों ने उस पर हमला किया। लेकिन वे सब मारे गये। इसके अतिरिक्त राणा प्रतापसिंह निरन्तर चिन्ता का कारण था और राव मालदेव भी बादशाह का विरोधी बन गया था। गुजरात का मार्ग जोधपुर के इलाके में से होकर जाता था। यह असुरक्षित बन गया था। गुजरात में किसी भी सैनिक संघर्ष की सफलता के लिये यह बहुत महत्वपूर्ण था। दूरदर्शी अकबर ने स्थिति की गम्भीरता का शीघ्र ही अनुभव कर लिया। अतः रायसिंह जोधपुर का सूबेदार नियुक्त किया गया। उसे न केवल जोधपुर का मार्ग खुला रखने बल्कि शाही राजधानी (आगरा) और उसके चतुर्दिक क्षेत्र की रक्षा का कार्य भी सौंपा गया।[२] इस कार्य के लिये उसे शाही सेना की एक

---

१. बेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५१६–१६।
लो–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १३७।

२. इलियट–पूर्व उद्धृत, भाग ५, पृ० ३४१।
एल्फिस्टन–हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, पृ० ४६६।
लो–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १४४।
वी. डे.–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ३७२–७३।
दलपत विलास, पृ० १५।
बेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० ८।
लो लिखता है कि रायसिंह जोधपुर का सूबेदार नियुक्त किया गया, इलियट कहता

टुकड़ी भी दी गई और इन इलाकों के सूबेदारों और जागीरदारों के नाम फरमान जारी किये गये कि अपने कर्तव्य के पालन में रायसिंह को वे सभी प्रकार की सहायता दें।

जब रायसिंह इस कार्य में लगा हुआ था तो उसे पता चला कि इब्राहीम हुसेन मिर्जा, जिसे शाही सेना ने सरनाल से भगा दिया था, नागौर को घेरे हुए है। रायसिंह ने अपनी सेना के साथ तुरन्त नागौर (सन् १५७३ में) प्रस्थान किया। यह जानकर इब्राहीम हुसेन मिर्जा ने घेरा उठा लिया और भाग गया। रायसिंह और उसकी सेना ने उसका पीछा किया और कठौटी के निकट युद्ध में उसे बुरी तरह पराजित किया। वह पंजाब की ओर भाग गया।[1]

विद्रोह को शान्त करके और कोकल्ताश को गुजरात का सूबेदार नियुक्त करके अकबर फतेहपुर लौट गया। लेकिन ज्योंही अकबर फतहपुर लौटा, गुजरात में विद्रोहियों ने पुनः अपना सिर उठाया और मोहम्मद हुसैन-मिर्जा भी अहमदाबाद से उनमें जा मिला। यह खबर सुन कर तेईस अगस्त सन् १५७३ को एक बड़ी सेना लेकर अकबर पुनः गुजरात के लिए रवाना हुआ और उसने ८०० मील की दूरी केवल नौ दिनों में पार कर ली। रायसिंह भी जो उस समय गुजरात के पास था, शाही सेना से मिल गया। युद्ध में रायसिंह ने बड़ी बहादुरी दिखाई और द्वंद युद्ध में मुहम्मद हुसेन मिर्जा को मार डाला।[2]

है कि रायसिंह गुजरात का मार्ग खुला रखने के लिये और जोधपुर के इलाके को अपने अधिकार में रखने के लिये भेजा गया था। बेवरिज का कथन है कि रायसिंह को जोधपुर के क्षेत्र में ठहरने की आज्ञा प्रदान की गई थी। डे का विवरण इलियट से मिलता जुलता है। दलपत विलास में लिखा है कि जोधपुर रायसिंह को दे दिया गया था।

१. बेवरिज-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. ५० ।
इलियट-पूर्व उद्धृत, भाग ५, पृ० ३०५ ।
लो-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १५३-५४ ।
दलपत विलास, पृ० २०-२१ ।
ब्रजरतन दास-मआसिरूल उमरा (हिन्दी), पृ० ३५५ ।

२. टॉड-पूर्व उद्धृत, भाग २, प० ११३५ ।
बेवरिज-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० ५६-६३, ७३, ८१-८२, ८५-८६ ।
मुहम्मद हुसैन मिर्जा युद्ध में हारकर वन्दी बनाया गया और रायसिंह के सुपुर्द

रायसिंह के भाई, राजकुमार रामसिंह ने भी, जो इस युद्ध में साथ था, एक प्रसिद्ध शत्रु सेनापति को हाथी के हौदे से नीचे गिरा कर मार डाला और अपने लिये यश प्राप्त किया। उसकी बहादुरी और सेवा से प्रसन्न होकर अकबर ने उसे मनसब प्रदान किया और रायसिंह को बावन परगने मिले।[१]

अपने शासन के सतरहवें वर्ष में सन् १५७४ में जब अकबर अजमेर में था तो उसे सूचना मिली की जोधपुर का शासक चन्द्र सेन उसके विरुद्ध विद्रोह की तैयारी कर रहा है। इसके लिये उसने अपने निवास स्थान – सिवाना के गढ़ को और भी दृढ़ कर लिया था। बादशाह ने तुरन्त रायसिंह[२] तथा कई अन्य प्रमुख सरदारों, जैसे शाह कुलीखाँ महरम,[३] शिमालखाँ,[४] केशोदास[५] और जगतराय[६] को सेना के साथ भेजा।

शाही सेना ने मालदेव के पौत्र और रामसिंह के पुत्र कल्ला से सोजत छीन लिया। कल्ला ने बचकर भागने की कोशिश की लेकिन पीछा करने वालों से बचना असम्भव जान अन्त में उसने आत्म-समर्पण कर दिया और शाही सेना से मिल गया। उसने अपने भाई केशोदास को भी बादशाह की सेवा में कर दिया। इस प्रकार जब चन्द्रसेन की विरोध की शक्ति कमजोर हो गई तो शाही सेना ने सिवाने की ओर प्रस्थान किया जो

किया गया ताकि वह उसे नगर में ले जाये। जब वह नगर को लेजाया जा रहा था तो इख्तियारूलमुल्क ने पांच हजार सेना के साथ शाही सेना पर आक्रमण कर दिया। अकबर ने सुजातखाँ और भगवान दास को हमलावर सेना से मुकाबला करने के लिये भेजा और मुहम्मद हुसैन मिर्जा को कत्ल करवा दिया।

दलपत विलास, पृ. २२–२३।

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. २४।
दलपत विलास (पृ. २२–२३) में लिखा हैं कि अन्य परगनों के अलावा नागौर, सिरसा और मारौठ के परगने मिले।
दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ११२।

२. बेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० ११३।

३. अकबर का एक पाँच हजारी मनसबदार।

४. अकबर का एक गुलाम जो बाद में एक हजारी मनसबदार बना दिया गया।

५. केशोदास मेड़ता के जयमल का पुत्र था।

६. धर्मचन्द का पुत्र।

उस समय चन्द्रसेन के सेवक रावल सुखराज के अधिकार में था। चन्द्रसेन ने सुखराज की सहायता के लिये आदमी भेजे पर रायसिंह ने उन्हें पराजित कर दिया। सिवाना का मार्ग अब शाही सेना के लिये साफ था। चन्द्रसेन ने खतरे का अनुभव कर के किला अपने विश्वासी सेनापतियों के हाथ छोड़ दिया और स्वयं वहां से हट गया। किला लम्बे समय तक घेरा पड़ने की सम्भावना को ध्यान में रखकर तैयार किया गया था अतः घेरा डालने वालों के सभी हमले नाकाम रहे। रायसिंह ने अजमेर में बादशाह के पास जाकर अधिक सेना भेजने के लिये कहा। दो वर्ष बीत गये लेकिन तब भी किला अजेय रहा। अन्त में अकबर ने रायसिंह को वापस बुला लिया और उसके स्थान पर शहबाज खां को भेजा जिसने कुछ ही दिनों में उस गढ़ को जीत लिया।[1]

अकबर की ओर से रायसिंह ने कुछ महत्वपूर्ण सैनिक कार्यों में भाग लिया। अकबर के शासन के २१वें वर्ष सन् १५७६ में विदित हुआ कि जालौर का प्रधान ताजखां और सिरोही का शासक सुरताण अकबर के चिर शत्रु राणा प्रताप के साथ उपद्रव कर रहे हैं। बादशाह ने रायसिंह को कुछ अन्य सरदारों के साथ उपद्रवियों को दंड देने के लिये भेजा। ताजखां और सुरताण ने बिना विरोध किये आत्म समर्पण कर दिया। रायसिंह और सैय्यद हाशिम कुछ समय तक नाडोल[2] में ठहरे। उन्होंने सभी विद्रोही तत्वों को समाप्त कर दिया और मेवाड़ के राणा के राज्य से उधर जाने वाले सभी मार्ग बन्द कर दिये। अपने कार्य को पूर्ण कर रायसिंह सुरताण को बादशाह के दरबार में ले गया लेकिन सुरताण किसी के कहने से शान्ति की शर्तों को स्वीकार करने वाला नहीं था। अतः अवसर मिलते ही वह बिना बादशाह को बताये अपने राज्य को लौट गया। रायसिंह को सुरताण पर पुनः चढ़ाई करनी पड़ी। सुरताण ने अपने गढ़ के फाटक बन्द कर दिये लेकिन उसे वहां से खदेड़ दिया गया और उसके दूसरे आश्रय स्थल आबू के किले तक उसका पीछा किया गया। रायसिंह ने आबू के किले पर भी सन् १५७७ में अधिकार कर लिया और सुरताण को बन्दी बना कर बादशाह के पास

---

१. बेवरिज--पूर्व उद्धृत, पृ० ११३-१४, १३६, २३७--३८।
   ब्रजरतन दास--पूर्व उद्धृत (हिन्दी), पृ० ३५५-५६।
   मोहम्मद सैयद अहमद--पूर्व उद्धृत, पृ० २१३।

२. नाडोल जोधपुर की गोड़वाड़ तहसील में है। फारसी तवारीखों में नादोत (गुजरात में) नाम लिखा है जो सही ज्ञात नहीं होता।

से रहा ।[1]

सन् १५७७ में जब अकबर लाहौर गया तो उसने रायसिंह की गुजरात की लड़ाई में की गई सेवाओं को ध्यान में रखकर उसे मनसब तथा झंडा नगाड़े प्रदान किये ।[2] सन् १५७८ में पठानों ने सिंधु के इलाके में राजकुमार मानसिंह (राजा भगवान दास का पुत्र) के नेतृत्व में स्थित शाही सेना पर गहरा दबाव डाला । मानसिंह ने अकबर से सहायता मांगी । उसने रायसिंह को भेज दिया । जबरदस्त लड़ाई के बाद पठान हार गये और यह खतरा टल गया ।[3]

सन् १५८१ में अकबर के सौतेले भाई हकीम मिर्जा ने, जो काबुल का शासक था, अपने भाई से भारत का इलाका छीनना चाहा । कुछ ही समय पूर्व सिन्धु के निकटवर्ती उत्तरी पश्चिमी जिलों के सूबेदार मुहम्मद यूसुफखां को हटा कर आमेर के राजा भगवानदास के पुत्र राजा मानसिंह को वहां भेजा गया था । मानसिंह जब रावलपिंडी पहुँचा तो उसे पता लगा कि हकीम मिर्जा का एक सेनापति एक बड़ी सेना के साथ सिन्धु के दूसरे किनारे पर पहुँच गया है । शत्रु को रोकने के लिये मानसिंह शीघ्र वहां पहुंचा । बाद में हुई लड़ाई में मिर्जा का सेनापति (शादमान) बुरी तरह घायल हुवा और काबुल की सेना हार गई । जब अकबर को इस घटना का पता चला तो उसने अनुभव किया कि हकीम मिर्जा इस असफलता से चुप होकर नहीं बैठेगा । अतः उसने रायसिंह, जगन्नाथ, (आमेर के राजा भारमल का पुत्र) राजा गोपाल (एक दो हजारी मनसबदार) और कई अन्य लोगों को एक शक्तिशाली सेना देकर मानसिंह की सहायता करने भेजा ।[4] लेकिन साथ ही उसने मानसिंह को कहला दिया कि यदि हकीम मिर्जा सिन्धु नदी को पार करने का प्रयत्न करे, तो उसे रोका न जाय बल्कि आगे बढ़ने दिया जाय । जैसी आशा थी हकीम मिर्जा ने २३ जनवरी सन् १५८१ को नदी पार कर ली और ६ फरवरी को पंजाब पहुंच गया । अकबर भी ये बात जान कर

---

१. बेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० २६६--२६७, २७८–७६ ।
मुहम्मद सैयद अहमद- पूर्व उद्धृत, पृ० २१३--१४ ।
ब्रजरतन दास–पूर्व उद्धृत (हिन्दी), पृ० ३५६--३५७ ।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २१२ ।

३. अलखधारी–पूर्व उद्धृत, पृ० ७४–७५ ।

४. बेवरिज--पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० ५१८, ५३०–३१, ५३२–४७ ।

अपनी सेना के साथ उसकी ओर बढ़ा लेकिन हकीम मिर्जा अपनी सेना के साथ सिन्धुतट के दूसरी ओर चला गया। बादशाह ने अपने भाई से सुलह के लिये प्रयत्न किया लेकिन हकीम मिर्जा ने लड़ना चाहा। लेकिन वह हार गया और अकबर ने काबुल के किले में उसका पीछा किया। वहाँ हकीम मिर्जा ने आत्म-सम्पर्ण कर दिया। अकबर ने उसे काबुल का अधिकार फिर दे दिया। बादशाह अपनी राजधानी लौट आया और रायसिंह पंजाब में रहा।[1]

इसी समय के आस पास जब महाराजा रायसिंह बादशाह के काम से सोरठ जा रहा था तो उसे सिरोही में से जाना पड़ा। सिरोही के स्वामी सुरताण ने उसका बहुत स्वागत किया और उसे बताया कि उसके राज्य का भूतपूर्व प्रबन्धक बीजा देवड़ा उसे तंग कर रहा है। रायसिंह ने सुरताण को कहा कि यदि वह सिरोही का आधा राज्य बादशाह को दे दे तो उसे बादशाह का संरक्षण मिल जायेगा। सुरताण के इस शर्त पर सहमत होने पर रायसिंह ने बीजा को सिरोही राज्य से निकाल दिया।[2]

सन् १८५२ के लगभग बंगाल के विद्रोह के समय जब मासूमखां काबुली ने तार खां दीवाना और दूसरों की सहायता से ख्वाजा शमसुद्दीन खाविफ़ के नेतृत्व में शाही सेना को हरा दिया तो नूरमोहम्मद भी शाही काफिलों पर हमला करने लगा। उन्होंने तीस हजार घुड़सवारों और पाँच सौ हाथियों की एक शक्तिशाली सेना एकत्रित की और राजा टोडरमल के सेनापतित्व में भेजी गई शाही फौज से लड़ने के लिये आगे बढ़े। उन्होंने टोडरमल को हरा दिया।

इस समय तक बंगाल और बिहार का समस्त क्षेत्र इनके हाथों में जा चुका था। इस स्थिति का लाभ उठाकर उड़ीसा के सरदार कतलूखां अफगान ने भी विद्रोह कर दिया। खानएआजम ने कतलूखां से सुलह करनी चाही। जिस पर कतलूखां ने स्वयं तो अधीनता स्वीकार करने का बहाना बनाया लेकिन अपनी सेना के एक अफसर बहादुर कौड़िया को उकसाया कि वह खाने आजम द्वारा अपने दूत शेखफरीद-ए-बुखारी के अधीन भेजी गई सेना पर आक्रमण करे। इस लड़ाई में शाही सेना को बहुत नुकसान उठाना पड़ा। विद्रोह को रोकने में अपने को असमर्थ पाकर खान-ए-आजम ने बादशाह से सहायता मांगी। बादशाह ने राजा रायसिंह को अपनी सेना के साथ खाने-आजम की सहायता करने

---

१. बेवरिज-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० ४६३-६५, ५०८-६, ५१८, ५४२, ५४६।
१. नैणसी-पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ० १३१-३३।

हेतु बंगाल भेजा[1] ताकि विद्रोह को दबा दिया जाय। इस कार्य को राजा रायसिंह ने इतनी सफलता से किया कि शीघ्र ही खान-ए-आजम अनेक अधीन जागीरदारों और विद्रोहियों को साथ लेकर बंगाल से बादशाह की सेवा में पहुँचा और सूबा बिल्कुल खाली रहा अर्थात सूबे का कोई सूबेदार नहीं रहा। "यद्यपि यह स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया है पर यह बिल्कुल सम्भव है कि खान-ए-आजम की अनुपस्थिति में रायसिंह बंगाल का सूबेदार रहा।"[2]

सन् १५८५ में बादशाह ने रायसिंह को बिलोचिस्तान के निवासियों के विरुद्ध भेजा जिन्होंने विद्रोह कर दिया था। रायसिंह ने उन पर ऐसा दबाव डाला कि बिलोची सरदारों को विवश होकर आत्म सम्पर्ण करना पड़ा। वे बादशाह के सामने लाये गये। उनसे स्वामी-भक्ति का आश्वासन पाकर बादशाह ने उनकी जागीरें पुनः उन्हें सौंप दीं।[3] इसी वर्ष पंजाब के दीबलपुर परगने के गांव लाखीपुर की एवज में हिसार फिरोजा का जिला परगना भटनेर राजा रायसिंह को दिया गया।[4]

सन् १५८६ में बादशाह ने प्रशासनिक ढांचे में कुछ परिवर्तन किये और रायसिंह को जयपुर के राजा भगवानदास के साथ लाहौर भेजा।[5]

बीकानेर के वर्तमान दुर्ग की नींव ३० जनवरी सन् १५८९ को रखी गई और यह १७ फरवरी सन १५९४ को पूर्ण हुआ। ख्यातों के अनुसार रायसिंह जब बुरहानपुर में था तो उसने अपने मन्त्री कर्मचन्द को यह

---

१. अर्सकिन-पूर्व उद्धृत, पृ. ३१८। उसने राजा रायसिंह के बंगाल जाने की तिथी उसके काबुल भेजे जाने के दो वर्ष बाद अर्थात् लगभग १५८४ लिखी है।

२. अलखधारी-पूर्व उद्धृत, पृ. ८०।

३. बेवरिज-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. ७१६-१७ और ७३९।
इलियट-पूर्व उद्धृत, भाग ५, पृ ४५०-५३।
लो-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ३६०।

४. हिजरी सन् ९९३ की १५ वीं रज्जब का अकबर का फरमान। यह विश्व में सबसे प्रचीन मुगल फरमान माना जाता है।

५. बेवरिज-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. ७७९।
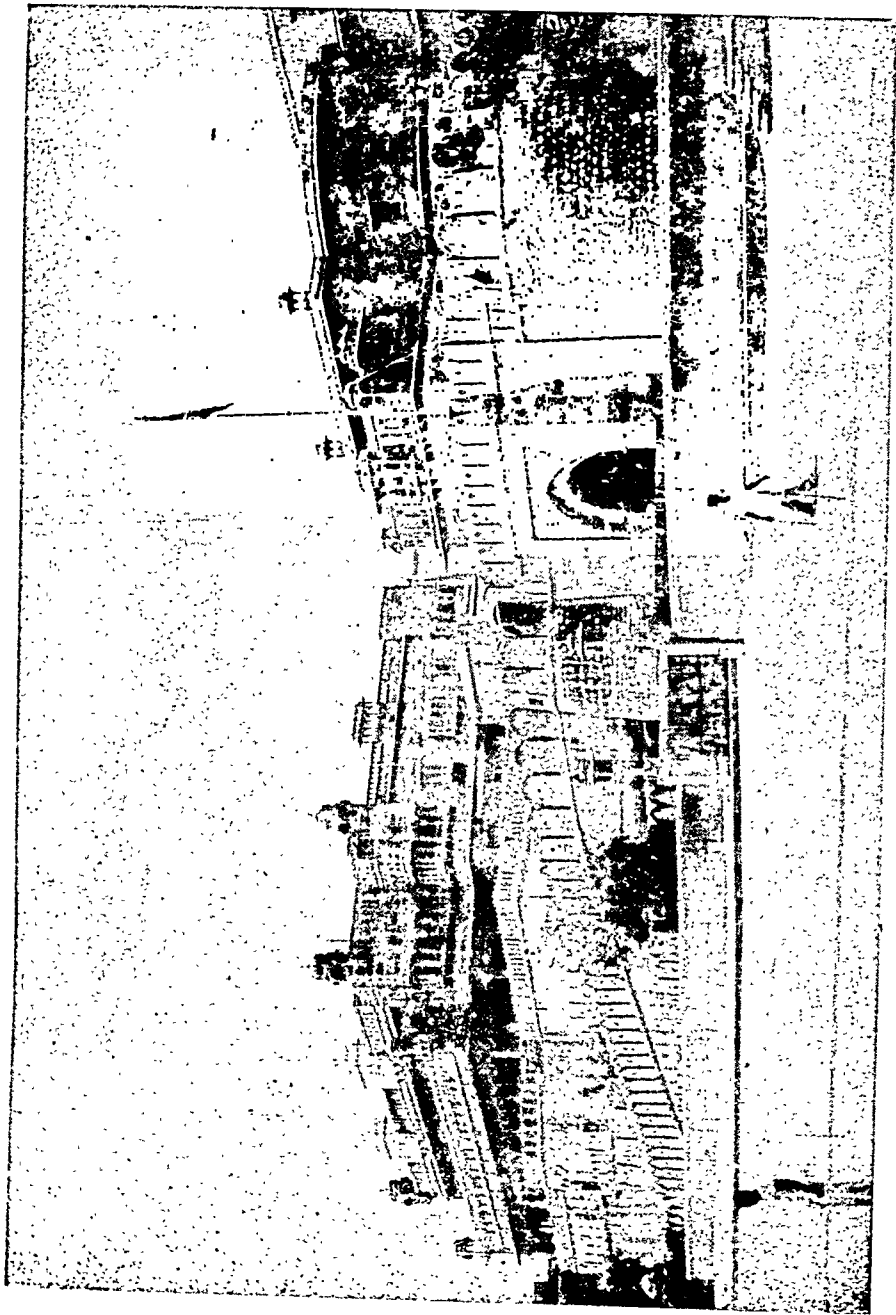
श्री जूनागढ़, बीकानेर, जिसकी नींव महाराजा रायसिंहजी के आदेशानुसार
३० जनवरी १५८९ में रखी गयी थी

किला बनाने के लिये निर्देश भेजा था।[1]

सन् १५८७ में कासिमखां मीरबहरी, जो काश्मीर का मुगल सूबेदार था को रायसिंह के चाचा शृंग[2] ने अपने ४० राजपूत योद्धाओं के साथ बड़ी वीरता दिखलाकर काश्मीरी विद्रोहियों के हाथों पराजित होने से बचाया। इन सब राजपूतों ने अपने प्राण देकर बादशाह के पक्ष की स्थिति को सुधारा। उनमें से प्रत्येक युद्ध में मारा गया। अन्त में अकबर ने कासिमखां की जगह यूसफुखां को भेजा। कासिमखां शाही दरबार में लौट आया।[3] इस घटना से सिद्ध हो जाता है कि बीकानेर के राजा और उसके घराने के लोगों की सहायता से अकबर को कितना अधिक सैनिक गौरव प्राप्त हुआ। लेकिन राजघराने के सभी लोग बादशाह के स्वामी भक्त नहीं थे। रायसिंह के भाई अमरा (अमरसिंह) ने कुछ लुटेरों को एकत्रित कर लिया और गैर कानूनी कार्यों में लग गया। इससे उसका मुगलों से भी झगड़ा हो गया। ऐसे ही एक झगड़े में भिंभर के जागीरदार हमजा द्वारा वह मारा गया। अमरा का पुत्र केशवदास अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये आया और उसने हमजा के पुत्र की जगह भूल से करमबेग को मार डाला। केशवदास का पीछा किया गया जिसके साथ रायसिंह और बैरामखां के पुत्र खानखाना के भी कुछ लोग थे। उन्होंने केशवदास को घेर लिया और उसे व उसके अधिकांश साथियों को मार डाला। उन्होंने कुछ को बन्दी भी बना लिया।[4]

३ दिसम्बर सन् १५६१ को बादशाह ने रायसिंह को खानखाना की सहायता करने भेजा। ठठ्ठा के स्वामी जानीबेग ने विद्रोह के लक्षण दिखाये थे और अकबर ने उसे दण्डित करने हेतु खानखाना को भेजा था। जानीबेग ने अपने मजबूत किले में शरण लेकर विरोध किया। शाही सेना को तंग करने के लिये वह बहुधा बाहर निकल कर उस पर छापे मारता। उसने कभी किसी बड़े युद्ध का मौका नहीं दिया। शाही सेना हिम्मत हारने लगी और उनकी शक्ति क्षीण होने लगी। खानखाना ने बादशाह के पास तुरन्त सहायता भेजने का

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. १२२।

२. अकबर नामा (बेवरिज, भाग ३, पृ. ७६७) में शृंग जी को चचेरा भाई लिखा है जो सही नहीं है।

३. बेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. ७६६–६८।

४. बेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. ६०८।

सन्देश भेजा। तब बादशाह ने खानखाना की सहायता के लिये रायसिंह को भेजा जो चार हजारी मनसबदार था।[1] मुगल दरबार में रायसिंह के उच्च पद का उस समय की फारसी तवारीखों में यह पहला उल्लेख है।

थोड़े ही समय बाद रायसिंह के परिवार में एक दुःखान्त घटना हुई। बान्धोगढ़ (रीवां) के वाघेला सरदार रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र के साथ रायसिंह की बेटी का विवाह हुआ था। सन् १५६३ में यात्रा करते समय वह पालकी से गिरने के कारण मर गया। जब बादशाह ने यह सुना तो २५ जुलाई सन् १६५३ को स्वयं रायसिंह के पास जाकर अपना शोक प्रकट किया और रायसिंह की बेटी के बच्चे छोटे होने के कारण उसे सती होने से रोकने में सफल हुआ।[2] इस घटना से भी पता चलता है कि बादशाह राजा रायसिंह का कितना अधिक सम्मान करता था और कितनी गहरी दोस्ती रखता था।

सन् १५६३ में रायसिंह को बुरहानुलमुल्क को दबाने के लिये दक्षिण भेजा गया। अहमदनगर के शासक बुरहानुलमुल्क को बादशाह द्वारा कई बार सहायता दी गई थी। वह वास्तव में संरक्षित और आश्रित शासक माना गया था। और उसे बादशाह को एक निश्चित रकम नजराने के रूप में देनी पड़ती थी। लेकिन बाद में बुरहानुलमुल्क ने विद्रोह के लक्षण प्रकट किये और नजराना नहीं चुकाया। अतः अकबर ने बुरहानुलमुल्क को दण्ड देने के लिये शाहजादे दानियाल के साथ रायसिंह को एक बड़ी सेना देकर दक्षिण भेजा।[3] उसी वर्ष बादशाह ने रायसिंह को जूनागढ का प्रदेश (दक्षिणी काठियावाड़) दिया जिसे कुछ ही समय पूर्व आजम खां ने जीत कर मुगल साम्राज्य में मिलाया था।

---

१. इलियट–पूर्व उद्धृत, भाग, ५ पृ ४६२।
   लो–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ३६२।
२. बेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० ६८५।
   मुन्शी देवी प्रसाद–अकबर नामा, पृ० २१४-१६।
   मुहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ० २१४।
   ब्रजरत्न दास–पूर्व उद्धृत (हिन्दी), पृ० ३५८–५६।
३. इलियट–पूर्व उद्धृत, भाग ५, पृ० ४६७।
   लो–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४०२।
   बेवरीज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० ६६४–६५।
४. लो–पूर्व उद्धृत भाग, २, पृ० ४००।
   यह जागीर देने का उल्लेख अकबर के निर्दाक ६ दे ४२ के फरमान में भी मिलता

यद्यपि रायसिंह अकबर के प्रति बहुत स्वामी भक्त थे और दोनों में प्रेमपूर्ण सम्बन्ध था लेकिन सन् १५९७ में एक घटना को लेकर उनमें बिगाड़ हो गया। यह घटना उस समय हुई जब रायसिंह भटनेर में थे और अकबर का एक ससुर नसीरखां उसके साथ था। रायसिंह ने बादशाह के इस ससुर की सेवा के लिये अपने नौकर तेजा को लगा दिया था। लेकिन तेजा ने नसीर खां के व्यवहार का विरोध किया और रायसिंह को सूचना दी कि मेहमान ने एक खत्री जाति की लड़की से छेड़छाड़ की है। रायसिंह ने तेजा की बात मानकर उसे छूट दे दी कि वह चाहे जैसे नासीरखां को ठीक रास्ते पर लाये। तेजा ठीक मौके की तलाश में था। जब नासीरखां ने अपने को भेजी गई रसद में कोई दोष निकाल कर तेजा को गालियां दीं तो तेजा और उसके साथियों ने नसीरखां को पीट डाला। जब नसीर दिल्ली लौटा तो उसने बादशाह से रायसिंह के आदमी की शिकायत की। अकबर ने रायसिंह से तेजा को मांगा लेकिन रायसिंह ने कहला दिया कि तेजा भाग गया। बादशाह बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने राजा रायसिंह से भटनेर लेकर उसके विद्रोही पुत्र दलपत[1] को दे दिया जिसने भटनेर को

है जिसमें लिखा है .... अपरिचितों के प्रति नम्रता और दोषों को क्षमा करना बादशाह का प्रशंसनीय गुण है, हमने कुलीन लोगों के वंशज और शाही कृपाओं के योग्य रायसिंह के अपराधों को क्षमा करने के बाद उसे अनेक शाही उपहारों से सम्मानित किया है, और जूनागढ़ और दूसरे जिलों की जागीर इलाही सन् ४३ से पुनः प्रदान करने के बाद उसे यहां से जाने की इजाजत दी है।

१. दयालदास की ख्यात भाग २, पृ० १२९ के अनुसार नसीरखां जब भटनेर में ठहरा हुआ था तो उसने किसी लड़की से अनुचित छेड़छाड़ की इस पर राजा रायसिंह के इशारे से उनके एक सेवक तेजा ने उसको पीटा। दिल्ली पहुंचने पर नसीरखां ने बादशाह से शिकायत कर दी। बादशाह ने राजा रायसिंह से तेजा को सौंप देने का हुक्म दिया पर उसने नहीं सौंपा और सूचना भिजवादी कि तेजा भाग गया।

इस घटना का उल्लेख "राजा रायसिंह जी री बेल" नाम की रचना में भी मिलता है।

(डिस्क्रिप्टिव कैटेलॉग ऑव बार्डिक एण्ड हिस्टॉरिकल मेन्युस्क्रिप्टस सेक्शन २ भाग १, पृ० ५९।

फारसी तवारीखों ने इतना ही लिखा है कि रायसिंह के सेवकों के दुष्कृत्यों की खबर पाकर बादशाह रायसिंह से अप्रसन्न हो गया।

बीकानेर के विरुद्ध अपनी कारवाईयों का अड्डा बना लिया। बीकानेर में गृह युद्ध को रोकने के लिये रायसिंह बादशाह द्वारा बीच बचाव के लिये तुरन्त दिल्ली पहुँचा। इस बीच दलपत के शत्रुओं – भट्टियो और जोहियों– ने पहले ही बादशाह से सैनिक सहायता प्राप्त कर दलपत को भटनेर से निकाल दिया लेकिन दलपत बीकानेर आ गया और सेना इकट्ठी कर उसने शीघ्र ही भटनेर पर पुनः अधिकार कर लिया।

बादशाह के दरबार के कुछ खास लोग रायसिंह के प्रति वैर भाव रखते थे। इनमें से एक राजा रायसिंह का पूर्व मन्त्री कर्मचन्द था। बादशाह की ओर से युद्ध में भाग लेने हेतु रायसिंह के लम्बे समय तक बीकानेर से दूर रहने के कारण कर्मचन्द ने रायसिंह के ज्येष्ठ पुत्र दलपत को बीकानेर का राज्य अपने अधिकार में करने के लिए सहायता देने का षड्यन्त्र किया। जब कर्मचन्द के इस घृणित कार्य का पता चला तो रायसिंह ने उसे बन्दी बनाकर उसकी सम्पति जब्त करनी चाही। लेकिन अपने मालिक की नाराजी का ज्ञान होते ही कर्मचन्द दिल्ली भाग गया। शतरंज में निपुण होने के कारण उसे तुरन्त बादशाह के दरबार में प्रवेश मिल गया क्योंकि बादशाह को शतरंज खेलने का बहुत शौक था। दरबार में कर्मचन्द की कुचालों का यह परिणाम निकला कि अकबर रायसिंह से नाराज हो गया। अतः रायसिंह दिल्ली नहीं गये। लेकिन साम्राज्य की प्रतिष्ठा और एकता को बनाये रखने में रायसिंह का समर्थ योग हमेशा अकबर को इतना मूल्यवान लगा कि वह राजा रायसिंह से अधिक समय तक नाराजगी न रख सका। उसने सोरठ की जागीर (सौराष्ट्र) और सारा दक्षिण काठियावाड़ रायसिंह को प्रदान किया और उसे दक्षिण जाने की आज्ञा दी। लेकिन २० दिसम्बर सन् १५९७ (पौष बदी ७ सम्वत् १६५४) को दिल्ली में ये फरमान पाकर राजा बीकानेर लौट आया और दक्षिण में नहीं गया। तब बादशाह ने उसे कहलाया कि यदि वह दक्षिण नहीं जाना चाहता तो उसे शाही सेवा में उपस्थित होना चाहिये। इस पर राजा रायसिंह दिल्ली चले गये और बादशाह उससे प्रेमपूर्वक मिला। तब रायसिंह दक्षिण को चला गया।

---

१. तारीख ६ दे सन् जुलूस ४२ का अकबर का फरमान।
"(सामान्यतः) गुजरात के सूबे में काम कर रहे मुंशियों और विशेषतः सूरत के जागीरदारों का यह कर्तव्य है कि ज्योंही हमारी इस आज्ञा का पता चले, जो अल्लाह ताला की है, त्योंही उन्हें इसका पालन करना चाहिये और आदेश में लिखे जिले हमारे सहायक को सौंप दिये जाँय।"
बेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० १०६८–६९।

अकबर के शहरयार ४३ तारीख १५ मेहर के (अगस्त १५९८ के) फरमान से पता चलता है कि राजा रायसिंह ने हाम और बारा रावलों का पक्ष लिया था। बादशाह का राजा में इतना विश्वास था और वह उनका इतना विचार रखता था कि उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। बादशाह ने उपर्युक्त रावलों के लिये फरमान राजा को भेज दिये ताकि वह उन्हें अपने पास रखे और केवल तभी दे जब उनकी ईमानदारी का राजा को पक्का विश्वास हो जाये।[1] सन् १६०० में बादशाह ने नागौर का परगना रायसिंह को जागीर में दिया।[2]

सन् १६०१ में बादशाह ने रायसिंह को शेख अबुल फजल की सहायता करने नासिक भेजा। शेखअबुलफजल दक्षिण के विद्रोह को मिटाने गया हुआ था लेकिन अपने ही राज्य में गड़बड़ी की खबर पाकर उसने वापस बीकानेर लौटने की आज्ञा प्राप्त कर ली।[3]

उत्तरोत्तर बादशाह रायसिंह की स्वामी भक्ति का प्रशंसक बनता गया और उसे दरबार में उनकी उपस्थिति अधिक आवश्यक अनुभव होती गई। सन् १६०३ में दशहरे के दिन उसने सलीम को मेवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा प्रदान की। रायसिंह और कई दूसरे प्रमुख राजपूत सरदार उसके साथ थे। लेकिन जब सलीम फतेहपुर पहुंचा तो वह अपने को सौंपे गये कार्य की कठिनाइयों को उठाने के लिये तैयार न हुआ, उसने बादशाह से अधिक सेना तथा धन भेजने अन्यथा इलाहाबाद अपनी जागीर में लौट जाने की आज्ञा माँगी। उसकी बात मान ली गई और प्रस्तावित आक्रमण छोड़ दिया

---

१. "उसकी प्रार्थना स्वीकार करली गई है और शाही आज्ञा भेज दी गई है। रावल हाम और रावल बारा से सम्बन्धित फरमानों को उसे अपने पास सुरक्षित रखना चाहिये। यदि उनकी ईमानदारी का राजा को पक्का विश्वास हो जाये, यदि वे अन्तःकरण से अधीनता स्वीकार कर ले, यदि वे अपनी पहले की भूलों पर पश्चाताप कर लें तब उनको फरमान देकर शाही दया और कृपा का विश्वास दिलाया जाये और राजा इन सब घटनाओं की दैनिक रिपोर्ट प्रस्तुत करे।"

२. अकबर का इलाही सन् ४५ तारीख ३ आबान (१३ अक्टूबर सन् १६००) का फरमान।

३. वेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० ११७३ और ११८४।
मोहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ० २१५।
ब्रजरतन दास–पूर्व उद्धृत, पृ० ३५६।

गया ।[1] सन् १६०४ में अकबर ने सम्साबाद परगने के दो भाग – सम्साबाद तथा नूरपुर – कर दिये और उन्हें रायसिंह को जागीर में दे दिया । इस जागीर को पाकर रायसिंह वापस बीकानेर लौट आये ।[2]

सितम्बर सन् १६०५ (सावण विक्रमी सम्वत् १६६२) में बादशाह अकबर बीमार हो गया और उससे कभी ठीक नहीं हुआ । दिनोंदिन उसकी हालत खराब होती गई । शाही तख्त खाली होने की आशा से उसमें रूचि रखने वाले लोग अपने २ पक्ष के सम्भावित उत्तराधिकारियों के लिये प्रयत्न करने लगे । राजा मानसिंह और खान–ए–आजम ने जो शाही दरबार के दो सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति थे, शाहजादा खुसरो का समर्थन किया । खुसरो आमेर के मानसिंह का भानजा और खान–ए–आजम का दामाद था । अकबर के ज्येष्ठ पुत्र सलीम, जो तख्त का वास्तविक अधिकारी था, को ज्ञात हुआ कि उसके समर्थक बहुत कमजोर है लेकिन यह अनुभव करके कि बीकानेर का राजा रायसिंह उसका अच्छा मददगार हो सकता है, उसने उन्हें तुरन्त आगरा बुला भेजा ।[3] रायसिंह शाहजादे के सन्देश पर शीघ्र आगरा पहुँच गये । १५ अक्टूबर सन् १६०५ की रात्रि में अकबर का देहान्त हो गया ।

२४ अक्टूबर सन् १६०५ को सलीम जहाँगीर के नाम से अपने पिता अकबर के बाद भारत का बादशाह बना । ११ मार्च सन् १६०६ को जहाँगीर की गद्दी नशीनी का पहला उत्सव मनाया गया । इस पर बादशाह जहाँगीर ने राजा रायसिंह का मनसब चार हजारी से बढ़ा कर पांच हजारी कर दिया ।[4]

---

१. इलियट–पूर्व उद्धृत, भाग ६, पृ० ११० ।
   वेवरिज–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० १२३३–३४ ।
   ब्रजरतन दास–पूर्व उद्धृत, पृ० ३६० ।

२. अकबर का इलाही सन् ४६ तारीख २१ खुरदाद (मई सन् १६०४) का फरमान ।

३. सलीम का इलाही सन् ५० तारीख २६ मेहर (सितम्बर सन् १६०५) का फरमान जो इस समय बीकानेर संग्रहालय में है ।

४. वेवरिज और राजर्स–तुजुक-इ-जहाँगीरी, भाग १, पृ० १, ४६ ।
   मोहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ० २१५ ।
   देवी प्रसाद–जहाँगीर नामा, पृ० २४, ५२ ।

इस उत्सव के कुछ महीनों बाद शाहजादा खुसरो ने बादशाह के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इसे दबाने जहाँगीर रवाना हुआ। उसने रायसिंह को यह कह कर आगरे में रखा कि जब बेगमों को बुलाया जाये तो वह उनको लेकर आवे।[1] जब बादशाह ने बेगमों को बुलवाया तो रायसिंह उनके साथ गये। लेकिन मथुरा में जब उसे मानसिंह सेवड़ा नामक एक जैन साधु से ज्ञात हुआ कि जहाँगीर का राज्य दो वर्ष से अधिक नहीं चलेगा तो उसने बेगमों का साथ छोड़ दिया और बीकानेर चला गया।[2]

राजधानी लौट कर जहाँगीर को मालुम हुवा कि दलपत ने विद्रोह कर दिया है। बादशाह ने अपने कई प्रमुख सरदारों के साथ एक शक्तिशाली सेना उसके विरुद्ध भेजी। कुछ समय तक सामना करने के बाद दलपत युद्ध के मैदान से भाग गया और छिप गया।[3]

१४ जनवरी सन् १६०८ को रायसिंह शाही दरबार में लौटा। अमीर उल-उमरा शरीफखां के कहने से बादशाह ने उसे क्षमा प्रदान की तथा उसका मनसब तथा सारी जागीरें बहाल कर दी।[4]

---

१. कुछ दूसरे इतिहासकारों (इकबालनामा पृ. ५, मआसिर-इ-जहांगीरी पृ. ७१ और कजवीनी पृ. ४२ के अनुसार जहांगीर ने राज्य की सुरक्षा की देखभाल के लिये शाहजादा खुर्रम की अध्यक्षता में एक कमेटी बना दी थी, जिसमें शेख अलाउद्दीन, मिर्जा गयास बेग तेहरानी, दोस्त मुहम्मद ख्वाजा जहां और राजा रायसिंह सम्मिलित थे।

डा. ओझा–पूर्व उद्धृत, खंड १, पृ. १६१।

२. बेवरिज और राजर्स–पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ. ४३७–३८।

मुहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ. २१६।

३. बेवरिज और रजर्स–पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ. ८४।

४. बेवरिज और राजर्स–पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ. १३०–३१।

मुहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ. २१६।

इस सम्बन्ध में सन् १०१५ ता० २ आवान का जहाँगीर का फरमान विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है — "समकालीन और मित्रों में से चुने गये, शाही कृपा और कृतज्ञा के योग्य, शाही उपहारों से सम्मानित राजा रायसिंह को सूचित किया जाता है कि ये खबर शाही कानों तक पहुंची है कि अविवेकि दलपत अपने दुर्भाग्य और नीचता के कारण अपने व्यवहार में रायसिंह के साथ बहुत खराब और बुरी तरह से पेश आता है जिसके फलस्वरूप उसने (रायसिंह ने) उसके विरूद्ध सेना लेकर उसे घेर लिया है।

उसी वर्ष दलपतसिंह ने भी खान जहां पीरखाँ लोदी के मारफत बादशाह से क्षमा मांगी। उसे क्षमा कर दिया गया।[1]

२२ जनवरी सन् १६१२ को बुरहानपुर में, जहां वह मुगल साम्राज्य की ओर से दक्षिण का सूबेदार था, रायसिंह का देहान्त हो गया। मरते समय उन्होंने अपने पुत्र सूरसिंह को अभिलाषा बताई कि मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करने वाले सभी लोगों को दण्डित किया जाय। सूरसिंह ने अपने पिता की इच्छा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की।

इस प्रकार कल्याणमल द्वारा केन्द्रीय सत्ता से जो मित्रता पूर्ण सम्बन्ध हुवा था वह रायसिंह द्वारा और भी दृढ़ हुआ। रायसिंह की स्वामी भक्ति और निष्ठा तथा विवेकपूर्ण सलाह ने अकबर की दृष्टि में उसके महत्व को उत्तरोत्तर

चूंकि हमारा उदार स्वभाव यह सहन नहीं करता कि कोई भी पुत्र इतने अपना जनक ढंग से अपने ही पिता के विरुद्ध व्यवहार करे, हमारे मन में, जिसमें अल्लाह्ताला का निवास है, यह बात आई कि हम अपनी विजयी सेना को उसे ऐसा दंड और ताड़ना देने के लिये नियुक्त करें ताकि वह दूसरे विद्रोही लोगों के लिये एक सबक बन जाय।

लेकिन चूंकि उस (रायसिंह) की ओर से इस मामले में कोई बात अब तक दरबार में नहीं आई है अतः हमारे मन में फिर यह बात आई कि शायद यह बात गलत हो। इसलिये हमने अपनी विजयी सेना को नहीं भेजा।

यदि वास्तव में ऐसा हुआ है और वह विद्रोही (दलपत) गड़बड़ी करने को कृत संकल्प है तो उसे (रायसिंह को) चाहिये कि (जिस दिन उसे यह फरमान मिले) उसी दिन वह सारी हकीकत लिखकर अपना प्रतिनिधि भेजे ताकि हम शाही दरबार से सेना भेज सके और उनको यह आदेश दें कि सीमान्त पर जाकर उसे बुरी तरह पराजित कर (उसके प्राण निकाल लें) उसके उद्देश्यों को मिट्टी में मिला दें।

× × × ×

यह आवश्यक है कि उसे (रायसिंह को) हमेशा यह विश्वास रहना चाहिये कि उससे सम्बन्धित मामलों में बादशाह उसी का पक्ष लेंगे।"

१. बेवरिज और राजर्स—पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ. १४८।
बेवरिज—अकबरनामा, भाग ३, पृ० १२००।

चढ़ाथा । शीघ्र ही उन्हें चार हजारी[1] मनसबदार वना दिया गया और वे मुगल सत्ता के समर्थक माने जाने लगे । आमेर[2] के राजाओं के अतिरिक्त वास्तव में रायसिंह ही ऐसे हिन्दू शासक थे जिन्हें इतना उच्च मनसब मिला था क्योंकि इससे नीचे का मनसब जो हिन्दू राजा[3] को मिला हुआ था वह केवल दो हजारी था । दूसरे सभी हिन्दू राजा केवल उससे नीचे ही नहीं थे बल्कि कई बातों में पीछे थे । रायसिंह से नीचे दूसरा व्यक्ति रीवां का राजा रामचन्द्र था जो दो हजार सैनिकों का सेनापति था और उसका स्थान ८९वां था जबकि रायसिंह का स्थान ४४वां था । बूंदी का राव सुजानसिंह का भी, जो दो हजारी सेनापति था, ९६वां स्थान था और वह रायसिंह से ५२ स्थान पीछे था । जोधपुर का उदयसिंह एक हजारी सेनापति और १२१ वें स्थान पर था । मनसबदारों में उसकी गणना १३वीं श्रेणी में थी । जैसलमेर के रावल, ओरछा के राजा और पालनपुर के नवाव और भी नीचे थे, और उनका स्थान क्रमशः १८१ वां, २०४ वां और २१७ वां था । जहांगीर ने अपनी जीवनी में रायसिंह का उल्लेख "एक अत्यन्त माननीय अमीरों में से एक"[4] विशेषण से किया है और इसी को ध्यान में रख कर अपने तख्त पर वैठने के पहले जुलूस के उत्सव में रायसिंह का मनसब बढ़ा कर पांच हजारी कर दिया था । राजा रायसिंह ने, मुगल बादशाहों की ओर से वंगाल से लेकर काबुल तक और कश्मीर से लेकर दक्षिण और गुजरात तक, प्रायः सभी प्रमुख युद्धों में भाग लिया । इनमें न केवल उन्होंने अपने साहस का

---

१. ब्लाक मैन–पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ. ३५८ ।

एल्फिन्स्टन के अनुसार—ये बात उल्लेखनीय है कि पांच हजार से ऊपर का मनसब केवल मुगल वंश के शाहजादों को ही दिया जाता था। रायसिंह का मनसब बढ़ाकर पांच हजारी जहांगीर द्वारा अपने तख्त पर वैठने के समय किया गया था। आइने अकबरी–भाग १ पृ. २३७ में ब्लाकमैन भी लिखता है कि इसी कारण बादशाह ने मनसबदारों की श्रेणी दहवासी (दश का सेनापति) से लेकर दह हजारी (दस हजार का सेनापति) तक कायम की थी पर पांच हजार से ऊपर का सेनापतित्व उसने केवल अपने प्रतापी पुत्रों के लिये सुरक्षित रखा ।

२. आमेर के राजाओं को इस मामले में इसलिये विशेष तरजीह दी गई क्योंकि मुगल शासन को राजभक्ति अर्पित करने वाले वे प्रथम हिन्दू शासक थे ।

३. बान्धु (अब रीवाँ) का राजा रामचन्द्र बघेला ।

४. बेवरीज और राजर्स–पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ. १३०–३१ ।

बल्कि अपने सेनापतित्व की यथार्थ प्रतिभा का भी पूर्ण परिचय दिया। रायसिंह ने केवल रणभूमि में ही यश प्राप्त नहीं किया, संघर्ष की तरह शान्ति में भी उन्होंने सर्वदा मुगल शासन को अपना पूर्णतम सहयोग प्रदान किया और बादशाह द्वारा एक स्वामीभक्त साथी और सच्चा मित्र माना जाने लगा। इन्ही गुणों के कारण रायसिंह को कम से कम चार विभिन्न अवसरों पर सूबेदार नियुक्त किया गया। सन् १५८१ में उन्हें पंजाब[१] का और १५८६ में खान देश में बुरहानपुर[२] का सूबेदार बनाया गया। सन् १५९३ में उन्हें सूरत[3] और सन् १६०५–६ में दूसरी बार बुरहानपुर भेजा गया।[४] इन उत्तरदायित्व के उच्च पदों, जिन पर अत्यधिक प्रशासकीय योग्यता की आवश्यकता थी, का प्रदान करना केवल रायसिंह की योग्यता ही प्रकट नहीं करता बल्कि यह भी सिद्ध करता है कि अकबर और जहांगीर उनका कितना आदर करते थे और उनमें कितना अटूट विश्वास रखते थे। वे रायसिंह को मुगल साम्राज्य का हितैषी मानते थे। यह बात रायसिंह को दिये गये शाही फरमानों और समय समय पर दी गई विभिन्न जागीरों से बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। अकबर के इलाही सन् ४० तारीख २२ इस्फरमूज[५] (फरवरी सन् १५९५) के फरमान में अकबर शिकायत करता है कि उसे मालूम हुआ है कि रायसिंह तब तक दक्षिण के अभियान पर रवाना नहीं हुआ। अकबर ने पूछा है कि उसकी ईमानदारी, कार्य के लिये महत्वाकांक्षा और मित्रता को क्या हो गया अथवा क्या वह (महारानी) भटियाणी के प्रेम में मग्न हो गया है। मित्रता और कार्य के लिये महात्वाकांक्षा (खिदमत व दोस्ती) शब्दों का प्रयोग और भटियाणी का उल्लेख महत्वपूर्ण है। इस व्यक्तिगत स्पर्श से दोनों के बहुत प्रेमपूर्ण और मित्रता पूर्ण आपसी सम्बन्धों का पता चलता है।

अकबर के इलाही सन् ४२ तारीख २९ आजर (नवम्बर सन् १५९७) के फरमान में शाहजादे सलीम ने रायसिंह को खानखाना की सहायता के लिये जाने का कहते हुये इन विशेषणों का प्रयोग किया है "साम्राज्य के चुने हुए अमीरों में सर्वश्रेष्ठ, स्वर्ग पर स्थित राज्य के सरदारों का प्रधान, जन्नत जैसे दरबार के कृपापात्रों में सर्वश्रेष्ठ आदि।"

---

१. मुहम्मद सैयद अहमद-पूर्व उद्धृत, पृ० २१४।
२. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० २७।
३. ब्लाकमैन-आइने अकबरी, भाग १, पृ० ३५८।
४. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ३०।
५. परिशिष्ट १।

शाहजादा सलीम रायसिंह के लिये कितना सम्मान और चिन्ता रखता था इस बात का पता उसके द्वारा रायसिंह को लिखे हुए फरमान से चलता है। रायसिंह ने काफी समय तक शाहजादा सलीम को पत्र नहीं लिखा था। इलाही सन् ४७ तारीख ४ आजर[1] (नवम्बर सन् १६०२) के फरमान में लिखा है कि यद्यपि रायसिंह ने शाहजादे (सलीम) को याद नहीं किया है पर उसने रायसिंह का अनेक शुभ अवसरों पर ध्यान किया। इससे दोनों की मित्रता का सम्बन्ध असंदिग्ध रूप से सिद्ध हो जाता है। शाही दरबार में रामसिंह का कितना अधिक प्रभाव था इसका पता अकबर की मृत्यु के समय हुई एक घटना से चलता है। जैसा पहले कहा जा चुका है खुसरो को गद्दी पर बैठाने के लिये दरबार में एक षड्यन्त्र चल रहा था। उस समय जहांगीर की दृष्टि रायसिंह की ओर गई और उसने उसकी सहायता मांगी। इस अवसर पर इलाही सन् ५० तारीख २८ मेहर को शाहजादे द्वारा रायसिंह को भेजे गये फरमान[2] से उसकी महत्ता और आग्रह का पता चलता है। रायसिंह तुरन्त आगरे के लिये रवाना होकर वहां पहुँचे और राजसिंहासन के उत्तराधिकार के प्रश्न को उन्होंने इतनी चतुराई से हल किया कि बिना किसी बाधा के जहांगीर को बादशाह बना दिया तथा राजा मानसिंह और खाने-आजम का षड्यन्त्र विफल हो गया। जहांगीर का रायसिंह पर कितना अधिक विश्वास था, यह इस तथ्य से विदित होता है कि जब बादशाह खुसरो को दबाने के लिये गया तो उसने रायसिंह को आगरे की देखभाल के लिये नियुक्त किया।

जब जहांगीर को मालूम हुआ कि रायसिंह अपने कुंवर दलपतसिंह के विद्रोह से तंग है तो तारीख २ आबान रजब उल मुरजाब हिजरी सन् १०१५ (नवम्बर सन १६०७) को तुरन्त उसने फरमान[3] भेजा। इसमें अपने पिता के प्रति पुत्र के अपमान जनक व्यवहार पर गहरी नापसन्दगी प्रकट की। प्रारम्भ में बादशाह ने रायसिंह की सहायता के लिये सेना भेजने की बात सोची थी पर बाद में विचार करने पर उसने ऐसा नहीं किया क्योंकि रायसिंह की ओर से उसके पास कोई सूचना न थी। उसने सोचा कि विद्रोह की बात गलत हो सकती है लेकिन उसने फरमान में

---

१. परिशिष्ट २।

२. परिशिष्ट ३।

३. परिशिष्ट ४।

यह जोड़ दिया कि यदि यह बात सत्य हो तो रायसिंह को चाहिये कि शीघ्र बादशाह को सूचित करे और अपने मामलों में शाही कृपा का पूर्ण भरोसा रखे।

जैसा पहिले लिखा जा चुका है बहुत बढ़िया सम्बन्ध होते हुए भी दरबारी षड्यन्त्र और विरोधी पक्षों द्वारा दोनों में अस्थायी रूप से अलगाव भी उत्पन्न किया गया लेकिन यह स्थायी रूप से मिट कर अधिक दृढ़ मित्रता में बदल गया।

आइने अकबरी[1] के अनुसार उस समय बीकानेर राज्य में निम्नलिखित महल थे—

(१) बीकमपुर (२) बरसलपुर (३) बीकानेर (४) जैसलमेर (५) बाहरमेल (बाड़मेर) (६) पोकल (पूगल) (७) बरकाल (सिन्ध में स्थित पारकर) (८) पोकरण (९) चोयान (१०) कोटड़ा और (११) देवदार।

सन् १५६१ में मारवाड़ पर आक्रमण के बाद अकबर द्वारा मेड़ता और नागौर भी रायसिंह को दे दिये गये थे।[2] अकबर द्वारा रायसिंह

---

१. जैरेट-आइने अकबरी, भाग २ पृ० २७७-७८।

२. टाड-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ११३३।
पाउलेट ने भी अपने "बीकानेर राज्य के गजेटियर" (पृ. २५) में लिखा है कि रायसिंह के शासन काल में नागौर उसके राज्य का एक भाग था। १५ अक्टूबर सन् १६०० का अकबर का फरमान में भी जो राजस्थान सरकार के पुरालेख विभाग बीकानेर में सुरक्षित है रायसिंह को नागौर का परगना देने की बात लिखी है। उसमें रायसिंह के लिए "साम्राज्य के विश्वास पात्र, साम्राज्य के आधार स्तम्भ, शाही कृपाओं के योग्य" आदि विशेषणों का प्रयोग किया गया है। इसमें राजस्व अधिकारियों को भी निर्देश किया गया है कि यह महाल रायसिंह के प्रतिनिधियों को सौंप दिये जांय और चौधरी, राजस्व वसूल करने वाले, किसानों और दूसरे लोगों को कहा गया है कि वे लगान व दूसरे कर आदि रायसिंह के प्रतिनिधियों को चुकायें और रायसिंह को ही अपना राजा मानें लेकिन जागीर देने की तिथियों की असमानता उलझन में डालने वाली है। डाक्टर टैसीटोरी का मत है कि रायसिंह ने निसन्देह सन् १५६१ में नागौर पर अधिकार कर लिया था पर चूंकि वह मुगलों की ओर से कार्य कर रहा था अतः सम्भव है कि महाल मुगलों के पास रहा और गुजरात के युद्धों में रायसिंह की शानदार सेवाओं के बाद सन् १५७२ के लगभग यह रायसिंह को जागीर में दिया गया। अकबर का सन् १६०० का फरमान इस प्रकार से इस आदेश को स्थिर करने के रूप में है।

को दिया गया। जोधपुर जब बाद में सन् १५८२ में उदयसिंह को लौटाया गया तो भी नागौर रायसिंह के ही पास रहा।[1] बाद में दोनों राज्यों के आपसी समझौते के फलस्वरूप यह जोधपुर को लौटा दिया गया। उसके द्वारा अधिकृत ताहरा, कसूर और आतगढ़ के परगनों के बदले में उसे नडियाद (निरयाद) का परगना दिनांक ५ उर्दि वहिस्त इलाही सन् ४१ (अप्रेल सन् १५९६)[2] के शाही फरमान द्वारा दिया गया। जूनागढ़ की जागीर उसे इलाही सन् ४२ तारीख ९ डे (फरवरी सन् १५९७)[3] के फरमान द्वारा तथा उप जिला नूरपुर सहित शम्साबाद जिले की जागीर इलाही सन् ४९ तारीख २१ खुरदाद (मई सन् १६०४)[4] के फरमान द्वारा प्रदान की गई। पाउलेट ने लिखा है कि रायसिंह की जागीर में जोधपुर के कुछ गांव (फलौदी) तथा सिरसा, हांसी और हिसार के भी कुछ गांव थे।[5] मुल्तान के निकट मारोठ रायसिंह की जागीर में होने का उल्लेख पाउलेट[6] ने किया है और दीपलपुर लाखी का दिया जाना हिजरी सन् ९९३ के रज्जब की १५ तारीख (अप्रेल सन् १५८५)[7] के फरमान से स्पष्ट है।

बादशाह द्वारा इन जागीरों का दिया जाना निःसंदेह केन्द्रीय सत्ता द्वारा राजा रायसिंह की उल्लेखनीय सेवाओं की प्रशंसा का प्रतीक है लेकिन साथ ही ये जागीरें रायसिंह द्वारा रखी जाने वाली बहुत बड़ी सेना का व्यय भार उठाने के लिये भी थीं। आइने अकबरी के अनुसार रायसिंह की सेना में बारह हजार घुड़सवार और ५० हजार पैदल सैनिक थे।[8] उस समय की परिस्थितियों में इतनी बड़ी सेना रखे जाने की छूट अपने आप में इस बात का प्रमाण है कि बादशाह को रायसिंह पर कितना अधिक विश्वास था। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि बादशाह के दरबार में रायसिंह का

---

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. २७।
२. परिशिष्ट ५।
३. परिशिष्ट ६।
४. परिशिष्ट ७।
५. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. २५।
६. वही।
७. मेरे अधिकार में अकबर का हिजरी सन् ९९३ तारीख १५ रज्जब (अप्रेल १५८५) का एक फरमान है जिसके अनुसार हिसार फिरोजा जिले में भटनेर का परगना दीपलपुर में लाखीपुर परगने के बदले में रायसिंह को दिया गया।
८. जैरेट–आइने अकबरी, भाग २, पृ. २७७।

कितना महत्वपूर्ण और सम्मानित स्थान था और निःसन्देह अन्तर्राज्य के मामलों को प्रभावित करने में समर्थ था। बादशाह की ओर से की गई चढ़ाईयों में लूटे गये धन, आन्तरिक प्रशासन की सुयोग्यता तथा व्यापार और वाणिज्य के तीव्र विकास के कारण बीकानेर की समृद्धि और धन अभूतपूर्व हो गया। धन की वृद्धि ने सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों को, जिनका स्वयं रायसिंह सर्वाधिक उत्सुक संरक्षक था, बढ़ने की प्रेरणा मिली। अनेक कवि उसके दरबार में आये और उन्होंने उसकी प्रशंसा में अनेक रचनायें की, क्योंकि उसकी दानशीलता काव्य रचना के लिये एक प्रिय विषय था। रायसिंह की प्रशंसा में सैकड़ों गीत लिखे गये। बीकानेर के किसी अन्य शासक के यहां इतने अधिक प्रशंसा करने वाले नहीं थे। कहा जाता है कि उदयपुर और जैसलमेर में अपने विवाहों के अवसर पर उसने अपनी प्रशंसा में लिखे गये सम्बोधन गीतों के लिये चारणों और दूसरों को बहुत सा धन दान में दिया था। वह अनेक कवियों और ख्यात लेखकों, जो उसके आश्रय में रहते थे, का संरक्षक था। रायसिंह स्वयं संस्कृत का विद्वान् और उच्चकोटि का कवि था अथवा वह दूसरों के काव्य को समझ सकता था। उसके समय में कई विद्वानों ने संस्कृत के महत्वपूर्ण ग्रन्थों की टीकायें लिखी। कहा जाता है कि उसने स्वयं दो महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। इनमें "रायसिंह महोत्सव" संस्कृत में तथा ज्योतिष पर दूसरा ग्रन्थ "बाल बोधिनी" हिन्दी में है।[१]

मुगल साम्राज्य के लिये अपनी ओर से सहायता देने में बीकानेर राज परिवार के सदस्य पीछे नहीं रहे। रायसिंह के चाचा शृंग ने काश्मीर के युद्ध में उल्लेखनीय सेवायें दी तथा वहां अपने मुठ्ठी भर बहादुर साथियों के साथ क्षणिक जीवन का अन्त करके शाश्वत यश प्राप्त किया।[२] इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। गुजरात के युद्ध में रायसिंह के भाई रामसिंह

---

१. "रायसिंह महोत्सव" में राव सीहा से लेकर रायसिंह तक जोधपुर और बीकानेर के शासकों का वंश परम्परानुसार वर्णन है। "बालबोधिनी" श्री पति की संस्कृत रचना "ज्योतिष रत्नमाला" का हिन्दी अनुवाद है। ये दोनों ग्रन्थ लेखक के निजी अधिकार में अनूप संस्कृत पुस्तकालय में हैं जो लालगढ़ पैलेस बीकानेर में स्थित है। लेखक द्वारा कुछ ही समय पूर्व स्थापित करणी रिसर्च इन्स्टीट्यूट के लिए शोधकार्य हेतु यह महत्वपूर्ण पुस्तकालय खोल दिया गया है। यह पुस्तकालय बाहर के शोध अध्येताओं के उपयोग हेतु भी खुला है।

२. बेवरिज-अकबर नामा, भाग ३, पृ. ७६७।

द्वारा दिखाई गई वीरता का उल्लेख भी पहले किया जा चुका है। सन् १५७२ में गुजरात की दूसरी लड़ाई में जब रायसिंह को एक महत्वपूर्ण सेनापति बनाया गया तो उसका एक छोटा भाई पृथ्वीराज भी बीकानेर की सेना के साथ था।[1] अलखधारी के अनुसार काबुल पर चढ़ाई में पृथ्वीराज एक सैनिक टुकड़ी का प्रधान था और वहाँ उसने जो वीरता दिखाई उसके बदले में बादशाह (अकबर) ने उसे गागरोन की जागीर प्रदान की थी।[2] प्रसिद्ध योद्धा होने के अतिक्ति पृथ्वीराज एक महान कवि भी था। उसका काव्य ग्रन्थ "वेलि कृष्ण रुकमणी री" अमर रचना बन गई है।

समस्त भारत में जिस घटना से पृथ्वीराज प्रसिद्ध हुवा वह राणा प्रताप को गहन निराशा के क्षणों में उसके द्वारा दी गई प्रेरणा है। अकबर के अत्यधिक श्रेष्ठ सैन्यदल के क्रूर आक्रमणों के विरुद्ध राणा प्रताप काफी समय से अपनी स्वतन्त्रता कायम रखने का प्रयत्न कर रहा था। इस असमान संघर्ष में राणा के साधन प्रायः समाप्त हो गये और एक समय ऐसा भी आया जब उसे भूख से पीडित होना पड़ा। वह अपने बच्चों को भूख से बिलबिलाते नहीं देख सका। वह लगभग दुर्बल हो गया था और मुगल सेनापति ने अकबर के पास सूचना भेजी थी जिसमें लिखा था कि राणा आत्म-सम्पर्ण करने वाला है। अकबर ने प्रसन्न होकर वह पत्र पृथ्वीराज को दिखाया। पृथ्वीराज ने कहा कि यह पत्र असली नहीं हो सकता। सत्य ज्ञात करने के लिये उसने बादशाह की स्वीकृति माँगी। उसने महाराणा प्रताप को निम्नलिखित दो दोहे लिखे :—

पातल जो पतशाह, बोले मुख हूतां बयण।
मिहर पछिम दिसमांह, ऊगे कासप राव उत्त॥
पटकूं मूंछां पाण, कै पटकूं निजतन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महिली बात इक॥

अर्थात् "यदि पातल (प्रताप) अपने मुख से अकबर को बादशाह कह दे तो कश्यप का पुत्र सूर्य पश्चिम दिशा में उदय होगा। मैं गर्व के साथ अपनी मूंछों पर बल दूँ अथवा शर्म से अपने शरीर को तलवार से काट कर मर जाऊँ। हे दीवान इन दो बातो में से एक बात लिख दें।" इस उद्बोधन ने महाराणा प्रताप को प्रभावित करके इतना दृढ़ बना दिया कि

१. अलखधारी-राजा रायसिंह, पृ० १५० ।
२. अलखधारी पूर्व उद्धृत, पृ० १५१ ।

उसने आजीवन बादशाह के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने को निश्चय कर लिया। राणा प्रताप ने निम्नलिखित उत्तर भिजवाया—

तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सूं इकलिंग।
ऊगे जांही ऊग सी, प्राची बीच पतंग॥
खुशी हूँत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण।
पछटण है जेतै पतो, कलमां सिर के वाण॥

अर्थात् "इकलिंग जी की कृपा से जब तक यह शरीर है, मैं अपने मुख से अकबर को तुरक ही कहूँगा। सूर्य हमेशा की तरह पूर्व दिशा में ही उदय होता रहेगा। हे कमधज (राठौड़) पीथल (पृथ्वीराज) तुम प्रसन्नता के साथ अपनी मूंछों पर बल दो। मेरी तलवार हमेशा मुसलमानों के सिरों को काटती रहेगी।"

केवल पृथ्वीराज ही इस प्रकार का कार्य करने का साहस कर सकता था। यह घटना उसकी स्वतन्त्र प्रकृति का प्रमाण है। राजपूत राजकुमारों में सम्भवतः पृथ्वीराज ही एक मात्र ऐसा व्यक्ति है जिसके बारे में अकबर ने अपनी रचना में कुछ कहा हो। विवाद के क्षणों में अकबर के मुख से निकला—

पीथल सूं मजलिस गई, तानसेन सों राग।
हंसबो रमिबो, बोलिबो, गयो बीरबल साथ॥

अर्थात् पीथल के साथ मजलिस चली गई। तानसेन के साथ संगीत चला गया और बीरबल के चले जाने (मर जाने) पर हँसने खेलने और बातचीत करने का आनन्द गया।

जब शाहजादे खुर्रम ने अपने पिता से झगड़ा कर बंगाल पर अधिकार कर लिया था तो तो रायसिंह का चतुर्थ पुत्र किशनसिंह उसकी सेना का सेनापति और पक्का सहायक था। सन् १६०६ में जहांगीर ने उदयपुर के राणा के विरुद्ध सेना भेजी तो उसे महावत खां के साथ सेनापति बना कर भेजा गया। इस अवसर पर उसने जो बहादुरी दिखलाई, उसके लिये उसका दर्जा बढ़ा कर उसे ३००० (तीन हजारी) का मनसबदार बना दिया गया। जब शाहजादा खुसरो ने बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया तो उनका पीछा करने और हटाने में किशनसिंह ने भी भाग लिया था। सन् १६१५ ई० में जहांगीर ने उसका मनसब साढ़ेचार हजार कर दिया।[1]

---

१. अलखधारी—पूर्व उद्धृत, पृ० १५६–६०।

अध्याय ४

रायसिंह के उत्तराधिकारी और केन्द्रीय सत्ता

सन् १६१२ में दलपतसिंह अपने पिता रायसिंह का उत्तराधिकारी बना। उसका जन्म २४ जनवरी सन् १५६५ (फाल्गुन बदी ८, सम्वत् १६२१) को हुआ था। उसने अपने पिता को अप्रसन्न कर दिया था। अतः उसके पिता ने उसे अधिकारच्युत कर के उसके छोटे भाई सूरसिंह को राज्य का उत्तराधिकारी नियत करने की योजना बनाई थी। पर चूंकि महाराजा रायसिंह की मृत्यु दक्षिण में हुई और दलपतसिंह उस समय बीकानेर में था अतः ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण वह बिना किसी विरोध के राजसिंहासन पर बैठा। इसके बाद वह बादशाह के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिये दिल्ली गया। बादशाह ने उसे राय का खिताब और खिलअत (सम्मान की पोशाक) प्रदान की। सूरतसिंह भी बादशाह के दरबार में उपस्थित हुवा और यह कह कर कि उसके पिता ने पहले ही उसके माथे पर राजतिलक कर दिया, बीकानेर की गद्दी पर अपना दावा प्रस्तुत किया। बादशाह इससे रुष्ट हो गया और कहा कि तब तो वह अपने हाथ से दलपतसिंह के माथे पर तिलक करेगा। अपने निर्णय के फलस्वरूप उसने अपने हाथ से दलपतसिंह के माथे पर तिलक किया और उसका राज्य उसे सौंप दिया।[1]

अगस्त सन् १६१२ में बादशाह ने मिर्जा रुस्तम को थट्टा का हाकिम नियुक्त कर के राय दलपतसिंह को उसके साथ जाने का आदेश

१. बेवरिज और राजर्स–पूर्व उद्धृत, भाग १, पृ० २१७-१८।
मोहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ. १६४।
ब्रजरतन दास–पूर्व उद्धृत (हिन्दी), पृ. ३६१–६२।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ४८८।
देवीप्रसाद–जहांगीर नामा, पृ. १५२।

दिया। उसने दलपतसिंह का मनसब बढ़ाकर २००० कर दिया।[१] लेकिन दलपतसिंह थट्टा जाने की बजाय बीकानेर चला गया[२] और इस प्रकार बादशाह उस पर नाराज हो गया। बीकानेर पहुँच कर उसने चूड़ेहर (वर्तमान अनूपगढ़ के पास) नामक रेगिस्तानी स्थान में एक किला बनाने का आदेश दिया ताकि भाटियों पर अधिक नियंत्रण रखा जा सके। इससे भाटी उससे नाराज होगये। ज्योंही किले की नींव खोदी गई खारबारा के भाटी सरदार ने लगभग ३ हजार लोगों की सैनिक सहायता से उसे वापस भर दिया और किला नहीं बनाने दिया। एक नवम्बर सन् १६१२ को भाटियों ने वहां पर स्थापित थाना भी उठवा दिया।[3]

अपने प्रिय मन्त्री पुरोहित मान महेश के बहकावे में आकर दलपतसिंह ने फलौदी को छोड़कर अपने भाई सूरसिंह की सारी जागीर ग्रहण कर ली (खालसा कर ली)।[४] इस पर सूरसिंह ने अपने प्रतिनिधि पुरोहित लक्ष्मीदास को दिल्ली भेजा।[५] कुछ समय उपरान्त अपनी माता के साथ सोरों की तीर्थ यात्रा पर जाते समय सूरसिंह रास्ते में साँगानेर में ठहरा और वहां राजा मानसिंह कछवाहा से मिला। वहां से वह सोरों चला गया। सोरों में उसे दिल्ली दरबार में उपस्थित होने का बादशाह का फरमान मिला। दिल्ली में बादशाह ने आज्ञा दी कि जियाउद्दीन तुरन्त सेना लेकर दलपतसिंह को गद्दी से हटा दे और सूरसिंह बीकानेर के शासक के रूप में गद्दी पर बैठे।[६]

दलपत जियाउद्दीन का विरोध करने के लिए एक शक्तिशाली

---

१. ब्रजरत्न –पूर्व उद्धृत (हिन्दी), पृ० २६२।
मोहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ० १६४।

२. मोहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ० १६४।

३. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १४०।

४. श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४८६।
महाराजा रायसिंह ने अपने जीवन काल में फलौदी और ८४ गांव सूरसिंह को प्रदान कर दिये थे।

५. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १४२–४३।
श्यालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४८६।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ३१।

६. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १४४।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४८६।

सेना लेकर छापर आया। जियाउद्दीन दलपत के जबरदस्त आक्रमण के समक्ष नहीं ठहर सका। अतः वह पीछे हट गया और तुरन्त सहायता मांगकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। इसी बीच सूरसिंह ने अपने आदमी भेज कर उन अनेक सरदारों को अपने पक्ष में कर लिया जो दलपत के दुर्व्यवहार से नाराज थे। केवल ठाकुरसी जीवणदासोत, जो उस समय दलपत की ओर से भटनेर का सूबेदार था, अपने स्वामी के प्रति सच्चा बना रहा। वह ३००० योद्धाओं को लेकर आया। इन लोगों तथा कुछ दूसरे लोगों, जिनकी ईमानदारी संदेहास्पद थी, के साथ दलपतसिंह दूसरी बार जियाउद्दीन से लड़ने के लिये आया। दलपतसिंह हाथी पर सवार था और उसके पीछे चूरू का ठाकुर भीमसिंह बलभद्रोत बैठा था। भीमसिंह दलपतसिंह से खुश नहीं था और गुप्त रूप से उसके शत्रुओं से मिला हुआ था। युद्ध आरम्भ होते ही भीमसेन ने पीछे से दलपतसिंह को पकड़ लिया और उसे एक दल को सौंप दिया जो उसे हिसार ले गया। वहां से उसे कैदी के रूप में अजमेर भेज दिया गया।[1]

ख्यातों में लिखा है कि जब दलपतसिंह एक पुराने स्थान में सौ सैनिकों के निरीक्षण में कैद था तो मारवाड़ का जागीरदार, हरसोलाव का ठाकुर हाथीसिंह चांपावत गोपालदासोत अपनी ससुराल जाता हुआ अजमेर से गुजरा और बन्दी गृह के निकट ठहरा। जेल के सींकचों में से दलपतसिंह ने उसका तम्बू देखकर पूछताछ की और ठाकुर से मिलते की अभिलाषा प्रकट की। ठाकुर ने कहलाया कि वह ससुराल से लौटते समय मिलेगा। दलपतसिंह ने व्यंग में कहा कि अपने सम्बन्धियों से मिलने जाते हुए स्वतन्त्र व्यक्तियों के पास कैदी से मिलने के लिये समय कहां है? यह सुनकर ठाकुर का राजपूती गौरव शीघ्र उत्तेजित हो उठा। उसने अपने साथियों से तुरन्त कहा कि राठौड़ों के लिये इससे बढ़कर और यश की बात क्या हो सकती है कि वे शत्रु द्वारा कैद एक अन्य राठौड़ को छुड़ाने के लिये लड़ते लड़ते मर जायँ इस पर सबने केशरिये बाने पहन लिये और जेल पर टूट पड़े। उन्होंने रक्षकों को मार कर दलपतसिंह को छुड़ा लिया और अपने घोड़ों पर सवार होकर रवाना हो गये। लेकिन अजमेर के सूबेदार ने चार हजार फौज लेकर उनका पीछा किया और उन्हें घेर लिया। ठाकुर के मुट्ठी भर लोग

---

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ३१–३२।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. १४४६।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४८६-९०।

अपने वचन के अनुसार अपने से अनेक गुना अधिक सैना के साथ लड़ते हुये मारे गये ।[1] रायसिंह का उत्तराधिकारी दलपत भी, जो बुद्धिमान होने की अपेक्षा बहादुर अधिक था, मारा गया । उनकी छः रानियां जो भटनेर में थीं, अपने पति की मृत्यु का समाचार सुनकर सती हो गई ।[2]

इस प्रकार सन् १६१३ में सूरसिंह बीकानेर की गद्दी पर बैठा।[3] उसका जन्म २८ नवम्बर सन् १५९४ में हुआ था । गद्दी पर बैठने के तुरन्त बाद वह बादशाह जहांगीर के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये दिल्ली गया । बादशाह ने उसका मनसब बढ़ा दिया ।[4]

दिल्ली में वह बीकानेर राज्य के एक भूतपूर्व मन्त्री कर्मचन्द बच्छावत के परिवार के लोगों से मिला और उन्हें बीकानेर लौटने के लिये कहा । स्वर्गीय कर्मचन्द के पुत्र लक्ष्मीचन्द को उसने अपना दीवान नियुक्त किया । कर्मचन्द ने मरते समय अपने पुत्रों को चेतावनी दी थी कि वे कभी बीकानेर न लौटे पर लक्ष्मीचन्द व उसका भाई भागचन्द सूरसिंह की चिकनी चुपड़ी बातों में आ गये । सूरसिंह अपने पिता के अन्तिम समय में

---

१. इन सेवाओं के बदले में हरसोलाव के ठाकुरों को बीकानेर के किले में सूरज पोल तक घोड़े पर सवार होकर जाने का वंश परम्परागत सम्मान मिला ।

२. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. १४६-४८ ।
श्यामलदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ४९०-९१ ।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ३२ ।
"तुजुक-इ-जहांगीरी" (भाग १ पृ० २५८-५९) में इसका भिन्न प्रकार से उल्लेख है। इसके अनुसार २१ अगस्त सन् १६१३ को सूरसिंह के हाथों दलपतसिंह की हार का समाचार बादशाह को मिला। बादशाह ने सूरतसिंह को दलपतसिंह को हटाने के लिये भेजा था। बाद में दलपतसिंह ने हिसार की सरकार में उपद्रव करना आरम्भ कर दिया जिस पर सोस्त के हाकिम और अन्य जागीरदारों ने उसे बन्दी बनाकर दरबार (दिल्ली) में भेज दिया। चूंकि उसके गैर कानूनी आचरण से बादशाह पहले से उस पर काफी कुपित था अतः उसे मृत्यु दंड दे दिया गया और सूरसिंह की सेवाओं के बदले उसके मनसब में ५०० की वृद्धि कर दी गई।
इस बात का समर्थन "उमराए हनूद" पृ० १९४ से भी होता है।

३. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १४९ ।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ३२ ।
नैणसी-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. १९९ ।

४. श्यामलदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ४८९-९० ।

की गई प्रतिज्ञा याद थी कि वह उसके सारे शत्रुओं को नष्ट कर बदला लेगा। बीकानेर लौटने के दो महिने बाद लक्ष्मीनन्द और उसके परिवार के सदस्यों ने अपने आपको चार हजार सैनिकों द्वारा घेरा हुवा पाया।

यद्यपि ये बच्छावत जाति से बनिये थे तो भी उन्होंने कैद होकर कष्ट उठाने की अपेक्षा लड़ते हुए मरजाने का निश्चय किया। अतः उन्होंने अपने परिवार की स्त्रियों को मार कर तथा अपने पास के हीरे जवाहरातों को पीस कर नष्ट कर अपने साथ के पांच सौ राजपूतों के साथ बीकानेर की सेना से युद्ध किया और सब के सब मारे गये। केवल उनके वंश का एक बालक, जो उन दिनों अपनी ननिहाल में था, बच गया। लेकिन वह बीकानेर कभी नहीं लौटा। उसने उदयपुर को अपना निवास बनाया, जहां उसके वंशज अब भी विद्यमान हैं।[1]

सन् १६१४ में राठौड़ रघुनाथ, सुदर्शन, गोकुलदास भगवान, कावी पठान और हुसैन क्यामखानी नरवर के किसानों पर अत्याचार करने लगे और वहां के ५२ गांवों पर अधिकार कर लिया। उन्होंने लोगों को मारना और लूटना आरम्भ कर दिया और २४ लाख दाम वसूल कर लिये। जब बादशाह के पास यह शिकायत पहुँची तो उसने सूरसिंह को इसकी जांच करने और यदि शिकायत सत्य हो तो दोषी लोगों को कड़ा दंड देने हेतु भेजा।[2] इस समय तक विद्रोहियों का साहस इतना बढ़ गया

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १५२–५३।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४६१–६२।

२. जहांगीर का सन् जुलूस ६ तारीख १ खुरदाद का फरमान।

"अमीरों में श्रेष्टता प्राप्त शाही कृपाओं तथा सम्मानों के योग्य राव सूरजसिंह को मालूम हो कि नरवर परगने के बहुत से किसान विश्व के शरण स्थल शाही दरबार में आये हैं। उन्होंने शिकायत की है कि राठौड़ रघुनाथ, सुदर्शन, गोकुल दास, भगवान, कावीपठान, और हुसैन क्यामखानी ने वहां के ५२ गांवों पर अधिकार कर लिया है और उन्होंने लोगों को मारना और लूटना आरम्भ कर दिया है उनसे २४ लाख दाम वसूल कर लिये हैं। इन फरियादियों ने न्याय की मांग की है।

× × ×

"....उसे चाहिये कि वह इन क्रूर विद्रोहियों को कडा दंड दे और वहां से लूटे हुए माल और गाँवों को विद्रोहियों से वापस लेकर उनके असली मालिकों को सौंप दे।"

था कि उन्होंने शाही खजाने को भी लूट लिया।

उन्होंने लूणियां के निवासियों को भी लूटा। तब बादशाह ने हाशिम बेग चिश्ती को उनका दमन करने के लिये नियुक्त किया और सूरसिंह भी उसकी सहायता करने के लिये भेजा गया।[1]

इसी वर्ष चोर विद्रोही और लुटेरा चन्द्रभान केशूत्रिलोच के हाथों कड़ा दण्ड पाकर बीकानेर के इलाके में प्रविष्ट हो गया। जहांगीर ने सूरसिंह को लिखा कि वह उसे जिन्दा अथवा मुर्दा गिरफ्तार करे।[2]

जनवरी सन् १६१५ में सूरसिंह को शाही दरबार में बुलाया गया।[3] सन् १६२२ में दाराबखां के साथ वह किरकी के युद्ध में था। वहां उसने बड़ी वीरता और राज्यभक्ति का परिचय दिया जिसकी बादशाह

---

१. सन् जुलूस ९ तारीख ५ अमरदाद का जहांगीर का फरमान।

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त, शाही कृपाओं के योग्य राय 'सूरजसिंह को मालूम हो कि ये बात हमारे यशस्वी और सम्मानित कानों तक पहुंची है कि गोकुल सुदर्शन, रघुनाथ और कुछ दूसरे विद्रोही कुंवरों ने दलपत से ३०,०००) रु० वसूल कर लिए हैं जो कि शाही खजाने के थे। लूणिया परगने और आसपास के निवासियों की सम्पत्ति और सामान जब्त करके इन लोगों ने गांव वालों को वहां से जबरदस्ती निकाल दिया है।"

"..... उसे (सूरजसिंह को) चाहिए कि वह पूर्णतः उसकी इच्छानुसार कार्य करते हुए उन विद्रोहियों से शाही धन तथा लोगों से लिया गया कर वापस वसूल करे और उन दुष्ट लोगों को ऐसा कड़ा दण्ड दे जो सारे विद्रोहियों और विप्लव कारियों के लिए एक आदर्श चेतावनी बन जाय। साथ ही उन लोगों को उस इलाके से निकाल दिया जाय ताकि वहां के निवासी पुनः अशान्ति और उनकी भूमि पर दूसरों के कब्जे से सुरक्षित रहकर अपना खेती का काम कर सकें और आराम व विश्वास के साथ रह सकें।"

२. सन् जुलूस ९ तारीख २१ अमरदाद का जहांगीर का फरमान।

३. सन् जुलूस ९ तारीख बहमन माहे इलाही का जहांगीर का फरमान।

× × × ×

"यह जरूरी है कि जब उपर्युक्त (हरराम) वहां पहुंचे और उसे (सूरजसिंह को) जहांगीर के मान्य उदात्त आदेश के विषय का पता चले तो उसे चाहिये कि वह अर्श जैसे सिंहासन की सीढ़ियों की ओर बढ़े तथा जमीन को चूम कर उपस्थिति के सम्मान से अपने आपको सम्मानित करे।"

ने काफी प्रशंसा की।[1] १६२२ में उसे आमेर के निकट जालनापुर के थाने पर नियुक्त किया गया।[2] सन् १८२३ में जहांगीर ने उसे सर्दी की खिलअत (सम्मानित पोशाक) प्रदान की।[3]

---

१. सन् जुलूस १६ तारीख २८ उर्दीबहिश्त का जहांगीर का फरमान।

"शाही सम्मानों से सम्मानित और उल्लेखनीय, अमीरों में गौरवशाली और कृपाओं तथा उपकारों के योग्य राय सूरजसिंह को यह मानना चाहिये कि इन दिनों किरकी (वम्बई के निकट एक स्थान) की विजय की सुखद खबर मिली है। यह खुदा की मदद से स्वयं बादशाह के सेवकों के शुभ प्रयत्नों से प्राप्त हुई है। यह प्रति-दिन बढ़ने वाला शाही यश राजभक्त अनुभवी और परिश्रमी सेवकों के प्रयत्न से प्राप्त होकर हमारे कानों तक साम्राज्य के स्तम्भ और राज्य के स्वामीभक्त मित्र दाराबखाँ द्वारा भेजे गये सन्देश और सेना के लेन देन के रोजनामचे से पहुंची है।

× × × ×

अमीरों के गौरव (राव सूरजसिंह) वाह-वाह! खुदा उस पर रहम करे। उसने अपनी वीरता, इमानदारी, राजभक्ति और परिश्रम वही सब कुछ कर दिया है जो उसके लिये जरूरी था। खुदा ने चाहा तो इस शानदार विजय के बाद उसे विभिन्न प्रकार के सम्मानों से उन्नत किया जायेगा।"

× × × ×

२. हिजरी सन् १०३१ तारीख ६ ज़ीकाद का जहांगीर का फरमान।

× × × ×

"सम्मानित और प्रमुख आदेश जारी किया गया है कि चूँकि उसकी नियुक्ति आमेर के निकट जालनापुर के थाने में की गई है अतः उसको वह स्थान छोड़ना उपयुक्त नहीं है।

सुलेमान के (सोलेमन के) सम्मान के साथ बादशाह ने अपने सेवकों को प्रतिष्ठा व गौरव के साथ एक पत्र इस बारे में भेजा है और निकट भविष्य में हमारे आदेश के उत्तर में दूसरा पत्र जारी किया जायेगा कि अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त (राव सूरजसिंह) हमेंशा की तरह उस थाने का निरीक्षक रहे।

२. सन् जलूस १८ तारीख २६ इसफन्दरमुज इलाही का फरमान।

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त और शाही कृपाओं तथा सम्मानों के योग्य राजासूरजसिंह को मालूम हो कि उसकी महान विनम्रता के बदले में हमने खुश होकर उसे सम्मानित करने के लिये एक सर्दी की खिलअत (पोशाक) मुतालिब के साथ भेजी है।

एक दूसरे अवसर पर जब यह शिकायत आई कि जोहियों तथा दूसरों ने सिरसा पर धावा किया और वहां के प्रधान राय जल्लू तथा दूसरों को मार डाला एवं कोई बारह गांवों के निवासियों को वहां से हटा कर उनकी सम्पति और पशु लूट लिये तो बादशाह ने सूरसिंह को विद्रोहियों को दण्ड देने और वहां के निवासियों की लूटी हुई सम्पति वापस दिलाने के लिये भेजा।[1]

जब खुर्रम ने सन् १६२२ में अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और दक्षिण में गड़बड़ी करनी शुरू कर दी तो जहाँगीर ने खुर्रम के विरुद्ध सेना देकर सूरसिंह को दक्षिण भेजा।[2] सूरसिंह ने खुर्रम के विरुद्ध कई लड़ाइयां लड़ी और शाहजादे की सेना पर कई जबरदस्त प्रहार करके उसे बहुत कमजोर कर दिया और साम्राज्य के इस सुदूर भाग (दक्षिण) में बादशाह की सत्ता पुनः स्थापित कर दी।[3] लेकिन खुर्रम सूरसिंह से असन्तुष्ट नहीं हुवा जैसा कि बाद के इतिहास से पता चलता है। किसी फारसी तवारीख में इस घटना का उल्लेख नहीं है पर ओझाजी ने इसका वर्णन किया है और

१. सन् जुलूस १८ तारीख १७ तीर इलाही का जहाँगीर का फरमान।

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त शाही कृपाओं तथा उपकारों के योग्य राजा सूर को मालूम हो कि बहजाद और अलाउद्दीन ने सिरसा से आकर दरबार में यह शिकायत की है कि आशकरण, केशवदास और दूसरे कान्धलोत तथा भटनेर परगने के जोहियों ने उनके गाँवों पर हमला किया। उन्होंने राय जल्लू व दूसरों को मार डाला तथा लगभग १२ गाँव के निवासियों को हटाकर उन गांवों की सम्पति और पशु लूट लिये।

"यदि यह सत्य है तो यह जरूरी है कि वह (राजा सूर) उन्हें दंड दे और उन्होंने जो सम्पति लूटी है उसे वापस उसके मालिकों को देने के लिये विवश करे। उसे किसी को भी वहां के लोगों पर अत्याचार नहीं करने देना चाहिये।"

२. सन् जुलूस १६ तारीख २४ खुरदाद का जहांगीर का फरमान।

"शाही अभिलाषा यही है कि उस अभागे का नामोनिशां मिटा दिया जाये। इस लिये इसका (सूरतसिंह) तथा अन्य राजभक्त व्यक्तियों का कर्तव्य है कि उस प्रतिकूल आचरण करने वाले अभागे को दूर करने में अपनी पूरी शक्ति का उपयोग करें।"

२. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १५३-५४।
श्यामल दास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४६२-६३।

लेखक के अधिकार में सुरक्षित सन् जुलूस १६ तारीख २४ खुरदाद[1] तथा सन् जुलूस १६ तारीख १४ आबान[2] के जहांगीर के फरमान से इसका समर्थन होता है। इन सेवाओं के बदले में जहांगीर ने एक घोड़ा और खिलअत देकर सूरसिंह का सम्मान किया।[3]

मलिक अम्बर की सन् १६२६ में मृत्यु हो जाने पर जांहगीर ने सूरसिंह को एक फरमान[4] भेजा कि वह अवसर पर खुर्रम को हटाने की पूरी कोशिश करे। इसी वर्ष जहांगीर ने मुल्तान में साम्राज्य के इस इलाके पर शासन के लिये किसी योग्य आदमी को भेजना चाहा तो सूरतसिंह इस कार्य के उपयुक्त माना गया। उसे दिल्ली बुलाया गया और सम्मानित करके

---

१. सन् जुलूस १६ ता० २४ खुरदाद का जहाँगीर का फरमान। इसके लिये पृ० ८४ की टिप्पणी संख्या २ देखिये।

२. "सन् जुलूस १६ ता० १४ आबान का जहाँगीर का फरमान।

"शाही सम्मानों से सम्मानित और प्रसिद्ध अमीरों में गौरवशाली शाही कृपाओं तथा उपकारों के योग्य राजा सूरजसिंह को मालूम हो कि उस अभागे के साथ युद्ध और उसकी हार व पलायन की खबर और इसके साथ ही शाही राजभक्तों द्वारा किये गये बलिदान और प्रयत्न की बात हमें मालूम हुई है।"

३. सन् जुलूस १६ ता० १४ आबान का जहाँगीर का फरमान।

× × × ×

"उसके सम्मान के लिये राजा जोरावर के साथ हम घोड़ा और खिलअत (पोशाक) भेज रहे हैं।"

२. सन् जुलूस २१ ता० २७ खुरदाद का जहाँगीर का फरमान।

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त, शाही कृपाओं के योग्य राय सूरजसिंह को मालूम हो कि हमें अभी अभी यह खबर मिली है कि अम्बर मर गया है और इससे एक उपयुक्त अवसर आ गया हैं।

"अतः हम हुक्म देते हैं कि चूंकि यह ईमानदारी दिखाने का समय है, उसको चाहिये कि वह दूसरे सेवकों के साथ अभागे को (खुर्रम को) जड़ से उखाड़ कर नष्ट करने के लिये अपनी पूरी ताकत का उपयोग करे और इस काम को अपनी पदोन्नति का एक साधन समझे।"

मुल्तान भेजा गया क्योंकि यह उसके इलाके के निकट था।[1] इसी वर्ष सूरसिंह को बुरहानपुर भेजा गया क्योंकि जैसा स्वयं जहांगीर ने एक फरमान[2] में लिखा है उस सूबे में ऐसे स्वामी-भक्त का होना जरूरी था। मालूम पड़ता है सूरसिंह बीकानेर लौट गया था अतः उसे बुलाने के लिए दुबारा आदेश भेजने पड़े।[3]

नागौर और दूसरे परगने सन् १६२७ में जहांगीर द्वारा सूरसिंह को प्रदान किये गये और तत्सम्बन्धी आदेश राजस्व अधिकारियों को दिये गये।[4]

---

१. सन् जुलूस २१ ता० ११ अमरदाद का जहाँगीर का फरमान।

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त शाही कृपाओं और सम्मानों के योग्य राय सूरजसिंह को मालूम हो कि ऐसा कोई आदमी मुल्तान में नहीं है जो हमारे मन को सन्तोष दे सके और चूंकि उसकी जागीर मुल्तान के निकट है अतः कृपा के रूप में हम उसे आदेश देते हैं कि जिस दिन उसे यह हुक्म मिले उसी दिन वह शाही दरबार के लिये रवाना हो जाये। उसे इतनी जल्दी करनी चाहिये कि बिना रनवास में जाये ही रवाना हो जाये।"

२. सन् जुलूस २१ ता० २७ मेहर का जहाँगीर का फरमान।

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त, शाही कृपाओं तथा सम्मानों के योग्य राय सूरजसिंह को मालूम हो कि हमने उस अभागे के विरुद्ध महावत खाँ को दृढ़ा आदेश भेजा है। हम अमीरों के विकल्प सूरजसिंह को आदेश देते हैं कि ज्योंही हमारी इस कृपालु आज्ञा के विषय का ज्ञान हो उसे बिना जरा भी हिचक और विलम्ब के उस स्थान से रवाना हो जाना चाहिये, चाहे वह उस समय कहीं भी क्यों न हो। उसे बुरहानपुर चले जाना चाहिये क्योंकि सूरजसिंह जैसे स्वामी भक्त की उपस्थिति उस सूबे में अनिवार्य है।

३. सन् जुलूस २१ ता० १४ अजर का जहाँगीर का फरमान।

४. सन् जुलूस २२ ता० १६ मेहर का जहाँगीर का फरमान।

"अभी अभी हमने यह शुभ और मान्य शाही हुक्म जारी किया है कि नागौर का परगना और दूसरे स्थान जो आदेश में लिखे हैं अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त राव सूरजसिंह को तुस्कान ११ की खरीफ (सियालू) के आरम्भ से अमरसिंह के हटाये जाने पर जागीर रूप में दिये जाते है।

दीवानी मामलों के प्रधान और दूसरे ऐसे लोग जो शाही आदेश से वहाँ काम कर रहे हैं, को चाहिये कि उपर्युक्त महल, उपर्युक्त व्यक्ति (सूरतसिंह) को सौंप दिये जायँ और इस परिवर्तन से इसे सुरक्षित समझा जाय।

२८ अक्टूबर सन् १६२७ को काश्मीर से लौटते समय जब भीम्भर में एकाएक जहांगीर का देहांत हो गया तो शहजादे खुर्रम ने तुरन्त अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया। यद्यपि जहांगीर के शासन के अंतिम वर्षों में नूरजहां बेगम ने खुर्रम के विरुद्ध षड़यन्त्र आरम्भ कर दिया था पर खुर्रम उन्हें मालूम करके बेगम की चालों को नाकामयाब बनाने में समर्थ हो सका। बादशाह का सबसे बड़ा पुत्र होने के कारण खुर्रम ही तख्त का अधिकारी था। उसके योग्य मित्र और उसका प्रभावशाली श्वसुर आसफखाँ उसके लिये बहुत बड़े सहायक थे। राजधानी से इतनी दूर जहांगीर की आकस्मिक मृत्यु ने उसे तख्त पर अधिकार करनें का स्वर्ण अवसर प्रदान किया। शाहजहां के नाम से तख्त पर बैठने के बाद उसने साम्राज्य के अमीरों और अधिकारियों को उदारता से उपहार देकर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। इस अवसर पर उपहार पाने वालों में सूरसिंह भी एक था। जहांगीर के समय उसका मनसब ३००० जात और २००० घुड़सवार[१] था जो शाहजहां द्वारा बढाकर ४००० जात और २५०० घुड़सवार कर दिया गया। उसे एक खिलअत (सम्मानित पोशाक) एक हाथी एक घोड़ा, एक जड़ाऊ कृपाण, एक देगची, और एक निशान (झंडा) भी प्रदान किया गया।[२] इसी वर्ष नवम्बर मास में उसे मारोठ का किला जागीर में दिया गया।[३]

मेरे अधिकार में एक ऐसा भी फरमान है जिसके अनुसार दावरबक्स दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और उसने सूरसिंह का अभिनन्दन

उस महल के चौधरियों, कानूनगो, मुखियों, रैयत, और किसानों को आदेश है कि वे उसे प्रत्येक फसल और प्रत्येक वर्ष का तथा राजस्व और दूसरे असैनिक कार्यों का पूर्ण विवरण दें। वे कोई बात या चीज उससे छुपाये नहीं।

उन्हें इस आदेश को हर तरह से मानना चाहिये। उन्हें इस आदेश से न हटना चाहिये और न विरोध करना चाहिये। उन्हें इसे अपना कर्तव्य समझना चाहिये।"

१. ब्रजरत्नदास-पूर्व उद्धृत (हिन्दी), पृ० ४५६।

२. देवीप्रसाद-शाहजहाँनामा, भाग १, पृ० ६।
अब्दुल हमीद लाहौरी-बादशाहनामा, भाग १, पृ० १२०।

३. हिजरी सन् १०३७ तारीख २ रवि उस्सानी का जहाँगीर का फरमान।

किया ।[1]

बुखारे के इमाम कुलीखां के भाई नजर मुहम्मद खां ने जब काबुल पर चढाई कर किले को घेर लिया तो शीघ्र ही सूरसिंह को काबुल भेजा गया। काबुल की खबर पाकर वहां की सहायता के लिये बादशाह ने एक सेना भेजी जिसके साथ सूरसिंह, राव रतन हाड़ा, मिर्जा राजा जयसिंह, महाबतखां खानखाना और मोतमिदखां को भेजा गया। इस अवसर पर उसे बादशाह की ओर से बड़े डेग द्वारा सम्मानित किया गया[2] लेकिन इनकी २०,००० घुड़ सवारों की सेना काबुल पहुँचने के पहले ही काबुल के सूबेदार लश्कारखां ने शत्रु को भगा दिया। तब सूरसिंह व महाबतखां वापस बुला लिये गये।[3]

इसके बाद सूरसिंह को ओरछा के विरुद्ध भेजा गया। जब शाहजहां तख्त पर बैठा तो ओरछा का शासक जुझारसिंह बुन्देला उसकी सेवा में उपस्थित हुआ था पर बीच में बादशाह की आज्ञा प्राप्त किये बिना ही वह अपने राज्य लौट गया और विद्रोह की तैयारी करने लगा। जुझारसिंह के

---

१. सन् जुलूस २२ तारीख २० आबान का दावरबक्स का फरमान ।

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त शाही कृपाओं तथा सम्मानों के योग्य राय सूरजसिंह को मालूम हो कि बादशाह की रूह खुदा की खुशी और मर्जी से खुदा के पास चली गई है (बादशाह का देहान्त हो गया है) इसलिये साम्राज्ञी नूरजहाँ बेगम और राज्य के दूसरे सदस्यों और दरबार के अमीरों ने यह ठीक समझा कि हमारे द्वारा शाहीरकिरान (तैमूर) के परिवार का यह दीपक जगमगाता रहे ।

"हमने सभी स्वामी भक्त सेवकों को यह मान्य आदेश जारी किया है कि वे इस महान कृपा के लिये खुदा से दुआयें करें और अपना कर्तव्य स्वामी भक्ति, सेवा और ईमानदारी की भावना से अन्जाम दें। वे अपने अपने इलाकों के समाचार हमेशा दरबार में भेजते रहें।

"हमने उसके (सूरजसिंह के) मनुष्यों के हाथ कुछ जबानी सन्देश भी भेजा है उसको हमारी ही जुबान से निकला मान कर उसे उसी के अनुसार काम करना चाहिये।"

२. अब्दुल हमीद लाहौरी–बादशाह नामा, भाग १, पृ० २१२।

३. देवीप्रसाद–शाहजहाँनामा, भाग १, पृ० १५–१८।
ब्रजरत्नदास–पूर्व उद्धृत (हिन्दी), पृ० ४५६।
मुहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ० २५७।

विरुद्ध जो सेना भेजी गई उसके अनेक सेनापतियों में सूरसिंह भी एक था। शाही सेना का मुकाबला करने में असमर्थ होने के कारण जुझारसिंह ने संधि कर ली और बादशाह से माफी मांगली।[1] सन् १६२६ में मुगल दरबार का एक मनसबदार खान–ए–जहां लोदी बिना आज्ञा के, किसी बुरे इरादे से एका-एक आगरे से चला गया। उसे दण्ड देने के लिये जो सेना गई उसके साथ जाने का सूरसिंह को भी आदेश मिला। शाही सेना ने धोलपुर में खान--ए--जहाँ को जा घेरा। उसने लड़ाई की पर अन्त में वह भाग गया और (अहमदनगर के सुल्तान) निजामुल्मुल्क के पास पहुँच गया। सूरसिंह और दूसरे सरदार वापस बुला लिये गये।[2] सन् १६३० में खान--ए--जहाँ लोदी ने जब राजौरी में शरण ले ली तो दूसरे सेनापतियों के साथ सूरसिंह पुनः उसके विरुद्ध भेजा गया। इस अवसर पर सूरसिंह का मनसब बढ़ा कर ४००० जात और ३००० सवार कर दिया गया।[3] खान--ए--जहाँ ने कड़ा मुकाबला किया पर अन्त में भाग गया। विजयी सेना के एक भाग ने राजौरी को लूटना आरम्भ कर दिया पर सूरसिंह के नेतृत्व में सेना के एक बड़े भाग ने भागते हुए खान--ए--जहां का पीछा किया और उसे घेर लिया। चारों ओर से घिर कर खान--ए--जहां ने पलट कर जोरदार युद्ध किया और युद्ध के समय उपयुक्त अवसर पाकर भाग गया और मुगल साम्राज्य की सीमा से बाहर चला गया।[4]

यह स्मरणीय है कि रायसिंह की मृत्यु पर जब बीकानेर की गद्दी पर सूरसिह ने अपना दावा किया तो जहांगीर ने उसे अस्वीकृत करके दलपतसिंह के माथे पर राजतिलक किया था। लेकिन बाद में दलपतसिंह द्वारा अत्याचार किये जाने पर बादशाह ने सूरसिंह का पक्ष लिया और उसे गद्दी दे दी। धीरे–धीरे उसने मुगल दरबार में रायसिंह द्वारा कायम की गई बीकानेर की प्रतिष्ठा, जिसे दलपतसिंह ने कम कर दिया था, पुनः स्थापित कर दी। जहांगीर और शाहजहां द्वारा सूरसिंह के नाम जारी किये गये लगभग ५१ फरमान हैं। इनसे प्रमाणित होता है कि साम्राज्य के स्वामी-भक्त

---

१. देवीप्रसाद–शाहजहाँनामा, भाग १ पृ० १५--२०।
ब्रजरत्नदास--पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ० ४५६।
२. देवीप्रसाद–पूर्व उद्धृत, भाग १ पृ० २३--२६।
ब्रजरत्नदास–पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ० ४५६।
३. अब्दुल हमीद लाहोरी–बादशाहनामा, भाग १ पृ० २६६।
४. देवीप्रसाद--पूर्व उद्धृत भाग पृ० २७–४०।

रक्षक और विश्वसनीय सलाहकार के रूप में उसका मान कितना बढ़ गया था। सूरसिंह को अनेक सैनिक और कूटनीतिक अभियानों पर भेजा गया। इससे सिद्ध होता है कि जहांगीर और शाहजहां दोनों ही उसें अपना सर्वाधिक स्वामी-भक्त मानते थे। बुरहानपुर में भेजे जाने सम्बन्धी फरमान में स्पष्ट लिखा है कि ऐसे स्वामी-भक्त व्यक्ति की उपस्थिति उस सूबे में अत्यन्त आवश्यक है। मुल्तान भेजे जाने में सूरसिंह को ही सबसे अधिक उपयुक्त समझना उसकी कूटनीतिक तीक्ष्णबुद्धि का प्रमाण है जिसे बादशाहों ने सराहा। विभिन्न सैनिक अभियानों में भेजा जाना उसके सफल सेनापतित्व के गुणों की स्वीकृति है। खुर्रम ने जब अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया तो उसके विरुद्ध लड़ने के लिये सूरसिंह का छांटा जाना एक ऐसा उदाहरण है जिससे पता चलता है कि जहांगीर का उसमें कितना गहरा विश्वास था। हम देखते हैं कि जब खुर्रम दिल्ली की गद्दी पर बैठा तो उसने भी सूरसिंह को अपना एक विश्वासी सहायक माना। सूरसिंह ने अपने मधुर व्यवहार से शाहजहां को इतना अधिक मोह लिया कि शाहजहां ने उसे उन असन्तुष्ट लोगों को दण्ड देने के लिये भेजा जो उसके राज्यारोहण के विरुद्ध थे। जहांगीर के दो फरमान[1] विशेष रोचक हैं क्योंकि उनमें उसने सूरसिंह

---

१. तारीख ८ मेहर का जहाँगीर का फरमान।

"अमीरों में श्रेष्ठता प्राप्त अपने भाइयों के गौरव राव सूरजसिंह को हमारा राम राम मालूम हो।" हाशिये में लिखा है—

"रावजी को हमारा राम राम मालूम हो। प्रेम में जो जरुरी था वह कर दिया गया है। जो सम्भव है उसे करने में कोई रोक न होगी। उसे अपने उच्च मन को सब प्रकार से शान्त रखना चाहिये और मानना चाहिये कि उसके प्रति हमारी कृपा सर्वाधिक है। अधिक क्या लिखा जाय।"

तारीख २२ अजर का जहाँगीर का फरमान।

"राव जी को हमारा राम राम मालूम हो जैसा लिखा जा चुका है उसके अनुसार उसे वहाँ से पूर्ण आशा और शक्ति के साथ रवाना हो जाना चाहिये। उसके प्रति प्रेम दिखाने में कोई कमी न रखी जायेगी। उसका महान उद्देश्य निकट भविष्य में सफल होगा। अधिक क्या लिखा जाय शेष बातें उसे वकीलों द्वारा मौखिक रूप में मालूम हो जायेगी। उसे एक सम्मानित निजी पोशाक भी प्रदान की जा रही है।

को अपना राम राम लिखा है। इससे सूरसिंह की उच्च प्रतिष्ठा का पता चलता है। केन्द्रीय सत्ता के प्रति सूरसिंह का दृष्टिकोण यह था कि वास्तविक शासक के प्रति स्वामीभक्ति रखी जाय। यह बात दावरबक्स के एक फरमान से भी प्रकट होती है जबकि उसने अल्प अवधि के लिये तख्त पर अधिकार कर लिया था।

जब वह बादशाह की सेवा में बुरहानपुर (दक्षिण) में था तो वहां बोहरी गांव में सूरजसिंह का १५ सितम्बर सन् १६३१ को देहान्त हो गया।[१]

सूरसिंह के बाद कर्णसिंह १३ अक्टूबर सन् १६३१ को गद्दी पर बैठा।[२] उसका जन्म श्रावण सुदी ६ सम्वत् १६७३ (३० जनवरी सन् १६१६) को हुवा था। कर्णसिंह आमेर के प्रसिद्ध राजा मानसिंह का पड़दोहिता था। गद्दी पर बैठने के तुरन्त बाद कर्णसिंह शाहजहां की सेवा में उपस्थित हुवा। बादशाह ने उसे २००० जात और डेढ हजार सवार का मनसब दिया।[३] कर्णसिंह के भाई शत्रुसाल को भी ५०० जात और २०० सवार का मनसब दिया गया।[४] सन् १६३१ में कर्णसिंह ने बादशाह को एक हाथी भेंट किया।[५]

दूसरे ही वर्ष सन् १६३२ में कर्णसिंह को एक मुगल अभियान में दक्षिण जाना पड़ा। मलिक अम्बर की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र फतहखां उसका उत्तराधिकारी हुवा। पर अहमदनगर के शासक निजामशाह द्वितीय को फतहखां का विश्वास नहीं था। अतः उसने उसे दौलताबाद के किले में कैद कर दिया। बाद में अपनी बहन के प्रभाव से, जो निजामशाह द्वितीय की पत्नी थी, जेल से छूटने पर और पुराना पद प्राप्त होने पर फतहखां ने निजाम शाह द्वितीय को कैद कर लिया और शाहजहां की आधीनता स्वीकार कर ली। बादशाह चाहता था कि निजामशाह द्वितीय को मार डाला जाय अतः उसे जहर देकर मार डाला गया और हुसैन नामक एक दस वर्ष के बालक को सिंहासन पर बैठाया। शाहजहां ने तब उसे आदेश दिया कि वह मृत शासक की सारी

---

१. देवीप्रसाद–शाहजहांनामा, भाग १ पृ. ६३।
श्यामलदास–वीरविनोद, भा. २ पृ. ४६३ छत्री पर शिलालेख।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत भाग २. पृ. १६१।

३. देवीप्रसाद–शाहजहांनामा भाग १ पृ. ६१।
अब्दुल हमीद लाहौरी–बादशाहनामा, भा. १ पृ. ३६८।

४. वही।

५. देवी प्रसाद–शाहजहांनामा, १ पृ. ६६।
अब्दुल हमीद लाहौरी–बादशाहनामा,–भा. १ पृ. ४०६।

सम्पति और हीरे जवाहरात शाही खजाने में भेजदे। लेकिन फतहखां ने इस आदेश को मानने में आनाकानी की। ५ फरवरी सन् १६३२ को बादशाह ने एक पाँच हजारी मनसबदार वजीरखां के सेनापतित्व में दौलताबाद को जीतने के लिये एक सेना भेजी। इस अवसर पर कर्णसिंह और दूसरे प्रमुख राजपूत सरदार वजीरखां के साथ गये। इस मोके पर कर्णसिंह को खिलअत और घोड़ा प्रदान किया गया।[1] इस प्रकार की शक्तिशाली सेना देखकर फतहखां डर गया। उसने तुरन्त समझौता कर लिया और बादशाह को ६ घोड़े, ३० हाथी और लगभग ८ लाख रुपये के हीरे जवाहरात समर्पित किये।[2] तब वजीरखां कर्णसिंह और दूसरे सरदार वापस दरबार में बुला लिये गये।[3] लेकिन इतने से ही यह कथा समाप्त नहीं हुई।

अहमदनगर और उसके आसपास अशान्ति उत्पन्न हो रही थी। शिवाजी का पिता शाहजी अहमदनगर के चारों ओर चक्कर लगा रहा था। साथ ही बादशाह को फतहखां का भी विश्वास नहीं था अतः उसने आसफखां को दक्षिण में भेजने का निश्चय किया। लेकिन उसके इनकार करने पर उसकी जगह महावतखां भेजा गया। सन् १६३३ में जब महावतखां ने फतहखां के इलाके पर आक्रमण किया और दौलताबाद का किला समर्पित करने को विवश किया, उस समय कर्णसिंह शाही सेना के साथ था।[4] इसी समय जुझारसिंह बुंदेला जो दक्षिण में नियुक्त था, बिना बादशाह की आज्ञा के अपने पुत्र विक्रमाजित को अपने स्थान पर छोड़ कर वहां से चला गया। अपने इलाके में लौट कर उसने गढे पर आक्रमण किया और वहां के जमीदार प्रेमनारायण को धोखे से मार डाला। जब बादशाह को यह बात मालूम हुई तो उसने जुझारसिंह को हुक्म दिया कि वह आत्म समर्पण कर दे और लूटी हुई सम्पति में से १० लाख रुपये शाही खजाने में दाखिल कर दे। जुझारसिंह ने बादशाह

---

१. देवीप्रसाद-शाहजहांनामा, भा. १ पृ. ६७।
ब. ब्रजरत्नदास-पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ. ८५।
अब्दुल हमीद लाहोरी-बादशाहनामा, भा. १ पृ. ४१०।
२. बनारसीप्रसाद सक्सेना-हिस्ट्री आफ शाहजहां आफ देहली, पृ. १३७।
३. देवीप्रसाद-शाहजहाँनामा, भा. १ पृ. ६७।
ब्रजरत्नदास-पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ. ८५।
४. ब्रजरत्नदास-पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ. ८५।
सन् जुलूस ६ ता. २ उर्दीबहिश्त का शाहजहां का फरमान।
अब्दुल हमीद लाहोरी—बादशाहनामा, भा. पृ. १५१०।

की आज्ञा नहीं मानी बल्कि उल्टे अपने पुत्र विक्रमाजित को दक्षिण में संदेश भेजा कि वह आकर उससे मिले । जब विक्रमाजित दक्षिण से भाग रहा था तो महावतखां और कर्णसिंह ने मिलकर उस पाखंडी का पीछा किया ।[1]

दौलताबाद का किला लेने के बाद महावतखां ने परेन्डे के किले को कब्जे में करने की योजना बनाई और बादशाह से स्वीकृति और सहायता मांगी । बादशाह ने तुरन्त शाहजादे शुजा के साथ एक बड़ी सेना भेजी । महावतखां बुरहानपुर में शाही सेना से मिला । परेन्डे के घेरे के समय कर्णसिंह भी शाहीसेना के साथ उपस्थित था ।[2] २८ जनवरी सन् १६३४ की रात को शाहजादे की आज्ञा से कर्णसिंह ने दूसरे लोगों के साथ शत्रु पर आक्रमण किया । बाद में जब घेरा उठा लिया गया और लौटते समय शाही सेना पर जब शत्रु ने हमला किया तो कर्णसिंह ने दूसरों के साथ कड़ा मुकाबला किया और उसे वापस भगा दिया ।

पुनः सन् १६३६ में जब बादशाह ने खान-ए-दौरा और खान-ए-जमां के साथ खान-ए-जहां को आदिलशाह पर हमला करने के लिये भेजा तो कर्ण सिंह भी खान-ऐ-जहां के साथ था ।[3] इस समय कर्णसिंह का जोधपुर से झगड़ा हो गया । जोधपुर के शासक गजसिंह (सन् १६१९–१६३८) का ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह उत्तराधिकर के पद से च्युत कर दिया गया । गजसिंह ने अमरसिंह को निर्वासित कर के उसके छोटे भाई जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया । वह शाहजहां से फरियाद करने हेतु दिल्ली गया । बादशाह उससे प्रेम से मिला, उसे राव की उपाधि दी और नागौर जागीर के रूप में प्रदान किया । चूंकि बीकानेर और नागौर की सीमा मिली हुई थी अतः सीमा सम्बन्धी झगड़े आम हो गये । अमरसिंह ने बीकानेर राज्य के एक गांव जाखाणिया पर जो सीमा पर था अधिकार कर लिया । जब यह समाचार दिल्ली में कर्णसिंह को मिला तो उसने बीकानेर में अपने मंत्रियों को आदेश दिया कि वे उसे वापस ले लें । जब अमरसिंह को दिल्ली में इस बात का पता चला तो उसने प्रत्याक्रमण के लिये नागौर आना चाहा । लेकिन कर्णसिंह को उसकी इच्छा का ज्ञान हो गया । उसने

---

१. देवीप्रसाद–शाहजहंनामा, भा. १ पृ. १४२–४३ ।

२. ब्रजरत्नदास-- पूर्व उद्धृत. (हिन्दी) पृ. ८५ ।

३. इलियट-- पूर्व उद्धृत भा. ७, पृ ५१–६० ।

बादशाह को सारे तथ्यों से अवगत कर दिया जिसके फलस्वरुप अमरसिंह को दिल्ली छोड़ने की आज्ञा नहीं मिली। इसी प्रकार कर्णसिंह और अमरसिंह दोनों को ही दिल्ली में रोककर शाहजहां ने इस झगड़े को अधिक खराब होने से बचा लिया।[1]

सन् १६४८ में कर्णसिंह का मनसब २००० जात और १५०० सवार से बढ़ा कर २००० जात और २००० सवार कर दिया गया तथा रुआदतखाँ की जगह उसे दौलताबाद का किलेदार नियुक्त किया गया। लगभग एक वर्ष बाद उसका मनसब और बढ़ा कर २५०० जात और २००० सवार[2] कर दिया गया। सन् १६५२ में यह पुनः बढ़ा कर ३००० जात और २००० सवार कर दिया गया।[3]

जब यह निर्णय लिया गया कि जवार प्रान्त शाही इलाके में मिला लिया जाय तो जवारी की जमींदारी कर्णसिंह के मनसब में सम्मिलित कर दी गई और उसे कहा गया कि वह वहाँ के जमीन्दार को हटा दे। जवारी का जमीन्दार मुकाबला करने में समर्थ नही था अतः उसने इस शर्त पर अधीनता स्वीकार कर ली कि उसे जागीर का राजस्व वसूल करने का अधिकार दिया जाय। उसने कर्णसिंह को मूल्यवान भेंट दी और अपना पुत्र बन्धक के रूप में दे दिया। अपने अभियान को पूर्ण करके कर्णसिंह औरंगजेब के पास चला गया जो उस समय दक्षिण में तैनात था।[4]

दिल्ली सिंहासन के उत्तराधिकार के झगड़े में कर्णसिंह ने तटस्थता की नीति का अनुसरण किया। सन् १६५७–५८ में शाहजहां बीमार पड़ा और उसने शासन का काम अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह को सौंप दिया। लम्बे समय से औरंगजेब अपने पिता का उत्तराधिकारी बनने की योग्यता बना रहा था और शाहजादा शुजा भी, जो बंगाल में था, अपने पिता का उत्तराधिकारी बनने को उतना ही उत्सुक था। औरंगजेब ने अपने भाई मुराद को, जो गुजरात में था, राजगद्दी के लिये प्रयत्न करने के लिये उकसाया और अपनी ओर से सहायता का वचन दिया। इन शाहजादों की

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत भाग २ पृ. १६२-६४।
   पाउलेट–पूर्व उद्धृत पृ. ३५।
२. मुहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ. २६८।
   ब्रजरत्नदास–पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ. ८६।
३. वही।
४. ब्रजरत्नदास–पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ. ८६-८७।

सेनायें राजधानी पर घेरा डालने के लिये रवाना हो गईं। भाई भाई के परस्पर रक्तरंजित युद्ध छिड़ने की सम्भावना से सरदारों, राजाओं और सेनापतियों ने एक या दूसरे गद्दी के दावेदार का साथ देने की तैयारी की। बीकानेर के शासकों की परम्परागत नीति के अनुसार केवल कर्णसिंह ने ही अपने को युद्ध से अलग रखने का प्रयत्न किया। वह संघर्ष के परिणाम की प्रतीक्षा करता रहा ताकि अन्त में जो तख्त पर अधिकार करे उसी को अपनी सेवा दी जाय अतः वह दक्षिण से बीकानेर लौट कर घटनाओं के परिणाम को देखता रहा।[1] वह औरंगजेब की आज्ञा लिये बिना ही चला आया। लेकिन औरंगजेब ऐसा आदमी नहीं था जो इस अपमान को भूल जाता।

लेकिन कर्णसिंह के चार पुत्रों में से दो— केशरीसिंह और पद्मसिंह— ने उत्तराधिकार के युद्धों में औरंगजेब के पक्ष में लड़ते हुए बड़ी वीरता दिखलाई। दारा के विरुद्ध अन्तिम युद्ध में उन्होंने अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन किया और औरंगजेब ने केशरीसिंह को सोने की म्यान वाली मीनाकारी के काम की एक तलवार भेंट की।[2] कहा जाता है कि औरंगजेब ने अपने स्वयं के रूमाल से दोनों भाइयों के कोट पर से युद्ध की धूल झाड़ी थी जबकि वे एक कड़े युद्ध के बाद अपनी सफलता की सूचना देने लौटे।[3] यह एक ऐसा अद्वितीय सम्मान था जो एक बादशाह बहुत कम प्रदान करता था।[4] लेकिन औरंगजेब ने अनुभव किया कि उनके पिता कर्णसिंह को दण्ड देना चाहिये। अपने पिता को कैद कर और अपने को बादशाह घोषित कर औरंगजेब ने अमीरखाँ ख्वाफी को कर्णसिंह पर भेजा। लेकिन ज्योंही मुगल सरदार बीकानेर की सीमा पर पहुँचा, कर्णसिंह अपने दो पुत्रों— अनूपसिंह और पद्मसिंह— को लेकर अमीरखाँ से मिला और सन् १६६० में उसके साथ बादशाह के दरबार में चला गया। तब बादशाह ने उसे माफ कर दिया और उसका मनसब बहाल करके उसे दक्षिण का भार सम्भालने

१. लेकिन पाउलेट अपने बीकानेर राज्य के गजेटियर (पृ. ३५) में लिखता है कि शाहजहां के पुत्रों में शाही तख्त के लिये जो संघर्ष हुवा उसमें बीकानेर के शासक ने सौभाग्य शाली औरंगजेब की पूर्ण मदद की।

२. यह तलवार बीकानेर में सुरक्षित है।

३. दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. १७६।

४. पाउलेट—पूर्व उद्धृत पृ. ३५। यह घटना एक चित्र में अंकित है जो इस समय बीकानेर में राजस्थान सरकार के संग्रहालय में है।

के लिये भेज दिया।[1]

सन् १६६६ में औरंगजेब ने कर्णसिंह को दिलेरखाँ दाऊदजई के साथ चांदा के जमींदार जलालखाँ को वश में करने के लिये भेजा लेकिन जब कर्णसिंह इस काम के लिये गया हुआ था तो बादशाह ने उसका मनसब छीन लिया। उसके ज्येष्ठ पुत्र अनूपसिंह को बीकानेर का शासक नियुक्त कर उसे २५०० जात और २००० सवार का मनसब प्रदान किया।[2] बादशाह द्वारा ऐसा कड़ा कदम कर्णसिंह की किस गल्ती पर उठाया गया इसका उल्लेख किसी समकालीन रेकार्ड में नहीं मिलता। ऐसा आदेश दिया गया था इसका पता बादशाह द्वारा सन् १६६७ में (औरंगजेब के सन् जुलूस १० तारीख १६ रबीउलअव्वल) इस सम्बन्ध में जारी किये गये एक फरमान[3] से चलता है। यह सम्भव है कि जब बादशाह ने मुगल तख्त पर अपने आपको दृढ़ता से स्थापित कर लिया तो उसने कर्णसिंह को दण्ड देना चाहा हो क्योंकि दिल्ली के सिंहासन के संघर्ष में वह उसकी ओर से नहीं लड़ा। लेकिन बीकानेर और जयपुर दोनों की ख्यातों में कुछ ऐसे तथ्य लिखे हैं जिनसे उस मुख्य कारण का संकेत मिलता है जिससे बादशाह कर्णसिंह से रूष्ट हो गया।

दयालदास के अनुसार जब औरंगजेब ने अपनी सेना ईरान[4] के विरुद्ध भेजी तो उसने बहुत से हिन्दू राजाओं को भी शाही सेना के साथ भेजा। जब सेना अटक में डेरे डाले हुए थी तो राजाओं ने जिज्ञासा में भर कर इस अवसर पर इतने अधिक राजाओं को भेजने का कारण जानना चाहा। उन्होंने जाँच करने के लिये साहबा के सैयद फकीर को जो

---

१. देवीप्रसाद–औरंगजेबनामा, भाग १ पृ. ५०।
   ब्रजरत्नदास–पूर्व उद्धृत. (हिन्दी) पृ. ८८।
   सरकार–हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग ३ पृ. २६।

२. मोहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ. २६६।
   ब्रजरत्नदास–पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ. ८८।
   श्यामलदास–पूर्व उद्धृत भाग २ पृ. ४६८।
   ता. ११ जनवरी सन् १६६७ का औरंगजेब का फरमान।

३. परिशिष्ट ८।

४. देवीप्रसाद–औरंगजेबनामा, भाग १ पृ. ६७-६८। उसने इस चढ़ाई की तिथि ४ सितम्बर सन् १६६६ लिखी है।

महाराजा कर्णसिंह के साथ था, भेजा। उस फकीर ने अस्तखाँ से मालूम किया कि बादशाह की इच्छा हिन्दू राजाओं को मुसलमान बनाने की है। उसने यह सूचना महाराजा कर्णसिंह को दे दी। अतः हिन्दू राजाओं ने मुगल सेना से पहले अटक पार न करने की चालाकी का निश्चय किया। दूसरे दिन प्रातः उन्होंने माँग की कि उन्हें पहले नदी पार करने दी जाय। वे अच्छी तरह जानते थे कि मुगल इसमें अपना अपमान समझेंगे और इस माँग से सहमत नहीं होंगे तथा इस प्रकार वे पीछे रह जायेंगे। मुगल सरलता से उनके फंदे में आ गये। उन्होंने स्वयं पहले नदी पार करने पर जोर दिया और राजाओं का उद्देश्य पूरा हो गया। इसी बीच जयपुर के राजा की माँ की मृत्यु का समाचार भी मिला और बादशाह को अर्ज करके राजा लोग शोक मनाने के लिये पीछे रह गये। पर इससे समस्या केवल टल गई, मिटी नहीं। जब मातम मनाने की अवधि पूरी हुई तो राजाओं ने अपने अपने राज्य लौट जाने की सोची लेकिन कोई भी अगुवा बनने को तैयार न था। इस पर सब राजा महाराजा कर्णसिंह के पास गये और उन्हें उन नावों को नष्ट करने में अगुवा बनने के लिये कहा जो उन्हें नदी पार ले जाने के लिये प्रतीक्षा कर रही थीं। महाराजा कर्णसिंह द्वारा यह कार्य करने पर सब राजाओं ने उन्हें भारत का बादशाह घोषित किया और सैयद फकीर को यह अधिकार दिया कि राज्य के प्रति घर से एक पैसा वसूल करे। राजा लोग अपने अपने राज्यों को लौट गये।[1]

जयपुर की ख्यात के अनुसार राजा लोग महाराजा कर्णसिंह के एक पुत्र के जन्म की खुशियाँ मनाने की बात कह कर पीछे रह गये। जब मुगल सेना नदी पार चली गई तो महाराजा कर्णसिंह ने नावों को नष्ट

---

१. दयालदास--पूर्व उद्धृत भाग २ पृ. १६३-६५।

यह अधिकार दिये जाने की सनद की नकल भूतपूर्व बीकानेर राज्य की सम्वत् १८६६ की बही में प्राप्त है। यह बही अब बीकानेर में राजस्थान राज्य के पुरालेख विभाग में सुरक्षित है। यह नकल असल से उस समय की गई थी जब कि पुरानी फटने पर उसे पुनः नया किया गया। ऐसा इसमें लिखा है।

इस प्रकार का अधिकार देना उस समय राजपूताना की रियासतों में असामान्य नहीं था। हम जोधपुर के चाँदशाह फकीर का उदाहरण दे सकते हैं जिसे जोधपुर सिंहासन और राजघराने की सेवा करने पर जोधपुर राज्य में न केवल ऐसा ही विशेषाधिकार दिया गया था बल्कि उसे पैर में सोने का कड़ा पहनने का उच्च सम्मान भी प्राप्त था।

करने में नेतृत्व किया। यह खबर सुनकर औरंगजेब महाराजा कर्णसिंह के डेरे में गया और उसे सच्चाई मालूम हो गई। इस पर उसने कहा कि चूंकि तुम सब (राजाओं) ने बीकानेर के शासक को बादशाह माना है अतः आगे से वह "जंगलपत बादशाह" रहेगा।[1]

औरंगजेब बहुत नाराज होकर दिल्ली लौटा और तुरन्त कर्णसिंह के विरुद्ध एक सेना भेजी। कर्णसिंह शीघ्र बीकानेर राजघराने की इष्ट देवी करणी जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये देशनोक पहुँचा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उसकी प्रार्थना सुनी गई क्योंकि जो सेना बीकानेर की सीमा तक आ गई थी वह एकाएक बादशाह द्वारा वापस बुला ली गई। महाराजा को भी दिल्ली बुलाया गया।[2] काफी सोच विचार के बाद यह निश्चय किया गया कि कर्णसिंह दिल्ली जाये और उसके दो पुत्र केशरी-सिंह और पद्मसिंह पहले ही चले जायें। महाराजा ने निश्चय कर लिया था कि यदि किसी प्रकार का धोखा किया गया तो वह दिखा देगा कि एक राठौड़ कैसे मरता है।

इस समय एक नई घटना घटित हो चुकी थी। कर्णसिंह के एक अनौरस (पासवानिया) पुत्र बनमालीदास ने बादशाह द्वारा बीकानेर का राज्य मिलने के बदले मुसलमान हो जाने की इच्छा प्रकट की। कहा जाता है कि बादशाह ने इससे सहमति प्रकट की और ऐसा प्रबन्ध किया कि जब राजा कर्णसिंह दिल्ली पहुँचकर दरबार में आये तो उसे मार डाला जाय।[3] लेकिन यह षड्यन्त्र विफल हो गया क्योंकि कर्णसिंह दरबार में अपने दोनों जबरदस्त पुत्रों– केशरीसिंह और पद्मसिंह के साथ आया और वे अपने पिता के दोनों ओर बैठ गये। औरंगजेब ने हत्यारे को हट जाने का संकेत किया। जब कर्णसिंह और उसके पुत्र विदाई के लिये खड़े हुए तो बादशाह ने अपनी लड़ाइयों में उसके पुत्रों द्वारा प्रदर्शित वीरता की प्रशंसा की। बादशाह ने केशरीसिंह की दारा के विरुद्ध लड़े गये अन्तिम युद्ध में अपनी

---

१. जयपुर के पुरोहित हरिनारायण बी. ए के संग्रह की एक हस्तलिखित ख्यात (ओझाजी द्वारा बीकानेर राज्य के इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ २४६ पर उद्धृत।)

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १९७।

३. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १९८।

पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ३५–३६।

(बादशाह की) जान बचाने के लिये विशेष प्रशंसा की। कर्णसिंह ने चालाकी से अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि बादशाह की प्राण रक्षा भयंकर युद्ध के समय भी उसके द्वारा निरन्तर कुरान का पाठ करने से हुई है।

कर्णसिंह को मारा तो नहीं गया लेकिन बादशाह ने उसे बीकानेर के शासक पद और मनसब से हटाने का पहले जो आदेश दिया था उसे रद्द नहीं किया गया। इसकी अपेक्षा उसे औरंगाबाद (दक्षिण) भेज दिया गया। यहाँ उसके पास पान का बाग (पनवाड़ी) जागीर में था जिसमें राजा ने अपना निवास बनाया और इसे कर्णपुरा नाम दिया।[1] यहाँ उसने करणी जी का एक मन्दिर बनाया जिसका खर्च उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक बीकानेर राज्य के खजाने से दिया जाता रहा।[2] अपनी मृत्यु से एक वर्ष पूर्व कर्णसिंह ने अपने पुत्र अनूपसिंह को एक सन्देश भेजा कि वह देशद्रोही (शत्रु सेवी) बनमालीदास से सावधान रहे।[3] सन् १६७६ में कर्णसिंह का औरंगाबाद में देहान्त हो गया।[4]

बीकानेर के शासकों में कर्णसिंह का स्थान उल्लेखनीय है। वह बीकानेर का प्रथम शासक था जिसने औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता का साहस के साथ विरोध किया। उसने केन्द्रीय मुगल सत्ता की उसके शत्रुओं के विरुद्ध बहादुरी और स्वामी भक्ति से सेवा की। एक वीर सैनिक के रूप में उसने परेन्डे के घेरे, शाहजी और फतेहखाँ के विरुद्ध युद्धों में शाहजहाँ को अमूल्य सहायता प्रदान की। इसके बदले में बादशाह ने उच्च सम्मान प्रदान किया। शाहजहाँ द्वारा वह इतना स्वामी भक्त व विश्वासपात्र माना गया कि उसे जवारी का परगना छीनने के लिये भेजा गया और बाद में उसे वहाँ का प्रशासन चलाने के लिये नियुक्त किया गया। उत्तराधिकार

---

१. दयालदास-पूर्व उद्धृत भाग २ पृ० १६६।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ३८।

२. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २०१।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ३८।

३. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ३८।

४. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २ पृ० २०१।
महाराजा कर्णसिंह की छतरी पर एक शिलालेख में भी यही तिथि दी गई है। यह कहा जा सकता है कि टॉड ने गलत लिखा है कि कर्णसिंह की मृत्यु बीकानेर में हुई अन्य सभी ख्यातों में कर्णपुरा में ही उसकी मृत्यु होना लिखा है।

के युद्ध से अपने को अलग रख कर उसने कूटनीतिज्ञता का पूर्ण प्रमाण दिया। वह जानता था कि यदि उसके द्वारा समर्थित पक्ष झगड़े में हार गया तो उसे विषम परिणाम भोगना होगा। लेकिन जब उसने यह अनुभव किया कि अपने असंदिग्ध तरीकों और उद्देश्य के हटीपन से अन्त में औरंगजेब सफल हो जायेगा तो उसने अपने पुत्रों पद्मसिंह और केशरीसिंह को औरंगजेब का पक्ष लेने की छूट दे दी। ये दोनों युवक राजकुमार बड़ी बहादुरी से लड़े और औरंगजेब से प्रशंसा प्राप्त की। लेकिन कर्णसिंह ने औरंगजेब के चालाक और असंदिग्ध चरित्र को अच्छी तरह समझ लिया था तथा उसके द्वारा चालाकी से किसी खतरनाक स्थिति में डाले जाने के विरुद्ध वह हमेशा सावधान रहा। जब उसने देखा कि औरंगजेब हिन्दुओं के विरुद्ध असह्य कट्टरता धारण करता जा रहा है तो असन्तुष्ट हिन्दू राजाओं के नेता रूप में कर्णसिंह उसका साहस के साथ विरोध करने में नहीं हिचकिचाया। इसके लिये हिन्दू राजाओं ने सर्व सम्मति से उसे "जंगलधर बादशाह" उपाधि प्रदान की जो आज भी उसके वंशज गर्व के साथ धारण करते हैं। हिन्दू धर्म और संस्कृति के लिये श्रद्धावान होने के कारण उसने कष्ट उठाया लेकिन बादशाह की बड़ी से बड़ी नाराजी भी उसे डरा न सकी।

अनूपसिंह अपने पिता के जीवन काल में ही बीकानेर का शासक बन गया था।[1] जैसा पहले लिखा जा चुका है बादशाह ने नाराज होकर कर्णसिह को शासनाधिकार से च्युत कर दिया था। अनूपसिंह का जन्म

---

१. सन् जुलूस १० ता० १६ रबीउल् अव्वल का औरंगजेब का फरमान।
"शाह देवकरण के पुत्र पासदत्त की सती की छतरी पर सन् १६६७ (सम्वत् १७२४) के एक शिलालेख में महाराजा कर्णसिंह और महाराजा अनूपसिंह दोनों का नाम साथ साथ आया है जो इस तथ्य को प्रमाणित करता है। लेख इस प्रकार है—
"श्री गणेशाय नमः स्वस्ति श्री नृपति विक्रमादित्य राज्यात् संवत् १७२४ वर्षे शाके १५६० प्रवर्त्तमाने महामंगल्यप्रद मार्गसिरमासे कृष्णपक्षे षष्ठी स्थितौ सौमवासरे ॥
महाराजाधिराज महाराजा श्री श्री ५ कर्णसिंहजी।
महाराजा श्री अनूपसिंह विजय राज्ये ... ... ।"
अगरचन्द नाहटा, बीकानेर जैन लेख संग्रह, पृ० ३६६।

सन् १६३८[1] में हुआ था और अपने पिता की मृत्यु के समय उसकी आयु ३१ वर्ष थी। यद्यपि राज्य से दूर अपने पिता की मृत्यु के समय अनूपसिंह पहले से ही नाम के लिये बीकानेर का शासक था पर कुछ समय बाद औरंगजेब ने एक फरमान जारी करके उसे वास्तविक शासक निश्चित कर दिया। बीच का विलम्ब शाही दरबार में वनमालीदास के षड्यन्त्र से हुआ। वनमालीदास इस्लाम धर्म स्वीकार करने के बदले अपने लिये बीकानेर का शासक पद चाहता था। अनूपसिंह का उत्तराधिकार स्वीकृत करने से पूर्व मुगल दरबार में कुछ बातचीत चली। यह स्वीकृति बादशाह द्वारा सन् जुलूस १२ ता० २२ सफर तदनुसार २२ जुलाई सन् १६६६ के फरमान द्वारा प्रदान की गई।[2] दक्षिण में बीकानेर के शासक रूप में अनूपसिंह के पास सुजावलपुर, नासरों और राखावत के परगने थे।[3] अपने सम्पूर्ण राज्यकाल में वह औरंगजेब के दक्षिण के अभियानों से सम्बन्धित रहा।

औरंगजेब अनूपसिंह को अपना सर्वाधिक विश्वसनीय सहायक मानता था। औरंगजेब के दीर्घकालीन दक्षिण अभियान की प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण लड़ाई में उसने भाग लिया। सन् १६७० में अनूपसिंह और कई अन्य राजपूत मनसबदारों को खिलअत प्रदान की गई और उन्हें महाबतखाँ के साथ दक्षिण में शिवाजी के विरुद्ध भेजा गया।[4] यद्यपि मुगल सेनापति कोई सफलता प्राप्त न कर सका पर अनूपसिंह ने सभी युद्धों में प्रशंसनीय वीरता दिखलाई। फलस्वरूप प्रधान सेनापति तो कई बार बदले गये

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २०४।
   श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ४६६।
२. औरंगजेब का सन् जुलूस १२ ता० २२ सफर का फरमान।
३. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २०४। वह लिखता है कि बीकानेर राज्य के इलाके के अलावा अनूपसिंह के राज्यारोहण समय निम्नलिखित परगने उसके क्षेत्र में थे—

   सिरसा, शिवरां, तिशां, मैयम, फतेहाबाद, अहरावो, रातियो, मालोट, भरथनेर, फलोदी, सिवानी, अंगारवो, अठखेरा, भटर्वा और दक्षिण के तीन परगने सुजावलपुर, नासरा और राखावत।
४. मोहम्मद साकी–मासीर–ए–आलमगीरी, पृ० १०७
   मोहम्मद सैयद अहमद–पूर्व उद्धृत, पृ० ६३।
   देवीप्रसाद–औरंगजेबनामा, भाग २ पृ० ३०।

पर अनूपसिंह दक्षिण में ही रखा गया।[1] वह साल्हेर की लड़ाई में, जो सन् १६७२ में हुई, उपस्थित था। लेकिन मुगल आरम्भिक साधारण सफलताओं के बाद बुरी तरह से हानि उठा कर पीछे हटे। औरंगजेब ने महावतखाँ को वापस बुला लिया और उसकी जगह बहादुरखाँ को भेज दिया।

अभियान की गति और तीव्र हुई तथा सन् १६७३ में बीजापुर में एक युद्ध हुवा। मराठों, बीजापुर के शासक और मुगलों के इस त्रिकोणात्मक युद्ध में मुगलों का पलड़ा भारी रहा और मुगलों के सर्वोच्च सेनापति बहादुरखाँ ने बीजापुर और हैदराबाद दोनों के शासकों से पेशकस (भेंट) वसूल करके शाही खजाने में भिजवा दी।[2] इस युद्ध में जिन सरदारों ने भाग लिया था उनकी सेवाओ से प्रसन्न होकर सन् १६७५ में औरंगजेब ने उन्हें खिताब और खिलअत प्रदान किये। अनूपसिंह को महाराजा का खिताब मिला।[3]

बाद में बहादुरखाँ के विरुद्ध शत्रु से रिश्वत लेने की शिकायत पाकर औरंगजेब ने उसे वापस बुला लिया और दिलेरखाँ को दक्षिण की लड़ाई चालू रखने का कार्य सौंपा गया। अनूपसिंह ने नये सेनापति के अधीन बड़ी बहादुरी दिखाई और गोलकुण्डा के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया।[4] दिलेरखां ने बीजापुर पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया और आसपास के इलाके को उजाड़ दिया। सन् १६७७-७८ में अनूपसिंह को औरंगाबाद का प्रशासक नियुक्त किया गया। पर इसी वर्ष उस ओर शिवाजी ने अपने आक्रमण शुरु कर दिये। अनूपसिंह ने अपनी सारी सेना को तैयार किया और मराठा सरदार से लड़ने को तैयार हो गया। दोनों ही दल समान थे। पर एक क्षण ऐसा आया जब लगा कि मराठों की जीत होगी। ठीक उसी समय बहादुरखाँ नई सेना लेकर वहाँ पहुँच गया और युद्ध का नक्शा

---

१. मोहम्मद सैयद अहमद—पूर्व उद्धृत पृ. ६२।
   ब्रजरत्नदास—पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ. ६०।
२. देवीप्रसाद—औरंगजेबनामा, भाग २, पृ० ५५।
३. दयालदास—पूर्व उद्धृत भाग २ पृ. २०५।
   पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ. ३६।
   अर्सकिन—पूर्व उद्धृत, पृ० ३२२।
४. ब्रजरत्नदास—पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ० ६०।

(स्वरूप) बदल गया शिवाजी मैदान से हट गये।[1] सन् १६७८ में अनूपसिंह को आदूणी का हाकिम नियुक्त किया गया और उसे वहाँ का विद्रोह दबाने के लिये भेजा गया। अनूपसिंह शीघ्रता से वहां पहुँचा। लेकिन वहां हुए युद्ध में वह हारने ही वाला था कि उसका वीर भाई पद्मसिंह समय पर पहुँच गया और होने वाली हार जीत में बदल गई। यदि ऐसा नहीं होता तो महाराजा की बुरी तरह से पराजय होने की आशंका थी।[2]

सन् १६७८ में जब वह दक्षिण में आदूणी में था तो उसके पास समाचार पहुंचा कि खारबारा और रायमलवाली के भाटी ठाकुरों ने विद्रोह कर दिया। महाराजा के साथ के मुकन्दराय नाम का अधिकारी जो बनिया था, उनका दमन करने को जाने के लिये तत्पर हुआ। वह बीकानेर आया। उसने लगभग चार हजार लोगों की सेना एकत्रित की और विद्रोहियों के विरुद्ध प्रस्थान किया। उसके साथ भागचन्द भाटी भी था जो महाराजा के प्रति वफादार रहा। बीकानेर से उत्तर की ओर लगभग १०० मील दूर चूड़ेर के किले में लगभग दो हजार विद्रोही भाटी एकत्रित हुए। किले को मुकन्दराय की सेना ने घेर लिया। भाटियों ने जोहियों से सहायता मांगी। लेकिन वे कोई सहायता न कर सके और मुकन्दराय के राठोड़ों को व्यंग में कहलाया कि पहले कभी वे किले को नहीं जीत सके अतः अब उस पर दावा करने का कोई कारण नहीं। लेकिन किले में घिरे हुए भूखे भाटियों के लिये यह कोई सहायता नहीं थी, उन्होंने राठौड़ सरदारों द्वारा सुरक्षा का विश्वास दिलाये जाने पर अपने दो सरदारों जगरूपसिंह और बिहारीदास को मुकन्दराय और उसके सहायक अमरसिंह शृंगोत के पास समझौता करने भेजा। काफी विचार विमर्श के बाद यह तय हुआ कि भाटी एक लाख रुपया देंगे जिसके बाद राठौड़ घेरा उठा लेंगे और चले जायेंगे।

यद्यपि किसी ने भाटियों को लिखित चेतावनी भेजी कि उनके साथ धोखा किया जायगा पर भाटी सरदार शान्ति वार्ता के लिये आये। पांच दिन में भाटियों ने ५०,००० रुपये दिये और बाकी रकम शीघ्र ही देने का वचन दिया। उन्होंने वह चेतावनी का पत्र भी दिखाया जिसकी राठौड़ सरदारों ने हँसी उड़ाई। अपनी बात का विश्वास कराने के लिये उन्होंने भाटियों को शेष रकम चुकाने के बारे में चिन्तित न होने के लिये कहा।

---

१. ब्रजरत्नदास-पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ० ६०।
मुहम्मद सैयद अहमद-पूर्व उद्धृत पृ० ६३।
२. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६-१०।

क्योंकि उन्हें विश्वास था कि वे इसे महाराजा से माफ करा लेंगे। इससे भाटियों को विश्वास हो गया और उन्होने जोहियों को वापस भेज दिया। अब जब किले में केवल ५०० आदमी रह गये तो मुकन्दराय और अमर सिंह ने इस सिद्धांत पर — कि युद्ध और प्रेम में सब तरीके ठीक हैं — अमल करते हुए अपने वचन को तोड़ डाला और रात्रि में किले पर हमला कर दिया। लड़ाई में जगरूपसिंह और बिहारी दास मारे गये और किले पर राठोड़ों का अधिकार हो गया। अनूपसिंह ने जो उस समय आदूणी में था, इस सफलता से प्रसन्न होकर मुकन्दराय और अमरसिंह को काफी पुरस्कार दिया और खारबारा की जागीर भागचन्द भाटी को दे दी जो महाराजा के प्रति स्वामीभक्त रहा था।[1] इस किले की जगह एक अधिक बड़ा अनूपगढ नामक किला सन् १६७८ में बनाया गया।

सन् १६७६ में जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु होने पर औरंगजेब ने उसके राज्य को अपने इलाके में मिला लिया। महाराजा अनूपसिंह और रतलाम के महाराजा रामसिंह दोनों ने शाही दरबार में अपने वकीलों के माध्यम से यह प्रयत्न किया कि राज्य महाराजा जसवन्तसिंह के ज्येष्ठ पुत्र महाराजा अजीतसिंह को दे दिया जाय। लेकिन इसमें सफलता नहीं मिली क्योंकि बादशाह को जसवन्तसिंह ने नाराज कर दिया था।[2] सन् १६७६ में औसा के किलेदार सैयद नजाबत ने बादशाह के पास एक संदेश शीघ्रता से भेजा और सूचित किया कि शिवाजी का सेनापति मोरोपंत दक्षिण में मुगलों के इलाके का अतिक्रमण कर चुका है और यदि मराठों की गति को रोकने के लिये शीघ्र ही सहायता न भेजी गई तो वे दक्षिण में समस्त मुगल क्षेत्र पर अधिकार कर लेंगे। इस पर औरंगजेब ने अनूपसिंह को शीघ्र आदेश भेजा कि वह तुरन्त मौके पर पहुँचे और मराठों को मुगल क्षेत्र से हटादे।[3] इसी समय (सन् १६८२) अनूपसिंह को अपने अनौरस भाई बनमालीदास से छुटकारा लेना पड़ा। पहले लिखा जा चुका है कि बनमालीदास ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था और वह बीकानेर की गद्दी के लिये अनूपसिंह का प्रतिद्वंदी था। बनमालीदास सैयद हसन अली, जिसका बादशाह पर काफी प्रभाव था, का समर्थन प्राप्त करने

---

१. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भा. २ पृ. २१०-१३।
पाउलेट— पूर्व उद्धृत, पृ० ३६-४०।

२. जोधपुर राज्य की ख्यात—भा. २, पृ. १६ ओझाजी द्वारा उद्धृत।

३. औरंगजेब के पुत्र शाह आलम का सन् जुलुस २३ ता. १४ रमजान का निशान।

में सफल हो गया। हसनअली वनमालीदास को बीकानेर का आधा राज्य दिये जाने का आदेश बादशाह से प्राप्त करने में सफल हो गया। इस आदेश को लेकर वनमालीदास तीन हजार सेना के साथ बीकानेर आया और बीकाजी द्वारा बनाये गये बीकानेर के पुराने किले के पास डेरे डाल दिये। महाराजा बीकानेर में था। उसने वनमालीदास का बहुत अच्छा सत्कार किया लेकिन मुसलमान हो जाने के कारण उसने हिन्दुओं की भावनाओं की परवाह न करते हुए लक्ष्मीनाथजी के मन्दिर के पास बकरे और मींढे मरवाये। इसके विरूद्ध जब वनमालीदास को रोकने की कोशिश की गई तो उसने वहां गायें मरवाने की धमकी दी। इसके बाद उसने खजांनचियों को बुलाकर इनसे अपनी खाताबही दिखाने को कहा ताकि वह निश्चय कर सके कि उसे अपने हिस्से में कौन से गांव लेने चाहिये। लेकिन खजान्चियों ने अपने खाते बही देने से इन्कार कर दिया। इस पर वे कैद कर लिये गये। महाराजा अपने अनौरस भाई के व्यवहार से तंग आ गया। पर वह कोई हल नही ढूंढ सका। एक चतुर अहीर उदैराम ने महाराजा की सहायता की। उसने वनमालीदास के पास जाकर उसे विश्वास दिलाया कि वह उसे समस्त आवश्यक सूचना दे देगा और खजान्चियों को कैद कर रखने से कोई लाभ नहीं होगा। महाराजा के खजान्ची छोड़ दिये गये। वनमाली दास ने चंगोई में अपना किला बनाने का निश्चय किया। उसने उन गाँवों का भी तै कर लिया था जिन्हें वह अपने हिस्से में लेना चाहता था। उदैराम महाराजा के पास आया और उससे ये स्थान वनमालीदास को देने का एक रूक्का (अधिकारपत्र) लिखवा कर उसे दे दिया।

लेकिन यह कार्य केवल वनमालीदास को धोका देने और उसे यह विश्वास दिलाने के लिये किया गया था कि उसकी इच्छा पूरी हो गई है। तब महाराजा ने लक्ष्मीदास सोनगरे की सहायता से वनमालीदास को मारने की योजना बनाई। लक्ष्मीदास सोनगरा एक गरीब ठाकुर था और उसकी पुत्री का विवाह अनूपसिंह से हुआ था। विवाह के समय इस गरीब ठाकुर ने कहा था कि चूंकि वह काफी दहेज देने में असमर्थ है अतः अपनी जान देकर भी महाराजा का सबसे कठिन काम करने को तैयार रहेगा। महाराजा को अब वह अवसर मिला। उसने वनमालीदास को मारने के लिये अपने श्वसुर को भेजा। लेकिन लक्ष्मीदास कर्णसिंह के पुत्रों में से एक (वनमालीदास) का खून बहाने से हिचकिचा रहा था। अतः अनूपसिंह ने उसके साथ एक बीका राजपूत को भेज दिया ताकि वनमालीदास को

मारने में यदि कोई पाप लगे तो वह भी हिस्सेदार हो। दोनों भेष बदल कर बनमालीदास के यहां गये और बीकानेर से निर्वासित होने की बात कह कर शरण माँगी। इस बात को विश्वसनीय बनाने के लिये यह योजना बनाई गई कि महाराजा बनमालीदास के पास एक संदेशवाहक भेजकर कहलायेगा कि बीकानेर के इन विद्रोहियों को शरण न दी जाय। इस सन्देश का इच्छित प्रभाव पड़ा क्योंकि बनमालीदास ने इस तथाकथित शरणार्थियों को अपना विश्वास पात्र बना लिया। ठाकुर लक्ष्मीदास एक गोली को अपने साथ ले गया था। उसे अपनी बेटी बता कर उसने उसका विवाह बनमालीदास से कर दिया। लड़की बनमालीदास के हरम में दाखिल हो गई और ठाकुर के निदेशानुसार बनमालीदास को शराब में विष मिलाकर पिला दिया। इस प्रकार ठाकुर ने अपने दामाद अनूपसिंह को उसके प्रतिद्वंदी से छुटकारा दिलाया। बनमालीदास के साथ दिल्ली से एक नवाब भी सेना के सेनापति रूप में आया था। अब उसे अपनी ओर मिलाने की आवश्यकता थी। एक लाख रुपया देकर उसका मुंह बन्द कर दिया गया। नवाब ने दिल्ली लौटकर घोषणा की कि बनमालीदास स्वाभाविक मृत्यु से मरा है। इस प्रकार महाराजा अनूपसिंह ने बीकानेर के अपने ही राज्य में अपनी स्थिति को मजबूत बनाया। उसके श्वसुर और उदैराम अहीर को काफी पुरस्कार दिया गया।[1]

शिवाजी के साथ युद्धों में औरंगजेब की सफलता का कुछ श्रेय अनूपसिंह की वीरता को भी है, विशेषतः बीजापुर और गोलकुण्डे की लड़ाइयों का। बीजापुर का शासक सिकन्दर एक दुर्बल व्यक्ति था और अब्दुल रऊफ और शरजाखाँ जैसे चतुर व्यक्तियों ने उसकी दुर्बलता का लाभ उठाना आरम्भ कर दिया था। औरंगजेब का इस समय बीजापुर पर हमला करने का कोई इरादा न था लेकिन जब मराठा शासक शम्भाजी की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई और ऐसा प्रतीत होने लगा कि यदि उसे शीघ्र ही न रोका गया तो वह जल्दी ही बीजापुर पर अधिकार कर लेगा तो बादशाह ने बीजापुर की रक्षा के लिये एक सेना रवाना कर दी और सिकन्दर को लिखा कि वह इसे सभी आवश्यक सहायता प्रदान करे। लेकिन सिकन्दर ने आज्ञा और इस सम्बन्ध में भेजे गये दूसरे पत्रों की उपेक्षा कर दी। औरंगजेब को सिकन्दर की असलियत पर सन्देह हुआ। अतः उसने आवश्यक समझा कि वह स्वयं आकर इस सेना को तत्पर रखे। बीजापुर के विरूद्ध इस चढ़ाई में

१. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २१७–१६।

सन् १६८६ में बादशाह को यह जान कर बड़ी निराशा हुई कि उसका पुत्र शाह आलम गुप्त रूप से शत्रु से मिला हुआ था और पत्र व्यवहार करता था। बीजापुर के विरूद्ध चढ़ाइयों में अनूपसिंह बराबर उपस्थित रहा।[1] सिकन्दर को आधीन बनाने में उसने महत्वपूर्ण योग्य दिया।[2] उसी वर्ष अनूपसिंह को बीजापुर जिले के सागर नामक स्थान का किलेदार और फौजदार नियुक्त किया गया।

सन् १६८७ में औरंगजेब ने गोलकुण्डे के हठी शासक अबुलहसन को वश में करने के लिये चढ़ाई की। बादशाह के अफसर गोलकुण्डा सम्बन्धी बादशाह की नीति पर मतभेद रखते थे। इस राज्य का स्वामी एक शिया मुसलमान था और बादशाह की सेना के शिया मुसलमानों ने गोलकुण्डा के विरुद्ध लड़ने की शाही आज्ञा का विरोध किया। कई सुन्नी मुसलमान भी उनसे सहानुभूति रखते थे। शाहजादा शाहआलम भी इस आक्रमण से सहमत नहीं था इसीलिये बादशाह की सेना पूरे मन से नहीं लड़ी और गोलकुण्डा का घेरा चलता रहा।

दयालदास की ख्यात के आधार पर हम अधिकृत रूप से कह सकते हैं कि गोलकुण्डा के घेरे के समय अनूपसिंह उपस्थित था और उसकी सेवाओं के बदले उसका मनसब बढ़ाया गया था।[4] जुल्फिकारखाँ पेशावर में विद्रोही कबाइलियों के विरुद्ध लड़ रहा था। बादशाह ने उसे वहाँ से बुलाया। वह सक्खर से अनूपसिंह को भी लेता आया। दयालदास अपनी ख्यात में लिखता है कि गोलकुण्डे का युद्ध तानाशाही के विरुद्ध लड़ा गया। सम्भवतः दयालदास का तात्पर्य अबुल हसन से हो जो तत्कालीन फारसी तवारीखों के अनुसार उस समय गोलकुण्डा का वास्तविक स्वामी था। नई सेना के आ जाने से औरंगजेब ने हमले की गति तीव्र कर दी और अन्त में अबुल हसन को आत्म समर्पण कराने में सफल हो गया। इस युद्ध में वीरता दिखाने के कारण बादशाह ने पुनः महाराजा अनूपसिंह का मनसब बढ़ाकर

---

१. मोहम्मद साकी मुस्तैदखाँ–मासीरे आलमगीरी, पृ० २७७। कहा जाता हैं कि महाराजा अनूपसिंह ने बीजापुर में बादशाह से भेंट की। बादशाह ने उसे खिलअत प्रदान की।

२. देवीप्रसाद–औरंगजेबनामा, भाग ३, पृ० ३२।

३. मोहम्मद साकी मुस्तैदखाँ–पूर्व उद्धृत, पृ० २८३।

४. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २ पृ० २०६।

साढे तीन हजारी कर दिया।[1] सन् १६८६ में अनूपसिंह अमतियाजगढ़ अदूनी का शासक नियुक्त किया गया।[2] सन् १६६३ में उसे नशरताबाद सक्खर का शासक नियुक्त किया गया।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह बात काफी स्पष्ट हो जाती है कि बीकानेर के राजघराने ने मुगल साम्राज्य के लिये एक मुख्य स्तम्भ की तरह काम किया। यद्यपि बीकानेर के शासक औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता के सक्रिय विरोधी थे तो भी उन्होंने मुगल शासन की एकता को बनाये रखने में अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न किया। भारतीय राजनैतिक गठन के अधिक-बड़े हित की दृष्टि से सम्भवतः बीकानेर के शासकों का व्यवहार ऐसे समय में केन्द्रीय सत्ता को कायम रखने में सहायक हुआ जबकि मुगल सत्ता के हटने पर उसका स्थान लेने वाली कोई दूसरी शक्ति नहीं थी। बाद में जब केन्द्रीय सत्ता का बिखराव अधिक नहीं रोका जा सका तो हम देखते हैं कि देश किस प्रकार महत्वाकांक्षी व्यक्तियों की आपसी लड़ाइयों से टुकड़े टुकड़े हो गया। प्रत्येक महत्वाकांक्षी विशाल मुगल साम्राज्य का एक टुकड़ा लेकर अपने लिये एक स्वतन्त्र राज्य बनाना चाहता था। बीकानेर राजघराने के लिये यह गर्व की बात है कि उन दिनों भी उन्होंने यह बात समझली थी कि भारत में मुसलमान— शासक और नागरिक दोनों ही— अब विदेशी नहीं थे और उनको देश से बाहर निकालने का कोई भी प्रयत्न असम्भव और हानिकर होगा।

अनूपसिंह और उसके भाइयों द्वारा की गई प्रभावशाली सेवा के बदले में बादशाह ने उसे "माही मरातिब" का सम्मान प्रदान किया था जो मुगल दरबार का सर्वोच्च सम्मान था।[4]

---

१. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० २०६।
२. देवीप्रसाद—औरंगजेबनामा, भाग ३, पृ० ६४।
३. मोहम्मद सैयद अहमद, उमराए हनूद, पृ० ६३।
   -ब्रजरत्नदास—पूर्व उद्धृत,—(हिन्दी)—पृ० ६०।
४. मेजर जनरल सर विलियम स्लीमैन अपने ग्रन्थ "रैम्बलस एन्ड रिकलेक्शन्स ऑफ एन इन्डियन ऑफिशियल" में लिखता है कि यह विरल सम्मान देश के केवल कुछ सीमित महान राजाओं को और प्रथम श्रेणी के स्वतन्त्र राजाओं को ही दिया जाता था।

हाउस आफ बीकानेर पृ० २१ से उद्धृत।

माही मरातिब का यह चिन्ह अभी लेखक के अधिकार

सन् १६६८ (रविवार, ज्येष्ठ सुदी ६ विक्रमी सम्वत १७७५) में आदूणी में अनूपसिंह की मृत्यु हो गई। राठौड़ राजपूत की भांति वह एक वीर सैनिक था लेकिन विद्वता और ज्ञान के संरक्षण में उसने अपने सभी पूर्वजों को पीछे छोड़ दिया। अनूपसिंह संस्कृत का विद्वान था। भाषा पर भी उसका पूर्ण अधिकार था। जब औरंगजेब ने अपना हिन्दू विरोधी अभियान आरम्भ किया तो अनेक मूल्यवान संस्कृत ग्रन्थों को विनाश अथवा लुप्त होने से बचाने का श्रेय अनूपसिंह को दिया जाता है। ज्ञान के प्रति उसका संरक्षण भाव देखकर कई विद्वान बीकानेर आये और उन्होंने विभिन्न विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे। औरंगजेब ने अपने साम्राज्य में संगीत जैसी सुन्दर कला पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। अतः अनेक संगीतज्ञों को अनूपसिंह के यहां शरण मिली। यदि संगीत प्रेमी अनूपसिंह न होते तो शास्त्रीय हिन्दू संगीत के अनेक ग्रन्थ या तो नष्ट हो जाते या लिखे ही न जाते। अनूपसिंह की प्रेरणा से लिखे गये अथवा उनके द्वारा संग्रहीत समस्त साहित्यिक ग्रन्थों की एक विवरण सूची बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में विद्यमान है।

इस काल में बीकानेर राजघराने के कुछ सदस्यों ने जो प्रशंसनीय कार्य किये वे भी उल्लेखनीय हैं। उनके नाम केशरीसिंह पद्मसिंह और मोहनसिंह थे। महाराजा कर्णसिंह के द्वितीय पुत्र केशरीसिंह का जन्म सन् १६४१ में हुआ था। जैसा पहिले ही लिखा जा चुका है वह मुगल उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब की ओर से लड़ा था और उसके लिए लड़ते हुए वीरता प्रकट करके बादशाह से उच्च प्रशंसा प्राप्त की थी। औरंगजेब ने उसको जो सुन्दर तलवार भेंट की वह अब भी एक पारिवारिक चल सम्पति के रूप में सुरक्षित है। इस राजकुमार की निडरता और पराक्रम की अनेक कहानियाँ प्रचलित है। कर्नल टॉड ने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि एक बार इस युवा राजकुमार ने एक बाघ को बाहुयुद्ध में मार डाला। इस पर बादशाह ने उसे २५ गांवों की जागीर प्रदान की। कहा जाता है कि दक्षिण के युद्धों में भाग लेते समय एक बार उसने बहमनी शासक की सेना का नेतृत्व वाले एक हब्शी अफसर का सिर एक ही प्रहार में उड़ा दिया था। सन् १६६७ में बँगाल में गड़बड़ी

में सुरक्षित है और बीकानेर के शासकों द्वारा संग्रहीत अन्य निजी वस्तुओं के साथ बीकानेर किले के संग्रहालय में रखा हुआ है।

के समय आमेर के राजा रामसिंह और दूसरों के साथ वह विद्रोह का दमन करने भेजा गया। केशरीसिंह की मृत्यु सन् १६८५ में हुई।

महाराजा कर्णसिंह का तीसरा पुत्र पद्मसिंह, जो केशरीसिंह से चार वर्ष छोटा था, अपने युग का सर्वश्रेष्ठ वीर माना जाता है। वह बीकानेर का एक निजन्धरी वीर बन गया है। इस राजकुमार में अदम्य साहस और महान बल था। उसकी तलवार के भयंकर प्रहार से शायद ही कोई बच सका हो। कहीं उसका क्रोध उत्तेजित न हो जाय इस डर से प्रत्येक व्यक्ति उसका उचित सम्मान करता था। कहा जाता है कि एक बार जब वह और उसका छोटा भाई मोहनसिंह औरंगाबाद में बादशाह के साथ थे तो मोहनसिह का एक पालतू हरिन डेरे से बाहर निकल गया। शाहजादे मुअज़्म के साले मुहम्मदशाहमीर कोतवाल के नौकर ने उसे पकड़ लिया। जब मोहनसिंह ने अपने नौकर को भेज कर हरिन वापस माँगा तो उसे डरा कर लौटा दिया और हरिन नहीं दिया। दूसरे दिन जब मोहनसिंह बादशाह का मुजरा करने गया तो उसने कोतवाल से उसकी कुशल क्षेम पूछी और उससे अपना पालतू हरिन वापस माँगा। कोतवाल ने इन्कार कर दिया और उसे मिथ्यावादी कहा। इससे मोहनसिंह का क्रोध भड़क उठा। पर उसके म्यान से तलवार निकालने के पूर्व ही कोतवाल एवं उसका साला मोहनसिंह पर टूट पड़े और उसे मरणान्तक रूप में घायल कर दिया। पद्मसिंह इस ड्योढ़ी के, जहाँ यह दुखान्त घटना घटित हुई, पास ही अपना हुक्का पी रहा था। उसने इस लड़ाई का शोर सुना और वह तुरन्त मौके पर पहुँच गया। अपने भाई को रक्त में लथ-पथ पड़ा देखकर उसने अपनी ढाल और बड़ी तलवार उठाई तथा कोतवाल की ओर तेजी से बढ़ा। कोतवाल डर कर दीवानखाने में भाग गया। पद्मसिंह ने वहाँ भी उसका पीछा किया। इस राजपूत राजकुमार को शेर के समान क्रुद्ध देखकर बादशाह और उसके सारे दरबारी वहाँ से शीघ्र बाहर चले गये और पद्मसिंह ने गर्जना करते हुए एक खम्भे के पीछे छिपे कोतवाल पर तीव्रता से प्रहार किया। यह प्रहार इतना तीव्र था कि कोतवाल के दो टुकड़े हो गये और पत्थर के स्तम्भ से एक बड़ा टुकड़ा कट कर अलग जा गिरा। तलवार का भी थोड़ा सा हिस्सा टूट गया।[1]

इस राजकुमार की असाधारण वीरता की अनेक बातें कही

---

१. टुकड़ा टूटी हुई यह तलवार बीकानेर के किले में करणी-संग्रहालय में रखी हुई है।

जाती है। कहा जाता है कि उसने एक नवाब के हाथी को हौदे सहित खींच लिया था। इस पर नवाब और जोधपुर के राजा सवार थे। नवाब और राजा दोनों महाराजा कर्णसिंह को मारने का षड्यन्त्र कर रहे थे पर पद्मसिंह की वीरता के इस प्रदर्शन ने उनको भयभीत कर दिया। उसकी प्रसिद्ध तलवार ३ फीट ११ इंच लम्बी और २॥ इंच चौड़ी है[1] तथा उसकी अभ्यास करने की २५ पौंड वजन वाली तलवार साढे चार फीट लम्बी और २॥ इंच चौड़ी है।[2] ये दोनों बीकानेर के सिलेखाने में सुरक्षित हैं और प्रतिवर्ष एक विशेष दिवस पर उसकी तलवार की पूजा की जाती है।

२४ मार्च सन् १६८३ को तापी नदी के तट पर मराठों के विरुद्ध लड़ते हुए पद्मसिंह का देहान्त हुआ।[3] लेकिन मरने से पूर्व उसने शत्रुओं के सेनापति सांवतराय और जादूराय व कई अन्य सैनिकों को मार डाला। अपने साम्राज्य के इस वीर सैनिक की मृत्यु पर बादशाह ने शोक प्रकट किया और अनूपसिंह को एक संवेदना पत्र भेजा।

कर्णसिंह का चौथा और सबसे छोटा पुत्र मोहन सिंह, जैसा पहले लिखा जा चुका है, औरंगजेब के कोतवाल द्वारा मारा गया। वह शाहजादे मुअज़्ज़म का मित्र और कृपापात्र था। बहुत से अफसर उससे ईर्ष्या रखने लगे और उसे खत्म करने की तलाश में थे। ऐसा सन्देह किया जाता है कि उससे छुटकारा पाने के लिये ही शाहजादे के साले मुहम्मद शाह मीर ने जान बूझ कर एक हरिन चुराने के साधारण मामले को लेकर उससे झगड़ा किया।

महाराजा अनूपसिंह के ज्येष्ठ पुत्र स्वरूपसिंह का जन्म सन् १६८६ में हुआ था।[4] सन् १६९८ में अपने पिता की मृत्यु के बाद जब वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा तो उसकी आयु ९ वर्ष की थी। वह आदूणी में अपने पिता के साथ था और राजा बनने के बाद भी वह वहीं रहा। बीकानेर में राज्य का कार्य उसकी माता सीसोदणी चलाती थी। सन् १६९९ में जब वह

---

१. बीकानेर के किले में करणी संग्रहालय में ये रखी हुई हैं।

२. वही।

३. भीमसेन बुरहानपुरी, नुस्खये दिलखुशा, पृ० १७३। "जेधे यांची शकावली"—"शके १६०५ रूधिरोदगारी संवतसरे चैत्रमासी रोहिला खान कोल वणतून उतरोन रणमस्त खान घाटावरी घेऊन गेला। येते वेलेस रूपाजी भोंसले याणी तिटोली याजवल लढाई केली। पद्मसिंह रजपूत घेतला। युद्ध प्रसंग होऊन पद्मसिंह व कितेक थोर थोर लोक मारिले।"

४. श्यामलदास–पूर्व उद्धृत भाग २ पृ० ५००।

राम राजा और उसके बच्चों के साथ, जो जुल्फिकार खाँ [1] की कैद में थे, शाही दरबार में गया तो उसे एक हजार जात और पाँच सौ सवार का मनसब [2] प्रदान किया गया। वह जुल्फिकार खाँ के साथ दरबार में रहा।

बीकानेर राज्य के अफसर दो परस्पर विरोधी गुटों में बंटे हुए थे। एक गुट में महाजन के कुंवर भीमसिंह, भुकरका के ठाकुर पृथ्वीसिंह, जसाणा के अमरसिंह, ललित नाजिर और दूसरे लोग थे। दूसरे गुट में मूंधड़ा जसरूप, चतरभुज, मान रामपुरिया, कोठारी नैणसी, कर्मचन्द और दूसरे लोग थे। दूसरे दल के मूंधड़ा जसरुप और चतरभुज तो स्वरूपसिंह के पास थे पर मान रामपुरिया, कोठारी नैणसी और अन्य लोग राज्य का शासन चलाने में राजामाता को योग देते थे। एक बार जब राजमाता बीमार पड़ी तो ललित, जो उसका विश्वासी था, ने उसके मन में यह बात जमादी कि मान राम-पुरिया आदि राजामाता को जहर देकर मार डालना चाहते हैं। एक विशेष दूत मुकन्दराय के साथ राजमाता ने यह तथ्य स्वरूपसिंह को ज्ञात कराया। महाराजा ने निर्देश देकर उसे वापस भेजा। पर वापस लौटकर मुकन्दराय ने अपने साथ लाये महाराजा का पत्र दिखाने के बहाने मान रामपुरिया और दूसरों को बुला भेजा। जब वे आये तो उन्हें कैद कर लिया और बाद में राजमाता के कहने से उन्हें मरवा डाला। जब यह समाचार दक्षिण में स्वरूपसिंह के पास पहुँचा तो उसके साथ के सरदारों ने उसे यह विश्वास करा दिया कि यह काम अनुचित हुआ है। महाराजा का मन ललित से फिर गया। [3] जब ललित को यह मालूम हुआ तो वह सुजानसिंह और आनन्दसिंह (स्वरूपसिंह के सौतेले भाई) से मिल गया। उसने उनकी माता राजावत रानी के मन में यह बात जमादी की राजमाता उनके दोनों पुत्रों को मरवाने का षड्यन्त्र कर रही है।

ललित की सलाह पर राजावत रानी ने अपने पुत्रों को ललित की देख रेख में बादशाह की सेवा में दिल्ली भेजने का प्रबन्ध किया। यह दल दिल्ली की ओर मुश्किल से तीन मंजिल गया। था कि दल के साथ जाने वाले और शकुन जानने वाले जेसलमेर के एक भाटी ने कहा कि उन्हें १६ पहर तक वहीं रुक जाना चाहिये क्योंकि इस समय यात्रा

१. श्यामलदास-पूर्व उद्धृत भाग ३, पृ० ७१७।
२. मुहम्मद सैयद अहमद-पूर्व उद्धृत पृ० ६३।
   व्रजरत्नदास-पूर्व उद्धृत (हिन्दी) पृ० ९०।
३. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ४५-४६।

के लिये शकुन अच्छे नहीं है। दल १६ पहर तक वहीं रुका रहा और उन्होंने जब यात्रा पुनः आरम्भ की तब दूसरी दिशा से एक कासिद आया। उसने खबर दी कि महाराजा स्वरूपसिंह का दक्षिण में चेचक से देहान्त हो गया है। इसका तात्पर्य था कि स्वरूपसिंह के जीवित दो भाइयों में बड़ा सुजानसिंह बीकानेर का अगला शासक था क्योंकि स्वरूपसिंह की निःसन्तान मृत्यु हुई थी। अतः यह दल बीकानेर लौट गया।[1] दोवांगर के रूप में अब राजावत रानी राज्य की वास्तविक प्रधान थी। उसने राज्य के सारे सरदारों को महल में बुलाया और बीकानेर की गद्दी पर अपने पुत्र के राज्यारोहण की विधिवत् घोषणा कर दी।

स्वरूपसिंह का देहान्त सन् १७०० में आदूणी में हुआ।[2] तब बीकानेर की गद्दी पर सुजानसिंह बैठा। उसका जन्म १६९० में हुआ था। उस समय औरंगजेब दक्षिण में था। उसने सुजानसिंह को वहाँ बुलाया। महाराजा अपने कई सरदारों के साथ दक्षिण गया और दस वर्षों तक वहां बादशाह की सेवा में रहा।[3]

सन् १७०७ में जब अहमदनगर में औरंगजेब की मृत्यु हुई तो अजीतसिंह ने जिसे अपने पिता (जोधपुर का जसवन्तसिंह) की गद्दी से वंचित कर दिया गया था, मुगल साम्राज्य की क्षीण होती हुई शक्ति का लाभ उठाया। उसने जोधपुर पर आक्रमण किया, वहां के मुगल शासक जफर कुली खां को निकाल दिया और अपनी पैतृक राजगद्दी पर बैठा।[4] इसके शीघ्र बाद उसने बीकानेर पर आक्रमण किया। सुजानसिंह के दक्षिण में होने के कारण उसकी अनुपस्थिति में उसके मन्त्री और सरदार राज्य करते थे। इनमें से कुछ अजीतसिंह से मिल गये। फलस्वरूप अजीतसिंह अस्थाई रूप से बीकानेर पर अधिकार करने में समर्थ हो गया। पर अन्त में जब भूकरका और मलसीसर के ठाकुरों के नेतृत्व में बीकानेर की सेना ने आक्रमण किया तो जोधपुर वालों को हटना

---

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत पृ० ४६।

२. स्वरूपसिंह की स्मारक छतरी का लेख।

३. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ४६–४७।

४. सरकार–शोर्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, पृ० ३६७।

पड़ा।[1] अत्यधिक गर्मी और पानी की कमी के कारण भी जोधपुर की सेना को अधिक नुकसान उठाना पड़ा।[2]

---

१. पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ० ४६।
२. जोधपुर सीधे मार्ग बीकानेर से लगभग १३० मील दूर है। यहाँ का जलवायु बीकानेर जैसा ही है पर औसत वर्षा कुछ अधिक होती है।

अध्याय ५

मुगल साम्राज्य के पतन के समय बीकानेर

सिंहावलोकन में यह कहा जा सकता है कि लगभग सवा सौ वर्षों की अवनति, जिसने दिल्ली के मुसलमानी राज्य के टुकड़े कर दिये थे, के बाद बाबर के आगमन से केन्द्र में एक शक्तिशाली राजनैतिक ढाँचे की नींव रखी गई। सन् १५६० तक मुगल साम्राज्य दृढता से स्थापित हो चुका था और अगले सवा सौ वर्षों में इसके क्षेत्र, शक्ति और सम्पति में वृद्धि हुई। जो समृद्धि आई उसके साथ कला और साहित्य का विकास हुआ और एक ऐसी सभ्यता बढ़ी जो किसी अन्य समकालीन सभ्यता से समानता का गर्व कर सकती थी। इसने भारत को संसार के सभ्य देशों में सबसे आगे कर दिया। लेकिन औरंगजेब की नीति से न केवल इसका विकास ही रुका बल्कि अन्त में यह बिखर कर नष्ट हो गया। उसके ईर्षालु और शक्की स्वभाव के कारण उसकी राज्य पद्धति, मेकियावली द्वारा प्रतिपादित सभी धर्म अधर्म विचारों से बढ़ गई थी। जीवन के प्रति जिस धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण ने मुगलों की तीन पूर्व पीढ़ियों के शासन को इतना सफल बनाया था, औरंगजेब जानबूझकर उसका विरोधी बन गया। राजपूत राजा केवल इसीलिये उसके आज्ञाकारी बने क्योंकि उन्होंने उसके पूर्वजों को स्वामी भक्ति की जो शपथ दी थी, वे उसे पवित्रता से निभाना चाहते थे। वे उसके प्रतिशोध के भय से भी उसकी बात मानने को विवश हुए। अपने अत्यधिक संकीर्ण दृष्टिकोण और सन्देह पूर्ण स्वभाव के कारण उसने सामान्य रूप से हिन्दुओं व राजपूतों के विश्वास को नष्ट कर दिया था। उसकी शासन की दोषपूर्ण पद्धति और हानिकारक युद्धों ने मुगल साम्राज्य की जड़ों को खोखला कर दिया था। लेकिन साम्राज्य का नाश तुरन्त नहीं हुआ। उसके बाद जो दुर्बल और कमजोर व्यक्ति दिल्ली की गद्दी पर बैठे, उन्होंने साम्राज्य को और भी जल्दी मिटने दिया। यह बात सन् १७३७ तक

स्पष्ट और प्रत्यक्ष हो गयी।

सन् १६८० में राजसिंह की मृत्यु के उपरान्त मेवाड़ के राणाओं ने राजपूताना में अपना राजनैतिक महत्व खो दिया। कच्छवाहे प्रभावशाली बन गये थे। इन कारणों से उनमें परस्पर ईर्ष्या और भी बढ़ गई। केन्द्रीय सत्ता के नियन्त्रण के अभाव में तथा प्रधानता और सत्ता प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा ने, परस्पर राजाओं में, और एक ही राज परिवार के सदस्यो में भी युद्धों को जन्म दिया। नियम विरूद्ध कार्य आम हो गये। लूट के लिये हमले सामान्य बन गये और विद्रोह व परस्पर विनाश के युद्ध एक दैनिक घटना हो गये।

सुजानसिंह जो सन् १७०० में बीकानेर की गद्दी पर बैठा, उस समय दक्षिण में था। बादशाह ने उसे वहां से बुलाया था। सन् १६७३ में जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने उसके पुत्र अजीतसिंह को जोधपुर की गद्दी से वंचित कर दिया था। अब अजीतसिंह ने विद्रोह किया। उसने जोधपुर के उप-फौज़दार जफरकुलीखां को वहाँ से हटा दिया और नगर पर अधिकार कर लिया।[1] सुजानसिंह के दक्षिण में होने का लाभ उठाकर उसने अपनी सेना बीकानेर पर भी भेजी पर अन्त में उसे विवश होकर हट जाना पड़ा।[2]

सुजानसिंह बीकानेर लौटा। उसे विश्वास हो गया था कि डग-मगाते हुए मुगल साम्राज्य की शक्ति पर भरोसा करने से कोई लाभ नहीं है। औरंगजेब के बाद उसका पुत्र बहादुरशाह बादशाह बना। उसने शाह आलम की उपाधि धारण की। उसका शासन पाँच वर्ष चला और उसके बाद उसका पुत्र मौजुद्दीन जहांदरशाह के नाम से सिंहासन पर बैठा। लेकिन ६ महिने के भीतर ही उसके भतीजे फर्रुखसियर ने उसे मरवा डाला। फर्रुखसियर केवल नाम का बादशाह था। वास्तविक सत्ता महत्वाकांक्षी सैयद बन्धुओं (अब्दुल्लाखां और हुसैनखां) के हाथ में थी। उन्होंने जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह को अपने साथ मिला लिया और उसके द्वारा फर्रुखसियर को मरवा डाला।[3] उसके बाद मुगल तख्त के दो उत्तराधिकारी रफी उलदरजात और रफी उद्दौला सात मास की अल्प अवधि में ही मर

---

१. सरकार-शोर्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, पृ० ३६७।

२. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ४६।
   दयालदास-पूर्व उद्धृत भाग २ पृ० ६०।

३. श्यामलदास-वीर विनोद, भाग ३, पृ० ८४१-४२।

गये। उनके बाद बहादुरशाह का पोता और जहांदरशाह का पुत्र रोशन अख्तर सिंहासन पर बैठा। उसने अपना विरुद मुहम्मद शाह रखा।

जब दिल्ली में इस प्रकार निरन्तर होने वाले परिवर्तन हो रहे थे तो उस समय महाराजा सुजानसिंह अपने राज्य की लुटेरों से, जो केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने से स्वच्छंद हो गये थे, रक्षा करने में व्यस्त था। दिल्ली के डगमगाते तख्त पर मोहम्मदशाह अपने को अधिक सुरक्षित नहीं समझता था। लेकिन पहले के गड़बड़ी के वर्षों में सुजानसिंह ने जो श्रेष्ठ व्यवहार किया उससे बादशाह को उसकी सच्ची मित्रता की कुछ आशा बंधी। अतः उसने उसे दिल्ली आने के लिये एक आवश्यक सन्देश भेजा। लेकिन सुजानसिंह ने स्वयं राज्य से अनुपस्थित हो कर खतरा उठाना उपयुक्त नहीं समझा और केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध बनाये रखने की दृष्टि से खवास आनंदराम और जसरूप को कुछ सेना के साथ दिल्ली भेजा। उसने मेहता पृथ्वीसिंह को एक टुकड़ी के साथ अजमेर की चौकी पर भेज दिया।[1]

सुजानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र जोरावर सिंह खवास आनंदराम से, जो महाराजा का विश्वास पात्र था, ईर्ष्या रखता था और उसे पदच्युत करना चाहता था। इसमें असफल होकर वह अपने पिता से अलग नोहर जाकर रहने लगा और आनंदराम को मरवाने में सफल हो गया। इससे सुजानसिंह चिढ़ गया। जोरावरसिंह फिर भी अपने पिता से अलग ऊदासर जाकर रहने लगा। पिता पुत्र के इस विरोध से राज्य में बहुत दूषित वातावरण उत्पन्न हो गया। अन्त में सुजानसिंह को समझाया गया कि वह जोरावरसिंह को वापस बुला ले और उसे क्षमा कर दे। फलस्वरूप सुजानसिंह ने राज्य का शासनकार्य जोरावर सिंह को सौंप दिया।[2]

इसी बीच जोधपुर के साथ नये झगड़े शुरू हो गये। मुगल बादशाह मोहम्मदशाह के संकेत से अभयसिंह अपने पिता अजीतसिंह को मरवाने (२३ जून सन् १७२४) में सफल हो गया और जोधपुर की गद्दी पर बैठा।[3] बीकानेर के विरुद्ध अपने पिता की नीति पर चलते हुए उसने अपने भाई बख्तसिंह को एक बड़ी सेना देकर सन् १७३३ में बीकानेर पर भेजा। लेकिन

---

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ४७।
   दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६०–६१।
२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६२।
   पालेउट–पूर्व उद्धृत पृ० ४८।
३. श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग ३ पृ० ८४२–४४।

जोधपुर की सेना बीकानेर की शक्ति को दबाने में असफल रही और पानी व रसद की कमी के कारण उसे बहुत नुकसान उठाना पड़ा। अन्त में २० फ़रवरी १७३४ को जोधपुर की सेना को हटना पड़ा।[1] कुछ महीनों के बाद बख्तसिंह ने पुनः बीकानेर पर आक्रमण किया। पर अन्त में उसे वापस भाग जाना पड़ा (जून सन् १७३४)।[2]

इस बाहरी खतरे के अतिरिक्त सुजानसिंह को आन्तरिक झगड़ों को भी शान्त करना पड़ा। भूकरका के ठाकुर कुशलसिंह और भादरा के ठाकुर लालसिंह में एक झगड़ा हो गया था। जब दोनों दलों ने अपना विवाद निपटाने के लिये हथियार सम्भाले तो सुजानसिंह उनमें मेल कराने के लिये गया और अपने प्रयत्न में सफल हो गया। जब वह रायसिंहपुर में डेरा डाले हुए था तो वह सख्त बीमार हो गया और वहीं १६ दिसम्बर १७३५ को उसका देहान्त हो गया।[3] अपने पिता सुजानसिंह की मृत्यु के बाद जोरावरसिंह (जन्म तिथि १४ जनवरी १७१३) सन् १७३६ में २३ वर्ष की आयु में बीकानेर की गद्दी पर बैठा। बीकानेर जोधपुर की सीमा पर जोधपुर की सेना ने जिन स्थानों पर अधिकार कर लिया था उसने उनको वहाँ से हटाने का कार्य तुरन्त किया।[4] उसके पिता के शासनकाल में जोधपुर से हुई लड़ाइयों के कारण राज्य के आन्तरिक प्रशासन में दुर्बलता आ गई थी। इसके बाद ठाकुरों में कुछ असन्तुष्ट तत्व उत्पन्न हो गये थे। इनमें चूरू का ठाकुर संग्रामसिंह प्रधान था। लेकिन इसके पूर्व

---

१. श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २ पृ० ५००–५०१।
 पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ४७।
 दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६१।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६२–६३।
 पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ४८–४६।
 श्यामलदास–पूर्व उद्धृत भाग २, पृ० ५०१।

३. श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २ पृ० ५०१।
 पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ४६।
 दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६३।

४. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ४६।
 दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६३।

कि वह कुछ शक्ति संचय करता, युवा महाराजा ने उसे राज्य से निकाल दिया और उसकी जगह चूरू की जागीर जुझारसिंह को दे दी। संग्रामसिंह जोधपुर चला गया। वहाँ उसे बहुत सम्मान दिया गया। लेकिन जोरावरसिंह यह बात पसन्द नहीं करता था कि उसका कोई सरदार जोधपुर में रहे। अतः उसने संग्रामसिंह के पूर्व कृत्यों को क्षमा कर दिया और पुनः चूरू की जागीर उसे प्रदान की गई। संग्रामसिंह सीधा चूरू चला गया। वह इतना साहसी था कि स्वयं महाराजा के समक्ष बीकानेर नहीं गया इससे महाराजा अप्रसन्न हो गया। महाराजा ने पुनः चूरू उससे छीन ली। संग्रामसिंह फिर जोधपुर चला गया। इस बार वह भादरा के ठाकुर लालसिंह को भी अपने साथ ले गया। जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने दोनों का बड़ा सत्कार किया।[1]

बीकानेर के विरुद्ध अपने पूर्व प्रयत्नों में असफल होकर भी जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने बीकानेर पर अधिकार करने की अपनी महत्वाकांक्षा कम नहीं की थी। अपने दरबार में चूरू के ठाकुर के आने पर उसे आशा बँधी कि यदि वह बीकानेर पर पुनः आक्रमण करे तो चूरू के ठाकुर का प्रभाव बीकानेर में काफी होने के कारण उसे सफलता मिल सकती है। अतः उसने ठाकुर संग्रामसिंह को दस हजार सेना देकर बीकानेर पर भेजा। बिना किसी विरोध के संग्रामसिंह बीकानेर के इलाके में प्रविष्ट हो गया। जोधपुर का महाराजा अभयसिह भी अपने साथ १५,००० और सैनिक लेकर बीकानेर पर चढ़ आया। लेकिन जोरावरसिंह के सौभाग्य से अभयसिंह और उसके छोटे भाई बख्तसिंह में झगड़ा हो गया। बख्तसिंह ने जोरावरसिंह को सहायता देने की बात कही। जोरावरसिंह ने मेहता बख्तावरसिंह के सेनापतित्व में ८,००० सेना बख्तसिंह की सहायता के लिये भेजी ताकि वह जोधपुर पर आक्रमण कर सके। अपने विरुद्ध इस कारवाई से अभयसिंह आश्चर्यचकित हो गया। उसने दो लाख रुपये देकर अपने भाई से मेल कर लिया और बीकानेर से अपनी सेना वापस बुला ली। बख्तसिंह ने उपहार देकर बीकानेर की सेना को वापस बीकानेर भेज दिया।[2]

---

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ४६।
दयालदास–पूर्व उद्धृत भाग २, पृ. ६३।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५०२।

२. पाउलेट–पूर्व उद्धृत पृ० ४६।
दयालदास–पूर्व उद्धृत भाग २, पृ०, ६३–६४।

लेकिन बीकानेर और जोधपुर में यह केवल अस्थाई युद्ध विराम था। सन् १७४० में जोधपुर के महाराजा अभयसिंह ने बीकानेर के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों की सहायता से पुनः बीकानेर पर आक्रमण किया। इन सहायकों में चूरू का ठाकुर संग्रामसिंह, भादरा का ठाकुर लालसिंह (जो संग्रामसिंह के साथ जोधपुर गया था) और महाजन का ठाकुर आदि थे। ये लोग देशनोक पहुँचे। वे करणीजी के मन्दिर में गये और मन्दिर के चारणों से कहा कि करणीजी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये वे जोधपुर के लिये उसी तरह से प्रार्थना करें जैसा वे बीकानेर के शासकों के लिये करते हैं। चारणों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। लेकिन अभयसिंह की सेना इससे निराश नहीं हुई। उसने बीकानेर में घुस कर उसे बुरी तरह से लूटा और किले को घेर लिया।[1]

ऐसा माना जाता है कि करणीजी अपने भक्तों—बीकानेर के लोगों की रक्षा कर रही थी। उन्होंने सफेद चील[2] के रूप में दर्शन दिये। सर्व प्रथम दो पड़िहारां ने किले में स्थित शूर मन्दिर से उन्हें देखा। उन्होंने इस असाधारण बात की सूचना तुरन्त महाराजा को दी। महाराजा शीघ्रता से वहां आया। उसने उस विचित्र पक्षी को देखा, उसकी प्रार्थना की और उसे मिठाई खिलाई। दूसरे लोगों ने भी बीकानेर की सेना की विजय के लिये देवी से प्रार्थना की। मिठाई खाने के बाद यह शुभ पक्षी किले के चारां ओर चक्कर लगा कर देशनोक की ओर उड़ गया। किले के रक्षक आस्वस्थ हो गये और शत्रु के विरुद्ध उन्होंने अपने प्रयत्न और बढ़ा दिये।[3]

---

१. पाउलेट—पूर्व उद्धत, पृ० ५०।

२. सफेद चील राठौड़ों द्वारा एक पवित्र पक्षी माना जाता है जोधपुर और बीकानेर के राज्य चिन्हों पर भी चील अंकित है।

राजस्थान में चील का सम्बन्ध देवी से है विशेषतः सफेद चील का सम्बन्ध देवी करणीजी से जोड़ा जाता है। सफेद चील हमेशा शुभ और सौभाग्य लाने वाली मानी जाती है। करणीजी के मन्दिर में हजारों काबा—चूहे की एक जाति जो केवल देशनोक के मन्दिर में पाई जाती है—स्वतन्त्रता से इधर-उधर दौड़ते दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें से कुछ सफेद काबा कभी कभी दिखाई पड़ते हैं जिनका दिखाई पड़ना भक्तों के द्वारा उसी प्रकार सौभाग्य का चिन्ह माना जाता है जैसे कि सफेद चील का दिखाई पड़ना।

३. पाउलेट—पूर्व उद्धत, पृ० ५०-५१।

नागौर के वख्तसिंह ने जोरावरसिंह की सहायता करने का वचन दिया। वख्तसिंह पहले भी इस प्रकार का वचन दे चुका था। जोरावरसिंह ने आनन्दराम को उसके पास भेजा और उसे बीकानेर की स्थिति से अवगत कराया। जोरावरसिंह ने सुझाव दिया कि घेरा डालने वालों पर बाहर से दबाव पड़ने से ही वे किले की घेराबन्दी हटा सकते हैं। वख्तसिंह और आनन्दराम ने जयपुर के महाराजा जयसिंह से सहायता माँगी। उसने राजामल खत्री के साथ २०,००० सेना जोधपुर को भेज दी। बाद में जयसिंह भी तीन लाख सेना लेकर जोधपुर गया। जब अभयसिंह को यह बात मालूम हुई तो वह बहुत घबराया। उसने बीकानेर का घेरा उठा लिया और दो हजार घुड़सवारों के साथ तेजी से जोधपुर की ओर रवाना हुआ। उसे डर था कि यदि विलम्ब हो गया तो वह अपने राज्य को नहीं बचा सकेगा। जब वह इस प्रकार वापस लौट रहा था तो बीकानेर की सेना ने उसका पीछा किया। लेकिन जयसिंह का जोधपुर पर अधिकार करने का कोई विचार न था। वह तो पूर्व स्थिति बनाये रखना चाहता था और अभयसिंह से पेशकस वसूल करना चाहता था। पेशकस के २१ लाख रुपये निश्चित किये गये।[1] जोरावरसिंह जोधपुर के गाँव वणार में आकर जयसिंह से मिला और अपने को दी गई सहायता के लिये जयसिंह के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।[2]

जोधपुर पर आक्रमण के समय जयसिंह द्वारा दी गई सहायता को ध्यान में रखते हुए वख्तसिंह अपने लिये जोधपुर की गद्दी प्राप्त करने की आशा करने लगा था। लेकिन जब जयसिंह केवल पेशकसी वसूल कर के ही वापस लौट गया तो वख्तसिंह असन्तुष्ट हो गया और जयसिंह के प्रति दुर्भावना रखने लगा। उसने अभयसिंह से मेल कर लिया और ढूंढाड़ पर चढ़ाई कर दी। यह खबर सुनकर जयसिंह भी सेना लेकर उसके विरुद्ध रवाना हुआ। कुछ देर की लड़ाई के बाद वख्तसिंह भगा दिया गया। वख्तसिंह भाग कर आलणियावास गया, जहाँ अभयसिंह उस समय डेरे डाले हुए था। जयसिंह भी और आगे बढ़ा। अजमेर पहुँच कर उसने अभयसिंह को लड़ने के लिये ललकारा। उसने जोरावरसिंह को भी सन्देश भेजा कि वह आकर उससे मिले। जोरावरसिंह ने नागौर पर अपनी सेना के

---

१. पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ. ५१-५२।

२. वही—पृ. ५२।

साथ चढ़ाई कर दी, लेकिन जयसिंह का साथ देने अजमेर नहीं गया।[1]

कुछ समय के बाद बीकानेर के एक जागीरदार, महाजन के ठाकुर भीमसिंह, ने भटनेर पर अधिकार करने की जोरावरसिंह से आज्ञा मांगी। भटनेर उस समय मला गोदारा के अधिकार में था। भीमसिंह ने धोखे से 'मला' को मरवा डाला और सन् १७४० में भटनेर पर अधिकार कर डाला। जब जोरावरसिंह को यह बात मालूम हुई तो उसने हसनखाँ भट्टी को भटनेर पर अधिकार करने के लिये कहा। कुछ लड़ाई के बाद हसनखाँ ने भटनेर पर अधिकार कर लिया।[2] हिसार के पास के जिले में भट्टियों और जोहियों ने पुनः उत्पात आरम्भ कर दिया था। वहाँ से ये जातियां बीकानेर के इलाके में घुस आती थीं। अतः जोरावरसिंह ने हिसार पर अधिकार करने का निश्चय किया। सेना को तैयार किया गया और कुँवर गजसिंह[3], शेखावत नाहरसिंह और मेहता बख्तावरसिंह के साथ उसे नोहर में रखा गया। हिसार पर हमला करने से पूर्व जोरावरसिंह करणीजी के मन्दिर देशनोक गया।[4]

जोरावरसिंह की एक रानी गंगा के किनारे सोरम घाट की तीर्थ यात्रा पर थी। इस दल को रेवाड़ी के राव अहीर गूजरमल के इलाके से गुजरना था। उसने प्रस्ताव किया कि वह और जोरावरसिंह दोनों मिल कर हिसार ले लें। हिसार पर आक्रमण को ध्यान में रखते हुए इस सरदार के साथ बीकानेर की मित्रता स्थापित करने का यह मौका उठाया गया। अपनी ओर से राव ने हमला भी किया। लेकिन कुछ आन्तरिक अशान्ति और अपने पुराने मित्र (जोरावरसिंह) के विरुद्ध बख्तसिंह की शत्रुता से

---

१. पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ० ५३।
   दयालदास-- पूर्व उद्धृत, भा. २, पृ. ६७-६८।
२. पाउलेट-- पूर्व उद्धृत, पृ. ४६-५०।
३. जोरावरसिंह का पुत्र।
४. पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ. ५३।
   उसने अपने परिवार को आगे भेज दिया ताकि यात्रा की दूरी नंगे पैर पार की जाय। इसके बाद वह रवाना हुआ और ओरण की सीमा से मन्दिर तक वह अपनी रानियों के साथ गंठजोड़ा करके पहुंचा। करणीजी को एक सोने का छत्र चढ़ाया गया (कहा जाता है कि वह अब भी वहाँ है) और देशनोक के लोगों को भोजन धन और लोइयां (कम्बलें) बांटी। जिन चारण स्त्रियों ने चरजायें गाई उन्हें प्रत्येक को एक कंठहार दिया गया।

बीकानेर की सहायता राव गूजरमल के पास समय पर नहीं पहुँची। अन्त में बाय के ठाकुर दौलतसिंह और मेहता बख्तावरसिंह के साथ एक सेना भेजी गई। इस सेना ने हाँसी की ओर प्रस्थान किया जबकि स्वयं महाराजा ने हिसार पर अधिकार किया। उसी समय दूसरी सेना ने फतेहाबाद के भट्टियों के विरुद्ध कारवाई की और उन्हें अधीन कर लिया।[1]

हिसार की चढ़ाई से वापस लौटते समय जोरावरसिंह भटनेर के रास्ते से लौटा। वहाँ उसने भटनेर के प्रधान मुहम्मद भट्टी से पेशकसी ठहराई। जब वह अनूपपुर में ठहरा तो बीमार पड़ गया।[2] चार दिन की बीमारी के बाद १५ मई १७४६ को उसका देहान्त हो गया।[3] कुछ लोगों का सन्देह है कि उसे विष दिया गया। इस समय तक मुगल शक्ति पूर्ण रूप से छिन्न भिन्न हो चुकी थी और केवल एक छाया मात्र थी। उसका नियन्त्रणकारी प्रभाव नहीं रह गया था अतः आन्तरिक विद्रोहों व जोधपुर के बाह्य आक्रमण के विरुद्ध मुगलों से किसी प्रभावकारी सहायता की आशा रखना मूर्खता थी। जोरावरसिंह इस स्थिति से भलीभाँति परिचित था। अतः अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिये उसने मौका आते ही अपने पड़ोसियों को अपने पक्ष में किया। यद्यपि बख्तसिंह ने एक बार बीकानेर पर आक्रमण किया था पर यही कारण था कि जब उसने जोरावरसिंह की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया तो इधर से भी वैसा ही किया गया। जयपुर के महाराजा जयसिंह को अपनी ओर करने से कार्य और भी सरल हो गया क्योंकि जयसिंह का जोधपुर के अभयसिंह के प्रति शत्रु भाव था। जोरावरसिंह यह बात भी भलीभाँति जानता था कि राज्य की एकता के लिये जागीरदारों को सन्तुष्ट रखना भी जरूरी है क्योंकि उस समय की स्थितियों में जागीरदारों का नियम और व्यवस्था पालन और भी आवश्यक था। अतः हम देखते हैं कि कई बार उसे कुछ उदण्ड सरदारों के विरुद्ध दमन की कारवाई करनी पड़ी पर सामान्य रूप से वह उन से पेशकसी वसूल करके अथवा भिड़क कर छोड़ देता था।

मोहम्मदशाह अब भी बीकानेर को मुगल तख्त का एक

---

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ५४।
   दयालदास,–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ६८।
२. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ५४।
३. स्मारक छतरी पर शिलालेख।

विश्वसनीय सहायक मानता था, अतः उसने, चाहे जैसा हो, मित्रता का परिचय देते हुए जोरावरसिंह को विश्वास दिलाया कि अभयसिंह को बीकानेर पर अधिकार नहीं करने दिया जायगा। पर जोरावरसिंह ने गड़बड़ी करने वाले भट्टियों पर हाँसी और हिसार में हमला करने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं की। वहाँ उसे बादशाह की सेना से भी लड़ना पड़ा।

जोरावरसिंह की निःसन्तान मृत्यु हुई। उसके छोटे भाई अभयसिंह के दो पुत्र थे— अमरसिंह और गजसिंह। जोरावरसिंह की मृत्यु के समय ठाकुर कुशलसिंह और मेहता बख्तावरसिंह ने किले और नगर का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया और महाराजा के निकट सम्बन्धियों में से बीकानेर की गद्दी के लिये एक उपयुक्त उत्तराधिकारी चयन करने में महत्वपूर्ण भाग लिया। बखतसिंह की सहायता पा कर अभयसिंह के दोनों पुत्र राज्य पर अपना दावा करने बीकानेर पर चढ़ आये। उन्होंने सीमा पर लाडणू में डेरे डाले और बीकानेर के इलाके में उपद्रव करने लगे। कुशलसिंह ने एक दूत को अपनी निशानी के रूप में एक खास अंगूठी देकर उनके पास भेजा और उन्हें बातचीत के लिये गाढ़वाला बुलाया। यह निमन्त्रण पाकर दोनों भाई आये और प्रत्येक ने एक दूसरे से कुछ दूर खेजड़े (शमी वृक्ष) के पेड़ के नीचे अपना डेरा किया। दोनों में छोटा भाई गजसिंह अधिक योग्य था और कुशलसिंह भी उसी को पसन्द करता था। लेकिन इसका निर्णय शकुन विचारने वालों पर छोड़ दिया गया। शकुनों से पता चला कि जो व्यक्ति भूमिया खेजड़े के; जो भोम धणी (भूमि का स्वामी) को समर्पित है, नीचे ठहरा है उसी को महाराजा चुना जाना चाहिये। इस पर गजसिंह को चुपचाप बीकानेर बुलाया गया और उसे इस शर्त पर बीकानेर की गद्दी पर बैठाने का निश्चय किया गया कि राज्य पाकर वह कुशलसिंह और बख्तावर सिंह से अभयसिंह द्वारा बीकानेर के घेरे के समय रसद और खजाने के खर्च का हिसाब नहीं माँगेगा। गजसिंह ने यह वचन दे दिया और सितम्बर सन् १७४६ में उसे बीकानेर का चौदहवां शासक बनाया गया।[1] बड़ा भाई अमरसिंह निराश होकर बीकानेर से चला गया। लेकिन निराश होकर भी वह अपने अधिकार को छोड़ने वाला न था। वह अजमेर गया जहाँ बीकानेर से असन्तुष्ट और भी कई लोग एकत्रित थे। अन्त में सन् १७४७ में अमरसिंह जोधपुर की सेना की सहायता से बीकानेर पर चढ़ आया। लेकिन वह महाराजा के प्रतिरोध को भंग नहीं कर सका और असंख्य

१. नैणसी—पूर्व उद्धृत, भा २, पृ. २०१।

मृतकों और घायलों को छोड़ कर उसे पीछे हटना पड़ा।[1] उन्हीं दिनों बीदावतों ने बहुत उपद्रव करना आरम्भ कर दिया था अतः गजसिंह ने उनके मुखियों— मुहब्बतसिंह, देवीसिंह और संग्रामसिंह को छापर बुला भेजा जहाँ वह ठहरा हुआ था। जब वे आये तो उसने उनको मरवा डाला। इससे इलाके में शान्ति हो गई।[2]

चूंकि बख्तसिंह का अभयसिंह के प्रति वैमनस्य था, उसने गजसिंह से मेलकर सहायता चाही जो उसे दी गई। जोधपुर पर अपने आगामी आक्रमण में बादशाह से भी सहायता लेने की दृष्टि से बख्तसिंह दिल्ली गया और सहायता प्राप्त की। वापस लौटते हुए वह साँभर में ठहरा और उसने गजसिंह को वहीं बुलाया। यह सुनकर अभयसिंह ने मराठों से सहायता मांगी और दोनों सेनाओं ने बख्तसिंह के विरुद्ध प्रस्थान किया। लेकिन जयपुर के महाराजा ने ठीक समय पर हस्तक्षेप करके स्थिति को बचा लिया।[3] इसी प्रकार दूसरे अवसरों पर जब भी बख्तसिंह ने सहायता के लिये कहलाया तो गजसिंह हमेशा उसकी मदद में गया।[4]

मेड़तियों को छोड़कर मारवाड़ के शेष सरदारों ने अब बख्तसिंह पर जोर दिया कि वह जोधपुर की गद्दी लेने के लिये प्रयत्न करे। सन् १७५० में मेड़ता के पास धासर तालाब पर एक भयंकर युद्ध हुआ जिसमें रामसिंह हार गया। यद्यपि रामसिंह का काफी नुकसान हुआ था पर उसने फिर मुकाबला किया। लेकिन वह असफल हो गया और जोधपुर लौट गया।[5] गजसिंह से मिलकर बख्तसिंह ने जोधपुर के बचाव को सरलता से तोड़ दिया और सन् १७५१ में नगर पर अधिकार कर लिया।

---

१. बीकानेर में भाण्डासर के जैन मन्दिर के पास प्राप्त स्मारक शिला लेख जिसे डा. ओझा ने बीकानेर राज्य के इतिहास भा. १ पृ. ३२५ पर उद्धृत किया है। पाउलेट--पूर्व उद्धृत पृ. ५५–५६।

२. पाउलेट--पूर्व उद्धृत पृ. ५६।

३. श्यामलदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ५०४। पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ. ५६-५७।

४. रामसिंह (जो अभयसिंह के बाद जोधपुर की गद्दी पर बैठा था) के विरुद्ध गजसिंह की सेना बख्तसिंह की सेना के साथ मिल कर रेणी और फिर सूर्यावास लड़ी।

५. पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ. ५८-५९।

आधे दिन तक शहर की लूट होती रही। जोधपुर का किला भाटियों की देख रेख में था। उन्होंने उसे बख्तसिंह को सौंप दिया। विजयी बख्तसिंह किले में प्रविष्ट हुआ। महाराजा गजसिंह अपने मित्र को दरबार हाल में ले गया और उसे जोधपुर का महाराजा कहकर गद्दी पर बैठने के लिये कहा। बख्तसिंह ने पहले अपने चचेरे भाई मित्र और साथी महाराजा गजसिंह को बैठाया और कहा कि उसी (गजसिंह) के कारण वह जोधपुर का शासक बन रहा है। यह कार्य कर गजसिंह बीकानेर लौट आया।[१]

सन् १७५२ में गजसिंह ने मूंधड़ा अमरसिंह को शेखावतों का दमन करने भेजा। बख्तसिंह के कहने से दौलतपुर का नवाब भी गजसिंह की सेना में आ मिला। विद्रोहियों का दमन कर दिया गया और शान्ति स्थापित हो गई।[२]

मुगल बादशाह की सत्ता इतनी कमजोर हो गई थी कि वह दूर के इलाकों पर नियंत्रण नहीं रख पाता था। अहमदशाह के कमजोर शासन में हिसार का परगना अव्यवस्थित हो गया। अतः सन् १७५२ में उसने इसे गजसिंह को दे दिया। बीकानेर के महाराजा ने इस परगने के प्रशासन के लिये मेहता बख्तावरसिंह[3] को नियुक्त किया।[४]

उसी वर्ष (अगस्त सन् १७५२ में) जोधपुर के महाराजा बख्तसिंह का देहान्त हो गया। इस पर गजसिंह ने उसके पुत्र विजयसिंह को जोधपुर के शासक के रूप में मान्यता प्रदान की।

बादशाह की आज्ञा का दिल्ली में भी उल्लंघन होने लगा। गजसिंह को बादशाह अहमदशाह ने एक आवश्यक सन्देश भेजकर अपने वजीर (मन्सूरअलीखाँ सफदरजंग) से, अपनी रक्षा के लिये बुलाया। वजीर ने बादशाह के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। गजसिंह ने लगभग साढ़े सात हजार सेना देकर हिसार से बख्तावरसिंह को तुरन्त भेजा। बादशाह ने बख्तावरसिंह का सम्मान किया। वह तुरन्त सहायता भेजने पर गजसिंह से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसे सात हजार जात और पाँच हजार

---

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ५६।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ५०४-५०५।

२. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ६०।
दयालदास–पूर्व उद्धृत भाग २, पृ. ७६।

३. मेहता बख्तावर सिंह महाराजा गजसिंह का मन्त्री था।

४. पाउलेट– पूर्व उद्धृत, पृ० ६१।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भा. २, पृ. ७७।

सवार का मनसब प्रदान किया।[1] इसके साथ ही एक शानदार खिलअत और "श्री राज राजेश्वर महाराजाधिराजा महाराजा शिरोमणि" उपाधि प्रदान की। यह उपाधि राज्य की मोहर पर अंकित की गई। महाराजा के ज्येष्ठ पुत्र को चार हजार जात और दो हजार सवार का मनसब दिया गया।[2] मेहता बख्तावरसिंह को राव की उपाधि दी गई और एक खिल-अत व ४ हजार जात व एक हजार सवार का मनसब प्रदान किया गया।[3] महाराजा की यह नई उपाधि अब सभी आदेशों, शिलालेखों आदि में लिखी जाने लगी।

बख्तसिंह ने गजसिंह की सहायता से जोधपुर की गद्दी सन् १७५१ में रामसिंह से छीनी थी।[4] बख्तसिंह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र विजयसिंह सन् १७५२ में जोधपुर की गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठने के शीघ्र बाद विजयसिंह ने गजसिंह की सहायता माँगी क्योंकि रामसिंह मराठों की सहायता से जोधपुर पर आक्रमण करना चाहता था। गजसिंह अपनी सेना के साथ जोधपुर पहुँचा। लेकिन रामसिंह ने आक्रमण नहीं किया।[5] पर शीघ्र ही सिन्धिया ने मारवाड़ पर हमला किया। रामसिंह अपनी सेना के साथ सिन्धिया से मिल गया। इस समय जयपुर की गद्दी पर माधोसिंह था। वह आरम्भ में जोधपुर की गद्दी रामसिंह को दिलाना चाहता था लेकिन जब सिन्धिया[6] के हाथों विजयसिंह की हार हुई और उसने माधोसिंह से सहायता माँगी तो न केवल वह स्वयं विजयसिंह की मदद के लिये गया बल्कि उसने बीकानेर से भी सहायता माँगी। मेहता बख्तावरसिंह के साथ बीकानेरी सेना माधोसिंह और उसकी सेना से डीडवाणा में आ मिली। पर मराठों ने इस सेना की गति सफलता से रोक दी और

---

१. बादशाह अहमदशाह के सन् जुलूस ६ ता. २ शव्वाल का फरमान।
२. वही।
३. वही।
४. श्यामलदास—पूर्व उद्धृत. भाग २, पृ० ५०४।
   पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृष्ठ ५६—६०।
   दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृष्ठ ७५।
५. श्यामलदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृष्ठ ५०५।
   पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ. ६०।
६. टाड—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १०६१—६३।

विजयसिंह को भागना पड़ा ।[१] विजयसिंह ने बीकानेर में गजसिंह के पास शरण ली और कुछ समय के बाद जोधपुर पुनः प्राप्त करने में माधोसिंह की सहायता प्राप्त करने हेतु ये दोनों जयपुर गये ।[२] लेकिन माधोसिंह का विचार फिर रामसिंह के पक्ष में हो चुका था अतः उसने उनकी सहायता नहीं की । इतना ही नहीं उसने फलादी के चौरासी गांव पुनः गजसिंह को देने का आश्वासन देकर गजसिंह और विजयसिंह में मतभेद उत्पन्न कराने की भी योजना बनाई । गजसिंह इन षड्यन्त्रों का शिकार नहीं बना तो माधोसिंह ने विजयसिंह को मरवाने को कोशिश की ।[3] सन् १७५६ में गजसिंह ने जयपुर में कच्छवाहा रघुनाथसिंह की सहायता से शेखावत ठाकुर नवलसिंह और भूपालसिंह के विद्रोह का सफलता से दमन किया ।[४] उसी वर्ष नोहर में सिक्खों का विद्रोह दबाने के लिये उसे दौलतसिंह और मेहता माधोराय को भेजना पड़ा । उसके बाद गजसिंह ने भादरा के ठाकुर के विरुद्ध अपनी सेना भेजी और बाद में महाराजा स्वयं भी एक बड़ी फौज लेकर वहाँ गया । इस पर भादरा के ठाकुर ने आत्म-समर्पण कर दिया और उसकी जागीर पुनः उसे दे दी गई । तब गजसिंह ने रावतसर पर चढ़ाई की और रावत आनन्दसिंह ने भी आत्म-समर्पण कर दिया ।[५]

उस समय आलमगीर द्वितीय दिल्ली का बादशाह था । एक बार जब वह सिरसा आया तो भादरा का ठाकुर लालसिंह और बाय का ठाकुर दौलतसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हुए । उन्होंने गजसिंह को भी

---

१. श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५०५–५०६ ।
   पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ६२ ।
२. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग २, पृ० १६६ ।
३. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ७६–८१ ।
   पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ६२–६३ ।
   श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५०६ ।
४. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ६५ ।
   दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ८४ ।
५. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ६५–६६ ।

सिरसा आने के लिये लिखा लेकिन उसने न आने का निर्णय किया।[1]

इसी समय के आसपास विजयसिंह ने आर्थिक सहायता माँगी और गजसिंह ने तुरन्त उसे ५०,००० रुपये भेज दिये।[2] एक दूसरे अवसर पर विजयसिंह ने खींवसर के जोरावरसिंह को दवाने के लिये गजसिंह की सहायता माँगी।[3] गजसिंह खींवसर गया और जोरावरसिंह को विजयसिंह की अधीनता स्वीकार कराने में सफल हो गया।[4]

१७५९-६० में भट्टियों और जोहियों ने पुनः उपद्रव करना आरम्भ कर दिया। हुसैन नामक भट्टी सरदार ने अमीमोहम्मद नामक जोहिया सरदार से भटनेर छीन लिया। यह खबर सुन कर गजसिंह ने तुरन्त नोहर की ओर प्रस्थान किया। वहाँ से उसने सेना देकर मेहता बखतावरसिंह को भटनेर भेजा। बखतावरसिंह ने भट्टियों और जोहियों के झगड़े को शान्ति से निपटा दिया।[5]

उसी समय खबर मिली कि दाउद पुत्रों[6] ने अनूपगढ पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया है। महाराजा ने तुरन्त उनके विरुद्ध प्रस्थान किया और अनूपगढ पर अधिकार कर लिया।[7] सन् १७६३ में पुनः दाउद पुत्रों ने अपनी जाति के इख्तियारखां के साथ मिलकर धोखे से नोहर पर अधिकार कर लिया। गजसिंह ने शाह मूलचन्द और दूसरों के साथ अपनी सेना भेजी। जब गजसिंह की सेना अनूपगढ पहुँची तो दाउद

---

१. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. ६६।
दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ०. ८६।

२. वही।

३. खींवसर जोधपुर राज्य के नागौर जिले में एक जागीर थी। वह स्थान बीकानेर और जोधपुर के बीच में है। इस गांव के ठाकुर कर्मसोत राठौड़ गोत्र के प्रधान हैं।

४. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ६६।
दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृष्ठ ८७-८८।

५. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ६७।
दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ८८।

६. भावलपुरी।

७. दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ८८।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ६७।

पुत्रों और जोहियों ने मेल करना चाहा। लेकिन उनके द्वारा प्रस्तुत शर्तें बीकानेर के सरदारों ने अस्वीकृत करदी। जोहिया वापस चले गये। पर उन्होंने रात्रि में एकाएक हमला किया। इसमें बीकानेर की सेना का काफी नुकसान हुआ। शाह मूलचन्द को विवश होकर उनसे मेल की बात करनी पड़ी। इस पर जोहिया गढ़ से हट गये और मूलचन्द ने उस इलाके में गजसिंह का अधिकार पुनः स्थापित कर दिया।[1] सन् १७६७ में जब विजयसिंह ने भरतपुर के जवाहरमल से मेल किया तो गजसिंह अप्रसन्न हो गया। जब विजयसिंह ने सूचित किया कि इस मित्रता के कारण माधोसिंह विरोधी भाव रखने लगा है और उसने माधोसिंह के विरुद्ध गजसिंह से सहायता मांगी तो गजसिंह ने कहलाया कि मैं माधोसिंह का पक्ष लूंगा।[2]

सन् १७७२ में गजसिंह नाथद्वारा गया। उदयपुर का महाराणा भी वहां गया और कहा कि विजयसिंह गोड़वाड़ का परगना नहीं छोड़ता है। गजसिंह ने विजयसिंह को गोड़वाड़ छोड़ने के लिये समझाया पर सफल नहीं हुआ।[3] नाथद्वारा से लौटकर गजसिंह को रावतसर के रावत और बारू व टेकरे के ठाकुरों के विद्रोह को दबाना पड़ा। टेकरा के गढ पर अधिकार कर लिया गया और बारू के ठाकुर ने आत्म-समर्पण कर दिया।[4] सन् १७७३ में जब भट्टियों ने पुनः गड़बड़ी की तो गजसिंह ने उनके विरुद्ध अपनी सेना भेजी। मुहम्मद हुसैनखाँ ने आत्म-समर्पण कर दिया और सन्धि करली।

गजसिंह और उसके पुत्र राजसिंह में साधारण अनबन थी। शेखावत नवलसिंह, चुरू के ठाकुर नवलसिंह और कुछ बीदावतों और भाटियों ने राजसिंह की उसके पिता के विरूद्ध सक्रिय सहायता की। गजसिंह ने इस गठबन्धन को तोड़ दिया और कुछ समय बाद राजसिंह बन्दी

---

१. पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ० ६७-६८।
   दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ८६।
२. श्यामलदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५०६।
   पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. ६८।
   दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६०।
३. ओझा, राजपूताना का इतिहास, भाग २, पृ ६७०।
४. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ७१।
   दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६३।
५. वही।

बना लिया गया। राजसिंह बीमार पड़ गया और गजसिंह भी अस्वस्थ हो गया। दोनों का मतभेद अब मिट गया था। राजसिंह बाद में ठीक हो गया। २५ मार्च सन् १७८७ को अपनी मृत्यु से पूर्व गजसिंह ने अपने पुत्र राजसिंह को बुलाया और अपने उत्तराधिकारी के रूप में राज्य-कार्य उसे सौंप दिया।[1]

अपने ज्येष्ठ भ्राता की अपेक्षा गजसिंह ने बीकानेर का शासक बनाये जाने का औचित्य पूर्णतः सिद्ध कर दिया था। पूर्व विवरण से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि गजसिंह एक योग्य शासक और साहसी योद्धा था। विद्रोह और विरोध को उसने दृढता से दबाया। जो विद्रोही उसकी सेवा में आ जाते उन्हें क्षमा करने को वह हमेशा तत्पर रहता था। लेकिन जो ऐसा नहीं करते उन्हे नष्ट करने में वह जरा भी नहीं हिचकिचाता था। अपने पुत्र राजसिंह को कैद करने में वह नहीं हिचकिचाया। प्रत्येक परिस्थिति में वह सर्वदा अपने मित्रों का साथ देता था। सभी राजपूत राजा उसका बहुत सम्मान करते थे और जब कभी उनके राज्यों में कोई कठिन समस्या उत्पन्न हो जाती तो वे उसकी सलाह और मध्यस्थता चाहते।

जब मुगल साम्राज्य कमजोर हो गया और दिल्ली का बादशाह केवल प्रतीक मात्र रह गया तो भी गजसिंह ने मुगल बादशाह को दिये गये स्वामिभक्ति के वचन का पालन करते हुए कभी मुगल बादशाह के हितों के विरूद्ध कार्य करने की कोशिश नहीं की। इसी प्रकार मुगल बादशाह ने भी उसके प्रति सम्मान और विश्वास का दृष्टिकोण रखा यद्यपि गजसिंह कभी दिल्ली के दरबार में नहीं गया। बादशाह ने उसे "श्री राज राजेश्वर महाराजाधिराज शिरोमणि" की उच्च पदवी और माही-मरातिब का सम्मान दिया।

गजसिंह ने हमेशा अपनी जनता को सुखी और समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया। राजस्व संग्रह और व्यय पर कड़ा नियंत्रण करके उसने राज्य की आय बढाई। दरबारी शान शौकत में अपव्यय करना तो दूर उसने स्वयं कभी भी कोई व्यर्थ खर्च नहीं किया।

बीकानेर के पन्द्रहवें शासक राजसिंह का जन्म सन् १७४४ में हुआ था। अपने पिता की मृत्यु के बारह दिन बाद ४ अप्रेल सन् १७८७

---

१. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ९४।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. ७२।

को वह बीकानेर की गद्दी पर बैठा। अपने पिता के दाह संस्कार के तुरन्त बाद ही गजसिंह के अन्य तीन पुत्र सुल्तानसिंह, मोहकमसिंह तथा अजबसिंह बीकानेर छोड़कर जोधपुर चले गये। उन्हें डर था कि राजसिंह अब महाराजा होकर उन्हें दंडित करेगा क्योंकि पहले उन्होंने धोखा देकर उसे बन्दी बनवा दिया था। राजसिंह का एक अन्य भाई सूरतसिंह जिसने दूसरे भाइयों के साथ राजसिंह को बन्दी बनाने में भाग नहीं लिया था, बीकानेर में ही रहा।

राजसिंह एक घातक बीमारी से पीड़ित था अतः वह राज्य का कार्य नहीं देख सका। उसने अपने विश्वसनीय सरदार मनसुख नाहटा को राज्य की देखभाल का काम सौंप दिया। राजसिंह महाराजा के रूप में केवल २१ दिन ही जीवित रहा। २५ अप्रेल १७८७ को उसकी मृत्यु हो गई। राजसिंह के दो नाबालिग पुत्रों[1] में से बड़ा प्रतापसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी बना। वह बीकानेर का सोलहवां शासक था लेकिन उसकी भी शीघ्र मृत्यु हो गई।[2]

स्वरूपसिंह के राज्यारोहण से लेकर प्रतापसिंह की मृत्यु तक का समय सम्भवतः राजपूत इतिहास का सबसे अधिक अन्धकारमय रूप है। मुगल शक्ति अब केवल कहने मात्र की थी। अकबर से लेकर बहादुरशाह के समय तक साम्राज्य को संगठित और नियन्त्रित करने का जो कार्य मुगल सत्ता करती आ रही थी अब वह नहीं कर सकती थी।

---

१. राजसिंह के दो पुत्र थे – प्रतापसिंह और जयसिंह।

२. टॉड–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ११२८।
लेकिन दयालदास अपनी ख्यात (भाग २ पृ० ६५) में लिखता है कि प्रतापसिंह की ६ वर्ष की आयु में चेचक से मृत्यु हुई। पाउलेट भी अपने "गजेटियर ऑफ बीकानेर स्टेट" (पृ० ७२) में लिखता है कि प्रतापसिंह अपने पिता की मृत्यु के समय जीवित था पर अपने चाचा सूरतसिंह द्वारा मार डाला गया।"

प्रतापसिंह के राज्यारोहण की बात तारीख ५ जून १७८७ के एक पत्र से भी प्रमाणित होती है। यह पत्र जोधपुर में तैनात एक मराठा अफसर कृष्णाजी ने अपने स्वामी को लिखा था। इसका उल्लेख डी. बी. पारसनिस ने अपने "इतिहास संग्रह" (मराठी) भाग ६, पृ० ११३-१४ पर किया है और ओझाजी ने अपने बीकानेर राज्य का इतिहास" भाग २, पृ० ३६३ पर इसे उद्धृत किया है।

फलस्वरूप अब तक जो निजी महत्वाकांक्षा, राज्य विस्तार की भूख और राज्यों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा नियन्त्रण में रखी गई थी, वह अब भड़क उठी। प्रधानता के लिये झगड़े होने लगे। विशेषतः कच्छवाहों और राठौड़ों के बीच हालत बदतर हो गई और राजपूताना के देशी राज्यों में अव्यवस्था और विनाश के दृश्य दिखाई पड़े। यही समय था कि इन परिस्थितियों का फायदा उठाकर मराठे अपना स्वयं का एक साम्राज्य बनाने की सोच रहे थे और विदेशी व्यापारी प्रभावित क्षेत्र पर अंग्रेजी झंडा गाड़ने की साहसी नीति अपना चुके थे। लेकिन डगमगाते हुए मुगल साम्राज्य की राजधानी के इतना निकट होते हुए भी राजपूत स्वयं अपने लिये साम्राज्य बनाने की बात नहीं सोच सके। यद्यपि मुगल बादशाहों के समय उन्होंने दूर दूर के स्थानों को जीता था, व्यापक क्षेत्र पर शासन किया था और मुगल साम्राज्य को मजबूत बनाने में क्षेत्रपाल की सेवायें प्रदान की थीं। पर उन्होंने स्वयं स्थिति का लाभ नहीं उठाया। इसका मुख्य कारण उनकी एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या और राज्यों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा थी।

जब राजपूताना पर ये काले बादल मंडरा रहे थे तो बीकानेर के शासकों ने मुगल बादशाहों के प्रति उस समय भी अपनी स्वामीभक्ति का सच्चा प्रदर्शन किया। मुगल बादशाह इस समय पूर्णतः कमजोर हो चुके थे और समय के अनुसार अपने पड़ौसी राजाओं से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते थे। बीकानेर के शासक एक प्रकार से स्वतन्त्र से थे। मुगल बादशाहों के प्रति स्वामीभक्ति रखते हुए भी मौका पड़ने पर बीकानेर के शासक शाही सेना से लड़ने से नहीं हिचकिचाये जैसा कि उनके हिसार पर आक्रमण से पता चलता है। लेकिन मित्रतापूर्ण सम्बन्ध कायम रखे गये। हम देखते हैं कि शाह आलम ने गजसिंह को मनसब, माही मरातिब और उपाधि दी तथा उसके पुत्र राजसिंह और दीवान बख्तावरसिंह को भी मनसब प्रदान किया। अभयसिंह द्वारा बीकानेर पर आक्रमण के समय मुहम्मदशाह ने जोरावरसिंह को अपनी सहायता का विश्वास दिलाया। बीकानेर के शासकों ने भी अपनी ओर से कृतज्ञता का परिचय दिया। जब वज़ीर मन्सूरअलीखाँ ने अहमदशाह के शासन के विरुद्ध विद्रोह किया और अहमदशाह ने सहायता माँगी तो गजसिंह ने तुरन्त मेहता बख्तावरसिंह के साथ एक सेना दिल्ली भेजी।

बीकानेर के शासकों और तैमूर के वंश में जो सम्बन्ध स्थापित हुआ उसकी जाँच करने पर पता चला है कि पैतृक राज्य जोधपुर से

स्वतंत्र बीकानेर की एक अलग राज्य की स्थापना के समय से लेकर लगभग दो सौ वर्षों तक बीकानेर राज्य और उसके शासकों ने पीढी दर पीढी ऊंची इज्जत, सम्मान, पद व प्रतिष्ठा प्राप्त की। केन्द्रीय सत्ता के साथ अपने सम्बन्ध में उनकी राजनैतिक और सैनिक शक्ति व प्रभाव काफी था। इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि राजपूताना की मुख्य रियासतों में बीकानेर की हमेशा गणना की जाती थी। मुगल साम्राज्य के समय भारत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और बड़ी रियासतों में बीकानेर का जो उच्च स्थान था, वह इतिहास के तथ्यों से सिद्ध हो गया है।

मुगल बादशाहों और बीकानेर के राठौड़ शासको में जिस प्रकार का पारस्परिक व्यवहार रहा उससे यह तथ्य स्थापित होता है कि बीकानेर राज्य का जन्म किसी बादशाह द्वारा दी गई जागीर के रूप में नहीं हुआ। मुगल काल से पहले ही, एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में बीकानेर राज्य की स्थापना बीकाजी ने असंख्य खतरों और गम्भीर कठिनाइयों के बावजूद अपने भुज-बल और अदम्य शौर्य द्वारा की थी। इस प्रकार अपने विजय के अधिकार से और प्रकृति के विरूद्ध भी एक दीर्घ व सतत संघर्ष करते हुए बीकानेर के शासक अपने इस परम्परागत अधिकार (विरासत) को कायम रख सके। मुगल साम्राज्य के इतिहास में बीकानेर के राठौड़ शासकों ने एक महत्व पूर्ण भाग अदा किया। उन्होंने अपना खून बहाकर स्वामी भक्ति का परिचय दिया और मुगल साम्राज्य के लिये सैनिक सेवायें दीं। उन शानदार गुणों के प्रदर्शन में जो किसी वंश को अपनी विजयों को स्थाई करने में सहायता करते हैं, वे किसी से कम नहीं थे। लगभग ६० विभिन्न युद्धों और चढ़ाइयों में बीकानेर के शासकों ने अपना व्यापक अधिकार रखा।

बीकानेर का प्रथम शासक जो मुगलों के सम्पर्क में आया, राव कल्याणमल था। वह बीकानेर का पांचवां शासक था। उसे २००० का मनसब प्रदान किया गया। उसे यह मनसब सन् १५७० में मिला। जोधपुर के राजा को इसके तेरह वर्ष बाद सन् १५८३ में मनसब मिला। ऐसा विश्वास किया जाता है कि हिन्दू राजाओं में केवल आमेर को छोड़कर बादशाही मनसब सबसे पहले बीकानेर के शासक को ही मिला। साथ ही जोधपुर के शासक को राजा की उपाधि मिलने से ११ वर्ष पूर्व ही मुगल बादशाह द्वारा बीकानेर के शासक को राजा की उपाधि मिल चुकी थी। गुजरात के विरूद्ध महान अभियान में राजा रायसिंह को उच्च पद प्राप्त हुआ

था। वहाँ उसने द्वंद युद्ध में गुजरात के सूबेदार मिर्जा मुहम्मद हुसैन को मारकर नगर पर जो धावा बोला उससे उसको ख्याति मिली। रायसिंह ने कई वर्षों तक जोधपुर पर अधिकार रखा और यह उसकी निजी मध्यस्थता का ही परिणाम था कि जोधपुर पुनः उदयसिंह को दिया गया। अकबर के दरबार में केवल जयपुर के शासक को छोड़कर समस्त भारत के तत्कालीन हिन्दू राजाओं में बीकानेर के शासक का अधिक ऊँचा पद और क्रम था।[1] कई अवसरों पर मुगल बादशाहों ने बीकानेर के शासकों को सर्वोच्च सम्मान प्रदान किये। कम से कम तीन अवसरों पर दिल्ली के बादशाहों द्वारा बीकानेर के शासकों को "माही मरातिब" का सम्मान मिला।[2] यद्यपि नालकी[3] ऐसा विरल सम्मान नहीं था पर वह भी बीकानेर के शासकों को प्रदान किया गया।

मुगलों और बीकानेर के राजघराने के बीच सम्बन्ध को पूरी तरह से समझने के लिये बीकानेर के लोगों और शासकों पर मुस्लिम संस्कृति का जो प्रभाव पड़ा, उसका संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है।

बीकानेर काबुल और भारत के महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग पर स्थित था और उधर से गुजरने वाले यात्रियों और काफिलों के कारण विचारों के आदान-प्रदान के अनेक अवसर मिलते थे। बीकानेर के प्रशासन पर भी मुगलों का प्रभाव पड़ा। बीकानेर की सेनाओं ने जो रण नीति अपनायी उसमें भी यह प्रभाव है। यह प्रभाव कला, संस्कृति, साहित्य, चित्र-कला और खेलों में- प्रत्येक जगह दृष्टिगोचर होता है। बीकानेर दिल्ली से

---

१. पाउलेट-गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृ. १७०।
   डे - तबकाते-ए-अकबरी भाग, १, पृ. ५६७।
   ब्लाकमैन-आइने-ए- अकबरी, भाग १, पृ. ३४७, ३५३-३६१, ३८४।

२. यह सम्मान (१) महाराजा अनूपसिंह (२) महाराजा गजसिंह और (३) महाराजा रत्नसिंह को प्रदान किया गया था।

३. नालकी अठपहलू या चौकोर आकार की एक पालकी है जिसमें आगे और पीछे दो या अधिक हत्थे लगे रहते हैं। स्लीमैन अपने "रैम्बल्स एन्ड रिक्लेक्शनस ऑफ एन इन्डियन ऑफिशियल" में लिखता है कि यह तीन उच्च सम्मानों में से एक था जो देश के बड़े भू भाग वाले प्रथम श्रेणी के शासकों और स्वतन्त्र राजाओं को दिया जाता था।

हवाई मार्ग द्वारा केवल २५० मील दूर है अतः मुगल फारस से जो संस्कृति लाये तथा भारतीय जनता के मन पर उसकी जड़ें जमाई, उसके तीव्र प्रभाव से बच सकना असम्भव था। अकबर ने मित्रता और धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अनुसरण किया और विभिन्न उपायों से राजपूतों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। उसने उच्च सम्मान और मनसब देकर उन्हें प्रसन्न किया। कहीं कहीं तो मुगल बादशाहों और राजपूत राजकुमारियों में विवाह भी हुए। इस प्रकार राजपूत राजा मुगल बादशाही के बहुत निकट हो गए और बहुधा उन्होंने बादशाह बनाने के सम्मानित कार्य में महत्वपूर्ण भाग अदा किया। अकबर की नीति राजपूताना के शासकों को युद्ध की अपेक्षा मित्रतापूर्ण तरीकों से अपनी ओर करने की थी। इस नीति में वह बहुत सफल हुआ।

इसी काल में बीकानेर में बारूद का प्रचलन हुआ। सर्व प्रथम तोपों का उपयोग महाराजा जोरावरसिंह के शासनकाल में किया गया। मुगलों के साथ निकट सम्बन्ध होने के कारण स्थापत्य कला और चित्रकला दोनों के ही विकास में उल्लेखनीय प्रगति हुई। कई बार मुगल स्थापत्य की नकल करके और कई बार राजपूताना की मूल हिन्दू कला में मुगल कला को मिला करके एक बहुत रोचक भारत-अरबी स्थापत्य का विकास बीकानेर में हुआ। बीकानेर में शानदार भवन बनाये गये। इनमें सन् १५६४ में महाराजा रायसिंह द्वारा बनाया गया प्रसिद्ध जूनागढ़ का किला भी सम्मिलित है। बीकानेर के किले में स्थापत्य सौन्दर्य के अनेक ऐसे रूप हैं जिन्हें देखकर इतिहासकार को फतहपुर सीकरी और दिल्ली के लालकिले की याद आती है।

स्वयं किला उस समय के सैनिक मानदण्ड के अनुसार बनाया गया है। हर मन्दिर का लकड़ी पर काम किया हुआ दरवाजा अकबरी दरवाजों से काफी मिलता जुलता है। सूरसिंह के शासनकाल (१६१३-३१) में बने भवनों की शैली अकबर के समय के मुगल स्थापत्य का प्रतिनिधित्व करती है जैसे की सूरसागर तालाब और सूर मन्दिर। महाराजा कर्णसिंह (सन् १६३१-६६) की देवीकुण्डसागर में बनी छत्री फतहपुर सीकरी शैली का एक सुन्दर उदाहरण है। देशनोक में करणीजी का मन्दिर, विशेषतः उसका प्राचीनतम भाग जो अब भी है, अकबरी मुगल परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। अनूपसिंह (सन् १६६६-६८) न केवल महान योद्धा था बल्कि वह एक महान विद्वान और कलाओं का प्रेमी था। उसके शासन काल में

निर्मित भवनों में सजे हुए सफेद संगमरमर का उपयोग शाहजहाँ की शैली से मिलता जुलता है, यह स्पष्ट है। सूरसिंह और कर्णसिंह के समय में जो कमरे बने उनके आगे दो मंजिले सफेद संगमरमर के खम्भों पर बने मेहराब से भी यह प्रभाव स्पष्ट प्रमाणित होता है। लेकिन सूरतसिंह के शासनकाल में (सन् १७८७–१८२८) यह प्रभाव घटता हुआ दिखाई पड़ता है। कला और स्थापत्य के प्रभाव की कमी सुजानसिंह (सन् १७००–३६) से आरम्भ होती है जब कि मुगल सत्ता कमजोर हो गई थी और दोनों सत्ताओं में राजनैतिक सम्पर्क शिथिल हो गया था।

उस समय के प्रसिद्ध उस्ता चित्रकारों द्वारा बनाये गये प्रसिद्ध बीकानेरी चित्रसंग्रह की सारे संसार के कला प्रेमियों ने प्रशंसा की है।[1] ये उस्ता मुगल काल में बीकानेर आकर बसे। इन्होंने मुगल कलम (शैली) के सुन्दर चित्र बनाये। इसी के आगे बीकानेर कलम (शैली) का विकास हुआ। धीरे धीरे विदेशी प्रभाव मिट गया और वह हिन्दू शैली के चित्रों में मिल गया। महाराजा कर्णसिंह के समय बीकानेर शैली के चित्रों का स्पष्ट रूप से विकास होने लगा। बीकानेर गलीचा उद्योग के लिए भी प्रसिद्ध था। आज भी बीकानेर के गलीचों पर, जो फारसी ढंग से सुन्दर रोवों से बनाये जाते हैं, मुगल प्रभाव देखा जा सकता है।

महाराजा अनूपसिंह ने किले में जो अत्यधिक सजावट के काम करवाये उनके लिये वे प्रसिद्ध हो गये। स्पष्ट है कि उन कामों पर आगरा निर्माता शाहजहाँ का प्रभाव पड़ा। बीकानेर के किले में अनूप महल जिसमें सोने की कलम से काम किया हुआ है, एक उत्कृष्ट कृति है और अपने प्रकार के सर्वश्रेष्ठ नमूनों में से एक है। दीवालों पर सोने की पच्चीकारी का जो काम किया गया उसकी मूल झलक आज भी विद्यमान है। महाराजा अनूपसिंह साहित्य का एक महान संरक्षक था। बीकानेर के प्रसिद्ध अनूप संस्कृत पुस्तकालय में विभिन्न विषयों के लगभग १०,००० हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इनमें कई तो दुर्लभ रचनायें हैं।

बीकानेर के किले में प्रसिद्ध कर्ण महल महाराजा कर्णसिंह ने बनवाया था। यह कुछ समय पहले तक दरबार हाल के रूप में काम में आता था। इसे देखकर दर्शक को आगरा और दिल्ली के लाल किलों के ऐसे ही[?]

---

१. ग्रे–राजपूत पेन्टिंग्स।
गोएट्स – आर्ट एन्ड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर स्टेट।

दरबार हाल याद हो आते हैं। मुगल प्रभाव यहां के लोगों के सामाजिक जीवन पर भी पड़ा। बहुत से रिवाज और उत्सव मुगलों के अनुकरण पर चले और कायम रहे। पोशाक में न केवल यहाँ के शासकों ने बल्कि शिष्ट-जनों ने भी कुछ मुगल ढंगों को अपनाया। पोशाक के कुछ रूप मुगलों से लिये गये जैसे कि अंगरखा और तंग पायजामा। हिन्दू स्त्रियां साड़ी पहनती थीं जब कि मुस्लिम स्त्रियां लम्बे पायजामे या घाघरे और चोलियां पहनती थीं।

मुगलों द्वारा आरम्भ किये गये चौपड़, सतरंज, शिकार खेलना और बाज पालना आदि खेल कूद भी बीकानेर में चालू हुए।[1] खाद्य और पेय पर भी गहरा मुगल प्रभाव पड़ा। मुगल प्रभाव से कुछ बुरे रिवाज भी प्रचलित हुए जैसे कि पर्दा प्रथा और बहु-विवाह। इन दोनों हानिकारक रिवाजों ने स्त्रियों को पराधीन बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया। राजपूतों में पर्दा प्रथा तो राजस्थान के एकीकरण तक रही और आज भी इस दुर्भाग्यपूर्ण प्रथा के अवशेष राजपूत परिवारों में देखे जा सकते हैं।

बीकानेर के लोगों के जीवन पर इस प्रभाव के बावजूद यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि बीकानेर अपनी मूल संस्कृति को बनाये रखने में भी काफी सौभाग्यशाली रहा। भारत के राजनैतिक मंच से मुगलों के हटते ही बीकानेर शीघ्रता से अपनी निजी संस्कृति की ओर झुक गया।

बीकानेर राज्य की प्रारम्भिक राजस्व पद्धति मुगल प्रभाव से बच नहीं सकी। मुगल पद्धति बहुत विकसित थी। भू प्रबन्ध सबसे पहले शेरशाह के समय में हुआ। बाद के वर्षों में स्वयं अकबर ने चार या पाँच राजस्व के प्रयोग किये। राजपूताना के शासकों के इलाके मोटे रूप से दो भिन्न प्रकार के थे– (१) वतन या पैतृक राज्य और (२) मुगल बादशाहों द्वारा मनसब में प्रदान की गई जागीर। जहां तक जागीरदारी में मिली भूमि का सम्बन्ध था उन महालों या परगनों में राजस्व की वही पद्धति प्रचलित थी जैसी कि उस सूबे या सरकार के शेष भागों में जिनका कि यह अंग थी। बीकानेर की पद्धति अजमेर सूबे की पद्धति जैसी थी।

पैतृक इलाके के लिए एक तथा मनसब में मिली जागीर के लिये दूसरा इस प्रकार राजस्व वसूली के लिये दो विभिन्न प्रकार के नियमों से

---

१. यह सम्भव है कि चौगान, जो प्राचीन पोलो का रूप है; का खेल भी बीकानेर में खेला जाता था जैसा कि बीकानेर के किले की दीवार पर यह खेल खेला जाता हुआ अंकित है।

उत्पन्न होने वाली प्रशासनिक कठिनाई से बचने के लिये यह उचित समझा गया कि जहाँ तक सम्भव हो मुगल व्यवस्था को अपना लिया जाय। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगल व्यवस्था के अमीनों की भांति राजपूताना में भी ऐसे ही अफसर थे जो चिरायत कहलाते थे और जिनका कार्य राजस्व वसूल करना था। पर इन दोनों पद्धतियों में एक महत्वपूर्ण अन्तर था। मुगल पद्धति, जो रैयतवारी कहलाती थी, में बीच के किसी व्यक्ति को न रखकर किसानों से सीधी वसूली पर जोर दिया गया था। रियासतों में चिरायत यह कर ठाकुरों से या उनके महाजनों से वसूल करते थे और वे किसानों से इसको वसूल करने के लिये स्वतन्त्र थे। दूसरा अन्तर यह था कि मुगल पद्धति में जमीन की पूर्ण जाँच और उसमें उपज की मात्रा और वस्तु के गुणों को ध्यान में रखते हुए जो आँकड़े तैयार किये जाते थे उनके आधार पर कर निश्चित किया जाता था। रियासतों में चिरायतों द्वारा बिना किसी नियम के यों ही कर निश्चित कर दिया जाता था। यह उल्लेखनीय है कि राजपूताना के राजपूत राज्य यद्यपि अधिकांशतः अजमेर सूबे में थे, पर वे वास्तव में सूबे के एक अङ्ग नहीं थे। इन राज्यों के शासक, जिनमें बीकानेर भी था अजमेर के मुगल शासक के नीचे नहीं थे। उन्हें पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त थी और बादशाह से उनका सीधा सम्बन्ध था। कुछ राजपूत राज्यों का जो मुगलों को कर देते थे, केवल इतना ही सम्बन्ध था कि कर की रकम सूबे के खजाने में जमा करा दी जाती थी। बीकानेर ने कभी कर नहीं दिया।[१]

बीकानेर राज्य के प्रशासन पर मुगल शासन का जो कुछ प्रभाव पड़ा उसका अध्ययन भी रोचक होगा। बीकानेर का प्रशासनिक ढ़ाँचा और उस दृष्टि से सामान्यतः राजपूताना के राजपूत राज्यों का ढ़ाँचा भी वास्तव में प्राचीन हिन्दू प्रशासनिक संस्थाओं पर निर्भर था। इन संस्थाओं का उद्भव और विकास ईसा पूर्व ३०० से लेकर ईसवी सन् ११०० तक हुआ। इन संस्थाओं को कायम रखने का श्रेय इन राजपूत राज्यों को ही है। राजपूताना के कुछ भागों पर पहले अलाउद्दीन खिलजी और बाद में शेरशाह का जो अधिकार रहा वह अधिक समय तक नहीं चला। वह साधारण

---

१. एचिसन—पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. २-३।
राजपूताने में १९ रियासतें और २ जागीरें थीं इनमें से निम्नलिखित ११ कर देती थीं – बाँसवाड़ा, बूंदी, डूंगरपुर, जयपुर, झालावाड़, जोधपुर, कोटा, लावा, मेवाड़, प्रतापगढ़, और शाहपुरा।

था। अतः बीकानेर के प्रशासनिक ढांचे पर मुस्लिम पद्धति का कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ा। क़ानूनगो के अनुसार शेरशाह ने प्रशासन की पद्धति में कुछ नई संस्थाओं को चालू किया लेकिन बाद के कुछ लोगों का मत है कि अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि शेरशाह केवल कुछ सुधार कर सका। शेरशाह कोई नया प्रवर्तक नहीं था बल्कि केवल एक सुधारक था। अकबर ने उन्हीं में सुधार किया। लेकिन चाहे यह पद्धति विदेशी सरकार के नमूने पर बनाई गई हो, यह निश्चित रूप से बहुत से रूपों में भारत में प्रचलित प्राचीन पद्धति से मिलती जुलती थी। राजतन्त्र का विचार मूलतः वैसा ही था। दीवानों या मन्त्रियों द्वारा राजाओं को सलाह देने का स्वरूप भी आंधिकांशतः वैसा ही था। इलाकों को सूबे, सरकार और परगनों नामक छोटी छोटी प्रशासनिक इकाइयों में बांटने की पद्धति भी प्राचीन हिन्दू पद्धति से बहुत कुछ मिलती थी। यह समानता इतनी अधिक थी कि राजघराने के राजकुमारों को सूबेदार या शासक नियुक्त करना वैसा ही था जैसा मौर्य काल में राजकुमारों को क्षत्रप नियुक्त करना। महत्वपूर्ण अन्तर जो दिखाई पड़ता है वह केवल पारिभाषिक शब्दों में है जो मुगलों के माध्यम से अनेक फारसी शब्दों से ग्रहण किये गये हैं। अतः मुगलकाल में बीकानेर राज्य की प्रशासनिक पद्धति मूल रूप में मुगल प्रभाव से अप्रभावित रही।

अध्याय ६

बीकानेर का अंग्रेजों से प्रारम्भिक सम्बन्ध

अब हम उस विकट स्थिति में प्रवेश करते हैं जब कि बीकानेर के राजघराने का अंग्रेजों द्वारा स्थापित नई केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध हुआ। बीकानेर के राजघराने और केन्द्रीय सत्ता में जो सम्बन्ध बना उसे अच्छी तरह से समझने के लिये यह आवश्यक है कि इस काल में बीकानेर की आन्तरिक परिस्थितियों और केन्द्रीय सत्ता द्वारा अपनाई गई नीति को ठीक प्रकार से देखकर समझ लिया जाय। अतः बाद के कुछ पृष्ठों में यह प्रयत्न किया गया है कि अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई नीति का संक्षेप में विश्लेषण किया जाय तथा विभिन्न समयों में राज्य में जो परिस्थितियां थीं उनका उपयुक्त स्थलों पर विवरण दिया जाय। पर यह बात समझने की है कि अंग्रेजों द्वारा भारतीय रियासतों के राजाओं के साथ मित्रता के समझौतों को अलग-थलग करके और राज्यानुसार नहीं लिया जा सकता क्योंकि बहुत से मामलों में परिस्थितियां समान थीं जहाँ राजाओं को अपनी आन्तरिक समस्याओं को सुलझाने के लिये एक अधिक शक्तिशाली सत्ता की सहायता और संरक्षण आवश्यक था। अंग्रेजी सत्ता उस समय बढ़ रही थी।

१८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की राजनैतिक स्थिति अस्थिर थी और राजनैतिक सन्तुलन कायम रखना कठिन था।[1] फलस्वरूप ब्रिटिश ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने

---

१. थामसन—दी मेकिंग ऑफ दी इन्डियन प्रिंसेज, भूमिका पृ० ५—६।
थामसन के अनुसार भारत का राजनैतिक ढाँचा सन् १७६६ से १८१६ तक टीपू सुल्तान की मृत्यु और पेशवा को हटाये जाने के बीच की २० वर्षों की अवधि में ही बनाया गया। इस अवधि के आरम्भ में मैसूर के मुस्लिम राज्य का विनाश हो गया और अन्त में मराठों का संघ राज्य अनेक सरदारों में बिखर गया। इन दोनों विजयों ने अंग्रेजों को भारत का स्वामी बना दिया। मराठों

विजय की नीति अपना ली थी। यद्यपि पिट्स का सन् १७८४ का इन्डिया एक्ट पास हो चुका था जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि किसी भी नये इलाके को जबर्दस्ती नहीं मिलाया जायेगा।[1] लार्ड कार्नवालिस ने आधा मैसूर कम्पनी के इलाके में मिला दिया और लार्ड वेलेजली ने तो उसका अस्तित्व ही मिटा दिया। उसने अपने सहायता के समझौतों से ब्रिटिश प्रभुत्व को और भी दृढ़ता से स्थापित कर दिया। लार्ड हेस्टिंग्ज ने इस नीति को और भी अधिक उत्साह से चालू रखा। हम देखते हैं कि सन् १८१८ के बाद भी पंजाब, अफगानिस्तान, सिंध, बर्मा और उत्तर पश्चिम के नये इलाके जीतने के लिये अति उत्साह से प्रयत्न किये गये।

इस प्रकार अंग्रेजों ने हस्तक्षेप न करने का भाव दिखाते हुए भी विजयी की नीति का कड़ाई से अनुसरण किया और इसके लिये भारतीय रियासतों के साथ उन्हें विभिन्न समझौते और सम्बन्ध करने पड़े। यद्यपि अंग्रेजों की विस्तारवादी नीति में समय समय पर अनेक परिवर्तन हुए लेकिन इसका मूल उद्देश्य अपरिवर्तित रहा। वे भारत में ब्रिटिश आधिपत्य को स्थिर और मजबूत बनाने में लगे रहे। आरम्भ में उनका लक्ष्य अपने समुद्रीय और व्यापारिक हितों की सुरक्षा करना था और बाद में भारत में अपने यूरोपियन प्रतिद्वंदियों की शक्ति और प्रभाव का मुकाबला करना था।[2] सन् १७६३ में फ्रांसिसियों की हार, जिसने उन्हें भारतीय मंच से हमेशा के लिये हटा दिया, के बाद अंग्रेजों और भारतीय शक्तियों का सम्बन्ध एक नई स्थिति में प्रविष्ट हुआ। सन् १७५७ से १८१३ तक

की अन्तिम हार के बाद ही आधुनिक भारत का निर्माण हुआ और उसका नक्शा स्पष्ट रूप में बना। आधुनिक भारत इन्हीं २० वर्षों के बीच बना, पहले तो लॉर्ड वेलेजली के शब्दानुसार "मराठा साम्राज्य" के बिखरने से और तब कुछ समय की अनिश्चित और दुर्बल नीति के बाद, लार्ड हेस्टिंग्ज द्वारा उन बची रियासतों को, जो कि अपना अस्तित्व बनाये रखने में सफल रही थीं, दृढ़ता पूर्वक स्थापित रखना। इन २० वर्षों में भारत की राजनैतिक स्थिति अस्थिर रही और इस कारण राजनैतिक संतुलन कायम रखना कठिन था।

१. २४ ज्यो. ३ सी २५।
के. एन. चौपड़ा— ला रिलेटिंग टू दी प्रोटेक्शन ऑफ दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ स्टेट्स इन इन्डिया, पृ० ५।

२. वही, पृ० ७।

उन्होंने घेराबन्दी की नीति का पालन किया और बाद में अधीन और अलग-थलग करने की नीति का पालन किया। सन् १८५८ से भारतीय रियासतों के प्रति अंग्रेजों का दृष्टिकोण अधीन समझौते का बन गया।[1] भारतीय रियासतों के दृष्टिकोण से ये ३ सोपान इस प्रकार थे— (१) ब्रिटिश सुरक्षा (२) ब्रिटिश उन्नति और (३) ब्रिटिश साम्राज्य।

प्रथम अवधि में समानता और स्वतन्त्रता के आधार पर समझौते किये गये और इनमें परस्पर कार्य का विचार रखा गया था। एल्फिंस्टन के अनुसार भारतीय रियासतों को इसलिये सहन किया गया क्योंकि वे "उन सब लोगों के लिये शरणस्थल थीं जिनकी युद्ध, षड्यन्त्र और लूट मार की आदत उन्हें ब्रिटिश भारत में शान्तिपूर्ण नागरिकों के रूप में नहीं रहने देती थी।[2] अंग्रेजों ने आशा की थी कि अधिक शक्तिशाली राज्य अधिक कमजोरों को अपने अन्दर मिला कर स्थिर राज्य बन जायेंगे पर अपनी इस आशा को सत्य न होते देखकर उन्होंने विजय और सहायक समझौते की नीति अपनाई। यह नीति कम या अधिक भारत में अंग्रेजों से प्रतिस्पर्धा रखने वाली यूरोपियन ताकतों जैसे फ्रांसिसी और रूस[2] के विरुद्ध अपने

---

१. ली वारनर--दी नेटिव स्टेट्स ऑफ इन्डिया, पृ० ४३, ५८--५६, ६६ और १५७--१६१।

२. इन्डियन रिफोर्म ट्रेक्ट सीरीज ४, दी नेटिव स्टेट्स ऑफ इन्डिया, पृ० १८।
थामसन्--दी मेकिंग ऑफ दी इन्डियन प्रिंसेज, पृ० २७१।
कोलब्रुक--लाइफ ऑफ एल्फिस्टन, भाग २, पृ० ३१५।
सन् १८३२ में हाउस ऑफ कोमन्स के समक्ष भारतीय मामलों पर गवाही देते हुए एल्फिस्टन ने इसे बहुत स्पष्टता से प्रस्तुत किया है "इस बात में मुझे हमारा हित और साथ ही कर्तव्य भी दिखाई पड़ता है कि हम मित्र सरकारों को सुरक्षित रखने में हरेक तरीका काम में लायें। स्वतन्त्र राज्यों को अधिक संख्या में रखना भी हमारे हित में है। वे राज्य उन सब के लिये शरणस्थल हैं जिनकी युद्ध षड्यन्त्र और लूट की आदत उन्हें हमारे इलाके में शान्त नहीं रहने देती। हमारी सरकार का अन्तर हमारी जनता पर एक अच्छा प्रभाव डालता है। जनता इन बुराइयों का अनुभव करती है जो वास्तव में उनके सामने हैं पर वह यह भूल सकती है कि उसे किन बड़े खतरों से मुक्त किया गया है।"......

३. रत्नास्वामी--ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम इन इंडिया, पृ. ५६४।
के. आर. आर. शास्त्री द्वारा अपनी पुस्तक "इन्डियन स्टेट्स" में पृ. १८ पर उद्धृत।
चौपड़ा--पूर्व उद्धृत, पृ. ७-८।

बचाव के लिये थी।

सन् १८१३ से १८५८ तक अंग्रेजों ने अलग-थलग अधीन सहायता की नीति का अनुसरण किया।[1] हस्तक्षेप न करने की नीति पूर्णतः छोड़ दी गई और इस बात के लिये प्रयत्न किये गये कि प्रत्येक भारतीय रियासत एक अधीन मित्र बन जाय। लार्ड हेस्टिंग्ज इससे भी एक कदम आगे बढ़ा और उसने राजाओं को एक दूसरे से इतना अलग-थलग करने का निश्चय किया कि उनमें कोई भी मेल असम्भव हो जाय। राजा लोग इतने दुर्बल किये जाने थे कि वे ब्रिटिश सत्ता के लिये खतरा न बन सकें बल्कि अपनी रक्षा के लिये उस पर निर्भर भी हो जांय। ब्रिटिश रेजिडेंटों ने तानाशाहों के अधिकार प्राप्त कर लिये और राजाओं के अनेक निजी मामलों में हस्तक्षेप किया।[2]

राजपूताना की रियासतों के सम्बन्ध में लार्ड वेलेजली के समय में प्रयत्न किये गये कि उन्हें ब्रिटिश प्रभाव एवं मित्रता के क्षेत्र में लाया जाय। पर कोई स्पष्ट परिणाम नहीं निकला।[3] लार्ड कार्नवालिस और बारलो ने तो इन प्रयत्नों को अस्वीकृत भी किया, विशेषतः जयपुर के मामले में।[4] सन् १८०३ में लार्ड लेक ने जोधपुर के साथ जो समझौता किया वह कभी लागू न हुआ।[5] इस प्रकार अलवर, भरतपुर और धौलपुर को छोड़कर प्रायः समस्त राजस्थान का क्षेत्र लार्ड हेस्टिंग्ज द्वारा पद सम्भालने के समय अनियन्त्रित था और उसी ने राजस्थान में ब्रिटिश प्रभुसत्ता स्थापित की।[6] यद्यपि

---

१. ली वारनर—पूर्व उद्धृत, पृ. ४३–४४।

२. के. एन. चौपड़ा—पूर्व उद्धृत, पृ. ७-१२।
   के. आर. आर. शास्त्री—इंडियन स्टेट्स पृ. १७–२०।

३. डाक्टर एम. एस मेहता—लॉर्डहेस्टिंग्ज एन्ड दी इंडियन स्टेट्स, पृ. १२६।

४. वही।

५. वही। जोधपुर के साथ समझौता सन् १८०३ में हुआ था और जनवरी सन् १८०४ में गवर्नर जनरल ने इसे स्वीकृति दी थी।
   एचिसन्—ए कलेक्शन आफट्रीटीज, इंगेजमेन्ट्स् एन्ड सनद्स, भाग ३, पृ० १२६–२७।
   ली वारनर—पूर्व उद्धृत, पृ० ५६।

६. मेहता—पूर्व उद्धृत, पृ० १२६।
   ली वारनर—पूर्व उद्धृत, पृ० ५१–५२।
   संधियों के लिये देखें एचिसन पूर्व उद्धृत भाग ३ पृ० ३४१–४४ और ३८६–६१ भरतपुर के लिये। धौलपुर के लिये भाग ३ पृ० ४१६–२० और ३५१–३५६।

राजपूताना की रियासतों में एक दूसरे से 'ऐतिहासिक परम्परा' सामाजिक स्थिति और राजनैतिक संगठन[1] का अन्तर था और उनके हित मराठों से भिन्न थे तो भी वे अपने आप में एक अभिन्न समूह बनी हुई थीं। वास्तव में राजस्थान उस समय मराठों और पिंडारियों का, जो भारत में ब्रिटिश सत्ता के प्रतिद्वंदी थे, शिकार स्थल बना हुआ था।[2] अतः लार्डहेस्टिंग्ज ने राजपूताना की रियासतों को अलग करने और ब्रिटिश सरकार का मित्र बनाने का प्रयत्न किया ताकि सिंधिया की बढ़ती हुई शक्ति को रोका जा सके और अमीरखां के षड्यन्त्रों को समाप्त किया जा सके। यही कारण था कि राजपूताना की रियासतों के साथ विशेष व्यवहार करना पड़ा।[3]

महाराजा राजसिंह के पुत्र महाराजा प्रतापसिंह को अपने रास्ते से हटाकर बीकानेर का सोलहवाँ शासक महाराजा सूरतसिंह अपने पैतृक राज्य का इक्कीस अक्टूबर सन् १७८७ को उत्तराधिकारी बना।[4] टाड के अनुसार महाराजा सूरतसिंह ने, जब वह महाराजा प्रतापसिंह का संरक्षक था, बहुत सी खालसा जमीन सरदारों को जागीर में दे दी ताकि वह उनकी सहानुभूति प्राप्त कर उन्हें अपने पक्ष में कर सके।[5] इससे राज्य के खजाने की आय कम हो गई पर अधिकांश जागीरदार उसके विरुद्ध विद्रोह करने की सोच रहे थे। कई स्थानों पर विद्रोह हो जाने पर उसने सर्व प्रथम सन् १७९० में चुरू के ठिकाने पर चढाई की और उसे अधीन कर लिया।[6] सन् १७९१ में उसने जोधपुर के शासक विजयसिह और सन् १७९८ में जयपुर के शासक प्रतापसिंह के साथ मेल स्थापित किया। सूरत-सिंह ने व्यास हरिशंकर को जयपुर भेजकर बीकानेर जयपुर के सीमा सम्बन्धी झगड़े का भी निपटारा कर दिया।[7]

---

१. मेहता–पूर्व उद्धृत, पृ० १२६।
२. मेहता–पूर्व उद्धृत, पृ० १२७।
३. लॉर्ड हेस्टिंग्ज का १ दिसम्बर सन् १८१५ का स्मरणार्थ लेख, पैरा ५४। मेहता–पूर्व उद्धृत, पृ. १२७।
४. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ६५। पाउलेट ने अपने "गजेटियर आफ दी बीकानेर स्टेट" (पृ. ७३) में गद्दी पर बैठने की तिथि आश्विन सुदी १२ दी है जबकि दयालदास ने आश्विन सुदी १० दी है जो २१ अक्टूबर को पड़ती है।
५. टॉड–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ११३८।
६. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६५। पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ७३।
७. वही।

सन् १७९९ में भट्टियों ने पुनः गड़बड़ी शुरु की। उन्हें दबाने के लिये रावतसर के रावत बहादुरसिंह, भूकरका के ठाकुर मदनसिंह, जैतपुरा के ठाकुर पद्मसिंह और दूसरे सरदारों के साथ एक शक्तिशाली सेना भेजी गई। जाबताखाँ ने सात हजार फौज के साथ राज्य की सेना का सामना किया। लेकिन अन्त में भट्टी पराजित हो गये, डबली पर अधिकार हो गया और बीगोर में फतहगढ़ नामक एक गढ़ बनवाया गया।[1]

जब जार्ज टामस नामक एक साहसिक ने मराठों की ओर से चोथ वसूल करने के लिये जयपुर पर आक्रमण किया तो अपने राज्य की अशान्त स्थिति की परवाह न करते हुए सूरतसिंह ने जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह की सहायता की। इससे टामस नाराज़ हो गया क्योंकि उसे युद्ध के मैदान से हटना पड़ा था।[2] कुछ विराम के बाद टामस ने एक बड़ी सेना के साथ बीकानेर पर चढाई करने की तैयारी की। उसने अपने साथ पखालों में बहुत सा पानी ले लिया और जैतपुर पर अपना अधिकार कर लिया।[3] पर सूरतसिंह ने उसे दो लाख रुपये देकर सुलह करनी चाही। इस रकम का एक अंश नकद चुकाया गया और शेष के लिये जयपुर में स्थित बीकानेर के व्यापारियों के नाम हुण्डी की गई।[4] लेकिन ये हुण्डियां सिकरी नहीं और टामस पुनः बीकानेर की ओर बढा।[5] उस समय सूरत--

१. दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ९५।
पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ० ७३।

२. विलियम फ्रेंकलिन--मिलिट्री मेमॉयर्स ऑफ मि० जॉर्ज टॉमस, पृ. १५१--७७।
कॉम्पटन--यूरोपियन मिलिटरी एडवेन्चर्स ऑफ हिन्दुस्तान, पृ० १४५--५६।
जार्ज टॉमस राजस्थान में "जाझ फिरंगी" के नाम से जाना जाता है।

३. फ्रेंकलिन--पूर्व उद्धृत, पृ० १७७--७९।
काम्पटन--पूर्व उद्धृत, पृ० १५६--५७।
विलियम फ्रेंकलिन लिखता है कि गद्दी पर बैठने के समय सूरतसिंह को खजानें में काफी सोना मिला पर उसने सारी सम्पति व्यर्थ के कामों में नष्ट करदी। अन्त में विवश होकर उसे निरंकुश तरीकों से धन प्राप्त करना पड़ा। जार्ज टॉमस के इस आक्रमण का दयालदास ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

४. कॉम्पटन,--पूर्व उद्धृत, पृ० १५७।

५. दयालदास अपनी ख्यात (भाग २ पृ० ९५) में लिखता है कि फतहगढ़ निर्माण के शीघ्र उपरान्त भट्टियों ने जार्ज टॉमस को बीकानेर के इलाके पर आक्रमण के लिये प्रेरित किया। बालास और मंगलूणा के ठाकुरों तथा भट्टियों की सहायता से उसने फतहगढ़ को जीत लिया और उस पर भट्टियों का अधिकार करा दिया।

सिंह भट्टियों को वशीभूत करने में लगा हुआ था। टामस ने सरलता से फतेहाबाद पर अधिकार कर लिया और उसे मिट्टी में मिला दिया। जिस गति से टामस बढ रहा था उससे बीकानेर राज्य की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया।[1] सौभाग्य से पूर्व में हुई बातचीत के अनुसार पटियाला से एक हजार घुड़सवारों की सेना आ गई। इससे लड़ाई का रूप बदल गया। जार्ज टॉमस शीघ्रता से पीछे हट गया और झज्झर को लौट गया।[2]

बीकानेर पर टॉमस की चढ़ाई के समय फतहगढ़ का किला पुनः भट्टियों के हाथ में चला गया था। सन् १८००-१८०१ में इसे पुनः जीता गया और जनवरी सन् १८०१ में टीबी, भैराजका व अभोर में थाने (पुलिस चौकियां) स्थापित किये गये।[3]

इसके शीघ्र बाद सूरतसिंह ने अपनी सेना भावलपुर के खुदाबक्स की सहायता के लिये भेजी। कड़े संघर्ष के बाद बल्लर, फूलड़ा, मीरगढ़ मारोठ और मौजगढ़ के किलों को जीत लिया गया। मौजगढ़ खुदाबक्स को सौंपकर बीकानेर की सेना भावलपुर पहुँची। पीर जानी भावलखां ने आधा राज्य खुदाबक्स को देने का वचन देकर संधि कर ली। सूरतसिंह की सेना बीकानेर लौट आई।[4]

सन् १८०२ में सूरतसिंह ने खानगढ़ पर सेना भेजी ताकि वहां के सुने गये असंख्य खजाने को अधिकार में कर लिया जाय। यद्यपि किले पर वह अधिकार करने में सफल हो गया पर उसे वह धन नहीं मिला जिसके लिये चढ़ाई की गई थी।[5]

---

१. "मिलिटरी मेमॉयर्स ऑफ मि० जॉर्ज टॉमस" में विलियम फ्रेंकलिन लिखता है कि सूरतसिंह ने कुछ यूरोपियन अफसरों, जो बीकानेर दुर्ग में रहा करते थे, की भी सेवायें प्राप्त की।

२. फ्रेंकलिन–पूर्व उद्धृत, पृ २२३–२९।
काम्प्टन–पूर्व उद्धृत, पृ. १६८–१६९।

३. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृष्ठ ६५–६६।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ७४।

४. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ६६।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ७४।

५. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ०. ६६-६७।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ७४-७५।

सन् १८०३ में चुरू के ठाकुर के विरूद्ध पुनः सेना भेजनी पड़ी। ठाकुर ने आत्म समर्पण कर दिया और पेशकसी के २१,००० रुपये चुकाये।[1] सन् १८०४ में भट्टियों के विरूद्ध भी, जो बीच २ में गड़बड़ी करते रहते थे, एक सेना भेजी गई। अन्त में भट्टियों ने आत्म-समर्पण कर दिया।[2]

महाराजा सूरतसिंह ने जोधपुर की गद्दी के दावेदार धोंकलसिंह का भी समर्थन किया। इस कार्य में उसके राज्य का लगभग ५ वर्षों का राजस्व खर्च हो गया। फलस्वरूप उसने लोगों से जबर्दस्ती धन छीनना आरम्भ कर दिया। इससे महाराजा सूरतसिंह तथा उसके सरदारों और जनता के बीच दुर्भावना अधिक बढ गई।[3]

उस समय चारों ओर अनेक कठिनाइयां बढ रही थीं और देश में लूट मार दबाव आदि फैल रहा था। इन्हीं परिस्थितियों से विवश होकर महाराजा सूरतसिंह ने अंग्रेजों से संधि करने की सोची।[4] उसे

---

१. दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ६६।

२. वही।
पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ० ७५।

३. मेलिसन--ए हिस्टोरिकल स्केच ऑफ दी नेटिव स्टेट्स आफ इंडिया, पृ. ११५।
दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६७-६८।
श्यामलदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५०८।
पाउलेट--पूर्व उद्धृत, पृ० ७५।
जोधपुर की ख्यात में लिखा है कि धोंकलसिंह के उत्ताराधिकार का समर्थक पोकरण का ठाकुर सवाईसिंह था। उसने ठाकुर सादुलसिंह के मार्फत महाराजा सूरतसिंह से सहायता प्राप्त की थी। बीकानेर दरबार को फलोदी देने के बारे में उसमें कोई उल्लेख नहीं हैं। इसी प्रकार जोधपुर के महाराजा मानसिंह द्वारा की गई ऐसी ही प्रार्थना के सम्बन्ध में भी ख्यात में कुछ नहीं लिखा है। जोधपुर की ख्यात में यह भी लिखा है कि जगतसिंह का सवाईसिंह के उत्साह में बहुत कम विश्वास था इसीलिये जब सवाईसिंह जोधपुर की सेना से लड़ा तब जगतसिंह और सूरतसिंह मारोठ में ही रहे। जब सवाईसिंह ने गिंगोली जीत ली, उसके बाद ही दोनों उससे मिले।

४. अर्सकिन--गजेटियर ऑफ राजपूताना, भाग ३, पृ. ३१२-३२४।
दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृष्ठ १०१।
पाउलेट ने भी अपने "गजेटियर आफ दी बीकानेर स्टेट" (पृ. ७६) में एल्फिस्टन का काबुल जाते हुए बीकानेर आना लिखा है।

यह अवसर सन् १८०८ में मिला जबकि काबुल जाते हुए एल्फिस्टन बीकानेर ठहरा। महाराजा सूरतसिंह ने उसका समुचित सत्कार किया और अंग्रेजों से मित्रता के चिन्ह स्वरुप बीकानेर के किले की चाबियां उसे देनी चाही। पर चूंकि एल्फिस्टन एक अन्य उद्देश्य से आया था, उसने चाबियां स्वीकार नहीं की। उसने कोई वचन भी नहीं दिया क्योंकि उस समय अंग्रेजो की नीति यमुना के पश्चिम की ओर स्थित इलाकों के राजाओं से सब प्रकार का सम्बन्ध हटा लेने की थी।[1]

इसी बीच बीकानेर की स्थिति और अधिक खराब होती गई। उस समय राज्य में विद्रोह उबल रहा था। चूरू को तीन बार घेरना पड़ा।[2] भूकरका और सीधमुख को भी वश में करना पड़ा।[3]

जागीरदारों के बारबार विद्रोह और मराठों व भट्टियों के निरन्तर हमलों के कारण राज्य विप्लव के किनारे पहुँच चुका था।[4] अतः महाराजा सूरतसिंह ने पुनः अंग्रेजों से संधि का प्रस्ताव किया और अपनी ओर से बातचीत करने के लिये सन् १८१७ में काशीनाथ ओझा को भेजा।[5] इस पर ६ मार्च १८१८ को दोनों पक्षों में संधि पर हस्ताक्षर हुए और मुहर लगी। अंग्रेजों की ओर से सी. टी. मेटकाफ ने तथा महाराजा सूरतसिंह की ओर से काशीनाथ ओझा ने हस्ताक्षर किये।[6] लार्ड

---

१. अर्सकिन–गजेटियर ऑफ राजपूताना, भाग ३, पृ० ३१२–३२४।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १०१।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ६६।

३. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १०१।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ७६–७७।

४. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ६६।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ७५–७८।
टॉड–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११४२।

५. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. १०७।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५०६।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ७८।

. वही।

हेस्टिंग्स ने २१ मार्च १८१८ को पतरास घाट पर इसकी पुष्टि की।[1] इस प्रकार पहली बार बीकानेर राज्य और अंग्रेजों में सम्बन्ध स्थापित हुआ।

संधि का अध्ययन करने से पूर्व सम्भवतः उचित होगा कि संक्षेप में उन परिस्थितियों का उल्लेख किया जाय जिन के कारण अंग्रेज संधि की प्रार्थना को मानने को इतनी जल्दी तैयार हो गये। लार्ड कार्नवालिस द्वारा अपनायी गयी हस्तक्षेप न करने की नीति के कारण न केवल मध्य-भारत और राजपूताना की रियासतें पिंडारियों और दूसरे लुटेरों की क्रीड़ा क्षेत्र बनी बल्कि मराठों की शक्ति घटने से पिंडारी बहुत शक्तिशाली बन गये और वे कई बार अंग्रेजी इलाके पर भी धावा मारने लगे। अतः यह अनुभव किया गया कि सुरक्षा की कोई पंक्ति या सेना का प्रबन्ध अंग्रेजी इलाके की रक्षा नहीं कर सकता। अंग्रेज पिंडारियों की लूटमार की कारवाइयों के विरुद्ध एक प्रतिरोध स्थापित करना चाहते थे। यह कार्य सन् १८१७ में सिंधिया के साथ हुई संधि ने और भी सरल बना दिया। इससे पहले लगाये गए प्रतिबन्ध हटा कर अंग्रेजों को राजस्थान के राजाओं के साथ नये समझौते करने की छूट दी। यही कारण है कि इस समय अंग्रेज राजाओं के केवल बाह्य सम्बन्धों को वशीभूत करने के लिये लालायित थे और वे राज्यों के आन्तरिक प्रशासन में हस्तक्षेप का कोई अधिकार लेना नहीं चाहते थे।[2]

---

१. एचिसन–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. २८८-६०।
प्रिंसेप–नरेटिव ऑफ पोलिटिकल एन्ड मिलिटरी ट्रांजेक्शन्स, पृ. ४३७।
मेलिसन–पूर्व उद्धृत, पृ. ११५।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १०७–८।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ७८।

२. लार्ड हेस्टिंग्ज का एक दिसम्बर सन् १८१५ का स्मरणार्थ लेख, पृ० ८४।
मेहता–पूर्व उद्धृत, पृ० १२७।
१ दिसम्बर सन् १८१५ के अपने स्मरणार्थ लेख में लार्ड हेस्टिंग्ज ने लिखा "उन (राजपूत रियासतों) पर हमारा प्रभाव स्थापित होने से सिक्खों और उनको सहायता देने वाली सम्भावित शक्तियों के बीच एक शक्तिशाली प्रतिरोध बन जायगा। डा० मोहनसिंह मेहता के अनुसार लार्ड हेस्टिंग्ज ने राजपूत रियासतों के साथ सन्धि में यह देखा कि इससे न केवल सिन्धिया, होल्कर और अमीरखाँ की बढ़ती हुई शक्ति ही नियन्त्रित होगी,

महाराजा सूरतसिंह और अंग्रेजों के बीच हुई संधि का विवेचनात्मक विश्लेषण करने से पता चलता है कि ईस्ट इन्डिया कम्पनी और महाराजा सूरतसिंह, उनके उत्तराधिकारियों और क्रमानुयायियों के बीच निरन्तर मैत्री, पारस्परिक मेल और हितों का ऐक्य रहना था और एक पक्ष के मित्र तथा शत्रु दूसरे पक्ष के मित्र तथा शत्रु समझे जाने थे।[1] अंग्रेज सरकार ने बीकानेर राज्य के इलाके की रक्षा का वचन दिया।[2] महाराजा सूरतसिंह, उसके उत्तराधिकारी और क्रमानुयायी अंग्रेज सरकार के साथ अधीनता पूर्ण सहयोग रखकर उसकी महता स्वीकार करनेवाले थे और किसी दूसरे राजा या राज्य से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखने वाले थे।[3] महाराजा उसके उत्तराधिकारी और क्रमानुयायी अंग्रेज सरकार की जानकारी और स्वीकृति के बिना किसी राजा या राज्य से समझौते की बात-चीत नहीं करने वाले थे लेकिन मित्रों और सम्बन्धियों के साथ साधारण मैत्री का पत्र व्यवहार पहले की तरह जारी रहने वाला था।[4] बीकानेर का शासक किसी पर आक्रमण नहीं करेगा। यदि घटनावश किसी से झगड़ा हो जाय तो तै करने के लिये यह अंग्रेज सरकार की मध्यस्थता और निर्णय के लिये सौंपा जायगा।[5]

महाराजा बीकानेर राज्य के कुछ लोगों द्वारा उस समय तक अंग्रेजी इलाके के निवासियों से रास्ते चलते लूटी गई सम्पति को पुनः लौटाने के लिये सहमत हो गया। वह इस बात के लिये भी सहमत हो गया कि अपने राज्य में डाकुओं और लुटेरों का पूर्ण दमन करेगा।[6] अंग्रेज इस बात पर सहमत हुये कि डाकुओं और लुटेरों का दमन करने के लिये महाराजा को जैसी सहायता की आवश्यकता होगी, उसके मांगने पर दी जायेगी। पर महाराजा को उसकी ओर से काम में लगी सेना का खर्चे

जो उसके अनुमान से काफी महत्वपूर्ण उद्देश्य था, बल्कि इससे मध्य-भारत में कम्पनी की सैनिक और राजनैतिक स्थिति को अत्यधिक सुदृढ़ बनाने में भी सहायता मिलेगी।

१. एचिसन--पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० २८८, धारा १।
२. वही, धारा २।
३. वही, धारा ३।
४. वही, धारा ४।
५. एचिसन-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० २८८, धारा ५।
६. वही, पृ० २८८-८६, धारा ६।

देना पड़ेगा। यदि वह खर्च चुकाने की स्थिति में न हो तो वह अंग्रेज सरकार को अपने इलाके का कुछ भाग देगा जो बाद में खर्च चुका देने पर उसे वापस सौंप दिया जायेगा।[1] अंग्रेज सरकार बीकानेर के ठाकुरों और दूसरे निवासियों को, जो विद्रोह कर महाराजा की सत्ता हटायेंगे, आधीन कराने को सहमत हो गई। यह सहायता महाराजा के मांगने पर इस शर्त पर दी जायगी कि महाराजा सेना का सारा खर्चा दे। अंग्रेज सरकार के माँगने पर महाराजा अपने साधनों के अनुसार सेना देगा।[2] महाराजा उसके उत्तराधिकारी एवं क्रमानुयायी अपने राज्य के खुदमुख्तार राजा होंगे और बीकानेर में ब्रिटिश हुकूमत का प्रवेश न होगा। महाराजा काबुल और खुरासान आने जाने वाले काफिलों के लिये बीकानेर और भटनेर के मार्गों को सुरक्षित और आने जाने योग्य बनाने के लिये सहमत हो गया। यह इसलिये ताकि व्यापारी सुरक्षा से आ जा सके।[3] महाराजा अपने राज्य से गुजरने वाले व्यापारियों से वसूल की जाने वाली जकात की दर नहीं बढ़ायेगा।[4] इस प्रकार अंग्रेजी सरकार ने बीकानेर के शासक के साथ जो सहायता देने वाली संधि की उससे महाराजा सूरतसिंह आधीन होकर सहायता के लिये बंध गया तथा बदले में अंग्रेजी हुकूमत ने उसके इलाके की रक्षा करने और उसके विद्रोही सरदारों और जनता को उसकी आज्ञा पालन करने वाली बनाने का वचन दिया। यह सन्धि केवल एक विशेष बात में जैसलमेर को छोड़कर राजपूताना की अन्य रियासतों से की गई संधियों से भिन्न थी। बीकानेर के शासकों को अंग्रेजों को कोई कर नहीं चुकाना पड़ा क्योंकि वे मराठों को कोई ऐसा कर नहीं दे रहे थे। इस प्रकार यद्यपि महाराजा की स्थिति एक आधीन सहायक की थी पर बीकानेर रियासत को करदातृ राज्य नहीं बनाया गया था। यह स्पष्ट है कि अंग्रेजों का बीकानेर के शासक के साथ सम्बन्ध निरन्तर मैत्री, पारस्परिक मेल और हितों की एकता पर आधारित था पर संधि से बीकानेर का शासक आधीन सहायता में बँध गया और अंग्रेज सरकार की सर्वोच्चता मान्य की अन्यथा बीकानेर के शासक अपनी रियासत के खुदमुख्तार शासक रहने वाले थे।

---

१. एचिसन-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० २८९ धारा ७।
२. वही, धारा ८।
३. वही, धारा १०।
४. वही।

इस राज्य में अंग्रेजी हुकूमत का प्रवेश नहीं कराया जाने वाला था। डाकुओं का दमन, अपने इलाके में लूटी सम्पति को उसके मालिकों को पुनः सौंपना; अपने साधनों के अनुसार अंग्रेजों से ली गई सहायता का खर्च चुकाना ऐसी शर्तें थीं जो संधि के अन्तर्गत महाराजा सूरतसिंह को स्वीकार करनी पड़ीं।

संधि में विशेष नियम थे। धारा ६ के अनुसार महाराजा ने अपने इलाके में तमाम डाकुओं और लुटेरों का दमन करने और संधि होने के समय तक अंग्रेजी इलाके से उसकी जनता के लोगों द्वारा लूटी गई सम्पति को वापस सौंपने का वचन दिया। धारा ७ के द्वारा अंग्रेज सरकार ने उसके विद्रोही सरदारों और जनता पर महाराजा की सत्ता स्थापित करने की प्रतिज्ञा की लेकिन शर्त यह थी कि इस काम के लिये अंग्रेज सरकार द्वारा होने वाला खर्च महाराजा दें लेकिन बाद में सर्वोच्च सरकार ने संधि की इस धारा का बड़ा रोचक अर्थ लगाया अर्थात् यह कि ये धाराएँ संधि पर हस्ताक्षर के समय जो अस्थायी परिस्थितियाँ वर्तमान थीं, उनसे सम्बन्ध रखती हैं और आन्तरिक गड़बड़ी को दबाने के लिये भारतीय रियासतों को सैनिक सहायता नहीं दी जायगी, यह सैनिक सहायता केवल अंग्रेज सरकार के स्पष्ट अधिकार से ही दी जायेगी।[1]

अंग्रेजों के साथ भारत की केन्द्रीय सत्ता के रूप में बीकानेर के राजघराने का सम्बन्ध सन् १८१८ में हुई संधि से आरम्भ होता है। यद्यपि अपने शासनकाल में महाराजा सूरतसिंह का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध सामान्यतः मित्रतापूर्ण रहा पर भारतीय रियासतों के प्रति अंग्रेजों की नीति में निरन्तर परिवर्तन हो रहा था और बीकानेर उसका अपवाद नहीं हो सकता था। नीचे जो कई घटनायें दी गई हैं उनसे विदित होगा कि इस नीति में निरन्तर मैत्री और पारस्परिक मेल की अपेक्षा अधीन सहायता पर अधिक जोर दिया गया था। और बाद में सूरतसिंह के उत्तराधिकारियों के समय में सन्धि की धाराओं का अर्थ केन्द्रीय सत्ता के हितों को ध्यान में रखकर किया जाने लगा।

संधि पर हस्ताक्षर होने के तुरन्त बाद बीकानेर के कई सरदारों

---

१. एचिसन–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० २७८।
मेलिसन–पूर्व उद्धृत, पृ० ११६।

ने, जो काफी समय से उद्धत थे, शान्ति भंग की। महाराजा ने संधि की धारा ७ के अनुसार अंग्रेजों की सहायता पाने के लिये मेहता अबीरचन्द को दिल्ली भेजा। जनरल एलनर एक शक्तिशाली सेना ले कर आया। इसने फतेहाबाद और हिसार पर अधिकार कर लिया तथा सीधमुख जसाणा व बिरकाली पर हमला कर रक्षकों के कड़े विरोध को समाप्त कर दिया और उन किलों को ले लिया; एक महीने के घेरे के बाद चूरू को ले लिया गया। बाद में अंग्रेजी सेना ने सुलखणिया व निम्बा पर अधिकार कर लिया और सुजानगढ़ से जैतसिंह बीदावत को निकाल दिया। भादरा का किला, जो सिक्खों ने ले लिया था, भी अधिकार में कर लिया गया और बाद में महाराजा को सौंप दिया गया। लेकिन भादरा के परगने को ४ साल तक अंग्रेजों ने अपने अधिकार में रखा। तब तक अंग्रेजी सेना का ७५५२५) रूपये का खर्चा उसके राजस्व से वसूल किया गया। इस चढ़ाई के समय अंग्रेजी सेना ने १२ किले जीते और वे सब के सब महाराजा को सौंप दिये गये।[1]

अंग्रेज सरकार ने टीबी के कुछ गाँव वृद्ध सैनिकों को दिये थे। महाराजा सूरतसिंह ने दावा किया कि ये बीकानेर राज्यान्तर्गत भटनेर के भाग हैं।[2] सन् १८२८ में एडवर्ड ट्रिवेलियन बीकानेर की इस माँग का निपटारा करने के लिये भेजा गया। टीबी के गांवों के अलावा भादरा

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० १०८-६।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५०६ पर वह लिखता है कि अंग्रेजों की सहायता से केवल १० किले जीते गये थे।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ७८–७६।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ११२।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ७६।
राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेन्ट सर एडवर्ड कोलब्रुक ने ता. १५ मार्च १८२८ को महाराजा सूरतसिंह को लिखे अपने खरीते में इस दावे का उल्लेख किया है और बेनीवाल परगने के गाँवों सम्बन्धी दावे को अस्वीकृत कर दिया है। लेकिन उसने भादरा के उत्तर में कुछ चरागाह भूमि पर दावा स्वीकार किया है और लिखा है कि वह भूमि पठानों से जो उस समय उस पर काबिज थे, ले ली जाय।
एक बार सिरसा और फतेहाबाद के गाँवों के लिये भी दावा किया गया पर बाद में उसे छोड़ दिया गया।

के पास वेनीवाल परगने के, जहाँ मुख्यतः वेनीवाल जाट रहते हैं, भी चालीस गाँवों की मांग की गई थी। किसी समय कल्याणमल का इस क्षेत्र पर शासन था और जब मालदेव ने उसे बीकानेर से निकाल दिया था तो उसने सिरसा में अपनी दूसरी राजधानी स्थापित की थी। काफी समय तक भटनेर का किलेदार इस भू-भाग का शासन करता रहा।[1] चूंकि महाराजा सूरतसिंह ने सन् १८०५ में भटनेर जीत लिया था अतः उसने जो इलाके पहले भटनेर के साथ थे उनकी माँग की।[2] दोनों ही मामलों में निर्णय बीकानेर के विपक्ष में रहा।[3] बाद में सन् १८५७ के गदर में बीकानेर द्वारा दी गई सेवाओं के बदले में इस भूमि का अधिकांश भाग बीकानेर को दे दिया गया।[4]

सन् १८२४ में ददरेवा के ठाकुर सूरजमल बीका और सालेड़ी का सम्पतसिंह दोनों अंग्रेजी इलाके के वहल गाँव में रहने लगे।[5] लेकिन उनकी गैर कानूनी कारवाइयो के कारण उन्हें वहाँ से निकालने की आवश्यकता पड़ी। अंग्रेजी सेना द्वारा पीछा किये जाने पर ये दोनों ठाकुर बीकानेर के इलाके में घुस आये जहाँ बीकानेरी सेना ने उनका पीछा करना आरम्भ कर दिया। वे एक किले के बाद दूसरे किले में छुपते रहे पर बीकानेर की सेना ने उनके छिपने के आठों किलों को नष्ट कर दिया और इन लुटेरों को असहाय बना दिया।[6]

केन्द्रीय सत्ता के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बराबर रखे गये। सन् १८२७ में जब लार्ड एम्हर्स्ट ने मेरठ में दरबार किया तो बीकानेर की ओर से मेहता अबीरचन्द ने प्रतिनिधित्व किया और मूल्यवान वस्तुओं की नजर

---

१. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ११२।
   पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ७६।
२. वही।
३. वही।
४. वही।
   एचिसन-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. २९०-९१, ११ अप्रैल १८६१ की सनद सं. ११।
५. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११२।
   पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. ७६।
६. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११२।
   पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. ७६।

की ।[1] गवर्नर जनरल ने भी महाराजा सूरतसिंह को खिलअत (सम्मानित पोशाक) प्रदान की ।[2]

संधि पर हस्ताक्षर होने के तुरन्त बाद की अवधि में बीकानेर के महाराजा को अंग्रेज राजनैतिक अधिकारियों से जो खरीते मिले उनसे स्पष्ट पता चलता है कि अधीन सहायता की नीति का कैसा प्रभाव था। १६ नवम्बर सन् १८२० को मेजर जनरल सर डेविड ओक्टरलोनी ने महाराजा सूरतसिंह को कैप्टेन कोलविन की सहायता करने को कहा जो चितरांग नहर का निरीक्षण करने जा रहा था ।[3] पुनः हेनरी मिडलटन ने महाराजा को जौहरीमल की सहायता करने को कहा जो रामगढ़ छोड़ कर चूरू में बसने के लिये आया था ।[4] जब भटनेर के किलेदार ने बंजर इलाके में गेहूँ बोया तो अंग्रेजों ने एतराज किया और ७७००) रु० चुकाने पर जोर दिया ।[5] १२ जुलाई सन् १८२३ को सर चार्ल्स इलियट ने महाराजा को लिखा कि वह अजमेर के सेठ हमीरमल और सूरतराम के मुनीम गुलाबदास को बन्दी बनाले क्योंकि उसने हुँडियां जारी करके काफी धन संग्रह कर लिया था ।[6] २७ अक्तूबर सन् १८२३ को अंग्रेजों ने महाराजा से कहा कि वह भाटी जालिमसिंह द्वारा की गई डकैती की जाँच करे ।[7] सन् १८२४ में सर चार्ल्स इलियट ने महाराजा को १६४००) रु० जो उसने दिल्ली खजाने के हरनारायण से उधार लिये थे, ब्याज सहित भेजने को लिखा ।[8] ३ नवम्बर सन् १८२४ को सर चार्ल्स इलियट ने पुनः महाराजा को लिखा कि वह सुरजा डाकू को गिरफ्तार करे जिसने बहल कस्बे पर हमला किया, पुलिस से मुकाबला

---

१. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११३।
पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ. ७६।

२. वही।

३. ता. १६-११-१८२० का मेजर जनरल सर ओक्टरलोनी का खरीता (लेखक के पास सुरक्षित)।

४. हेनरी मिडलटन का बिना तारीख का खरीता (लेखक के पास)।

५. ता. ३१-१०-१८२२ का ए. रोस. का खरीता (लेखक के पास)।

६. ता. १२-७-१८२३ का सर चार्ल्स इलियट का खरीता (लेखक के पास)।

७. ता. २७-१०-१८२३ का सर चार्ल्स इलियट का खरीता (लेखक के पास)।

८. ता. २४-३-१८२४ का सर चार्ल्स इलियट का खरीता (लेखक के पास)।

किया और लोहारू में शरण ले ली।[1] १५ जनवरी सन् १८२५ को अंग्रेजों ने सुरजा को पकड़ने के लिये ४ तोपों के साथ पैदल सेना भेजी और बीकानेर में भेजी गई इस सेना का खर्चा महाराजा को भरना पड़ा यद्यपि महाराजा ने यह सैनिक सहायता कभी नहीं माँगी।[2] सन् १८२५ में जब बीकानेर इलाके के लोगों ने पटियाला इलाके के कुछ घरों पर नाजायज अधिकार कर लिया तो अंग्रेजों ने इस गल्ती को दूर करने के लिये महाराजा को लिखा।[3] जब हिसार के तिलोड़ी गांव से चार ऊँट चुराये गये तो सितम्बर सन् १८२५ में, सर चार्ल्स इलियट ने महाराजा को लिखा कि वह अपराधियों को पकड़ कर जिलाधीश के पास भेजे।[4]

इन सब कारवाइयों से प्रकट होता है कि संधि की धाराओं और शर्तों में लिखित निरन्तर मैत्री, पारस्परिक मेल और हितों के ऐक्यः को हटा कर भारत में अंग्रेजों ने हमेशा यही चाहा कि रियासतों के शासक अधीनता की स्थिति में हो जायं।

महाराजा सूरतसिंह के बाद महाराजा रत्नसिंह बीकानेर के अठारवें शासक के रूप में अप्रैल सन् १८२८ में गद्दी पर बैठे।[5] उनके शासन काल में अंग्रेजों का बीकानेर के शासक के साथ जो सम्बन्ध रहा उससे जरा भी संदेह न रहा कि मित्रता का दर्जा बदलकर अधीनता पर जोर दिया जाने लगा। गवर्नर जनरल का भलाई सन्देश (खरीता) बीकानेर में मई[6] में प्राप्त हुआ। इसके साथ दिल्ली में स्थित ब्रिटिश रेजिडेन्ट का एक पत्र आया। इसमें महाराजा को सूचना दी गई थी कि जोधपुर में धोंकलसिंह बहुत एतराज पूर्ण व्यवहार कर रहा है और बीकानेर उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखे। महाराजा ने तुरन्त अपने सरदारों को सावधान कर दिया ताकि बीकानेर के इलाके में धोंकलसिंह के प्रवेश को रोका जाय।[7]

---

१. ता. ३-११-१८२४ का सर चार्ल्स इलियट का खरीता (लेखक के पास)।
२. ता. १५-१-१८२५ का सर चार्ल्स इलियट का खरीता (लेखक के पास)।
३. ता. १७-१-१८२५ का सर चार्ल्स इलियट का खरीता (लेखक के पास)।
४. ता. २१-६-१८२५ का सर चार्ल्स इलियट का खरीता (लेखक के पास)।
५. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८०।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११४।
६. ता. १६-५-१८२८ का गवर्नर जनरल का खरीता (लेखक के पास)।
७. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११४।

महाराजा के राज्यरोहण के शीघ्र बाद जैसलमेर के कुछ भाटी बीकानेर सरकार के कुछ उँटों को पकड़ ले गये। बीकानेर के एक अधिकारी शाह मानिकचंद ने जैसलमेर के अधिकारियों से उँट वापस लौटाने को कहा। लेकिन उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। इससे सैनिक कारवाई करनी आवश्यक हो गई। बीकानेर और जैसलमेर की सेना एक दूसरे के विरुद्ध चल पड़ी। जैसलमेर की सीमा में पहुंच कर बीकानेर की सेना ने लूटमार आरम्भ करदी। जब जैसलमेर की सेना से मुठभेड़ हुई तो बीकानेर की सेना चक्कर खा गई। उनका नगारा छिनने वाला ही था पर एक बहादुर सिक्ख सिपाही ने अपने प्राण दे कर उसे बचा लिया।

बीकानेर की यह कारवाई सन् १८१८ की संधि की धारा ५ का उल्लंघन थी। अतः अंग्रेज अधिकारियों ने इसे पसंद नहीं किया। लेकिन बाद में मध्यस्थता करने को कहा। दोनों पक्षों द्वारा एक दूसरे को हर्जाना देने के लिये सहमत होने पर बीकानेर और जैसलमेर का मतभेद निपट गया। अंग्रेजों ने इस निर्णय को मान्यता दी।[1]

सन् १८३५ में ट्रेवेलियन द्वारा बीकानेर और जैसलमेर के राजाओं में मिलाप का प्रबन्ध किया गया।[2] लेफ्टिनेंट बोइलो ने, जो इस अवसर पर उपस्थित था, अपनी पुस्तक "पर्सनल नरेटिव आफ ए टूर थ्रू दी वेस्टर्न स्टेट्स आफ राजवाड़ा" में इस मिलाप का सजीव वर्णन किया है। इस मिलन के समय दोनों पक्षों ने मित्रता की एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये। दोनों ने एक दूसरे के इलाके पर आक्रमण न करने और एक दूसरे के विद्रोहियों को शरण न देने का वचन दिया तथा यदि दोनों में से किसी पर शत्रु के आक्रमण का खतरा हो तो एक दूसरे की रक्षा करने का निश्चय किया।[3]

उस समय अंग्रेजों ने संधि की धारा ५ का जो यह उल्लंघन सहन किया, वह महत्वपूर्ण है। इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है। ऐसे समय जब कि हस्तक्षेप न करने की नीति का स्थान सक्रिय हस्तक्षेप ले

---

१. एचिसन—पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. २७७-७८।

२. ता. २४-१-१८३५ का मेजर एल्विस का खरीता (लेखक के पास सुरक्षित) जिसमें सूचना दी गई है कि मिस्टर हेनरी ट्रेवेलियन बीकानेर आ रहा है और झगड़े को निपटाने के लिये मध्यस्थता करेगा।

३. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. १६।

रहा था, कुछ अंग्रेज अफसर भारतीय राजाओं के प्रति अशिष्टता का व्यवहार और उनके आन्तरिक मामलों में अत्यधिक हस्तक्षेप पसंद नहीं करते थे । एल्फिंस्टन और मालकम दोनों ने अपनी सम्मति प्रकट की थी जो अत्यधिक हस्तक्षेप की नीति के स्पष्ट रूप से विरुद्ध थी। थामसन के अनुसार हस्तक्षेप की अंग्रेजी नीति ने भारतीय राजाओं को संरक्षण देने के बावजूद उन्हें "महत्वहीनता की निम्न स्थिति" तक पहुँचा दिया।[१] मुनरो ने तारीख १२ अगस्त सन् १८१७ के अपने स्मरणपत्र में लार्ड हेस्टिंग्ज को लिखा "अंग्रेज सरकार की शक्ति इस योग्य है कि वह प्रत्येक विद्रोह को दबा दे, प्रत्येक बाहरी आक्रमण को रोक दे और अपनी जनता को सुरक्षा का ऐसा रूप दें जो किसी देशी शक्ति की जनता के पास नहीं था। इसके कानून और संस्थायें भी उन्हें घरेलू दमन से ऐसी सुरक्षा प्रदान करती हैं जो उन रियासतों में अज्ञात हैं। लेकिन ये फायदे बड़े मँहगे मूल्य पर खरीदे गये है। ये फायदे राष्ट्रीय स्वरूप की स्वतन्त्रता और व्यक्तियों को गौरवशाली बनाने वाली प्रत्येक वस्तु का बलिदान करके प्राप्त किये गये हैं।"[२]

इन बातों को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि संधि की धारा ५ के इस उल्लंघन की जो उपेक्षा की गई वह अंग्रेजों की नीति में किसी मूलभूत परिवर्तन में न थी। इस उपेक्षा का कारण अंग्रेज अफसरों की महाराजा से सम्बन्ध न बिगाड़ने और अप्रीतिकर स्थिति को उत्पन्न होने से रोकने की इच्छा थी। साथ ही उनका मूल लक्ष्य यह था कि पिंडारियों की लूट की प्रवृति और मराठों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोका जाय।

महाराजा रत्नसिंह को भावलपुर के खान के विरुद्ध अंग्रेजों के पास जाना पड़ा। खान ने फूलड़ा, बल्लर, मरोठ और मौजगढ़ पर अधिकार कर लिया था और उसका विचार और अधिक भूमि दबाने का था।[3] अंग्रेजों की ओर से सर एडवर्ड कोलब्रुक ने अपने १६ अप्रैल सन् १८२९ के खरीते द्वारा उत्तर दिया। इसमें, यह कहकर कि संधि ऐसे मामलों पर लागू नहीं होती, महाराजा के दावे को अस्वीकृत कर दिया गया।

---

१. थामसन--पूर्व उद्धृत, पृ. २७२।

२. सर थोमास मुनरो का तारीख १२-८-१८१७ का लार्ड हेस्टिंग्ज को स्मरण पत्र जिसे एडवर्ड थामसन ने "दी मेकिंग ऑफ दी इंडियन प्रिंसेज" में पृ. २७२ पर उद्धृत किया है।

३. दयालदास--पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११६।

फलस्वरूप जो इलाका पहले ही खान ने अधिकार में ले लिया था, सिंध में ही रहा।[1] महाराजा से यह भी कहा गया कि वह सिंध के इलाके में हस्तक्षेप न करे।[2]

अंग्रेजों ने लूटमार करने वाले डाकुओं का दमन करने के लिये महाराजा रत्नसिंह से सहयोग माँगा। इन डाकुओं ने बीकानेर जोधपुर और जयपुर के कुछ असन्तुष्ट सरदारों की सहायता से तीनों राज्यों की मिलने वाली सीमा के पास शेखावटी के निकट ही एक गैरकानूनी सरकार भी स्थापित कर ली थी। मि० जार्ज क्लार्क को सन् १८२६ में भेजा गया ताकि वह जयपुर जोधपुर और बीकानेर के राजाओं से सलाह करे, उस क्षेत्र में व्यवस्था पुनः स्थापित करने के तरीके और उपाय मालूम करे। इस अवसर पर महाराजा रत्नसिंह ने मेहता हिन्दूमल तथा शाह हुक्मचन्द को डाकुओं को दबाने में सहयोग देने हेतु मि० क्लार्क की सेवा में भेजा। इन पारस्परिक विचार-विमर्श के फलस्वरूप यह निर्णय किया गया कि तीनों राजा अपने अपने इलाके में इन डाकुओं के छिपने और रक्षा के लिये शरण लेने के स्थान नष्ट करदें और वहाँ पुलिस थाने स्थापित कर दें।[3]

इस समय आसपास लूटमार मची हुई थी। इनमें से कुछ लुटेरे इतने शक्तिशाली हो गये थे कि उन्होंने जन जीवन के लिये खतरा उत्पन्न कर दिया था और अंग्रेजों के विरुद्ध जम कर लड़ाइयाँ की थीं। उन्होंने अंग्रेजी इलाके को लूटा, नसीराबाद के खजाँची को आश्चर्यचकित कर दिया, पहरेदारों को मार डाला और सरकारी धन उठाकर ले गये। कजाकों के एक दल के नेता हरिसिंह ने घुड़सवार सेना को हराया और गुड्डा के डाकू सरदारों ने तो ३००० लोगों की सेना भी एकत्रित कर ली थी। ब्रिटिश अधिकारी एन्डरसन और फोरस्टर जैसलमेर और बीकानेर की सेनाओं की सहायता से बड़ी मुश्किल से पुनः शान्ति स्थापित कर सके।[4] डाकुओं का दमन करने

१. दयालदास-पूर्व उद्धृत, पृ. ११६।
ता. १६-४-१८२६ का सर एडवर्ड कोलब्रुक का खरीता (लेखक के पास)।
२. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११६।
३. वही।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. ८०।
४. प्रो० एन० आर० खड़गावत, राजस्थान्स रोल इन दी स्ट्रगल ऑफ १८५७, पृ. ६-७।

के लिये बीकानेर सरकार की ओर से सुराणा हुक्मचन्द को रखा गया। उसने बड़े श्रम से काम किया। उसने लोढ़सर गांव के बीदावत सरदार को बन्दी बना लिया, उसकी गढ़ी गिरा दी और वहाँ पुलिस थाना कायम कर दिया। उसने मीगणा, बाँभणी, देवणी, चारी, सेला आदि डाकुओं के छिपने के स्थान भी गिरा दिये और वहाँ पुलिस थाने स्थापित कर दिये।[1]

उस समय महाजन का ठाकुर वैरिशाल काफी डाकुओं को शरण दे रहा था और उनकी सहायता से बीकानेर के इलाके में डाके डलवाया करता था। महाराजा रत्नसिंह ने उसको चेतावनी दी पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस पर महाराजा ने अपने दीवान सुराणा हुक्मचन्द को सेना देकर उसे दबाने भेजा। ठाकुर टीबी भाग गया। केवल तीन दिन के घेरे के बाद महाजन का किला सौंप दिया गया। पर अन्त में वैरिशाल ने बिना शर्त आत्म समर्पण कर दिया। उससे ६०,०००) रु० पेशकसी के लेकर उसकी जागीर पुनः उसे सौंप दी गई। उसने यह वचन भी दिया कि वह अपना किला समर्पण करने वाले लोगों में से किसी को नुकसान नहीं पहुँचायेगा। पर वैरिशाल ने अपने वचन का पालन नहीं किया। महाजन लौट कर उसने अमरावतों और दूसरे लोगों को मरवा डाला और तब वह फूलड़ा भाग गया।[2] अतः महाजन के पुनः घेरने की योजना बनानी पड़ी। महाजन सीधे महाराजा के नियन्त्रण में रखा गया। लेकिन महाजन का ठाकुर बचकर भावलपुर चला गया। महाराजा ने दिल्ली स्थित रेजिडेन्ट को इस सम्बन्ध में सूचना भेजी। रेजिडेन्ट ने भावलपुर के खान को लिखा कि वह ठाकुर को अपने इलाके से निकाल दे। पर इसी बीच वैरिशाल जैसलमेर चला गया। वहाँ उसने पूगल के राव रामसिंह और जैसलमेर के रावल गजसिंह का समर्थन प्राप्त कर सेना एकत्रित करनी आरम्भ कर दी। दीवान लक्ष्मीचन्द सुराणा और मेहता मोहनलाल को बीकानेर की सेना के साथ उन्हें दबाने भेजा गया। पर बीकानेरी सेना को सफलता नहीं मिली और पूगल की सेना ने गहरी अव्यवस्था

---

१. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११६।

२. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ११६-१७।
श्यामलदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ५१०।
पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ. ८०-८१।

उत्पन्न की। इसी समय कुछ अन्य जागीरदारों जैसे बणीरोत जोरावरसिंह, लाडखानी और चाँदावत आदि ने भी विद्रोह कर दिया तथा जयपुर और जोधपुर के राजपूतों की सहायता से लूटमार करने लगे। इस पर महाराजा ने पुनः रेजिडेन्ट को लिखा। रेजिडेन्ट ने महाराजा को सूचना भेजी कि अजमेर, जयपुर, जोधपुर और जैसलमेर के पोलिटिकल एजेन्टों को स्थिति से अवगत करवा दिया है और आवश्यक प्रबन्ध किये जा रहे हैं। यदि वे प्रबन्ध सफल न हुए तो इन लुटेरों की कारवाइयों को मिटाने के लिये नसीराबाद से सेना भेजी जायेगी।[1]

इस बिगड़ी हुई स्थिति का फायदा उठा कर बावरी भी पेमा और जोरा के नेतृत्व में लूटमार करने लगे और गाँवों को लूटा। उन्हें दबाने के लिये हरनाथसिंह और सुराणा लालचन्द के साथ बीकानेर की सेना भेजी गई। लूटमार की इन कारवाइयों को पूर्णतः दबाने में असफल होने पर स्वयं महाराजा रत्नसिंह अपनी सेना के साथ इन जागीरदारों को और असन्तुष्ट लोगों को दबाने रवाना हुआ। जब यह केला में था तो उसे रेजिडेन्ट का एक खरीता मिला। इसमें सूचित किया गया था कि अंग्रेज़ी फौज नसीराबाद से रवाना हो रही है। महाराजा ने तुरन्त उसके लिये प्रबन्ध किया और उसने स्वयं वैरिशाल के विरुद्ध प्रस्थान किया। विद्रोही हटा दिये गये और जब उन्होंने किले में शरण ली तो महाराजा ने उसे घेर लिया और उन्हें आत्म-समर्पण के लिये विवश किया। सन् १८३० में बीकानेर लौट कर महाराजा ने दिल्ली के रेजिडेन्ट को लिखा कि अब नसीराबाद से सेना भेजने की आवश्यकता नहीं है।[2]

उस समय बीकानेर राज्य में जो अशान्ति फैली हुई थी उससे स्पष्ट पता चलता है कि महाराजा रत्नसिंह पूर्णतः असहाय था और अंग्रेजों को उसकी सहायता करनी थी। लेकिन नसीराबाद से सेना भेजने की रेजिडेन्ट

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र ११७।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ. ५१०।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८१।
ता. ३०-९-१८३० का मि. हॉकिन (गर्वनर जनरल का एजेंट) का खरीता (लेखक के पास)।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र ११७-११८।
श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २ पृ. ५१०।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८१।

की कारवाई को सरकारी उच्चाधिकारियों ने पसन्द नहीं किया। रेजिडेन्ट-पर यह आरोप लगाया गया कि उसने सन् १८१८ की सन्धि की धारा ६ और ७ जिनके अनुसार महाराजा अंग्रेजी सरकार से सहायता की मांग कर सकता है, गलत अर्थ लगा कर काम किया है। इन धाराओं का सम्बन्ध संधि पर हस्ताक्षर किये जाने के समय जो अस्थिर परिस्थितियाँ प्रचलित थीं उन्हीं से था और उनके आधार पर भविष्य में बीकानेर के शासक को अपनी असन्तुष्ट जनता के विरुद्ध अंग्रेजी सरकार से सहायता माँगने का कोई अधिकार नहीं। अंग्रेजी सरकार का मत था कि यह मामला ऐसा नहीं था जिसमें उन्हें हस्तक्षेप करने को कहा जाता। अंग्रेज सरकार ने रेजिडेन्ट को सावधान किया कि सरकार के स्पष्ट आदेश के बिना किसी भी राजा को आन्तरिक गड़बड़ी का दमन करने के लिये सैनिक सहायता न दी जाय।[1] अंग्रेजों की इस नीति से बीकानेर दरबार के प्रति उनके दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का पता चलता है। महाराजा सूरतसिंह ने अंग्रेजों से केवल इसीलिये पारस्परिक मेल की संधि की थी ताकि अपने विद्रोही ठाकुरों की लूटमार की कारवाइयों के विरुद्ध उनसे सहायता ले सके। मुख्यतः इसी लाभ की भावना ने उसे अंग्रेजों के साथ मेल करने के लिये प्रेरित किया। अंग्रेजों ने बीकानेर को दूसरों से अलग और अपने अधीन करके बीकानेर दरबार के साथ विश्वासघात किया और आपत्ति में ऐसे समय छोड़ा जबकि उसको उनकी सहायता की सर्वाधिक आवश्यकता थी। भादरा का ठाकुर प्रतापसिंह अंग्रेजी इलाके से पूगल आया। उसने किले की दीवारों पर से चढ़ने की कोशिश की। संघर्ष में उसके पाँच आदमी मारे गये और वह भाग गया। जब महाराजा रत्नसिंह ने इस बात की शिकायत अंग्रेजों से की तो उन्होंने इस मामले को बहुत सामान्य रूप में ग्रहण किया। रेजिडेन्ट ने केवल यह आश्वासन दिया कि उचित प्रबन्ध किया जा रहा है। अंग्रेजों की इस उपेक्षा का ही परिणाम था कि इस घटना के दो महीनों के भीतर ही इन विद्रोहियों की कारवाइयां बढ़ गईं और सुराणा लक्ष्मीचन्द तथा खवास गुलाबसिंह को उनके विरुद्ध भेजा गया। इसी समय विद्रोही सरदारों को दबाकर शेखावटी में शान्ति और व्यवस्था पुनः स्थापित करने हेतु दिल्ली से कर्नल लाकेट को भेजा गया। महाराजा ने अपने दोनों अफसरों को कर्नल लाकेट की सेवा में भेजा और उसे पूर्ण सहायता देने को

---

१. पव्चिसन–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. २७८।

कहा।[1]

सन् १८३१ में महाराजा रत्नसिंह को अनेक खरीते मिले। इनमें कहा गया था कि वह विद्रोहियों को दंड दे और इलाके में पुनः शान्ति स्थापित करदे। दिल्ली स्थित रेजिडेंट सर एडवर्ड कोलब्रुक ने बरसलपुर के जागीरदारों के विरुद्ध शिकायत की जिन्होंने जोधपुरी इलाके पर हमला किया था और जो पशु और सम्पति उठा ले गये थे।[2] ता. २४ मार्च १८३१ को मि. डब्लू बी. मार्टिन ने महाराजा को सूचित किया कि बैलों सहित गुड़ से भरी १० गाड़ियाँ, जिनका मूल्य १४२५) रू० था लूट ली गई थीं। और बीकानेर के इलाके में कुछ लोग मार डाले गये थे।[3] महाराजा से कहा गया कि या तो वह सामान दिलावे या उसकी कीमत चुकाये। साथ ही वह ध्यान रखे कि भविष्य में ऐसी घटनायें न हों। २८ मार्च सन् १८३१ को मि. मार्टिन ने पुनः महाराजा को लिखा कि वह विद्रोहियों (प्रतापसिंह और लक्ष्मणसिंह) को सजा दे।[4] एक अप्रैल सन् १८३१ को मार्टिन ने पुनः बीकानेर जयपुर सीमा पर बड़े पैमाने पर होने वाली लूट मार का उल्लेख किया और महाराजा को सूचित किया कि जयपुर के महाराजा से भी अनुरोध किया गया है कि अपने इलाके में वह इन कारवाइयों को रोके।[5] ता. ७ अप्रैल १८३१ के मार्टिन के खरीते से पता चलता है कि बीकानेर इलाके के कुछ लोगों ने शेखावाटी में लूटमार और हत्याएँ कीं।[6] अपराधियों को दण्ड देने और लूटी हुई सम्पति अथवा पीड़ित व्यक्तियों को इसका मूल्य चुकाने की बात भी खरीते में लिखी थी। ता. १८ अप्रैल १८३१ के मार्टिन के खरीते में बीकानेर के इलाके में अनाज और घी

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र ११८।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८१।
ता. १७-१२-१८३० का मि० डब्लू. बी. मार्टिन का खरीता (लेखक के पास)।

२. सर एडवर्ड कोलब्रुक (रेजिडेन्ट दिल्ली) का बिना तारीख का खरीता (लेखक के पास)।

३. ता. २४-३-१८३१ का मि. डब्लू. बी. मार्टिन का खरीता (लेखक के पास)।

४. वही, ता. २८-३-१८३१।

५. ता. १-४-१८३१ का मि० डब्लू० बी० मार्टिन का खरीता।

६. वही, ता. ७-४-१८३१ का।

लूटे जाने का उल्लेख है।[1] मार्टिन ने १८ अप्रैल १८३१ को महाराजा को सूचित किया कि गवर्नर जनरल ने लूट के हमलों के बारे में जाँच करने के लिये कर्नल अब्राहम लाकेट को भेजा है। ता. २७ अप्रैल १८३१ के मार्टिन के खरीते में लौढसर में लूटी हुई सम्पति सहित १८ डाकुओं की गिरफ्तारी का उल्लेख है।[2] इसी प्रकार २१ मार्च सन् १८३१ को महाराजा को कहा गया कि वह बीकानेर के इलाके में उसके द्वारा बन्दी बनाये गये अपराधियों को सौंपदे।[3] २५ मई सन् १८३१ के मार्टिन के खरीते में महाराजा को एक विशेष निर्देश दिया गया। उसे कहा गया कि वह अनुभवी आदमी भेजे क्योंकि बिसाऊ और सीकर के शेखावत बीकानेर के इलाके में लूटमार के लिये हमले कर रहे थे। इन हमलों के कारण कुछ गांव खाली हो गये थे और कुछ स्त्री पुरुषों को पकड़ कर ले जाया गया था।[4] विद्रोही सरदारों की लूटमार की कारवाइयों से सम्बन्धित मिस्टर मार्टिन के खरीतों की कोई कमी नहीं।

सन् १८३१ में महाराजा द्वारा प्राप्त इन खरीतों का विवेचनात्मक विश्लेषण करने से प्रमाणित होता है कि उपद्रवी सरदार स्थापित सत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। तब अल्पाधिक समस्त क्षेत्र भय की दशा में था। इन अविनीत सरदारों और डाकुओं का दमन राजपूताना के राजाओं और अंग्रेज सरकार दोनों के लिये एक गम्भीर समस्या बन गया था। इन सब अविनीत सरदारों ने उस सामान्य असुरक्षा की स्थिति का लाभ उठाया जो आमतौर पर संक्रान्तिकाल में हुआ करती है।[5] स्थिति इतनी गम्भीर हो गई थी कि शेखावाटी ब्रिगेड (सेना) को कई बार इन डाकू सरदारों के किले को घेरना पड़ा और बहुत अधिक कठिनाई से पुनः शान्ति स्थापित की जासकी।[6] विद्रोही अत्यधिक शक्तिशाली हो गये थे और ऐसा लगता है कि आम जनता भी भय के कारण अथवा सहानुभूति के

---

१. ता. १८-४-१८३१ का मि. डबलू. बी. मार्टिन का खरीता।

२. वही, ता. १८-४-३१, २७-४-३१ और २८-४-१८३१ के।

३. वही, ता. २१-५-१८३१ का।

४. वही, ता. २५-५-१८३१ का।

५. खड़गावत--पूर्व उद्धृत, पृ. ७-८।

६. वही, पृ. ६।

कारण उन्हें सहयोग देती थी।[1] इन डाकुओं में से कुछ लगभग निजन्धरी (कहावती) व्यक्ति बन गये थे। वे लोगों का ध्यान आकर्षित कर इतने लोकप्रिय हो गये कि वे अजेय माने जाने लगे।[2] डूँगजी और जवारजी जैसे लोकप्रिय डाकू, जो अंग्रेजों द्वारा डाकू घोषित किये जा चुके थे, प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा भी संरक्षण प्राप्त कर सकते थे। जब डूँगजी पकड़े गये तो बहुत से शेखावत उन्हें जेल से छुड़ाने के लिये आगरा गये। डाकू डूँगजी जेल से भाग निकले और पुनः लूटमार का कार्य करने लगे। यदि इन विद्रोही तत्वों को आगरा यात्रा को रोका जाता तो ऐसी घटनायें घटित न होतीं। पर उस समय भी बहुत से सरदारों ने, कुछ ने भय से और कुछ ने सहानुभूति से, इन डाकुओं को कभी नहीं रोका।[3]

सन् १८३४ में गवर्नर जनरल के एजेंट कर्नल एल्विस ने महाराजा से मिलने का अनुरोध किया। यह भेंट रतनगढ़ में हुई। वहां सीमान्त इलाकों में शान्ति स्थापित करने के तरीकों और उपायों का निश्चय किया गया। यह निर्णय किया गया कि बारोटियों (डाकुओं) को क्षमा कर दिया जाय, शेखावाटी ब्रिगेड (सेना) बनाकर झूंझनू में रखी जाय और उसके खर्चे के लिये महाराजा प्रतिवर्ष २२,०००) रु० प्रदान करे। इस सेना में १०० बीदावतों की पलटन सम्मिलित की जानी थी। चिड़ावा के संग्रामसिंह को इस सेना का रिसालदार और भोजोलाई के आवाजी को जमादार नियुक्त किया गया।[4]

इस मुलाकात के समय महाराजा ने कर्नल एल्विस का ध्यान अंग्रेज सरकार की इस अन्यायपूर्ण कारवाई की ओर भी आकर्षित किया जिसमें बीकानेर के ४० गांव अंग्रेजों ने ले लिये थे। कर्नल ने वचन दिया कि वह अन्याय को दूर करने के लिये सरकार से लिखा-पढ़ी करेगा। तब महाराजा बीकानेर के लिये रवाना हो गया। मार्ग में उसने विद्रोही जागीरदारों से जुर्माना वसूल किया।[5] इस इलाके में अव्यवस्था फैली हुई थी और इन असन्तुष्ट सरदारों और डाकुओं की कारवाइयां इतनी अधिक

---

१. खड़गावत–पूर्व उद्धृत, पृ. ८।
२. वही, पृ. ८।
३. वही, पृ. १०।
४. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८२।
५. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८२।
दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १२३-१२४।

चढ़ गई थीं कि वे मेहसर, घड़सीसर और लूणकरणसर तक आते थे ।[१] शेखावत डूँगरसिंह ने अपनी कारवाइयां सीकर के इलाके तक बढ़ा दीं और अंग्रेजी सेना के बहुत से ऊँट और घोड़े पकड़ लिये ।[२] अंग्रेजों द्वारा लिखे जाने पर महाराजा ने लोढ़सर के ठाकुर को अंग्रेजों की सेवा में भेजा । उसने डूँगरसिंह के छिपने के स्थानों को बता दिया । अंग्रेजों ने महाराजा को तारीख २७ मार्च सन् १८३५ को एक खरीता भेजकर उसके सहयोग के लिये बहुत धन्यवाद दिया ।[३]

सैनिक सहायता के लिये महाराजा रत्नसिंह अंग्रेजों से खरीते प्राप्त करता रहा । २५ सितम्बर सन् १८३७ को मेजर फोरस्टर ने महाराजा से शाह हुकमचन्द को शीघ्रातिशीघ्र भेजने का अनुरोध किया ताकि निजी बातचीत के बाद प्रबन्ध किया जा सके ।[४] २६ जनवरी सन् १८३८ को उसने पुनः महाराजा से प्रार्थना की कि रिसालदार शेख रहीमुल्ला को सेना के साथ भेज दिया जाय ।[५] ताः १३ फरवरी १८३८ के फोरस्टर के खरीते में कुछ डाकू, अंग्रेजों को सौपने की माँग की गई थी ।[६] मई में उसने महाराजा को सूचित किया कि अंग्रेजी सेना कारवाई करने के लिये पूर्णतः तैयार है ।[७] कार्त्तिक बदी दशमी को फोरस्टर ने पुनः मारवाड़ में डाकुओं को दबाने के लिये सेना भेजने पर कृतज्ञता प्रकट की ।[८] जनवरी सन् १८३९ में उसने मारवाड़ के डाकुओं को दबाने के लिये सुजानगढ़ से सेना भेजने की महाराजा से पुनः प्रार्थना की ।[९] १० मार्च सन् १८३९

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १२२ ।
२. वही, पत्र १२६ ।
३. डूंगरसिंह सीकर के राव किशनसिंह के पुत्रों में से एक कीरतसिंह के पुत्र पद्मसिंह का वंशज था । पद्मसिंह के वंशज बाठोट के जागीरदार थे ।
४. मेजर फोरस्टर (शेखावाटी ब्रिग्रेड का सैनिक अफसर) का ता. २५-९-१८३७ का खरीता ।
५. वही, ता. २६-१-१८३८ का ।
६. वही, ता. १३-२-१८३८ का ।
७. वही, ता. २८-५-१८३८ का ।
८. वही, ता. कार्तिक बदी १० सम्वत् १८९५ (सन् १८३८) ।
९. ता. ७-१-१८३९ का मेजर फोरस्टर का खरीता ।

के उसके खरीते में हरिसिंह और जोधसिंह की गिरफ्तारी का उल्लेख है ।[१] अगस्त सन् १८३६ में हम पुनः फोरस्टर को महाराजा से सहायता मांगते हुए देखते हैं । इस प्रकार उस क्षेत्र में शान्ति और व्यवस्था पुनः स्थापित करने के अंग्रेजों के प्रयत्नों में महाराजा ने उनकी पूर्ण सहायता की।

सन् १८३६ में महाराजा ने देवीकुण्ड पर अपने पिता की छत्री की "प्रतिष्ठा" की। इसके बाद वह गया की तीर्थ यात्रा पर गया । उसके साथ एक अंग्रेज अफसर भी था जो सेवा में रहा । गया में महाराजा ने अपने सरदारों से प्रतिज्ञा करवाली कि वे अपनी कन्याओं का वध नहीं करेंगे। जो सरदार कन्यावध के दोषी पाये जायेंगे उनकी भूमि और जागीर जब्त करके उन्हें सजा दी जायेगी ।[२]

सन् १८३० से १८४७ तक बीकानेर का समस्त क्षेत्र अल्पाधिक अव्यवस्था की स्थिति में रहा । बीकानेर की सेना ने अंग्रेजों को हार्दिक सहयोग दिया और उसी की सहायता से प्रसिद्ध डाकू जवाहरसिंह पकड़ा जा सका ।[३] यद्यपि डाकुओं ने महाराजा रत्नसिंह के शासन को काफी सीमा तक अशान्त बना दिया था पर महाराजा ने अपना परम्परागत गौरव नहीं छोड़ा । समस्त राजस्थान में शरणागत की चाहे वह उसका सबसे बुरा शत्रु भी क्यों न हो, रक्षा करना प्रत्येक राजपूत का धर्म माना जाता है। जवाहरसिंह ने महाराजा को आत्म-समर्पण करके उसके चरणों में शरण मांगी तो महाराजा रत्नसिंह ने उसे अंग्रेजों को देने से इनकार कर दिया।[४] केन्द्रीय सत्ताओं से बीकानेर के सम्बन्ध के इतिहास में यह उदारता प्रदर्शन हमेशा एक उज्ज्वल नक्षत्र की भांति आलोकित रहेगा । यह घटना आने वाली पीढ़ियों को याद दिलायेगी कि उस पतन और विनाश के युग में भी बीकानेर के राजघराने ने, युवराज के जीवन के मूल्य पर भी, राजपूती शौर्य के गुणों की मशाल को जलाये रखा । जब अंग्रेजों ने जवाहरसिंह को सौंपने के लिये बहुत दबाव डाला तो महाराजा रत्नसिंह ने ऐसा करने से इनकार कर दिया और अंग्रेजों से कहा कि बन्धक के रूप में वह अपने पुत्र सरदारसिंह

---

१. ता. १०-३-१८३६ का मेजर फोरेस्टर का खरीता ।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १२६-२६।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८२।

३. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १५७-५६।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८५ ।

४. खड़गावत–पूर्व उद्धृत, पृ. १०।

को सौंपने को तैयार है। अन्धकार युग में यह वीरता और साहस का उदाहरण बीकानेर के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

उपद्रवी तत्वों के विरुद्ध सम्मिलित रूप से जो कारवाई की गई इस सबका विवेचनात्मक विश्लेषण करने से पता चलता है कि इस इलाके में अंग्रेजों के प्रवेश करने से अराजकता और कुशासन का युग आ गया। यह संक्रान्ति युग था। प्राचीन शासन टुकड़े २ होकर बिखर रहा था और नया अभी आने वाला था। राजनीति में एक प्रकार की शून्यता उत्पन्न हो गई थी। असन्तुष्ट सरदारों ने क्रोधित होकर उपद्रवी तत्वों की सहायता से इतनी अधिक उलझनें उत्पन्न कर दी थीं कि पुनः शान्ति और स्थिरता कायम करने के लिये अंग्रेजी सेनाओं को वर्षों तक निरन्तर युद्ध करना पड़ा।

सिरसा की सीमा तक कुछ गांवों के अपने दावे को महाराजा ने कायम रखा। इसके निपटारे के लिये बार बार याद दिलाने पर सन् १८३७ में मेजर थार्स्बी को दावे की जाँच के लिये भेजा गया लेकिन थार्स्बी की जाँच से महाराजा को कोई लाभ न हुआ।[1]

सन् १८४४ में अंग्रेजों के कहने पर बीकानेर के शासक ने भावलपुर और सिरसा के मार्ग में बीच बीच में सरायें बनवादीं और कुएँ खुदवा दिये। इससे रास्ता सुधर गया।[2] अंग्रेजों की सिफारिश से राज्य में से गुजरने पर लगने वाली जकात भी कम कर दी गई। अन्न लदे हुए ऊँट पर आठ रुपये की बजाय केवल आठ आना चुकाना पड़ता था। सामान की प्रति बैलगाड़ी पर एक रुपया कर नियत हुआ। भैंसा, बैल, टट्टू और खच्चर पर लद कर जाने वाले सामान पर माल की कीमत का २ प्रतिशत कर रखा गया। बिना लदे पशुओं पर कोई कर नहीं रखा गया। जिस तत्परता से बीकानेर के शासक ने अंग्रेज सरकार की बात मानी उससे

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १३२-३३।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८३।
ता. ६-१-१८३७ का सर एल्विस का खरीता (लेखक के पास)।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १४७-४८।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८४।

वह (अंग्रेजी सरकार) बहुत खुश हुई। हिन्दूमल[1] को भी इन सुधारों में भाग लेने का श्रेय मिला।[2]

सन् १८४५ में सुजानगढ़ के पास की सीमा कप्तान जैक्सन ने तै की। बीकानेर के गांव थारड़ा और जोधपुर के गांव कानपुर का विवाद था। कप्तान जैक्सन ने जैसलमेर और बीकानेर के दावे की भी जाँच की। इन जाँचों के लिये मि० कनिंघम सूरतगढ़ में जैक्सन से आ मिला। उन्होंने अपनी जांच आरम्भ ही की थी कि प्रथम सिक्ख युद्ध के छिड़ जाने की खबर पहुँची।[3] जांच रोक दी गई और कनिंघम अपने प्रधान कार्यालय लौट गया। अंग्रेजों ने महाराजा बीकानेर को कहा कि वह उनकी सहायता के लिये सेना, तोपें और दूसरी युद्ध सामग्री भेजे। २४ दिसम्बर को कप्तान जैक्सन हनुमानगढ़ (भटनेर) पहुंच गया और बीकानेरी सेना के साथ मुक्तसर की ओर प्रस्थान किया। तब बीकानेर की पैदल और सवार सेना आसववाला में ठहरी। इस सेना को सतलज पार करने की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि तब तक लाहौर के महाराजा (रणजीतसिंह का पुत्र दलीपसिंह) और अंग्रेजों के बीच ३० मार्च सन् १८४६ को संधि हो गई। पर

---

१. बीकानेर के वैद मेहता जाति के ओसवाल और जैन धर्मावलम्बी हैं। उनका मूल निवास भीनमाल है। जब राव बीका अपने लिये एक नवीन राज्य की स्थापना हेतु जोधपुर से रवाना हुआ तो इनके पूर्वज वैद मेहता लाला और लाखनसी उसके साथ आये। लाखणसी का एक वंशज ठाकुरसी महाराजा रायसिंह के शासनकाल में मंत्री था। ठाकुरसी के एक वंशज मूलचन्द ने महाराजा सूरतसिंह के समय मूल्यवान सेवायें दी जिसके बदले में उसे नौरंगदेसर गांव जागीर में प्रदान किया गया। हिन्दूमल मूलचन्द का द्वितीय पुत्र था। मुगल दरबार में राज्य के वकील के रूप में उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर महाराजा रत्नसिंह ने उसे अपना प्रधानमंत्री बनाया और उसे वंशानुगत महाराव का खिताब भी दिया। महाराव हिन्दूमल को मेवाड़ दरबार से ताजीम और अंग्रेजों से खिलअत भी मिली। महारावों को दरबार में राज्य के प्रधानमंत्री के तुरन्त बाद नजर भेंट करने का उच्च सम्मान प्राप्त था। वैद मेहता परिवार को पैर में सोने का कड़ा पहनने का वंशानुगत उच्च सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

२. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८४।

३. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १५१-५४।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ८४-८५।

सतलज़ नदी के पूर्व की ओर जो लड़ाइयाँ हुईं उनमें बीकानेरी सेना ने बहुत बहादुरी दिखाई। लड़ाई की समाप्ति पर कप्तान जैक्सन की सिफारिश पर महाराजा ने सेना के मुख्य अफसरों को पुरस्कार दिये। ख्यात में इन ठाकुरों की एक लम्बी सूची दी गई है। बीकानेर सरकार की सेवाओं के बदले में अंग्रेज सरकार ने पूर्णतः सज्जित दो तोपें दीं।[1] २० अगस्त सन् १८४७ को विदेश विभाग के सचिव ने राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेन्ट को लिखे एक पत्र में महाराजा की सेवाओं की बहुत २ प्रशंसा की।[2]

डूंगरसिंह और उसके दल के कुछ लोग पहले बन्दी बनाये जाकर अंग्रेजों को सौंप दिये गये थे। अंग्रेजों ने उन्हें आगरा जेल में कैद कर दिया था। लेकिन सन् १८४७ में डूंगरसिंह के सहायक मानसिंह ने जेल पर हमला किया और डूंगरसिंह को मुक्त करा लिया। जब महाराजा को यह सूचना मिली तो उसने एक आदेश निकाला कि जो कोई इन डाकुओं को पकड़ेगा उसे पुरस्कार दिया जायेगा। साथ ही उसने यह भी चेतावनी दी कि जो डूंगरसिंह और उसके साथियों के साथ सम्पर्क रखेंगे या उन्हें शरण देंगे उनकी जमीन जब्त कर ली जायगी और उन्हें अन्य कड़ा दण्ड दिया जायगा। यह कदम महाराजा ने इस विषय पर अंग्रेज सरकार का एक पत्र आने पर उठाया था। अखबारों ने इस घटना की खबर बहुत महत्व देकर छापी। दिल्ली के एक अखबार ने राव हिन्दूमल पर सन्देह प्रकट किया कि वह डाकुओं से मिला हुआ था। इससे राव हिन्दूमल बहुत घबरा गया। वह अंग्रेज अधिकारियों के समक्ष अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये शीघ्र शिमला चला गया।

इसी बीच डूंगरसिंह लूटमार करता रहा। उसने और जवाहरसिंह ने कुछ अग्रवालों को पकड़कर बन्धक बनाया और उनसे २५,०००) रु० वसूल किये।[3] जब वे धन के साथ लौट रहे थे तो बीकानेर की सेना ने,

---

१. पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ० ८४-८५।
दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १५१-५४।

२. "गवर्नर जनरल को यह जानकर अत्यन्त सन्तोष हुआ है कि बीकानेर के महाराजा—ने अपने राज्य के समस्त साधन आपकी अधीनता में रखकर हार्दिक सहायता प्रदान की। गवर्नर जनरल समझते हैं कि आप की अधीनता में महाराजा की सेना द्वारा प्रदर्शित बहादुरी और स्वामीभक्ति के कार्य उच्च प्रशंसा के योग्य हैं"
— दी हाउस ऑफ बीकानेर, पृ. १७२।

३. दयालदास—पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १५६-६२।
पाउलेट—पूर्व उद्धृत, पृ. ८५।

जो उनका पीछा करने के लिये भेजी गई थी, उन्हें घेर लिया। पर वे लूटी हुई सम्पति छोड़ कर बच निकले। यह रुपया महाराजा की सेना ने ले लिया। डूंगरसिंह और उसके साथियों ने अब अपनी कारवाइयों का विस्तार नसीराबाद की ब्रिटिश छावनी में किया। वहां उन्होंने खजाना लूटा। जवाहरसिंह के पीछे कप्तान शॉ को भेजा गया। जवाहरसिंह ने बीकानेर में कहीं शरण ले ली थी। महाराजा ने क़प्तान शॉ की मदद के लिये हरनाथसिंह और महता हरिसिंह को भेजा। गांव घड़सीसर में जवाहरसिंह घेर लिया गया और उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा।[1]

सीकर का प्रधान मुकनसिंह बहुधा लूटमार किया करता था। अपनी सफलताओं से उत्साहित होकर उसने अपनी कारवाइयाँ तेज कर दीं। जनता ने इसके विरुद्ध शोर, पुकार मचाई। समाचार पत्रों ने महाराजा और महाराजकुमार पर आरोप लगाया कि वे मुकनसिंह से मिले हुए हैं। अखबारों ने महाराजा और महाराजकुमार के विरूद्ध जो आरोप लगाये थे उन्हें दूर करने के लिये राव हिन्दूमल ने अंग्रेज अधिकारियों को पत्र लिखे। बाद में सीकर और जोधपुर के लुटेरों को पकड़ने के लिये जब बीकानेर सरकार को गम्भीर और तुरन्त कारवाई करने हेतु ताकीद के पत्र भेजे गये तो बीकानेर के सरदारों ने लूटी हुई सम्पति वापस लेने और उपद्रवियों को पकड़ने में बहुत सहायता की। इन डाकुओं के दमन में हरनाथसिंह नारनोत ने महत्वपूर्ण कार्य किया।[2]

सन् १८४५ में गवर्नर जनरल का एजेंट कर्नल सदरलैंड बीकानेर आया। एलिंफस्टन के बाद किसी उच्च अंग्रेज अधिकारी का बीकानेर आने का यह दूसरा अवसर था। महाराजा ने कर्नल का खूब स्वागत और मनोरंजन किया।[3] इस समय राव हिन्दूमल का स्वास्थ्य बहुत खराब था। पर उसने सभी उत्सवों पर उपस्थित रहने और दरबार के सारे नियम और आचार पालन करने पर जोर दिया। इस प्रकार उसे पैदल

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १५७-५६।
   पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८५।
२. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ८५।
३. एक प्रतियोगिता में भाग लेते समय कर्नल सदरलैंड अपने घोड़े से गिर पड़ा पर उसे कोई चोट न आई। इस अवसर पर महाराजा ने ईश्वर के प्रति कृतज्ञता के रूप में सौ रुपये दान में दिये।

चलना पड़ा और सीढियां चढनी पड़ीं। इस श्रम से उसकी दशा और खराब हो गई और उसका देहांत हो गया ।

इस आगमन के समय एक बार सिंध के बारे में चर्चा चली। महाराजा ने सिंध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने को अन्याय बताते हुए अपनी कड़ी असहमति प्रकट की।[1] सन् १८४८ में मुल्तान का सिक्ख गवर्नर दीवान मूलराज विद्रोह करने पर उतारु हो गया। अंग्रेज सरकार ने महाराजा बीकानेर को लिखा कि वह मुल्तान भावलपुर सीमा पर थाने स्थापित करदे और मुल्तान में व्यापारियों के पास मूलराज ने जो सम्पति रखी है, वह जब्त करले। महाराजा ने मुल्तान में मूलराज की सम्पति के बारे में मालूम किया। वहां उसकी कोई सम्पति न होने की बात मालूम होने पर महाराजा ने सरकार को इसकी सूचना दे दी। असन्तुष्ट सिक्खों ने मूलराज को अपना नेता बना लिया और उसके पास एकत्रित हो गये। अतः इस खतरे का सामना करने के लिये अंग्रेज सरकार को सैनिक तैयारी करनी पड़ी।[2] बीकानेर से सहायता मांगी गई। सेना के लिये रसद ढोने के लिये महाराजा से सौ ऊँट मांगे गये।[3] बाद में बाघसिंह के साथ ५५ घुड़सवार और मीर मुरादअली के साथ ४० गोलन्दाज और तोपें अंग्रेजी सेना के साथ काम करने के लिये फिरोजपुर भेजे गये। महाराजा ने सहायता देने में जो तत्परता दिखाई और बीकानेर की सेनाके लोगों ने जो अच्छा काम किया उसकी प्रशंसा गवर्नर जरनल ने महाराजा को भेजे गये एक खरीते में की।[4]

उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर काबुल के साम्राज्य में हमेशा की तरह युद्ध छिड़ गया। सन् १८४१ में जब भारत के नये गवर्नर जनरल लार्ड एलिनबरो ने काबुल सेना भेजी तो महाराजा बीकानेर को २०० ऊँट भेजने के लिये कहा गया। सन् १८४२ में जब महाराजा गवर्नर-जनरल से मिलने दिल्ली गया तो इस सहायता के लिये उसे धन्यवाद दिया

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १६२ और ६४।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ८६।

२. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १६५-६६।
पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ० ८६।

३. वही।

४. वही।

गया।[1]

भारत में मुगल बादशाहत अब केवल प्रतीक मात्र रह गई थी। तो भी राजपूत राजा महान अकबर के वंशजों के प्रति, चाहे वे छिन्न भिन्न सिंहासन पर बैठते हों अपना परम्परागत सद्भाव बनाये हुए थे।[2] सन् १८३१ में मुगल बादशाह अकबर द्वितीय ने राजा ज्वालाप्रसाद को अपना प्रतिनिधि बनाकर खरीता, खिलअत, माही मरातिब, नगारे, हाथी, घोड़े आदि देकर महाराजा रत्नसिंह के पास भेजा। साथ ही महाराजा को नरेन्द्र शिरोमणि का खिताब भी दिया। महाराजा ने किले के बाहर शामियाना खड़ा करवा कर दरबार किया और उसमें मुगल बादशाह के प्रतिनिधि से भेंट की। दिल्ली के बादशाह की तस्वीर एक मसनद पर रखी गई और महाराजा ने जब खिलअत ग्रहण की तो उस तस्वीर को सलाम किया।[3]

अंग्रेज सरकार का ध्यान राजपूतों में बढ़ते हुए कन्यावध की ओर आकर्षित किया गया। राजपूत सरदार अपनी पुत्रियों के विवाह पर होने वाले अत्यधिक खर्च को उठाने में असमर्थ होने के कारण अपनी लड़कियों को पैदा होते ही मार डालते थे। महाराजा इस अमानवीय प्रथा से पहले से ही घृणा करता था। अतः इस अवसर पर गवर्नर जनरल ने इसे खरीता भेजा तो महाराजा ने उसका स्वागत किया। उसने तुरन्त कन्यावध के विरुद्ध कानून लागू किया और आज्ञा दी कि विवाहों में खर्च हैसियत के अनुसार किया जाय। जिस राजपूत के पास भूमि न हो वह १००) रु० से अधिक खर्च न करे जिसमें से १०) रु० चारणों को त्याग (भेंट) के दिये जायं। सुधार के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि बीकानेर का महाराजा भारत का प्रथम राजा था जिसने अंग्रेज सरकार के आदेश को सहमति दी और इस कुप्रथा को मिटाने के लिये स्वप्रेरित होकर प्रभावशाली कदम

---

१. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १४२-४५।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ० ८३।

२. अकबर द्वितीय शाह आलम द्वितीय का पुत्र था। वह कार्तिक सुदी नवमी सम्वत् १८६३ को दिल्ली के तख्त पर बैठा। आश्विन बदी १४ सम्वत् १८६४ को उसकी मृत्यु हो गई। वह नाम मात्र का ही बादशाह था।

३. दयालदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र ११६।
श्यामलदास-पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५१०-११।
पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. ८१।

उठाये ।[1]

७ अगस्त सन् १८५१ को महाराजा रत्नसिंह की मृत्यु हो गई। महाराजा के दो पुत्रों में से ज्येष्ठ महाराजकुमार शेरसिंह की उसके जीवन-काल में निःसन्तान मृत्यु हो गई थी। अतः गद्दी का स्वामी उसका तेतीस वर्षीय द्वितीय पुत्र सरदारसिंह हुआ। १६ अगस्त सन् १८५१ को सरदारसिंह बीकानेर के १६ वें शासक के रूप में सिंहासन पर बैठा।[2]

महाराजा रत्नसिंह के शासन के पूर्वोक्त विवरण में हम देखते हैं कि महाराजा में परम्परागत स्वामि-भक्ति की भावना के साथ साथ बदलते हुए समय की माँग और राजनैतिक स्थिति की धारा को समझने की चतुराई थी। मुगल बादशाह के प्रति वह स्वामि-भक्त रहा यद्यपि इससे उसे कोई वास्तविक लाभ न हुआ। मुगल साम्राज्य के पतन और अंग्रेजों के उत्थान के बीच के छिन्न-भिन्न के युग में उसने सावधानी से अपने आपको सत्ता और लूट मार की लालसा से बचाया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद देश में बहुत गड़बड़ी मची पर बीकानेर राज्य न केवल इस गड़बड़ी से बचा ही रहा बल्कि उसका सम्मान राजनैतिक शिखर पर पहुँच गया। इसका श्रेय एक ओर महान राव बीका को है जिसने अगम्य प्रदेश में अपने राज्य की स्थापना की तो दूसरी ओर बीकानेर के शासकों की योग्यता को है जो पड़ोसी राजपूत राजाओं की शक्ति और चरित्र को जान जाते थे और दृढ़ संयम से अपने को गड़बड़ी में पड़ने से अलग रखते थे। यद्यपि राजनीतिक तूफान बन्द हो गया था पर राजनैतिक असंतोष का युग तब भी था तथा एक और गम्भीर विस्फोट होना बाकी था।

महाराजा रत्नसिंह की मृत्यु के समय बीकानेर की स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ था अतः महाराजा सरदारसिंह का शासन विद्रोहों और उनके दमन की म्लान कथा की छाया में आरम्भ हुआ। फलस्वरूप अंग्रेज सरकार का धीरे धीरे प्रभाव बढ़ता गया। भावलपुर, जोधपुर, जयपुर, शेखावाटी और मारवाड़ की सीमा समस्याओं के कारण सेना पर खर्च बढ़

---

१. दयालदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पत्र १५० ।
पाउलेट––पूर्व उद्धृत, पृ० ८४ ।

२. श्यामलदास–पूर्व उद्धृत, भाग २, पृ० ५१२ ।
पाउलेट ने गजेटियर आफ दी बीकानेर स्टेट पृ. ८७ पर महाराजा सरदार सिंह का राज्यारोहण सन् १८५२ में होना लिखा है।

गया था । असन्तुष्ट सरदार शान्ति से नहीं रहते थे और जागीरदार और ठाकुर राज्य के लिये निरन्तर चिन्ता का कारण बने हुए थे। लोगों की आर्थिक दशा तो सामान्यतः और भी खराब थी ।

अपनी जनता की दशा सुधारने की दिशा में पहले कदम के रूप में महाराजा ने कई सुधार किये। उसने "बाछ" नामक एक स्थानीय कर हटा दिया और विवाह एवं मृत्यु के अवसरों पर दिये जाने वाले भोज पर प्रतिबन्ध लगा दिया । उसने महाजनों के लिये अनिवार्य कर दिया कि अपने को दिवालिया घोषित करने से पूर्व वे जांच के लिये अपनी बहियां सरकार के समक्ष प्रस्तुत करें । उसने दिवालियों द्वारा कर्जा पुनः चुकाने के बारे में भी कुछ नियम बनाये ।

महाराजा सरदारसिंह ने बीकानेर और अंग्रेजी इलाके के बीच सीमा विवाद निपटाने के लिये मेहता छोगमल को मि० एल्मूर के पास भेजा । यह विवाद सफलता से मिट गया।

जब लार्ड बैंटिक वाइसराय था तो एक कानून लागू किया गया जिसके अनुसार सती प्रथा और समाधि (जीवित साधुओं का गाड़ा जाना) पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । लेकिन ये प्रथायें राजस्थान में चालू रहीं क्योंकि यहां के शासक उन्हें धर्म का अंग मानते थे और उन्हें मिटाने में हिचकिचाते थे। अतः राजपूताना में गवर्नर जनरल के तत्कालीन एजेंट सर हेनरी लारेन्स ने महाराजा को एक खरीता भेजा । इसमें इन प्रथाओं को रोकने का आदेश देने और उनमें सहयोग देने वालों को कड़ा दण्ड देने की प्रार्थना की गई था । महाराजा ने तुरन्त ही यह अनुरोध मान लिया । सन् १८५४ में उसने आदेश जारी कर सती और समाधि प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया और उन्हे करना अपराध घोषित कर दिया। साथ ही यह भी कहा कि जो इस अपराध में सहयोग देगा अथवा उसे बढ़ावा देगा उसे कैद या जुर्माना अथवा दोनों की सजा दी जायेगी ।[1]

सन् १८५७ का विद्रोह जो आरम्भ में एक साधारण स्थानीय मामला लगता था, उसने बहुत बड़ा रूप धारण कर लिया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिये दुर्भाग्य सूचक बना। विद्रोहियों ने बीकानेर राज्य की उत्तरी सीमा पर सिरसा, हिसार और हांसी के जिलों पर अधिकार कर लिया था । महाराजा सरदारसिंह ने तुरन्त स्थिति को भांप लिया और अंग्रेजों की सहायता

---

१. ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ. ४४३–४४ ।

के लिये अपनी सेना भेजने का अविलम्ब निर्णय किया ।

ब्रिगेडियर जनरल पी. लारेंस ने लेफ्टिनेंट माइल्डमे को बीकानेर की सेना का नेतृत्व करने भेजा था। यह सेना सिरसा और हाँसी के विद्रोही जिलों में जनरल वानकोर्टलैंड द्वारा की जाने वाली कारवाई में सहायता देने के लिये थी।[1] महाराजा स्वयं अपनी सेना का नेतृत्व कर रहा था। लेफ्टिनेंट माइल्डमे ने उसे बहुत उत्साहित पाया। बीकानेरी सेना के आने के कुछ दिन बाद वानकोर्टलैंड ने उनमें से ५०० सैनिकों को लेफ्टिनेंट पियर्स की अधीनता में हिसार पर अधिकार करने भेजा।[2] इन सैनिकों की संख्या बाद में बढ़ाकर १७०० कर दी गई। उन्होंने हिसार पर अधिकार कर लिया और ३ सप्ताह तक उसे कब्जे में रखा। इस अवधि में बीकानेर के सवार निरन्तर सैनिक ड्यूटी पर रहते थे ताकि लूटमार का भय न रहे और राजस्व वसूल किया जा सके। ता० २१ जुलाई को १००० से अधिक सैनिक और दो तोपें हाँसी की सहायतार्थ भेजी गईं। उन्होंने उसे जीत कर उस पर ३ सप्ताह तक अधिकार रखा जब तक कि ८ अगस्त को जनरल वानकोर्टलैंड वहां पहुँच गया। हरियाना में बीकानेरी सेना का विद्रोहियों से छः बार मुकाबला हुआ और प्रत्येक बार विद्रोही भगा दिये गये।[3] ता० १६ अगस्त को बीकानेरी सेना ने हजमपुर के पास २०००

---

१. सन् १८५७ के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता से सम्बन्धित महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फायल संख्या ४८, (गवर्नर जनरल के कार्य वाहक एजेंट) ब्रिगेडियर जनरल पी लारेन्स द्वारा २७-७-१८५७ को भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव जी. एफ. एडमन्सटन को लिखे पत्र के अंश, पृ. १७–परिशिष्ट ६ ।

२. सन् १८५७ के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता से सम्बन्धित महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फायल संख्या ४८, गवर्नर जनरल के एजेन्ट ब्रिगेडियर जनरल सैन्ट पैट्रिक लारेंस को ता. २४–६–१८५७ को लिखा गया लेफ्टिनेंट ए. जी होम माइल्डमे का पत्र, पृ २०–परिशिष्ट १० ।

३. सन् १८५७ के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता से सम्बन्धित महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फायल संख्या ४८, ता० १७-१०-१६१२ को चीफ जनरल स्टाफ शिमला से महाराजा गंगासिंह को भेजा गया तार ।

विद्रोहियों को मार भगाया। बीकानेर का सारा रिसाला २३ अगस्त को हाजमपुर के जलाने में लेफ्टिनेंट माइल्डमे के साथ था।[1] बाढ़ूल के घेरे के समय लेफ्टिनेंट पियर्स के अधीन सेना के एक व्यक्ति— शामपुरा के खेतसिंह राठौड़— ने शत्रुओं की ओर से होने वाली गोलीबारी में अपने प्राणों की परवाह न करते हुए शहरपनाह पर चढ़ कर अद्भुत साहस का परिचय दिया। उस समय वहाँ उपस्थित कलेक्टर मि० फोर्ड ने उसकी बहादुरी के कार्य पर विशेष ध्यान दिया। मंगली और तोशाम पर आक्रमण करने के लिये दो बीकानेरी तोपें भेजी गई थीं। यद्यपि बाद में वहाँ के मुसलमान निवासियों ने उन्हें धोखे में फंसा लिया और फाटकों पर विद्रोही सेना उन पर हावी हो गई तो भी बीकानेर की सेना तहसीलदार और थानेदार को बचाने के लिये तहसील में बहादुरी से लड़ी। इसमें बीकानेर के ३ प्रधान— नीमराणा का मोहकमसिंह, कोजरा (कूंजला) का मिठ्ठूसिंह और थिरकाली (थिरकाली) का खुमाणसिंह मारे गये। विद्रोहियों के बहुत अधिक संख्या में होने के कारण हमले में गुमानसिंह जाट्रू भी मारा गया। विद्रोहियों के एक गढ़ जमालपुर के हमले में बीकानेर की सारी सेना ने भाग लिया। प्रधानतः इसी के कारण विद्रोहियों की हार हुई।[2]

विद्रोह के समय महाराजा सरदारसिंह ने अंग्रेजी सरकार को जो सहायता दी उसका मेरे कार्यालय के रेकार्ड[3] के अनुसार संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है— लेफ्टिनेंट माइल्डमे के अधीन बीकानेरी सेना जिसमें

---

१. भादवा सुदी ५ सम्वत् १९१४ को हांसी से भेजी गई शाह लक्ष्मीचंद की रिपोर्ट (लेखक के अधिकार में)। शाह लक्ष्मीचंद की हांसी में ज्वर से मृत्यु हुई जैसाकि लेफ्टिनेंट माइल्डमे ने ता. २४ सितम्बर १८५७ को भेजे गये अपने मुरासिले (पत्र) में लिखा है।

२. सन् १८५७ के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता से सम्बन्धित महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फायल सं. ४८, लेफ्टिनेनेंट ए. जी होम माइल्डमे का ता. २४-६-१८५७ को ब्रिगेडियर जनरल पी. लारेन्स को पत्र, पृ. २०-२२।

३. सन् १८५७ के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता से सम्बन्धित महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फायल संख्या ४८।

सरदार[1] मन्त्री और अधिकारी थे रखी गई थी। वे भादरा से हिसार गये। वहाँ भादवा सुदी छठ विक्रमी सम्वत् १६१४ को बीकानेरी सेना जनरल वानकोर्टलैंड की सेना से जा मिली। विद्रोहियों ने हिसार पर आक्रमण किया और शहरपनाह के फाटक तोड़ने का प्रयत्न किया। बीकानेरी सेना ने हमलों को विफल कर दिया और विद्रोहियों को हरा दिया।[2] इस हमले में लगभग ४०० विद्रोही मारे गये और कुछ बन्दी बना लिये गये। हमले के समय भादरा का ठाकुर बाघसिंह कांधल, बाय का ठाकुर शिवजीसिंह, साँवतखाँ पठान, साहणी जवानजी (रिसाले के साथ) मेहता शिवजीसिंह, पुरोहित चिमनराम हिसार में थे। भादरा का ठाकुर बाघसिंह बीदावतों की एक टुकड़ी के साथ हिसार की देखभाल के लिये छोड़ दिया गया और बीकानेर की शेष सेना हाँसी, फतेहाबाद तथा तोशाम की ओर बढ़ी। तोशाम में प्रधान साँखू और नीमा के ठाकुर रहे। हाँसी से लगभग ८ मील दूर जमालपुर और उमराय के बीच एक स्थान पर बीकानेरी सेना की विद्रोहियों से मुठभेड़ हुई। इसमें विद्रोही हार गये। इस लड़ाई में बीकानेर की सेना के भी कुछ लोग मारे गये। लेकिन उनके नाम और संख्या ज्ञात नहीं हो सकी। पर यह लिखा है कि कक्कू का पदमजी बीदावत गोली से मारा गया। इस लड़ाई में, जिसमें बीकानेर राज्य की दो तोपें ५०० सवार और ११०० पैदल थे, कनवारी के ठाकुर सगतसिंह, सारोठिया के ठाकुर नाहरसिंह, श्यामपुरा के

---

१. सरदार—भूकरका, सांखू, सीधमुख, जसाणा, बाय, नीमा, राजपुरा, कुंभाणा, दद्रेवा, हरदेसर, बिरकाली, अजीतपुरा, मेघाणा, कान्हसर, तेहाणदेसर, कतार, मेनसर, बीदासर, गोपालपुरा, सांडवा, चाहड़वास, हरासर, लोहा, खुड़ी, कणवारी, शोभासर, पड़िहारा, काणुता, सारोठिया, कक्कू, जोगलिया, रावतसर, माणकरासर, जैतपुर, भारिया, सात्यूं, ल्होसणा, कल्लासर, धांधूसर, रायसर, घड़ियाला, खारबारा, जांगलू, हाडलां, जैतसीसर, राणासर तथा नाहरसर।

अफसर—महाराव हरिसिंह महता, फौजदार ठाकुर हुकुमसिंह भाटी, राव गुमानसिंह वैद, कमांडेंट गुरुसहाय, साह लक्ष्मीचंद सुराणा, साह लालचन्द सुराणा, साह फतेहचन्द सुराणा और पुरोहित चिमनराम।

२. भादवा वदी अमावस सम्वत् १६२३ को हिसार से लिखी व्यास तेजमाल की रिपोर्ट में लिखा है—"गांव सित्रानी बंगाली रो हमलो का सवार ३०० पाला ३०० दरवाजे आय झगड़ो कियो। साव दरवाजो खोलण रो हुक्म दियो सो असवार सारा कितना साव साथे वारे हुआ और गोपीराम कुमेदान रो...... सफीलांसू गोलियां चलाई......।"

बणीरोत बींजराज, ल्होसणा के कुशलसिंह, कक्कू के बीदावत पदमसिंह और भूकरका, जसाणा तथा राजपुरा के सरदारों ने भी भाग लिया। अंग्रेजी, बीकानेरी और पटियाला की इस सम्मिलित हमलावर सेना की कुल संख्या, जैसा बताया गया है, २००० सवार ३००० पैदल और तोपें थीं। बीकानेर की सेना ने विभिन्न तिथियों पर निम्नलिखित लड़ाइयां लड़ी :—

हिसार	—	भादवा सुदी ६ संवत् १९१४
तोशाम	—	भादवा सुदी ७ सम्वत् १९१४
मंगली	—	आसोज बदी २ सम्वत् १९१४
जमालपुर	—	आसोज बदी ७ सम्वत् १९१४
हांसी	—	तिथि ज्ञात नहीं
सिरसा	—	,,
फतेहाबाद	—	,,

जनरल वानकोर्टलैंड के चले जाने के बाद भी बीकानेर के २०० सैनिक लड़ाई में लगे रहे। जमालपुर लेने के समय बीकानेर का सारा रिसाला उपस्थित था जहां उनका एक आदमी घायल हो गया। अपने प्राणों की परवाह न करते हुए महाराजा स्वयं भी कुछ समय के लिये काफी सेना के साथ मोर्चे पर उपस्थित था। इस समय जो घटनायें हुई उनसे उसकी उपस्थिति का महत्व अपने आप ज्ञात हो जाता है। महाराजा की उपस्थिति से मँगली, श्रीवायसू और दूसरे गांवों के उत्तेजित रांघड़ उस समय शान्त रहे। एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना यह हुई कि हांसी में ज्वर से बीकानेर की लगभग सारी सेना सेवा के लिये अयोग्य हो गई थी और बहुत से लोग मर गये थे।

बीकानेरी सेना को जब भी कोई काम करने के लिये कहा गया तो उसने तुरन्त अपनी पूर्ण योग्यता से उसका पालन किया। जनरल वानकोर्टलैंड को उनके विलम्ब या अनिच्छा की शिकायत करने का कोई अवसर न मिला। महाराजा की सेना द्वारा प्रदत्त सहायता की महत्ता समझकर अंग्रेजों ने उसे स्वीकृति और धन्यवाद का खरीता भेजा।[1] बीकानेर की शीघ्र सहायता के कारण ही पंजाब में असन्तोष फैलने से रोका जा सका। अपनी संकट की घड़ी में अंग्रेजों को बीकानेर राज्य से जो सहायता मिली उसके महत्व को उन्होंने कृतज्ञता से स्वीकार किया। भारत सरकार को लिखे

१. ता. १-१२-१८५७, ७-१-१८५८ और १८-७-१८५८ के लार्ड कैनिंग के खरीते।

गये अपने सरकारी पत्र में ब्रिगेडियर जनरल पी. लारेन्स ने महाराजा द्वारा की गई सेवाओं का उल्लेख इस प्रकार किया है—

'यदि मैंने इस मामले को श्रीमान् लाट साहब के सम्मुख रखने में अपने कर्तव्य की सीमा का उल्लंघन किया हो तो सच्चे सहायक के प्रति न्याय बुद्धि एवं मेरा यह विश्वास कि मेरी सरकार बीकानेर के राज्य की अमूल्य सेवायें खाली नहीं जाने देंगी, मेरे इस अनुरोध के कारण समझे जांय।'[1] राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेंट ने तारीख २१ दिसम्बर १८६० को भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव को लिखा कि विद्रोह के आरम्भ से महाराजा बीकानेर ने अंग्रेज सरकार के प्रति अत्यधिक राजभक्ति और मित्रता का पूर्ण प्रदर्शन किया है और युद्ध में अंग्रेजों को हार्दिक सहयोग दिया है।[2] महाराजा ने अनेक यूरोपियनों को शरण देने और बचाने में जो सेवायें दी उनसे भारत सरकार पहले ही पूर्ण परिचित थी।[3] जब पंजाब के सैनिक, जनरल वानकोर्टलैंड की अधीनता में हाँसी और हिसार में रखे गये तो महाराजा स्वयं अपनी सेना का नेतृत्व करते हुए बीकानेर की सीमा तक गया। वह इस बात के लिये तैयार रहा कि जहां भी, जब भी आवश्यकता हो वह उनके साथ हो जायं। उसने न केवल अपने वंशजों के समक्ष बल्कि समस्त राजपूताना प्रान्त के समक्ष एक बहुत ही उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उसने ऐसे साहस और शक्ति

---

१. सन् १८५७ के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता से सम्बन्धित बीकानेर महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फायल संख्या ४८, पृ. २८–२९, राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेंट द्वारा भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव को ता. २१-१२-१८६० को लिखा गया पत्र (परिशिष्ट ११)।

२. सन् १८५७ के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता से सम्बन्धित बीकानेर महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फायल संख्या ४८, पृ. २८-२९, राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेन्ट द्वारा भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव को ता. २१-१२-१८६० को लिखा गया पत्र।

३. वही, पृ. २७। राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेंट जनरल जी. सेंट पी. लारेन्स का ता. ६-१-१८५९ का मुरासिला (पत्र) जिसका हवाला उसने अपने २१ दिसम्बर १८६० के पत्र में दिया है।

का परिचय दिया जो सरलता से दृष्टिगोचर नहीं होती। महाराजा उस सर्वोच्च पुरस्कार के योग्य समझा गया जो अंग्रेज सरकार ने सर्वाधिक प्रशंसनीय राजपूत को देने की स्वीकृति दी थी।[1]

राजस्थान में केवल महाराजा सरदारसिंह ही ऐसा राजा था जिसने विद्रोह के समय व्यक्तिगत रूप में युद्ध में भाग लिया। जब केन्द्रीय सत्ता सबसे विकट स्थिति में थी तो ऐसे समय उसकी सहायता की अत्यधिक प्रशंसा की गई। इन्ही कारणों से गवर्नर जनरल के एजेंट ने जयपुर सहित राजपूताना के दूसरे सभी राजाओं से बीकानेर महाराजा की स्वामीभक्ति और सेवाएँ श्रेष्ठ मानी। इन सेवाओं के कारण उसके मतानुसार बीकानेर महाराजा को उसी श्रेणी में रखा जाय जिसमें रीवां और चरखारी के महाराजाओं को रखा गया था और जिन्हें खिलअत और दूसरे सम्मानों के साथ जागीर भी पुरस्कार में दी गई थी।[2] अतः अंग्रेजों ने महाराजा सरदारसिंह की सेवाओं की प्रशंसा की और हिसार जिले के ४१ गांव जिनका राजस्व १४२६१ रू. था उसको १ मई सन् १८६२ से दिये गये। विद्रोह के समय की गई प्रशंसनीय सेवाओं के उपलक्ष्य में गवर्नर जनरल ने महाराजा को खिलअत और उपहार दिये।[3] सरदारसिह को गवर्नर जनरल के सहायक एजेंट कप्तान हैमिल्टन, अलेक्जेंडर स्किनर और दूसरों द्वारा भी वधाई के खरीते प्राप्त हुए।[4] महारानी विक्टोरिया द्वारा महाराजा की सहायता की प्रशंसा का संदेश सरचार्ल्स

---

१. १८५७ के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता से सम्बन्धित बीकानेर महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फायल संख्या ४८, पृ. २७, राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेन्ट जनरल सेंट पी. लारेन्स का ता० ६-२-१८५६ का मुरासिला (पत्र) जिसका हवाला उसने अपने दिनांक २१ दिसम्बर १८६० के पत्र में दिया है।

२. वही।

३. ता. २४-४-१८६० का लार्ड कैनिंग का खरीता (लेखक के पास)।

४. ता. ११-१२-१८६१ का कप्तान हैमिल्टन का खरीता (लेखक के पास)।
ता. ५-७-१८६१ का अलेक्जेंडर स्किनर का खरीता (लेखक के पास)।
ता. १०-५-१८६१ का जनरल लारेन्स का खरीता (लेखक के पास)।

वुड ने अपने १५ दिसम्बर सन् १८५६ के पत्र द्वारा भिजवाया ।[1]

महाराजा को दिये गये ४१ गांवों के लिये बीकानेर राज्य ने काफी समय से अपना दावा कर रखा था। सिक्ख लड़ाई के बाद महाराजा ने हिन्दूमल के मार्फत अपना दावा किया। ४५ गांव का दावा इस आधार पर किया गया था कि वे ३०० वर्षों से अधिक समय तक बीकानेर राज्य के अधीन थे। उनका राजस्व ३०,००० रु० था। भारत सरकार ने ४१ गांव जिनका राजस्व १४,२६१) रु० था देकर राज्य की सेवाओं को पुरस्कृत किया।[2] वास्तव में १८६२ में इन गांवों का दिया जाना स्पष्टतः उन गांवों को वापस देना था जो जबर्दस्ती अंग्रेजों द्वारा जब्त कर लिये गये थे। सन् १८५६ में जब भारत का शासन सूत्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी से महारानी विक्टोरिया के हाथों में गया तो महाराजा सरदारसिंह ने बीकानेर राज्य के सिक्कों पर से मुगल बादशाह का नाम हटा कर एक तरफ "औरंग आ रायहिन्द व क्वीन विक्टोरिया १८५६" तथा दूसरी ओर "जर्ब श्री बीकानेर १९१६" खुदवाया।[3]

सन् १८६२ में महाराजा को एक सनद प्राप्त हुई जिसमें महाराजा के दत्तक लेने के अधिकार को स्वीकार किया गया था।[4] सनद में लिखा था कि जब तक बीकानेर के शासक सरकार के स्वामीभक्त रहेंगे और विभिन्न सन्धियों और इकरारनामों की शर्तों का पालन करेंगे तब तक औरस पुत्राधिकारी न होने पर महाराजा और बीकानेर के भावी शासक हिन्दू पद्धति और अपनी जाति के रीति रिवाज के अनुसार अपना

---

१. सन् १८५७ के विद्रोह में बीकानेर राज्य द्वारा अंग्रेज सरकार को दी गई सहायता सम्बन्धी महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फायल संख्या ४८, पृ. ५१।
पार्लियामेन्ट्री पेपर्स, १८६०, हाउस ऑफ कामन्स पेपर नं० ७७, म्यूटिनी कोरसपोन्डेन्स आदि पृ. १४४।
सर चार्ल्स वुड का पत्र अब भी बीकानेर में राजस्थान सरकार के पुरालेख विभाग में सुरक्षित है। परिशिष्ट १२।
२. एचिसन–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. २६०-६१।
३. तारीख १८ अगस्त १८५८ के जनरल लारेन्स के खरीते में यह स्वीकृति दी गई है (लेखक के पास)।
४. एचिसन–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. २७८; पृ. ३५-३६ भी देखें।

उत्तराधिकारी गोद ले सकेंगे तथा उसे अंग्रेज सरकार स्वीकृत और पुष्ट करेगी।[1] यहां यह उल्लेखनीय है कि लार्ड डलहौजी ने राज्यों को औरस पुत्र के अभाव में उत्तराधिकारी गोद लेने की मनाही कर दी थी। इसे 'हड़पने की नीति' (अवसान सिद्धान्त) कहा जाता है। लेकिन यह प्रतिबन्ध केवल उन्हीं राज्यों पर लागू होते थे जो या तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बनाये गये थे या कम्पनी द्वारा जीत कर पुनः दिये गये थे या जो पेशवा के अधीन थे और जब पेशवा को कम्पनी नें हरा दिया तो कम्पनी के अधीन हो गये थे। अतः इस 'हड़पने की नीति' (अवसान सिद्धान्त) का बीकानेर राज्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

उस समय राज्य कोष की खराब हालत होने से महाराजा को धन संग्रह हेतु सभी सम्भव साधन काम में लाने पड़े। राज्य के अधिकारियों पर यथासम्भव अधिक से अधिक धन संग्रह करने हेतु दबाव डाला गया।[3] इसका एक परिणाम यह निकला कि राज्य के अधिकारियों ने बहुत ऊँची दर पर कर वसूल किये।[4] यह कर टीबी कें उन ४१ गांवों से भी वसूल किया गया जो उसी समय राज्य को पुनः दिये गये थे। इन गांवों के निवासियों ने अंग्रेजों से शिकायत की। हिसार के कमिश्नर को जांच के लिये भेजा गया। जांच करने पर शिकायत सत्य निकली।[5] इस पर महाराजा को लिखा गया कि सन् १८५६ के बन्दोबस्त के अधीन इन गांवों के लिये जो दर निश्चित की गई है उसका पालन किया जाय। महाराजा ने न केवल इससे सहमति प्रकट की बल्कि गांव वालों द्वारा पहले उठाई गई तकलीफों की क्षति-पूर्ति के रूप में बन्दोबस्त की अवधि सात वर्ष और बढ़ा दी।[6]

---

१. एचिसन–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. ३५–३६।

२. शास्त्री–पूर्व उद्धृत, पृ. २०।

३. एचिसन–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. २७८-७९।

४. वही, पृ. २७८–७९।

५. ता. १६-३-१८६८ का लार्ड लारेन्स का खरीता (लेखक के पास)।
ता. १६-११-१८६८ का कर्नल कीलिंग (गवर्नर जनरल के एजेंट) का खरीता (लेखक के पास)।
ता. ३-५-१८६९ और १८-६-१८६९ के कप्तान पाउलेट के खरीते (लेखक के पास)।

६. एचिसन–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ. २७८।

सन् १८६८ में बीकानेर के लिये गवर्नर जनरल के एक सहायक एजेन्ट की नियुक्ति की गई।[1] उसका प्रधान कार्यालय सुजानगढ़ में रखा गया। उसका मूल उद्देश्य तो जयपुर, जोधपुर, और बीकानेर तीनों राज्यों की सीमा पर होने वाली डकैतियों को रोकना था पर उसे बीकानेर का राजनैतिक कार्य भी सम्भलाया गया। उक्त पद पर सर्व प्रथम कप्तान पी. डब्लू. पाउलेट को नियुक्त किया गया।[2] बीकानेर के लिये पोलिटिकल एजेन्ट के रूप में कप्तान पाउलेट की नियुक्ति के शीघ्र बाद महाजन, जसाणा, बाय, सीधमुख, कानसर, बिरकाली, मेघाणा, हरदेशर, कनवारी, साँइसर और खारबारा के ठाकुरों ने उसे एक अर्जी दी।[3] इसमें महाराजा के विरुद्ध निम्नलिखित आरोप लगाये गये थे—

(क) उनके पट्टे के कुछ गांव जब्त कर लिये गये।

(ख) नजराने के रूप में उनसे अनुचित धन वसूल किया गया।

(ग) उन पर भाँति भाँति के कर लगाये गये।

कप्तान पाउलेट तथा तत्कालीन दीवान पण्डित मनफूल ने इन आरोपों की जाँच की और यह निर्णय किया कि—

(क) जो गांव महाराजा के राज्यारोहण के समय नियमानुसार प्रदत किसी जागीर के अंग थे और जो बाद में जब्त कर लिये गये वे गांव वापस लौटा दिये जायेंगे।

(ख) दश वर्षों के लिये प्रति घोड़े की रेख २००) रु० वार्षिक निश्चित की गई। इसके बाद उस समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह रकम बदली जा सकेगी। इस रकम में सरदार के उत्तराधिकारी बनने पर जो नजराना लिया जाता था उसके अलावा सभी कुछ शामिल था।

इस निर्णय को सभी सम्बन्धित ठाकुरों ने मान लिया। केवल महाजन के ठाकुर ने इसे नहीं माना और सन् १८६९ में बीकानेर छोड़कर चला गया।[4] महाजन का ठाकुर इसलिये असन्तुष्ट था क्योंकि एक तो

---

१. पाउलेट–पूर्व उद्धृत, पृ. ८८।

२. वही।

३. रिपोर्ट ऑन दी पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी राजपूताना स्टेट्स १८७०-७१, नम्बर LXXXIV– सुजानगढ़ एजेंसी रिपोर्ट, पृ. २११।

४. रिपोर्ट आन दी पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी राजपूताना स्टेट्स, १८७०–७१, नं० LXXXIV— सुजानगढ़ एजेंसी रिपोर्ट, पृ० २१२।

तीन गांव वापस देने का उसका दावा नहीं माना गया और दूसरे कुछ वर्षों की अवधि के लिये मियादी पट्टा मानने की बात कहने से उसकी स्थिति एक ठेकेदार जैसी बन जाती थी। राज्य का एक मुख्य सरदार होने के कारण यह बात उसकी मर्यादा के विरुद्ध थी। लेकिन पोलिटिकल एजेन्ट का मत था कि समझौता न्यायपूर्ण है अतः उसने महाजन के ठाकुर अमरसिंह को कोई रियायत देने के लिये महाराजा को सलाह देने की बात उपयुक्त नहीं समझी। दूसरी ओर उसने ठाकुर को जोर देकर सलाह दी कि वह इस समझौते को मान ले। पर उसका कोई लाभ न हुआ।[1]

सन् १८७० की सुजानगढ एजेंसी रिपोर्ट में लिखा है कि इस समय महाजन, चूरू और भादरा के ठाकुर डाकुओं, हत्यारों और दूसरे अपराधियों को शरण दे रहे थे। संरक्षण के बदले ये लोग इन ठाकुरों को काफी धन देते थे। ये लुटेरे और अपराधी लोग अपनी कारवाइयों से उस इलाके में आतंक फैलाये हुए थे। वे बहुत उदण्ड हो गये थे और दिन में बाजारों को लूटने से भी नहीं हिचकते थे। ठाकुरों की ये कारवाइयाँ महाराजा के लिये निरन्तर धर्म संकट का कारण बनी हुई थीं। महाराजा असहाय था क्योंकि ये ठाकुर उसकी सत्ता की उपेक्षा करते थे। महाराजा के विरुद्ध अपनी तथाकथित शिकायतों को दूर करवाने के लिये जब ये ठाकुर कप्तान पाउलेट से मिले तो उसने यह बात उनके समक्ष बिल्कुल स्पष्ट कर दी कि अंग्रेज सरकार उनकी कारवाइयों को सहन नहीं करेगी और उन्हें अपने आश्रयस्थल तोड़ने पड़ेंगे। यह सन्तोष की बात थी कि उसकी सलाह पर ध्यान दिया गया, आश्रय स्थल तोड़ दिये गये और भविष्य में सद्व्यवहार के लिये लिखित गारन्टी दी गई।[2]

महाराजा रत्नसिंह के शासन के अन्तिम दिनों में राज्य पर लगभग साढ़े आठ लाख रुपये का कर्ज हो गया था। सबसे अधिक खर्च सेना पर होता था। जागीरदारों की लूटमार की कारवाइयों और जैसलमेर, भावलपुर, जोधपुर, जयपुर और शेखावाटी से लगने वाली सीमाओं की रक्षा की आवश्यकता होने के कारण यह सेना रखन जरूरी हो गई थी। अतः महाराजा

---

१. रिपोर्ट ओन दी पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी राजपूताना स्टेट्स १८७०–७१, नं० LXXXIV— सुजानगढ़ एजेन्सी रिपोर्ट, पृ० २१२।
२. वही।

को लोगों से बहुत अधिक धन वसूल करना पड़ा। कर और अधिक बढ़ गये। नये कर लगाये गये जैसे कि "नजराना" जो सर्व प्रथम सन् १८६४ में दीवान गुमानसिंह द्वारा लागू किया गया।[1]

महाराजा सरदारसिंह के शासन के प्रथम १६ वर्षों में १८ दीवान बदले गये।[2] प्रत्येक को इसलिए हटाया गया कि वह महाराजा की आर्थिक मांग को पूरा करने में असमर्थ रहा। नजराना वसूल करने के ढ़ंग से तंग आकर उसकी निन्दा की जाने लगी। नजराने की रकम किसी नियम द्वारा संचालित नहीं थी। रकम वसूल करने वाले, जो चिरायत कहलाते थे, जितना अधिक नजराना और रकम वसूल कर सकते थे, वसूल करने के लिये स्वतन्त्र थे। पट्टेदार को राज्य की सारी रकम के पूरे चुकाये जाने की रसीद देते समय ये लोग "बिदायगी" नाम से एक वार्षिक रकम और पाते थे। इनके अलावा दीवान भी अपने पद की अस्थिरता से पूर्ण परिचित थे। उन्होंने भी अपने थोड़े से कार्यकाल में अपने लिये अधिक से अधिक धन एकत्रित करने का प्रयत्न किया।[3]

पोलिटिकल एजेन्ट ने अंग्रेज सरकार को रिपोर्ट भेजी। उसने लिखा कि यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि बीकानेर राज्य में जीवन और सम्पति सुरक्षित नहीं हैं। उसने यह भी लिखा कि रिश्वत देकर या सिफारिश करवा कर बड़े से बड़ा अपराधी भी बच सकता है। जागीरदारों की लूट की प्रवृति से अव्यवस्था हो रही थी। महाराजा की धन सम्बन्धी माँग से कर्मचारी भ्रष्ट हो रहे थे। इससे जनता की दुर्दशा हो रही थी।

---

१. रिपोर्ट ओन दी पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी राजपूताना स्टेट्स १८७०-७१, नं० LXXXIV— सुजानगढ़ एजेंसी रिपोर्ट, पृ० २१३।

२. पाउलेट-पूर्व उद्धृत, पृ. ८७ — १८५२, गुमानसिंह वैद और लछीराम राखेचा, १८५३ लछीराम, १८५४ गुमानसिंह, १८५५ पंडित दोजयनन्त, १८५६-६३ रामलाल द्वारकानी, १८६४ गुमानसिंह, १८६५ रामलाल, १८६६ मानमल राखेचा, १८६६ शिवलाल नाहटा, १८६७ फतेहचन्द सुराणा, १८६७ पुरोहित गंगाराम, १८६७ शाहमल कोचर, १८६२ और १८६८ मानमल, १६६८ शिवलाल मोहता, १८६८ लक्ष्मीचन्द नाहटा, १८६८ विलायत हुसैन और १८६६ पंडित मनफूल।

३. रिपोर्ट आन दी पोलिटिकल एडमिस्ट्रेशन ऑफ दी राजपूताना स्टेट्स १८७०-७१, नं० LXXXIV-- सुजानगढ़ एजेंसी रिपोर्ट, पृ० २०३।

ये ही परिस्थितियाँ थीं जबकि अंग्रेजों ने राज्य के आन्तरिक प्रशासन में सर्वाधिक सक्रिय रूप से हस्तक्षेप किया। अंग्रेजों ने अगस्त सन् १८६९ में अपनी पसन्द के एक व्यक्ति पंडित मनफूल सी. एस. आई. को दीवान के रूप में महाराजा पर थोप दिया।[1] बाद में यह देख कर कि पंडित मनफूल केवल नाम का दीवान था और असली सत्ता महाराजा की सेवा में निरन्तर रहने वाले कृपा पात्रों के हाथ में थी, पोलिटिकल एजेंट ने महाराजा को उसके कर्तव्य का भान कराया। उसने महाराजा को याद दिलाया कि राज्य के ठीक प्रशासन के लिये वह अंग्रेज सरकार के प्रति उत्तरदायी है। उसने यह सुझाव दिया कि इस स्थिति को सुधारने के लिये तुरन्त कदम उठाये जायें।[2]

अंग्रेजों और महाराजा के सम्बन्ध में एक दूसरी महत्वपूर्ण कड़ी सन् १८६९ में अपराधियों को सौंपने की संधि पर हस्ताक्षर होने से बनी।[3] इस सन्धि के अनुसार कोई व्यक्ति, चाहे वह अंग्रेज या विदेशी नागरिक हो यदि अंग्रेजी इलाके में घृणित अपराध करे और बीकानेर राज्य के इलाके में शरण ले ले तो बीकानेर सरकार उसे पकड़ कर अंग्रेज सरकार को सौंप देगी। इसी प्रकार बीकानेर का कोई नागरिक बीकानेर राज्य के भीतर घृणित अपराध करके अंग्रेजी इलाके में शरण ले लेगा तो माँगने पर अंग्रेज सरकार उसे पकड़ कर बीकानेर सरकार को सौंप देगी। कोई आदमी, जो बीकानेर की प्रजा न हो यदि बीकानेर राज्य की सीमा के भीतर घृणित अपराध करे तो ऐसे व्यक्ति को पकड़ कर उसके विरुद्ध मामले की जाँच वह न्यायालय करेगा जिसे अंग्रेज सरकार निर्देश दे। ऐसे मामलों की जाँच उस पोलिटिकल अफसर के न्यायालय में होगी जिसके राजनैतिक निरीक्षण में बीकानेर राज्य रखा गया है। संधि में आगे यह भी कहा गया कि कोई भी सरकार तब तक अपराधी को नहीं सौंपेगी जब तक कि नियमानुसार उसके लिये मांग न की जाय। ऐसे व्यक्ति अपराध की ऐसी साक्षी उपस्थित करने पर ही सौंपे जायेंगे जिससे उनकी गिरफ्तारी और अपराधों का औचित्य सिद्ध होता हो। संधि में उन अपराधों का भी

---

१. रिपोर्ट ओन दी पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी राजपूताना स्टेट्स १८७०-७१, नं० LXXXIV-- सुजानगढ़ एजेन्सी रिपोर्ट, पृ० २०३।

२. वही, पृ० २०५।

३. एचिसन-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० २८० और २९५।

विवरण दिया गया है जो घृणित अपराध की श्रेणी में आते हैं।[1]

केन्द्रीय सत्ता के साथ सम्बन्ध की दृष्टि से महाराजा सरदारसिंह का शासनकाल महत्वपूर्ण है। इसी समय सर्व प्रथम अंग्रेजों ने राज्य के कुशासन की जांच की थी। इसी समय कप्तान ब्रेडफोर्ड को महाराजा और उसके सरदारों के बीच सम्बन्ध के बारे में जांच करने और राज्य के प्रशासन को सुधारने के प्रयत्न करने हेतु भेजा गया था। फलस्वरूप राज्य प्रबन्ध के लिये एक परिषद् की स्थापना की गई जिसमें पंडित मनफूल, मानमल राखेचा, शाहमल और धनसुखदास कोठारी थे।

महाराजा रत्नसिंह और महाराजा सरदारसिंह और अंग्रेजों में बहुत ही मित्रतापूर्ण तथा प्रेमपूर्ण सम्बन्ध था। अपने पद से मुक्त होते समय लार्ड बैंटिक ने महाराजा रत्नसिंह को एक खरीता भेजा जिसमें यह भाव व्यक्त किया गया कि महाराजा और कम्पनी में जो गहरा व सुखद सम्बन्ध वर्तमान था वह और भी दृढ़ व पुष्ट हो गया है। उसने आशा व्यक्त की कि उसके उत्तराधिकारी में भी महाराजा दोनों सरकारों के बीच वर्तमान एकता और अच्छी समझदारी उत्पन्न करने और बढ़ाने में वैसी ही तैयारी पायेगा और वह उन इकरारनामों के प्रति, जिनसे दोनों अटूट रूप से जुड़े हुए हैं, अलंघ्य भक्ति दिखायेगा।[2] सन् १८३६ में लार्ड आकलैंड ने महाराजा रत्नसिंह को एक खरीता भेजा जिसमें ऐसे ही भाव व्यक्त किये गये थे। इसमें लिखा था कि दोनों राज्यों में जो एकता और मित्रता का सम्बन्ध है उसे बनाये रखने को वह बहुत उत्सुक है तथा महाराजा से उच्चतम व्यक्तिगत मित्रता कायम करना चाहता है।[3]

इन्हीं प्रेमपूर्ण सम्बन्धों और सन् १८५७ के विद्रोह में महाराजा द्वारा दी गई सहायता के फलस्वरुप महाराजा सरदारसिंह बीच में पड़कर सन् १८५६ में तांतिया टोपे और उसके साथियों के लिये क्षमा प्राप्त करने में समर्थ हो सका। इसमें यह नियम जरूर रखा गया था कि यदि बाद में उनमें किसी पर हत्या का आरोप लगाया जाय तो आवश्यकता पड़ने पर उसे सजा के लिये प्रस्तुत किया जाय।[4]

सन् १८६२ में लार्ड एल्गिन ने अपने कार्यकाल में महाराजा

---

१. एचिसन-पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० २६५।

२. ता० २४-२-१८३५ का लार्ड बैंटिक का खरीता (लेखक के पास)।

३. ता० ७-३-१८३६ का लार्ड आकलैंड का खरीता (लेखक के पास)।

४. मुन्शी ज्वालासहाय—लोयल राजपूताना, पृ० २६२।

द्वारा अंग्रेज सरकार के प्रति मित्रता रखने पर धन्यवाद देते हुए पत्र लिखा और यह आशा व्यक्त की कि उसके उत्तराधिकारी के समय यह मित्रता और भी दृढ होगी।[1] जब लार्ड लारेन्स ने भारत के गवर्नर जनरल के पद से अवकाश ग्रहण किया तो उसने भी ऐसे ही भाव व्यक्त किये।[2] लार्ड नोर्थ-ब्रुक ने यह आशा प्रकट की कि उसके कार्यकाल की अवधि में ये मित्रता-पूर्ण सम्बन्ध और भी दृढ होते रहेंगे।[3]

सन् १८६८ में जब गवर्नर जनरल के सहायक एजेंट को सुजानगढ़ में नियत करने का प्रश्न उठा और महाराजा ने उसका विरोध किया,[4] तो गवर्नर जनरल के एजेंट ने वापस लिखा कि संधि की शर्तों में बीकानेर राज्य में पोलिटिकल अफसर भेजने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। एजेंट के मतानुसार यह संधि भारत में अंग्रेजी सत्ता के प्रति बीकानेर राज्य की अधीनता की सूचक थी।[5] संधिपर हस्ताक्षर होने के केवल पचास वर्षों के भीतर ही संधि की शर्तों की व्याख्या बदल गई थी।

---

१. ता० १-३-१८६२ का लार्ड एल्गिन का खरीता (लेखक के पास)।
२. ता० ११-१-१८६६ का लार्ड लारेन्स का खरीता (लेखक के पास)।
३. ता० ३-५-१८७२ का लार्ड नोर्थ ब्रुक का खरीता (लेखक के पास)।
४. गवर्नर जनरल के एजेंट कर्नल कीलिंग को २४-२-६८ को लिखा गया महाराजा सरदारसिंह का खरीता।
५. ता० ७-४-१८६८ का कर्नल कीलिंग का खरीता (लेखक के पास)।

अध्याय ७

सक्रिय हस्तक्षेप का युग

महाराजा सरदारसिंह के, जिनका देहांत १६ मई १८७२ ई. में हो गया, कोई पुत्र संतान नहीं थी और ना ही राज्य गद्दी के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में उन्होंने कोई घोषणा की थी।[1] यद्यपि उन्होंने डूंगरसिंह तथा जसवंतसिंह का, जो उनके भाई के पोते थे, पालन पोषण राज्य घराने के सदस्यों के समान किया था तथा दोनों महाराजा गजसिंह के द्वितीय पुत्र छत्रसिंह के वंशज थे।

महारानी भटियानी क्योंकि वरिष्ठ महारानी पटरानी थी इसलिए स्वाभाविकतया उत्तराधिकारी के विषय में निर्णय करने का उन्हें अधिकार था और वह डूंगरसिंह को गोद लेने के पक्ष में थी। किन्तु महारानी पूगलयानीजी, यद्यपि कनिष्ट थ', सरदारसिंहजी को बहुत प्रिय थी और इस वजह से उनका दरबार में यथेष्ठ प्रभाव था। वह जसवंतसिंह को गोद लेने के पक्ष में थी। उसके परिणाम स्वरूप सरदारों व अहलकारों के दो पृथक दल बन गए, जिसमें एक डूंगरसिंहजी को गोद लेने के पक्ष में था तथा दूसरा जसवंतसिह को। जसवंतसिंह को गोद लेने के लिए महारानी भटियानीजी पर यथा सम्भव दबाव डाला गया। किन्तु महारानी भटियानीजी इस सम्बन्ध में दीवान पण्डित मनफूल की सलाह बिना तथा भारत सरकार की पूर्व अनुमति बिना कुछ भी करना उचित नहीं समझती थी। अतः कप्तान बर्टन को जो गवर्नर जनरल के एजेंट के सहायक थे, महाराजा सरदारसिंह के निधन की तथा उनके उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में विवाद खड़ा हो जाने की सूचना करदी गई और वह उस मामले को छान बीन

१. साहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन चरित्र, भाग २, पृ० २० जैसा कि श्री ओझा द्वारा 'बीकानेर राज्य का इतिहास' भाग २, पृ० ४६२ में उद्धृत किया गया है।

करने के लिये २२ मई १८७२ ई. को बीकानेर आये। उनको पहले से ही सारे तथ्यों का पूर्ण ज्ञान था और उन्होंने उत्तराधिकारी को गोद लेने के महारानी भाटियानीजी के अधिकार का समर्थन किया।[1] इसी बीच में उदयपुर के महाराणा शम्भूसिंह[2] ने भी जो कि डूंगरसिंह के फुफेरे भाई लगते थे गवर्नर जनरल के एजेंट कर्नल ब्रुक को एक संदेश भेजा जिसमें उन्होने डूंगरसिंह के गोद जाने के अधिकार का समर्थन किया था।[3] कर्नल ब्रुक ने महारानी भटियानीजी के उत्तराधिकारी को गोद लेने के अधिकार तथा उत्तराधिकारी के लिये डूंगर सिंह के चुनाव के न्यायोचित होने के दोनों तथ्यों से पूर्ण तथा सन्तुष्ट होने के कारण डूंगरसिंह को गोद लेने की सिफारिश लार्ड नार्थब्रुक को करदी जिन्होंने ११ जुलाई १८७२ को गवर्नर जनरल के एजेंट को भेजे गये एक खरीते में अपनी स्वीकृति की घोषणा करदी।[4] इस प्रकार ११ अगस्त १८७२ ई. को डूंगर सिंह बीकानेर राज्य के बीसवें शासक की हैसियत से बीकानेर की राज्य गद्दी पर बैठे। एवं २२ जनवरी १८७३ को गवर्नर जनरल के एजेंट द्वारा विधिवत तथा औपचारिक रुप से इस तख्त–नशीनी को सम्पन्न किया गया[5] तथा २६ अक्टूबर १८७२ को वाइसराय द्वारा उन्हे एक

---

१. ज्वालासहाय–वकाये राजपूताना, भाग २, पृ० ६३३–३७।

२. महाराजा लालसिंह की बहन नन्द कुंवर १८४८ ई० में सादूलसिंह को जो बागोड के महाराज शेरसिंह के सबसे बड़े पुत्र थे, ब्याही गई थी। नन्द कुंवर और सादूलसिंह के शम्भूसिंह ने जन्म लिया, जो कि महाराजा स्वरूपसिंह की मृत्यु के पश्चात उदयपुर के महाराणा बने महाराणा शम्भूसिंह इस प्रकार डूंगरसिंह के पिता महाराज लालसिंह के सम्बन्धी (भांजे) थे। इसलिए डूंगरसिंह के समर्थक सहायतार्थ महाराणा शम्भूसिंह के पास पहुंचे और महाराणा ने भी जी खोल कर उनको सहायता प्रदान की।

३. महाराणा शम्भूसिंह द्वारा साहोवाला अर्जुनसिंह को लिखित १६२८ की वि. सं. के शुक्ल पक्ष की तेरस के पत्र के अनुसार जैसा कि श्री ओझा ने अपने बीकानेर राज्य के इतिहास के भाग २ पृ० ४६५ में उद्धृत किया है।

४. दि० ११-७-१८७२ का कर्नल जे. सी ब्रुक का खरीता तथा उसी का एक खरीता जिसकी तारीख अस्पष्ट है।

५. ज्वालासहाय–वकाये राजपूताना, भाग ३, पृ० ६४५।

अभिनन्दन का खरीता भी भेजा गया।[1] सरदारसिंह के निधन के समय से लेकर डूंगरसिंह के औपचारिक रूप से बीकानेर की गद्दी पर बैठने पर्यन्त राज्य का शासन एक परिषद द्वारा चलाया गया जो कप्तान बर्टन की अध्यक्षता के अधीन थी। जब डूंगरसिंह राज्य गद्दी पर बैठे तथा राज्य के शासन के पूर्ण अधिकार उन्हे प्रदान हुये[2] तो उन्हे दीवान प. मनफूल के सहयोग से शासन कार्य चलाने की सलाह दी गई।[3]

उसके शीघ्र ही पश्चात मुख्य ठाकुरों ने तथा राज्य के कुछ अन्य लोगों ने पोलीटिकल एजेंट को राज्य के त्रुटिपूर्ण शासन की शिकायत की तथा यह भी आरोप लगाया कि हर प्रकार के लोगों को राजकीय मामलों में हस्तक्षेप करने की अनुमति

---

१. लार्ड नोर्थब्रुक का ता० २३-१०-१८७२ का खरीता (जो कि मेरे पास है)।

२. कर्नल जे. सी. ब्रुक का ता० ११-७-१८७२ का खरीता।

३. ज्वाला सहाय-वकाये राजपूताना, भाग ३, पृ० ६४५। तथा कर्नल जे. सी. ब्रुक का एक अस्पष्ट दिनांक का खरीता।

पण्डित मनफूल ने ब्रिटिश भारत में अनेक पदों पर सराहनीय तथा सर्वव्यापी प्रशंसनीय कार्य किये थे। क्रमशः उनकी पदोन्नति असिस्टेंट कमिश्नर के पद पर कर दी गई थी। उन्हे कम्पेनियन आफ दि स्टार आफ इण्डिया की पदवी भी प्रदान हुई थी। १८६६ ई० में बीकानेर के दीवान के पद पर उनकी नियुक्ति की गई और उन्होंने अवांछनीय गतिविधियों को रोकने का भी प्रयास किया। यह मुख्यतः उन्ही की चतुरतापूर्ण तथा बुद्धिमतापूर्ण कार्य प्रणाली से परिस्थिति को सम्भालने का परिणाम था कि शासक और जागीरदारों के बीच में पैदा हुए करों आदि में वृद्धि के झगड़ों की विकट समस्याओं का शान्तिपूर्ण तरीकों से निपटारा हो सका। इसके अतिरिक्त हनुमानगढ़ परगने में भू-प्रवन्ध आदि की कार्यवाई भी उनकी देखरेख में प्रारम्भ

मिल रही है। इसके परिणाम स्वरूप, गवर्नर जनरल के एजेंट ने महाराजा को एक खरीता[1] भेजा जिसमें राज्य की दुखद परिस्थितियों के बारे में चेतावनी दी गई थी तथा उन्हें भूतपूर्व महाराजा सरदारसिंह द्वारा किये गये सुधार तथा निर्माण करने के वचनदान का स्मरण कराया गया था। उसमें डूंगरसिंह को तत्काल ऐसा करने का अनुरोध किया गया था। इस पर भी भारत सरकार ने इसके साथ साथ पोलिटिकल एजेंट को यह चेतावनी भी दे दी कि वह किसी भी परिस्थिति में महाराजा के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करे तथा सरकार द्वारा निर्धारित नीति की स्पष्ट सीमाओं का अतिक्रमण न करे। महाराजा ने खरीते की, कड़ी होने पर भी मित्रता पूर्ण भाषा से प्रभावित होकर, तत्काल ही राज्य शासन में सुधार करने के आदेश दे दिये।

स्वास्थ्य ठीक नहीं रहने के कारण दिसम्बर १८७३ में पं. मनफूल ने त्याग पत्र दे दिया और महाराज लालसिंह[2] को जसवंत सिंह

हुई तथा ब्रिटिश अफसरों द्वारा इसकी यथेष्ठ सराहना भी की गई। बीकानेर से वह अलवर चले गये जहां पर वह तीन वर्ष तक महाराजा मंगलसिंह के अभिभावक रहे।

१. कर्नल लेविस पेली का ता० १-८-१८७३ का खरीता (जो मेरे पास है)।

२. महाराज लालसिंह डूंगरसिंह के पिता तथा गजसिंह के छोटे पुत्र छत्रसिंह के परपौत्र थे। उनका जन्म वि० सं० १८८८ की मार्गशीर्ष शुक्ला १२ को हुआ था। वह बुद्धिमान, विशाल हृदय तथा विचारवान थे। उन्होंने अनेक वर्षों तक बीकानेर राज्य परिषद के अध्यक्ष के पद पर कार्य किया तथा इस अवधि में महाराजा डूंगरसिंह को उचित परामर्श भी देते रहे। महाराजा डूंगरसिंह का ३३ वर्ष की अल्प आयु में निधन हो जाने का महाराज लालसिंह को गहरा धक्का पहुंचा और उन्होंने इस घटना के एक मास के भीतर ही ५६ वर्ष की आयु में कृष्ण पक्ष की १४ को शरीर त्याग दिया। महाराजा डूंगरसिंह ने अपने जीवनकाल में शिववाड़ी में एक मन्दिर का निर्माण करवाया तथा उसका नाम लालेश्वर महादेव मन्दिर रखा जो अपने पिता के प्रति उनके स्नेह का प्रतीक है।

महाराज लालसिंह के पुत्र डूंगरसिंह बीकानेर की गद्दी के दावेदार थे। उनके प्रतिद्वन्दी उम्मीदवार थे मुकन्दसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह। मुकन्दसिंह शक्तिसिंह के तृतीय भाई खड़गसिंह के पुत्र थे। निम्नांकित वंशावली की अनुक्रमणिका से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि डूंगरसिंह के दावे से

वैद के स्थान पर कौन्सिल का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।[1]

भादरा और चूरू के ठाकुर निरंतर दृढ़ता से उत्पात मचाने का प्रयास करते रहते थे, अब कानून न मानने वाले तत्वों को अपने यहां शरण देने लगे तथा उन्हें डकैतियां व लूटमार करने के लिये अपने पास नौकर रखने लगे। महाराजा ने इस वस्तु-स्थिति की ओर गवर्नर जनरल के एजेंट का ध्यान आकर्षित किया जिससे इन गतिविधियों को दबाने के लिये तुरन्त आवश्यक कदम उठाये गये तथा उन लोगों से भविष्य में अच्छा आचरण रखने का वचन लिया गया।[2]

इस अवधि में कुछ स्थानीय उपद्रव भी हुये। १८७३-७४ की सुजानगढ एजेंसी रिपोर्ट में इसका उल्लेख पाया जाता है कि पोलिटिकल एजेंट ने सरकार को रिपोर्ट की कि ५ अगस्त को ग्राम जोधासर के समीप जसाना के ठाकुर मेघसिंह तथा कान्हसर के ठाकुर मानसिंह के बीच एक

जसवन्तसिंह के दावे को किसी प्रकार अधिक बलवान नहीं समझा जा सकता।

महाराजा गजसिंह
|
छत्रसिंह
|
दलेल सिंह
|

शक्तिसिंह	मदनसिंह	खड़गसिंह	खुमाणसिंह
लालसिंह	खेतसिंह	मुकन्दसिंह	नाथूसिंह
डूंगरसिंह		जसवन्तसिंह	
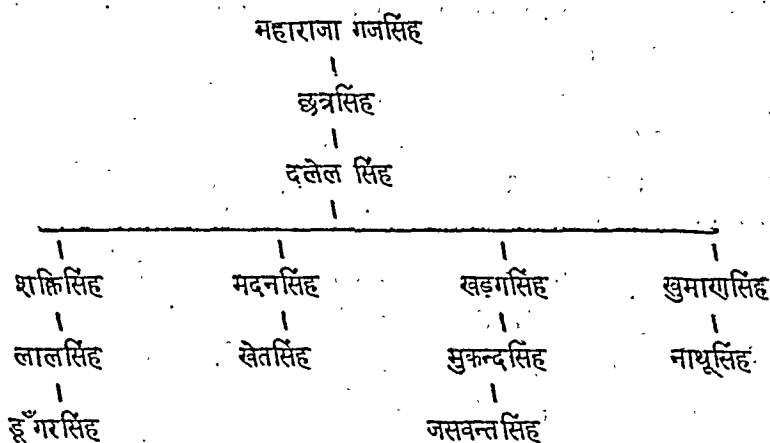
साहीवाला अर्जुनसिंह ने अपने आत्म-जीवन-चरित्र के भाग २ के पृ० २० में उल्लेख किया है कि खड़गसिंह के पुत्र का नाम हरीसिंह था। किन्तु यह असत्य है क्योंकि खड़गसिंह के हरीसिंह नाम का कोई पुत्र नहीं था एवं डूंगरसिंह के विपक्षी उम्मीदवार वास्तव में मुकन्दसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह थे।

१. ज्वालासहाय-वकाये राजपूताना, भाग ३, पृ० ६४७।

२. वही, पृ० ६६७।

गम्भीर झगड़ा हुआ। इस झगड़े का कारण भूमि का एक खंड था जिस पर दोनों अपना अधिकार मानते थे किन्तु वास्तव में यह खंड ग्राम देवासर का था। पोलिटिकल एजेंट ने रिपोर्ट में आगे यह भी लिखा कि जसाना के पट्टेदार ठाकुर मेघसिंह ने इस भूमिखंड को जोतने के लिए दस सशस्त्र सवारों तथा बीस सशस्त्र प्यादों के साथ कुछ हलवाहों को भेजा था। इसकी सूचना पाकर कान्हसर के ठाकुर मानसिंह ने पहले तो नौ आदमियों को वहां भेजा तथा इसके पश्चात चालीस सशस्त्र आदमियों को लेकर स्वयं घटना स्थल पर आ पहुँचा। थोड़े विवाद के पश्चात झगड़ा आरम्भ हुआ जिसके परिणाम स्वरूप ठाकुर मेघसिंह के दो व्यक्ति मारे गये तथा चार घायल हो गये। ठाकुर मानसिंह के समूह का एक व्यक्ति मारा गया और तीन व्यक्ति घायल हो गये। इसके आगे एजेंट लिखता है कि इस मामले को कई बार महाराजा के ध्यान में लाया जा चुका है ताकि इससे सम्बन्धित व्यक्तियों को उनके अपराध के अनुसार दण्डित किया जा सके और ऐसा प्रबन्ध किया जा सके जिससे इस प्रकार के झगड़े की पुनरावृति रोकी जा सके। अन्त में मामले की छानबीन की गई तथा सरदारों और उनके अनुचरों को कारावास एवं जुर्माने से दण्डित किया गया और उनके भविष्य में शान्ति बनाए रखने के लिये प्रतिपक्षियों को बाध्य कर दिया गया।[1]

बहुत से जागीरदार महाराजा के प्रति वफादार नहीं थे तथा राजद्रोही थे। जिस भूमि को किसी नियम के अधीन उनसे ले लिया गया था उसको पुनः उनके अधिकार में लौटाए जाने की उन्होंने मांग की। सन् १८७३-७४ की सुजानगढ एजेंसी रिपोर्ट के अनुसार इन मामलों का तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया। प्रथम वह शिकायतें जो ऐसे प्रार्थियों या उनके कुटुम्बियों द्वारा प्रस्तुत की गई थी जिनके पट्टे या गांव एक दीर्घ अवधि पूर्व उनसे छीन लिए गए थे और इस कारण से महाराजा ने उन्हे अस्वीकार कर दिया हो। द्वितीय श्रेणी में भूमि के उन दावों को रखा गया था जिनको महाराजा की स्वीकृति मिल चुकी थी किन्तु वह १८६९-७० के दस वर्षीय बन्दोबस्त के अनुसार अन्य ठाकुरों के कब्जे में आ चुकी थी। तृतीय श्रेणी में खालसा या अन्य भूमि के सम्बन्धित वे दावे आते थे जिन्हे महाराजा की मान्यता प्राप्त थी। पोलिटिकल एजेंट के अनुसार

१. रिपोर्ट ऑन दी पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन आफ दी राजपूताना स्टेट्स १८७३-७४, नं० CXVI, सुजानगढ़ एजेन्सी रिपोर्ट, पृ० २२०।

महाराजा डूंगरसिंह ने प्रथम श्रेणी के दावेदारों को बहुत उचित ढंग से तथा अत्यन्त अनुकूल शर्तों पर भूमि प्रदान करने की पेशकश की तथा उन्हे कुछ विशेषाधिकार प्रदान करने का भी आश्वासन दिया ताकि वे आराम से आजीविका प्राप्त करने के योग्य हो सकें। दूसरी श्रेणी के सम्बन्ध में महाराजा ने प्रार्थियों को बतलाया कि सेटलमेंट के अधीनस्थ जो व्यवस्था हो चुकी है उसमें हस्तक्षेप करना अनुचित होगा किन्तु उन्हें इस बात का पूर्ण आश्वासन दिया की उनके मामले उस आयोग के समक्ष रख दिये जायेंगे जो ठाकुरों के मामलों को तय करने के लिये बैठने वाला था। तृतीय श्रेणी के दावे दारों को उनके गांव महाराजा द्वारा वापस दे दिये गये तथा उनकी सनदें प्रदान करदी गईं।

जागीरदारों को इस पर भी इस फैसले से संतोष का अनुभव न हो सका और राज्य के अग्रणीय ठाकुरों में से एक महाजन के ठाकुर अमरसिंह ने कुछ अन्य सरदारों के साथ राजधानी को छोड़ दिया और ये लोग देशनोक जाकर इकट्ठे हुये। वहां से ये लोग अपना कष्ट गवर्नर जनरल के एजेंट के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये आबू पहुँचे।[१] एजेंट ने खेद प्रकट किया किन्तु आशा व्यक्त की कि जो आयोग नियुक्त किया जाने वाला है, उनके साथ न्याय करेगा। इसी बीच में महाराजा जागीरदारों द्वारा प्रस्तुत किये गये दावों की जांच करने के लिये एक आयोग नियुक्त कर चुके थे तथा पोलीटिकल एजेंट को एक खरीता भेज चुके थे जिसमें उन्हे इस आयोग की अध्यक्षता करने के लिये आमंत्रित किया गया था। पोलीटिकल एजेंट द्वारा किसी भी सक्रिय रूप में अपने आप को आयोग के साथ सम्बधित करने को अनुचित समझा गया अतः उन्होंने कहा कि उनका आयोग को सलाह देना ही पर्याप्त मात्रा में संतोषप्रद होगा। महाजन के ठाकुर तथा अन्य जागीरदार इस बात से सहमत न हुये कि उनके मामलों की जांच आयोग द्वारा की जाय। अतः उनके मामले स्वयं महाराजा द्वारा निपटाये गये तथा दूसरे मामलों को आयोग ने निपटाया। यद्यपि अधिकतर शिकायतों का बहुत ध्यान से अवलोकन किया गया था फिर भी जागीरदारों ने राजद्रोह की भावनाओं को जारी रखा।[२]

---

१. रिपोर्ट ओन दी पालिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजपूताना स्टेट्स, १८७३-७४ नं० CXVI, सुजानगढ़ एजेन्सी रिपोर्ट, पृ० २२०।

२. ज्वालासहाय–वकाये राजपूताना, भाग ३, पृ० ६७०-७१।

२४ सितम्बर १८७४ को गवर्नर जनरल के सहायक एजेंट तथा कुछ सरदारों के साथ गवर्नर जनरल के एजेंट कर्नल लिविस पेली से भेंट करने के लिये महाराजा ने साम्भर के लिये प्रस्थान किया तथा वहां पर उनसे भेंट की।[1]

सन् १८७५ में राज्य के एक अग्रणीय ठिकाने बीदासर के निवासी महाजनों ने ठाकुर के अत्याचारों के विरुद्ध महाराजा को शिकायत की तथा वे लोग बीदासर छोड़कर लाडनू (जोधपुर राज्य में) चले गये। महाराजा ने तुरन्त जांच पड़ताल करवाई तथा इस सम्बन्ध में उचित आवश्यक कारवाई की और सेठ लोग वापस बीदासर लौट आये। इसी प्रकार भूकरका और सांखू के ठाकुरों के अत्याचारों के विरुद्ध वहां के किसानों द्वारा की गई शिकायतों की भी तुरन्त जांच करवाई गई। महाराजा द्वारा तत्परता से की गई इन कारवाइयों के फलस्वरूप जागीरदारों की खेतीहर किसानों को सताने की प्रवृति काफी कम हो गई।[2]

महाराजा सरदारसिंह द्वारा जारी किये गये एक आदेश के अनुसार जागीरदारों से वसूल किये जाने योग्य राज्यकर को दस वर्षों के लिये निर्धारित किया जा चुका था। इस अवधि में इसमें कोई वढोतरी नहीं की जा सकती थी। पर जागीरदार लोग स्वयं जो किसानों से लगान वसूल करते थे उसमें वढोतरी करने के लिये अपने आपको स्वतंत्र समझते थे। किसानों द्वारा एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किये जाने पर किसानों के हितों की सुरक्षा के लिये महाराजा ने इस कानून को लागू करने के आदेश जारी कर दिये। इससे किसानों द्वारा चुकाये जाने वाले लगान में अब दस वर्षों की समाप्ति के पूर्व कोई वढोतरी नहीं की जा सकती थी।[3]

अप्रैल १८७५ के आसपास राज गद्दी के प्रतिद्वन्दी प्रत्याशी जसवंतसिंह के समर्थकों द्वारा विष देकर महाराजा डूंगरसिंह की हत्या करने का प्रयास किया गया। किन्तु षड़यन्त्र का पहले से भेद खुल जाने से इसमें सफलता प्राप्त न हो सकी। गवर्नर जनरल के एजेन्ट के ध्यान में इस

---

१. ज्वालासहाय—वकाये राजपूताना, भाग २, पृ० ६४८।
२. वही, पृ० ६७२।
३. वही।

घटना के लाये जाने पर[1] उसने महाराजा को एक खरीता भेजा जिसमें उन्होंने इस घटना के सम्बन्ध में हो रही जांच पड़ताल की जानकारी मांगी। दिनांक २५-८-१८७५ के एक अन्य खरीते[2] में इस विषय पर आयोग की रिपोर्ट की प्राप्ति को उन्होंने स्वीकार किया तथा अन्तिम निर्णय से अवगत कराये जाने की मांग की। एजेन्ट के दिनांक १२-२-१८७६ के खरीते[3] में उल्लेख किया गया कि फैसले की सूचना भारत सरकार को दे दी गई है तथा उसके द्वारा कोई भी हस्तक्षेप उचित नहीं होगा।

नवम्बर १८७५ में महाराजा ने, गवर्नर जनरल के सहायक एजेन्ट व कुछ सरदारों और राज्य के अफसरों के साथ, हरिद्वार तथा गया की तीर्थयात्रा करने के लिए प्रस्थान किया। अपनी यात्रा से वापस लौटते समय महाराजा ने बहुत से महत्वपूर्ण नगरों का दौरा किया जिनमें मुख्य मथुरा, हाथरस, प्रयाग, काशी, लखनऊ, कानपुर तथा आगरा थे। २१ जनवरी १८७६ को आगरा पहुँचने पर गवर्नर जनरल के एजेन्ट ने स्टेशन पर उनकी अगवानी की। महाराजा जब आगरा में ठहरे हुये थे उसी समय तत्कालीन प्रिंस आफ वेल्स (बाद में सम्राट एडवर्ड सप्तम) का भी वहां पर दौरा हुआ। डूंगरसिंह भी उन प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से एक थे, जिन्होंने २५ जनवरी १८७६ को स्टेशन पर प्रिंस आफ वेल्स की अगवानी की। २६ जनवरी १८७६ ई० को महाराजा ने प्रिंस आफ वेल्स से सौजन्य भेंट की तथा २७ जनवरी १८७६ को प्रिंस आफ वेल्स महाराजा से मिलने के लिये आये। प्रिंस आफ वेल्स को उस अवसर पर दिये गये भोज में भी महाराजा सम्मिलित हुये तथा उससे अत्यन्त प्रभावित हुये।[4]

जब, हर मेजेस्टी महारानी विक्टोरिया द्वारा 'क्वीन एम्प्रेस आफ इन्डिया' (भारत सम्राज्ञी) की पदवी ग्रहण करने पर तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिटन ने १ जनवरी १८७७ को दिल्ली में एक दरबार का आयोजन किया तो उसमें महाराजा डूंगरसिह को भी आमंत्रित किया। किन्तु वे इस दरबार में उपस्थित नहीं हो सके क्योंकि उन्हें कच्छ के महाराजा की पुत्री से विवाह करने कच्छ के लये प्रस्थान करना था। अतएव भारत

---

१. ए. सी. ल्योल (गवर्नर जनरल का एजेन्ट) का ता० २०-४-१८७५ का खरीता (जो कि मेरे पास है)।
२. ए. सी. ल्योल का ता० २५-८-१८७५ का खरीता (जो कि मेरे पास है)।
३. ए. सी. ल्योल का ता० १२-२-१८७६ का खरीता (जो कि मेरे पास है)।
४. ज्वालासहाय—वकाये राजपूताना, भाग ३, पृ० ६५०-५१।

सरकार ने उस अवसर के स्मरण के लिये महाराजा को एक झण्डा भेजा[1] जिसका महाराजा ने उसी अभिप्राय के लिये विशेष रूप से आयोजित एक दरबार में बड़ी धूमधाम से स्वागत किया।[2]

रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की ब्रिटिश नीति से, राज्यों के जन साधारण में भ्रान्त धारणायें उत्पन्न हो गईं। वे समझने लगे कि वास्तविक शासक तो अंग्रेज है। अतः अपने शासकों के निर्णयों के विरुद्ध वे भारत सरकार को सीधे ही अपने प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने लगे। बीकानेर में पोलिटिकल एजेंट का निवास स्थान हो जाने के पश्चात तो उनकी यह धारणा और भी दृढ़ हो गयी तथा १८७७ में असन्तुष्ट सिद्धों के व्यवहार ने महाराजा एवं ब्रिटिश दोनों के सम्मुख इस परिस्थिति को पूर्णतया स्पष्ट कर दिया।

१ अगस्त १८७७ को लगभग सत्तर अस्सी सिद्ध, जिनके पास उस समय कई गांव थे तथा जिन्होंने रियासत के काफी विस्तृत भूमि खंडों पर भी कब्जा जमा रखा था, भागते हुए एजेंट के कार्यालय में पहुँचे तथा अपने नेता जसनाथ को, जिसको निश्चित आरोपों के आधार पर राज्य के अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया था, छुड़ाने के लिये कोलाहलपूर्ण प्रदर्शन किये। पोलिटिकल एजेंट ने उनको समझाने का प्रयास किया कि वे लोग अपना कष्ट महाराजा के समक्ष रखें किन्तु उन्होंने पोलिटिकल एजेंट से आग्रह किया कि वह स्वयं इस मामले में हस्तक्षेप करके उसका निर्णय करे और यदि उन्होने ऐसा नहीं किया तो उन लोगो ने धमकी दी कि वे उनके द्वार पर आत्म हत्या करके प्राण त्याग देंगे। पोलिटिकल एजेंट ने इस वस्तुस्थिति से अवगत करने के लिये बीकानेर के वकील को बुलवाया। इसके पश्चात महाराजा को सूचना देने के लिये वकील रवाना हो गया। दो दिनों तक महाराजा और सिद्धों के बीच समझौते की बातचीत होती रही। ३ अगस्त की प्रातः पोलिटिकल एजेन्ट को पता चला कि सिद्धों ने चार समाधियां खोदी हैं तथा उनमें से चार व्यक्ति आत्म हत्या करने जा रहे हैं। इस पर उन्होंने अपने प्रधान मुंशी को उनके पास भेजकर उन्हें ऐसा करने से बाज रहने के लिये कहलाया। परन्तु वे लोग नहीं माने और अपने इस हठ को त्यागने

१. वह झण्डा अब भी मेरे पास है तथा प्रदर्शनार्थ बीकानेर फोर्ट म्यूजियम में रखा हुआ है।

२. ओझा–बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ४७५।

से इन्कार कर दिया। तब उन्होंने उनके कुछ मुखियों को बुला कर उन्हें चेतावनी दी कि आत्महत्या को किसी भी प्रकार का सहारा या प्रोत्साहन देने वालों को कठोर दण्ड दिया जायेगा और यदि ऐसा हुआ तो सारा दोष उन लोगों का समझा जायगा। उन लोगों की धमकियों से भयभीत होकर एजेन्ट किसी भी प्रकार झुक जाने को तैयार नहीं थे। इससे हतोत्साह होकर वे लोग आत्महत्या न करने के लिये तो सहमत हो गये किन्तु उन्होंने कहा कि जब तक जसनाथ को मुक्त नहीं किया जायगा तब तक वे लोग अनसन रखेंगे। अन्ततः महाराजा और सिद्धों के बीच एक समझौता हो गया। जसनाथ को एक हुकमसिंह फौजदार नामक व्यक्ति के साथ जिस पर सिद्धों को पूरा भरोसा था, रहने की अनुमति दे दी गई तथा इस बात का ध्यान रखने का उत्तरदायित्व हुकमसिंह पर था कि जसनाथ उस समय तक बीकानेर के बाहर न जावे जब तक कि उसके विरुद्ध लगाये गये अभियोगों की छानबीन न करली जाय तथा उसे उनसे मुक्त न कर दिया जाय। यद्यपि सिद्ध लोग पोलिटिकल एजेंट का हस्तक्षेप प्राप्त करने पर दृढता पूर्वक तुले हुये थे तथापि पोलिटिकल एजेंट ने महाराजा पर अपने प्रभाव का उपयोग करने के अतिरिक्त तथा उन्हें न्याय व संयम से काम लेने का परामर्श देने के अतिरिक्त कुछ भी करना उचित नहीं समझा। सन् १८७८ की जनवरी मास के प्रारम्भ में इस झगड़े का मैत्रीपूर्ण समझौता हो गया और सिद्ध लोग अपने अपने घर लौट गये तथापि वे फिर विद्रोह करने लगे और जून १८८० में जसनाथ को पुनः गिरफ्तार करना पड़ा। उसे साढ़े तीन वर्ष का कारावास तथा पचास रुपये जुर्माने का दण्ड दिया गया। पोलिटिकल एजेंट ने आशा व्यक्त की कि अब की बार जसनाथ के अनुयायी आन्दोलन नहीं करेंगे तथा महाराजा उनकी धमकियों से सन्त्रस्त नहीं होंगे।[१]

सन् १८७८ में रूस के राजदूत काबुल आये तथा उनका वहां पर हार्दिक स्वागत किया गया। इससे यह आशंका उत्पन्न हो गई कि काबुल रूस के प्रभाव में न चला जाये। ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करने तथा सम्भाव्य रूसी प्रभाव का प्रतिकार करने के उद्देश्य से नैविल चैम्बरलेन ने लार्ड लिटन के निर्देश के अनुसार काबुल जाने

---

१. रिपोर्ट ओन दी पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी राजपूताना स्टेट्स १८७७-७८, नं० CLI— सुजानगढ़ एजेन्सी रिपोर्ट, पृ० २३८-३९।

के लिये खैवर को पार करने की अनुमति मांगी । किन्तु इस मांग को अस्वीकार कर दिया गया और उसके परिणाम स्वरुप युद्ध की घड़ी समीप आ गई । महाराजा डूंगरसिंह ने गवर्नर जनरल के एजेंट मेजर ब्रेडफोर्ड को २६ नवम्बर को एक खरीता भेजकर अपनी सेना की सेवाओं को अर्पित किया । महाराजा द्वारा प्रस्तुत की गई इस तत्क्षणिक व उदारतापूर्ण सहायता की अत्यधिक प्रशंसा करते हुये गवर्नर जनरल ने प्रथमतः भारतीय सेना को परिवहन कार्य के लिये कुछ ऊँट देने के लिये अनुरोध किया । इस पर महाराजा द्वारा भारत सरकार को आठ सौ ऊँट प्रदान किये गये ।[1]

वीकानेर राज्य के विविध स्थानों पर नमक का उत्पादन किया जाता था, जिसमें लूणकरणसर व छापर कुछ एक मुख्य केन्द्रों में से थे, और इससे भारत सरकार के नमक व्यवसाय के सर्वाधिकार में बाधा उपस्थित होती थी । यद्यपि भारत सरकार नमक उत्पादन के उद्यम को वंद करने की मांग नहीं कर सकती थी किन्तु निः सन्देह उसके उत्पादन एवं आयात व निर्यात पर नियन्त्रण लागू कर सकती थी । सन् १८७६ की २४ जनवरी को वीकानेर राज्य व भारत सरकार के वीच हुये एक समझौते–दि बीकानेर साल्ट एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर हुये तथा ८ मई १८७६ को इस समझौते का पुष्टीकरण किया गया । इस संधि में यह नियम रखा गया था कि बीकानेर राज्य में केवल छापर व लूणकरणसर में नमक का उत्पादन किया जायगा तथा इन स्थानों में नमक का सम्पूर्ण समग्र वार्षिक उत्पादन तीस हजार मन से अधिक नहीं होगा । इसके आगे यह भी नियम रखा गया था कि राज्य में ऐसे नमक के अतिरिक्त जिस पर ब्रिटिश सरकार द्वारा कर वसूली करली गई हो किसी भी अन्य नमक का निर्यात या आयात नहीं किया जा सकेगा । संधि में यह अनुबन्ध भी रखा गया था कि ऐसे नमक पर जिस पर कि ब्रिटिश सरकार द्वारा कर वसूली करली गई हो राज्य द्वारा मार्ग-कर नहीं लगाया जायगा तथा भांग, गांजा, मदिरा, अफीम एवं अन्य मादक द्रव्यों या उनसे निर्मित पदार्थों का राज्य द्वारा ब्रिटिश शासन क्षेत्र में निर्यात निषिद्ध होगा । राज्य के नागरिकों के उपयोग के लिये अतिरिक्त नमक की आवश्यकता पड़ जाने की अवस्था में राज्य को फलोदी एवं डीडवाना के नमक

---

१. स्मिथ–आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ५७२ ।
अर्सकिन–गजेटिर आफ बीकानेर, पृ० ३२८ ।

उद्योगों से एक वर्ष में वीस हजार मन तक नमक उपलब्ध करने के अधिकार संधि द्वारा प्राप्त थे तथा इस नमक का मूल्य आठ आने मन निर्धारित किया गया था। इसके अतिरिक्त क्रय के समय नमक पर जो कर वसूल करने योग्य होता था, राज्य से उसकी आधी रियायती दर वसूल की जाती थी। इस संधि की शर्तों के अनुसार उसके कुछ अनुबन्धों का पालन करने के लिये ब्रिटिश सरकार द्वारा महाराजा को छः हजार रुपये की एक वार्षिक धनराशि दिया जाना भी निश्चित हुआ था।[1]

पोलिटिकल एजेंट ने जोधपुर सरकार द्वारा बावरियों तथा अन्य दस्युस्वभाव वन जातियों के सम्बन्ध में अपनाये गये उपायों तथा उनके परिणाम स्वरूप सुव्यवस्था के प्रतिपालन में होने वाली उन्नति की ओर महाराजा का ध्यान आकर्षित किया एवं उनके समरूप उपायों का बीकानेर में प्रयोग करने के लिये महाराजा से आग्रह किया। इस मन्त्रणा का अनुसरण करते हुये क्षेत्र में दस थानों की स्थापना कर दी गई तथा उनके मध्य एक सौ बारह सवार बांट दिये गये। इस पर भी विभिन्न राज्यों के कर्मचारियों में सहकारिता का अभाव होने के कारण यह बात ध्यान में आई कि अपराधियों द्वारा प्रयुक्त ऐसे मार्गों पर उनका पीछा नहीं किया जाता था जो मार्ग एक राज्य के शासनक्षेत्र से दूसरे राज्य के शासनक्षेत्र में जाते थे और इसके फलस्वरूप अपराधी लोगों के लिये बन्धन मुक्त व स्वतंत्र रह सकना सम्भव हो गया था। सन् १८८० में पोलिटिकल एजेंट ने महाराजा से इस विषय में आगे कारवाई करने का आग्रह किया तथा महाराजा द्वारा सीमावर्ती समस्त थानों व वहां के कर्मचारियों को खोजियों को पूर्ण सहयोग देने के सख्त आदेश जारी कर दिये गये। एक नया गिराई अफसर नियुक्त किया गया जिसे हर एक थाने का निरीक्षण करने का आदेश दिया गया।

उन प्राचीन प्रचलन को जिसके अन्तर्गत महाराजा के लिये पट्टेदारों को घुड़सवार, शुतर सवार व प्यादे सिपाही जुटाने पड़ते थे, महाराजा सरदारसिंह के शासन काल में ही नकद भुगतान करने के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था एवं इस प्रकार निर्धारित की गई धन राशि का दस वर्षों की अवधि के पश्चात विशेष परिस्थितियों के आधार पर

---

१. एचिसन—ए कलेक्शन आफ ट्रीटीज, इनगेजमेन्टस एन्ड सनद्स, भाग ३, पृ० २७६–८० व २९३–९५।

संशोधन किया जा सकता था। अतः यह संशोधन सन् १८७९ में हो जाना चाहिये था परन्तु महाराजा डूंगरसिंह ने सन् १८८१ तक इस विषय में कोई भी कारवाई नहीं की। २६ अगस्त १८८१ को उन्होंने गवर्नर जनरल के एजेंट के सहायक मेजर राबर्ट्स को एक खरीता भेजा जिसमें उसे अवगत किया गया था कि जब तक भारत सरकार के किसी एक अधिकारी द्वारा 'भू-प्रबन्ध को कार्यान्वित नहीं कर लिया जायगा तब तक मांगों का संशोधन नहीं करेंगे एवं उन्होंने उससे ऐसे किसी अधिकारी की सेवाओं को राज्य को उधार देने की भी मांग की। इस खरीते की एक प्रति गवर्नर जनरल के स्थानापन्न एजेंट को भी भेजी गई।

इसी बीच महाराजा ने हनुमानगढ़ तहसील स्थित राजभूमि के सर्वेक्षण की व्यवस्था की जिसे जून १८८२ में वस्तुतः आरम्भ कर दिया गया। अक्टूबर १८८२ में महाजन, बीदासर, भूकरका, रावतसर, सांखू, पूगल, वाय, सीधमुख, गोपालपुरा, सांडवा, जैतपुर, चाडवास, अजीतपुरा तथा कुछ अन्य जागीरों के ठाकुरों ने आवेदन किया कि सर्वेक्षण को कार्यान्वित करने के स्थान पर महाराजा तथा पट्टेदारों द्वारा मनोनीत किये गये पांच व्यक्तियों की एक कमेटी द्वारा गत वर्षों के वही खातों के आधार पर रेख के परिमाण में संशोधन कर दिया जाय। महाराजा ने इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया एवं तदनुसार एक कमेटी नियुक्त की गई जिसने इस विषय पर विचार करके अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करदी। महाराजा द्वारा ये सिफारिशे स्वीकार करली गईं तथा जागीरदारों की पूर्ण सहमति से इक्कीस वर्षों के लिये 'रेख रकम' निर्धारित कर दी।

किन्तु जब सन् १८८३ की फरवरी में गवर्नर जनरल के एजेंट कर्नल ब्रेडफोर्ड बीकानेर आये तो चार पट्टेदारों ने जो उपयुक्त कमेटी के सदस्य भी थे, उनसे आवेदन किया कि उन्होंने दबाव से लाचार होकर सिफारिशों पर हस्ताक्षर किये थे। जब एजेन्ट ने महाराजा का इस ओर ध्यान आकर्षित किया तो महाराजा ने उसे विश्वास दिला दिया कि वह शिकायत निराधार थी। कर्नल ब्रेडफोर्ड के बीकानेर से विदा हो जाने के पश्चात महाराजा ने उन परिवादियों को बुलवाया किन्तु उनमें से केवल भूकरका के ठाकुर ही आये। बाकी के व्यक्तियों ने देशनोक प्रस्थान किया जहां कुछ अन्य पट्टेदार भी उनमें सम्मिलित हो गये। वहां से वे लोग बीदासर चले गये तथा बीकानेर आने से इन्कार कर दिया। महाराजा ने उन अनुशासनहीन पट्टेदारों को समझा बुझा कर मार्ग पर लाने की प्रबल

चेष्टा की परन्तु वह निष्फल रही। क्योंकि महाराजा व जागीरदारों के सम्बन्ध निरन्तर बिगड़ते जा रहे थे, अतः उनमें पुनः मैत्री स्थापित करने के उद्देश्य से कप्तान तालबोट को नियुक्त किया गया। परन्तु वह भी इस कार्य में असफल रहे। इसके विपरीत जागीरदारों ने कप्तान तालबोट को चुनौती दे दी तथा अन्ततः खुलमखुला विद्रोह का मार्ग अपना लिया। उन्होंने अपने गढों की रक्षार्थ गढसेनाएं नियुक्त कर दी तथा सशस्त्र प्रतिरोध के लिये कटिबद्ध हो गये। जागीरदारों के इस प्रतिरोध का दमन करने के उद्देश्य से महाराजा ने तालबोट की सहमति से अपनी सेना को उनके गढों के विरूद्ध कूच करने का आदेश देने का निश्चय किया। महाजन की गढी ने दो महिने के घेरे के पश्चात आत्म समर्पण कर दिया और इसी प्रकार बीदासर की गढी ने भी घुटने टेक दिये तथा प्रतिरोधी जागीरदारों को हिरासत में ले लिया गया। परन्तु बीदासर फिर से दुराचारियों का केन्द्र न बनने पावे इस सम्भावना का निवारण करने के उद्देश्य से ब्रिटिश सैपर्स व माईनर्स द्वारा ८ जनवरी सन् १८८४ को बीदासर की गढी को भूमिसात् कर दिया गया।

महाराजा गंगासिंह की सराहना करते हुये सर वाल्टर लारेन्स द्वारा इस घटना का संक्षिप्त किन्तु सुवर्णित विवरण दिया गया है जो यथा निम्नांकित है —

"इस साक्षात्कार के तुरंत बाद ही जागीरदारों ने बाहर जाकर अपने शासकों को चुनौती दे दी तथा महाराजा व उनके विद्रोही जागीरदारों के बीच युद्ध रोकने के लिये भारत सरकार ने अत्यधिक अनिच्छा से एक ब्रिगेड भेजने का निश्चय किया। यह एक शक्तिशाली ब्रिगेड थी किन्तु गहरी बालू रेत के कारण तथा पानी के दुष्प्राप्य होने के कारण बीदासर तक की यात्रा बहुत दुष्कर थी। फारसी घोड़ों को प्रयोग में लाने वाले इस अन्तिम तोपखाने की तोपें बालू रेत में फंस गई तथा मंथर गति से चलने वाले हाथियों से इन्हे खिचवाया गया। रात्रि को बहुत ठण्ड पड़ती थी। बीदासर में बहादुरसिंह, जो प्रमुख विद्रोहियों में से एक था, अन्य बागी जागीरदार तथा उनके अनुयायी अनगिनत शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर गढ में एकत्रित हुये थे। नगर की दीवारें प्राचीन शैली की बन्दूकों से मानों भरपूर लदी हुई थीं। ऐसा पुराकालीन संग्रह मैंने कभी नहीं देखा था। किन्तु बीदासर की शक्ति उन मिट्टी की ऊँची दीवारों में निहित थी जिनके शिखर बेढब कांटों से ढके हुये थे। अतः ब्रिगेडियर जनरल

गिलेस्पी ने मुझसे कहा कि आक्रमण करके इस स्थान को जीतना कठिन होगा। सर एडवर्ड ब्रोडफोर्ड को यथार्थतः राजपूतों के निराशोन्मत शौर्य का विचार आ रहा था तथा वे उस समय की कल्पना करके सिहर उठे थे जब राजपूत जोहर की शरण लेंगे तथा अपनी स्त्रियों को जलाने के पश्चात युद्ध करते हुये वीरगति को प्राप्त करने के लिये शत्रु पर टूट पड़ेंगे। जब विद्रोहियों ने समझौते को बातचीत करने से इन्कार कर दिया तो उन्हें बहुत खेद हुआ और वे चिन्तित हो उठे। अतः बीदासर पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया गया। किन्तु अर्धरात्रि के समय विद्रोहियों के चार प्रमुख नेताओं द्वारा मुझे मेरे शिखर में जगाया गया। उन्होंने बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण कर दिया। मैं शीघ्रता पूर्वक सर एडवर्ड ब्रेडफोर्ड के शिखर में पहुँचा तथा उन्हे यह शुभ समाचार सुनाया गया। तदुपरांत जनरल गिलेस्पी को इससे अवगत कराया गया और कुछ विचार विमर्श के पश्चात यह निर्णय किया गया कि बीदासर के गढ को गिरा दिया जाना चाहिये तथा सैन्यदल को वापस नसीराबाद कूच करने का आदेश दे दिया जाय। उन चार प्रमुख विद्रोही नेताओं को बीकानेर राज्य से देश निकाला दिया जाना तय किया गया।

आगामी प्रातः मैंने एक विचित्र दृश्य देखा। बीदासर का गढ़ धरती से अखण्ड ऊपर उठा और फिर टुकड़े टुकड़े होकर गर्द और लपटों की गोद में गिर पड़ा। सफरमैना ने अपना कार्य सम्पूर्ण निःशेषता से किया था।[1]"

बीकानेर और जयपुर के बीच सीमा सम्बन्धी बहुत पुराना झगड़ा था जिसका सम्बन्ध टमकोर (जयपुर में), हडियाल (बीकानेर में), खोरी

---

१. सोहनलाल—तवारीख बीकानेर, पृ० ३२२–२६।
पन्निकर—हिज हाइनेस महाराजा आफ बीकानेर, ए बायोग्राफी, पृ० ३६०–६१।
महकमा खास जयपुर फाइल नम्बर १५० "असंतुष्ट व अभक्त जागीरदारों को बीकानेर दरबार द्वारा दिया गया दण्ड" पृ० ७४–६३।
इस थीसिस के लेखक को बचपन की उस घटना का अब भी भलीभांति स्मरण है जब सन् १९३४ में सर वाल्टर लारेंस बीकानेर आये थे और उन्होंने उनसे बातचीत की थी। सर लारेंस उस समय बहुत वयोवृद्ध हो चुके थे। उन्होंने स्वयं लेखक को इस घटना का वर्णन सुनाया था जो आज भी लेखक की स्मृति में बड़ी सजीवता के साथ विद्यमान है।

(जयपुर में), तथा मानगांव (बीकानेर में) से था। पोलिटिकल एजेंट ने मध्यस्थता की और दोनों राज्यों के सन्तोष के अनुरूप इस झगड़े को निपटा दिया। इसी प्रकार हिसार के ग्राम बोखें व बीकानेर के ग्राम मोगाना के बीच चार बीघा भूमि के लिये जो झगड़ा चल रहा था उसका फैसला हिसार के अतिरिक्त सहायक कमिश्नर व राजगढ़ के हाकिम के बीच हुई एक बैठक में कर दिया गया।

विद्रोही जागीरदारों को अभिभूत कर लिये जाने के तुरन्त बाद राज्य में प्रवर्तमान अशान्ति व अव्यवस्था को निर्मूल करने के लिये तथा प्रशासन का स्तर उन्नत करने के लिये कप्तान तालबोट को बीकानेर में स्थायी पोलिटिकल एजेन्ट के पद पर नियुक्त कर दिया गया।[1] यहां तक कि राज्य के कुप्रशासन के सम्बन्ध में सन् १८८३ में लार्ड रिपन को महाराजा डूंगरसिंह को एक खरीता[2] भेजना पड़ा जिसमें उसने लिखा–"बीकानेर को भविष्य में अशान्ति व अव्यवस्था से उस समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकेगा जब तक राज्य के विभिन्न प्रदेशों के प्रशासन में आपका हाथ न बंटाया जाय। इसके लिये चाहे कुछ समय के लिये ही सही बीकानेर में एक ब्रिटिश अधिकारी की निरन्तर उपस्थिति व उसका समर्थन अनिवार्य है।" लार्ड रिपन ने आगे लिखा कि क्योंकि वह भारतीय राज्यों के आन्तरिक प्रशासन में हस्तक्षेप करने के बिल्कुल विरुद्ध थे अतः कप्तान तालबोट को जिसको कि रेजीडेंट पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त किया जा रहा था उन्होंने ऐसा कोई आदेश नहीं दिया था जिसके फलस्वरूप वह राज्य सरकार का प्रत्यक्ष नियन्त्रण अपने हाथों में लेले किन्तु हिज हाइनेस का उससे मन्त्रणा करना तथा उसके परामर्श से निर्देशित होना आवश्यक था।

अपनी प्रजा के कल्याणकार्य करने के लिये तथा भ्रष्टाचार व भाई भतीजे वाद को निर्मूल करने के लिये महाराजा स्वयं बहुत उत्सुक थे। कप्तान तालबोट की सलाह से उन्होंने कच्छ के अमीमुहम्मद को अपना दीवान नियुक्त किया एवं स्थानीय व्यक्तियों के स्थान पर राज्य के बाहर से लाये हुये अनेक कर्मचारियों को नियुक्त किया। महाराजा में शासक की

---

१. कर्नल आर. सी. ब्रेडफोर्ड के ता० ३१–१२–१८८३ व १–६–१८८४ के खरीते।

२. लार्ड रिपन का २१ दिसम्बर १८८३ का खरीता। परिशिष्ट १३।

जन्मजात प्रतिभा थी और उन्हें पड़ौस के ब्रिटिश भारतीय शासन क्षेत्रों में काम में लाई जाने वाली प्रशासन की आधुनिक प्रणालियों के महत्व का मूल्यांकन करने में देर न लगी और उन्होंने उनको तुरन्त अपना लिया। न्यायिक मामलों की जांच करने के लिये उन्होंने पृथक् न्यायालयों की स्थापना की तथा दीवानी व फौजदारी के कानूनों को विधिबद्ध कर दिया गया। पुलिस विभाग का पुनर्गठन किया गया। कुछ जागीरदारों द्वारा उपभोग किये जाने वाले फौजदारी व दीवानी के अधिकारों को वापस ले लिया गया। आबकारी विभाग भी खोला गया तथा उसके सफलतापूर्वक संचालन के लिये नियमों व नियन्त्रणों का गठन किया गया। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर डाकघर, पाठशालायें व चिकित्सालय खोले गये। यह सब कुछ ब्रिटिश नेतृत्व में किया गया। सन् १८८५ में भू-प्रबन्ध को अस्तित्व में लाया गया तथा सारे सरकारी कर्मचारियों की श्रेणियों में संशोधन किया गया ताकि हर प्रकार के भ्रष्टाचार को सार्थकता से निर्मूल किया जा सके। वार्षिक बजट बनाने की एक प्रणाली भी ग्रहण की गई। सन् १८८६ में बीकानेर शहर में बिजली का उपस्थापन किया गया। एक औषधालय खोला गया जो अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। प्रशासन का संचालन एक परिषद् द्वारा होता था जो महाराजा के प्रत्यक्ष निर्देशन में कार्य करती थी।

महाराज डूंगरसिंह के शासन काल में ब्रिटिश प्रभाव अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। ऐसा प्रधानतः इस कारण हुआ कि महाराजा अपने विद्रोही ठाकुरों के सम्मुख विवश थे तथा ब्रिटिश सहायता के बिना उनको दबाने में असफल रहे थे। इसी कारण से बीकानेर में पोलिटिकल एजेंट की स्थायी नियुक्ति की गई थी। महाराजा डूंगरसिंह ने राज्य सम्बन्धी सारे महत्वपूर्ण विषयों से ब्रिटिश पोलिटिकल एजेंट को अवगत करने की नीति को अपना रखा था तथा उसके द्वारा दी गई उचित सलाह को अंगीकार करने के लिये सदा तैयार रहते थे। पोलिटिकल एजेंट भी इस बात में बड़ी सावधानी बरतता था कि उसके द्वारा कोई भी ऐसा कदम न उठा लिया जाय जिसका यह अर्थ निकाला जा सके कि वह राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रहा है। पोलिटिकल एजेंट ने सर्वोच्च सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत की कि उसका व्यवहार महाराजा के साथ बहुत ही मैत्रीपूर्ण रहा तथा उसकी सलाह पर ध्यान देने के लिये महाराजा सदैव तत्पर रहे और यद्यपि यह उसका

कर्त्तव्य था कि वह प्रशासन की अनियमितताओं को महाराजा के ध्यान में लाये। महाराजा को उसकी ओर से अनुचित हस्तक्षेप किये जाने की किसी भी अवसर पर कोई शिकायत नहीं हुई। पोलिटिकल एजेंट ने आगे लिखा कि अत्यन्त हर्ष का विषय है कि उसके परामर्श से उत्पन्न हुये लाभ को भी महाराजा ने प्रायः अंगीकार किया है। कप्तान तालबोट से मंत्रणा करके महाराजा ने काफी बड़ी संख्या में प्रशासकीय सुधार भी किये। कच्छ के अमीमुहम्मद को दीवान के पद पर नियुक्त किया तथा अनुपयुक्त स्थानीय कर्मचारियों को हटाकर उनके स्थान पर राज्य के बाहर से प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों को लाये।

इस पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १८८७ तक परिस्थिति फिर से प्रतिकूल होने लगी अतः लार्ड डफरिन ने अपने २ फरवरी सन् १८८७ के खरीते द्वारा महाराजा का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया कि राज्य के कारबार का संचालन भारत सरकार की आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं हो रहा था तथा बीकानेर स्थित पोलिटिकल एजेंट द्वारा दी गई सलाह का अनुसरण करने के लिये महाराज अधिकांशतः प्रवृत्त नहीं थे। वाइसराय ने सुस्पष्ट शब्दों में प्रकट किया कि महाराजा को लिखने से उसका तात्पर्य महाराजा को एक बार फिर उस कारवाई से गम्भीरता पूर्वक सावधान करना था जिसको किया जाने पर जो परिणाम निकलेगा वह महाराजा के लिये नितांत अरुचिकर होगा।[1]

महाराजा डूंगरसिंह के शासन की कालावधि की विशिष्टता यह थी कि इसी अवधि में राज्य प्रशासन की आधुनिक शैलियों का प्रथम बार प्रयोग किया गया था तथा यहीं से उस नये युग का प्रारम्भ होता है जो उनके उत्तराधिकारी महाराजा गंगासिंह के राज्यकाल में विकसित व पुष्पित हुआ तथा यही युग प्राचीन व नवीन शासन प्रणालियों के बीच एक विभाजक रेखा के रूप में अवस्थित है। यद्यपि ब्रिटिश बीकानेर से हुई सन् १८१८ की संधि का सम्मान करते थे किन्तु इसके बावजूद उन्होंने विद्रोही जागीरदारों के कृत्यों द्वारा उत्पन्न परिस्थिति का लाभ उठाकर संधि की शर्तों के विरुद्ध राज्य के आन्तरिक प्रशासन में महाराजा का पथ प्रदर्शन करने के लिये रेजीडेंट पोलिटिकल एजेंट को

---

१. लार्ड डफरिन का ता० २-२-१८८७ का खरीता (लेखक के पास)-परिशिष्ठ १४।

थोप दिया तथा यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह भारतीय राज्यों को मित्र-राष्ट्र नहीं किन्तु ऐसी इकाई समझते है जिनका उनसे अधीनस्थ सहकार्य का सम्बन्ध है तथा उनके भाग्य का उनको उनकी इच्छानुसार निर्देश करने का अधिकार है। लार्ड रिपन के ता० ३१ दिसम्बर के खरीते के भावों से यह प्रवृति स्पष्टतया प्रतीत हो जाती है तथा इसका समर्थन लार्ड डफरिन के दिनांक २ फरवरी १८८७ के उस खरीते से होता है जिसमें उसने इस विषय में बिना किसी बनावट के एवं स्पष्ट शब्दों में महाराजा द्वारा रेजीडेंट पोलिटिकल एजेंट की सलाह की अवहेलना करने पर जो परिणाम निकल सकते थे उन्हें महाराजा को हृदयंगम कराने का प्रयास किया था।

महाराजा डूंगरसिंह ने निःसन्तान होने के कारण अपने जीवन काल में अपने कनिष्ठ भ्राता गंगासिंह को अपने अधिकारी के रूप में गोद ले लिया था। गंगासिंह का जन्म १३ अक्टूबर सन् १८८० में हुआ था। महाराजा डूंगरसिंह के १६ अगस्त १८८७ को दिवंगत होने पर महाराजा गंगासिंह सात वर्ष की आयु में राज्य- सिंहासन के उत्तराधि-कारी बने। यद्यपि राज्य रूढि के अनुसार वे औपचारिक रूप से ३१ अगस्त सन् १८८७[1] को बीकानेर के इक्कीसवें शासक[2] के रूप में रज्याभिषिक्त हुये अर्थात् स्वर्गीय महाराजा के द्वादशा संस्कार के पश्चात। भारत शासन के राजनैतिक विभाग ने राज्य के दैनिक राज्य शासन के प्रबन्ध के लिये अविलम्ब रीजेन्सी कौन्सिल (महा प्रतिनिधि मंडल) की स्थापना

---

१. अर्सकिन–गजेटियर आफ बीकानेर, पृ० ३२६।
एचिसन–उपर्युक्त रचना में, भाग ३, पृ० २८०।

२. ओझा–बीकानेर राज्य का इतिहास भाग २, पृ० ४६२।

गवर्नर जनरल के प्रथम सहायक एजेन्ट द्वारा उत्तराधिकार स्वीकृत तथा पुष्टिकृत, अत्यावश्यक तार सं० २४२६ जी. दिनांकित आबू २५ अगस्त १८८७; महाराजा बीकानेर के निजी सचिव कार्यालय फाइल सं० शून्य, उत्तराधिकार सम्बन्धी पत्रावलियों की प्रतिलिपियां।

उत्तराधिकार की स्वीकृति, कर्नल सी. के. एम वाल्टर, गवर्नर जनरल के राजपूताना के एजेन्ट, द्वारा वहन की गई थी– खरीता दिनांकित १६–६–१८८७ तथा लार्ड डफरिन (गवर्नर जनरल) का खरीता ता० २१–१०–१८८७ के अनुसार (दोनों मेरे अधिकार में)।

जनरल हिज़ हाईनेस महाराजा श्री गंगासिंहजी बहादुर, बीकानेर
१८८७-१६४३

की ।[1] कर्नल थार्टन जो उस समय बीकानेर में रेजिडेंट पोलिटिकल एजेंट थे रीजेन्सी कौन्सिल के सभापति, दीवान अमी मुहम्मदखां उप सभापति एवं ठाकुर हरिसिंह (सांडवा), ठाकुर जगमाल सिंह (बाय), मेहता मंगलचंद, कविराज भैरोंदान तथा मुंशी सोहनलाल सदस्य नियत हुये ।[2]

सन् १८८५ के पश्चात भारतीय राज्यों के प्रति, जिनके शासकों को यह आश्वासन दिया गया था कि उनकी स्थिति सुरक्षित रहेगी तथा उनके अधिकारों, गौरव एवं प्रतिष्ठा का आदर होगा,[3] अंग्रेजी शासन की नीति में परिवर्तन दर्शनीय है। परन्तु यह सुरक्षा बहुत महंगी सिद्ध हुई थी क्योंकि किसी बाह्य संकट या आंतरिक विद्रोह की आशंका उत्पन्न हो जाने पर इन भारतीय राज्यों द्वारा अवरोध का कार्य कराने का प्रयोजन इन प्रतिभूतियों में अन्तर्निहित था ।[4] लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व कृत मेल व मैत्री सम्बन्धी संधियों का बल समाप्त हो चुका था और ये सन्धियां भारतीय शासन द्वारा उन पर (राज्यों पर) थोपी जाने वाली अर्थव्यवस्था के अधीनस्थ हो चुकी थीं । उस समय भारतीय राज्यों के प्रति अंग्रेजी राज्य

---

१. एचिसन–उपयुक्त रचना में, भाग ३, पृ० २८० ।
ओझा–बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ४६३ ।
अर्सकिन–गजेटियर आफ बीकानेर, पृ० ३२६ ।

२. ओझा–बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ४६३ ।

३. महारानी विक्टोरिया की सन् १८५८ की घोषणा। इसमें वचन दिया गया था– "हम देशी राज्यों के अधिकारों, गौरव तथा सम्मान को अपना निजी समझ कर आदर करेंगे ।"

४. थामसन –द मेकिंग ऑफ द इंडियन प्रिंन्सेज (भारतीय राजाओं का निर्माण) पृ० २७३ तथा २८६ ।

भारतीय सुधार मू खंड श्रेणी ४ पुस्तक सं० ४६११० (बम्बई विश्व विद्यालय पुस्तकालय)।

सर थामसन मुनरो का लार्ड हेस्टिंग्स को स्मृति पत्र ता० ११–८–१८५७। इसमें वर्णन है कि घरेलू अत्याचार तथा पारदेशिक आक्रमण से सुरक्षा भारतीय नरेशों के लिये महंगी पड़ी थी। उनको अपनी स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय आचरण तथा जो कुछ मनुष्य को आदरणीय बनाता है इत्यादि का बलिदान करना पड़ा था।

कर्नल स्लीमैन की भविष्य वाणी कि ये राजा लोग एक दिन संकट में सहायक स्वरूप प्रमाणित होंगे, सन् १८५७ की घटनाओं से पूर्णरूप में प्रमाणित हुई।

की नीति में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन जो हुआ वह भारतीय राज्यों के आन्तरिक प्रशासन में हस्तक्षेप करने की नीति थी।[1] बीकानेर राज्य के साथ अंग्रेजी राज्य के सम्बन्धों में जिस सीमा तक इस नीति का प्रादुर्भाव हुआ उसका हम यहां पर सिंहावलोकन करेंगे। इस नीति के पूर्ण प्रभाव तथा महाराजा गंगासिंह पर होने वाली इसकी प्रतिक्रिया को समझने के लिये महाराजा की शिक्षा व प्रशिक्षण का यहां पर संक्षिप्त विवरण देना संगत होगा जिन्होने आने वाले वर्षों में उनको राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में सुविख्यात राजनीतिज्ञ बनाया।

महाराजा गंगासिंह की प्रारम्भिक शिक्षा मेयो कालेज अजमेर के पं. रामचन्द्र दुबे की देखरेख में बीकानेर में हुई थी और उसके पश्चात सन् १८८९ से सन् १८९४ तक मेयो कालेज में एवं तत्पश्चात १८९५ से १८९८ तक सर ब्रायन इगर्टन के अधीन, जिनके व्यक्तित्व का महाराजा पर महान प्रभाव पड़ा था। उन्होंने १८९७ में लेफ्टिनेन्ट कर्नल जे. डी. बेल की देखरेख में देवली छावनी में सैनिक शिक्षा भी प्राप्त

१. थामसन–द मेकिंग आव द इंडियन प्रिन्सेज, पृ० २८६।
उनकी सन्धियों के शब्दों को ध्यान में रखते हुये यह मानना होगा कि राजाओं द्वारा व्यापक रूप से अनुभूत कष्ट आज प्रमाणित है। सर्व स्थानों में आन्तरिक कार्यों में प्रचुर मात्रा में हस्तक्षेप हुआ है। राजनैतिक अधिकारियों के प्राधिकार तथा उनकी उपस्थिति नाराजी से देखी जाती है। एक महान महाराजा ने (संभवतः महाराजा गंगासिंह जी ने) जिनकी सेवाएँ साम्राज्यिक तथा भारती थीं मुझसे कहा कि उनके स्वयं के यहां केवल एक ऐसा रेजिडेन्ट था जिसको उन्होंने नापसंद नहीं किया था।

इसका अर्थ यह नहीं है कि संधि के अनुबन्धों के अनुसार न होते हुये भी समस्त हस्तक्षेप अन्यायिक थे।······ विगत सौ वर्षों में सर्वोपरि सत्ता द्वारा प्रधान हस्तक्षेप के अनेक उदाहरण हैं। बड़ोदा के एक राजा को गद्दी से उतरना पड़ा था तथा इन्दौर के एक शासक को भी (अन्य एक को राज्य छोड़ने के लिये फुसलाया गया या फंसाया गया था)। विगत समय में ही अलवर नाभा तथा अन्य राज्यों से उनके शासकों को अलग कर दिया गया था। सर्वोपरि सत्ता कभी कभी बर्बर दण्ड देने पर उतारू हुई है।

को ।[1] उनके शिक्षकों द्वारा प्रदत्त आचार शील ध्यान के कारण महाराजा ने पूर्व व पश्चिम में जो कुछ अच्छा था उसको हृदयंगामी किया और उनमें शिष्टता एवं सौजन्य की भावना का विकास हुआ । अपने अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के लिये जहां संघर्ष आवश्यक था वे एक दृढनिष्ठ योद्धा थे तथा वे एक उत्साही देश भक्त थे । उन्होंने एक समय कितना उपयुक्त कहा है —"हम भारतीय मूर्ख होंगे यदि इस देश में आपके राजनैतिक जीवन में जो कुछ अच्छा है उसकी ओर गहरा ध्यान नहीं देंगे । यह और भी मूर्खता होगी यदि हम आपके राष्ट्रीय जीवन की अच्छी बातों को समझने के बाद भी जो कुछ आपकी संस्थाओं तथा प्रणाली में अच्छाइयां हैं उनको हमारी परिस्थितियों के अनुसार हृदयंगम करना नहीं चाहेंगे ।"[2]

हम देख चुके हैं कि महाराजा सरदार सिंह के शासन काल से अंगरेजों ने राज्य के आन्तरिक प्रशासन में हस्तक्षेप करने की नीति को अपनाया । महाराजा डूंगरसिंह के निधन के पश्चात् यह प्रवृत्ति और भी बलवान हो गई और महाराजा गंगासिंह की अवयस्कता की अवधि में रीजेन्सी कौन्सिल (महाप्रतिनिधि मंडल) द्वारा संचालित प्रशासन वस्तुतः एक अंगरेजी रक्षित राज्य के रूप में अधोगत हो गया था । अवयस्कता की इसी अवधि के पर्यन्त बीकानेर से जोधपुर तक रेल पथ निर्माण करने के (सन् १८८९) तथा मुद्राओं को ढालने (१८९३) के सम्बन्ध में अंग्रेजी राज्य तथा बीकानेर राज्य के बीच समझौते हुये । सन् १८९८ से जब महाराजा ने वयस्कता प्राप्त की, सन् १९०८ तक जब महाराजा को सत्ता के समग्र सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हुये उनको अंग्रेजों के हस्तक्षेप करने की अत्याचार पूर्ण नीति के विरुद्ध, जिनके राजनीतिक अधिकारी अपने अधिकारों का दम्भशील प्रदर्शन करने का कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने

---

१. अर्सकिन—गजेटियर ऑफ बीकानेर, पृ० ३२९ ।
ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ४९४, ४९५, ४९७ तथा ५०० ।

२. महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २४-४-१९१७ (पैरा ११), एम्पायर पार्लमेन्टरी असोसियेशन (युनाइटेड किंगडम ब्रांच) द्वारा भारतीय प्रतिनिधियों के सम्मान में हाउस ऑफ कामन्स के हारकोर्ट रूम में आयोजित मध्याह्न भोज के अवसर पर । बीकानेर महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल नम्बर २२७८।२६ भाग २ बी ।

देते थे, वस्तुतः एक धर्मयुद्ध छेड़ना पड़ा।

सन् १८९९ में वाइसराय के बीकानेर के दौरे के सम्बन्ध में तथा इस दौरे से सम्बन्धित कार्यक्रम के सम्बन्ध में महाराजा द्वारा संयोगिक सुझाव भी दिये जाने के विचार का, बीकानेर स्थित तत्कालीन पोलिटिकल एजेंट कप्तान बेली समर्थक नहीं था। मध्यान्ह भोज में सम्मिलित होने वाले सरदारों की संख्या को परिसीमित करने के विषय में वह महाराजा से सहमत नहीं हुआ किन्तु आगे चल कर उसने यहां तक कह दिया कि जागीरदारों द्वारा लाये गये अनुगामियों की संख्या से तो उस आयोजन के सुन्दरतम भाग की रचना होगी। बेली ने महाराजा से यह अनुरोध भी किया कि स्टेशन से लेकर वाइसराय के निवास स्थान तक मार्ग के दोनों ओर सरदारों को नियुक्त किया जाय। विधि की विडम्बना देखिये कि केवल अस्सी वर्ष पूर्व की गई मेल व मैत्री की संधि की पूर्ण उपेक्षा की जा रही थी और महाराजा द्वारा अपने अतिथि का मनोरंजन करने के विषय में भी पोलिटिकल एजेंट अपनी मनचाही थोपने की हद तक जा रहा था।[1]

पुनश्चः अकाल सहायता सम्बन्धी उपायों पर विचार विमर्ष करते समय जब राज्य में निर्यात कर लागू करने का एक सुझाव सामने रखा गया तो बेली ने निर्देश किया कि वह बनियों के सम्बन्ध में आवश्यक नहीं था किन्तु इसके विपरीत बनियों को प्रसन्न रखना अधिक श्रेय था ताकि व्यापार वांछनीय हाथों में रह सके। उसने महाराजा को सूचित किया कि वह उनके पास एक प्रार्थना पत्र भेज रहा है जो इस सम्बन्ध में उसे अर्जुनदास नामक एक व्यक्ति के भाई से प्राप्त हुआ था। पोलिटिकल एजेन्ट ने महाराजा को विश्वास दिलाया कि प्रजा के विरुद्ध वह उनका बाह्यतः समर्थन करेगा किन्तु इसके साथ साथ महाराजा से प्रजा के हितों की सुरक्षा करना भी उसका कर्तव्य था।[2]

---

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल संख्या ११९ १५– कप्तान एस. एफ. बेली का पत्र ता० १२–९–१८९९, महाराजा गंगासिंह के नाम।

२. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११९।१५– महाराजा गंगासिंह को कप्तान एस. एफ. बेली का पत्र ता० १२–९–१८९९।

१३ दिसम्बर १८९९ को कप्तान बेली ने महाराजा को लिखकर सूचित किया कि बीकानेर पुलिस के एक कर्मचारी लेखराम के सम्बन्धियों से उसे अनेक प्रार्थना पत्र प्राप्त हुये हैं। लेखराम को भारतीय दण्ड विधान की धारा ३३० के अन्तर्गत एक वर्ष के कारावास तथा ५० रु. जुर्माना का दण्ड दिया गया था। कप्तान बेली ने इस मामले में महाराजा की टिप्पणी मांगी।[1] १४ दिसम्बर १८९९ को पोलिटिकल एजेन्ट ने फिर महाराजा को लिखा कि उसे मूलचन्द माली नामक एक व्यक्ति से एक प्रार्थना पत्र प्राप्त हुआ है। मूलचन्द माली उस समय जेल भोग रहा था। पोलिटिकल एजेन्ट ने इस मामले पर भी महाराजा को उनकी टिप्पणी भेजने के लिये कहा।[2] १८ दिसम्बर १८९९ को पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा महाराजा को उन टिप्पणियों के भेजने के लिये पुनः स्मरण कराया गया।[3] जिस ढंग से महाराजा से उन टिप्पणियों के भेजने की मांग की गई थी वह उन्हें पसंद नहीं था अतएव अपने ता० १८ दिसम्बर १८९९ के उत्तर में महाराजा ने संकेत किया कि यद्यपि ऐसी रिपोर्टों का आवाहन करने से व्यक्तिगत रूप से उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी फिर भी उनके विचार से यदि कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार के कष्ट से दुःखित है तो वह कष्ट निवारण के लिये राज्य के ही उच्च अधिकारियों के पास जा सकता था। ऐसे आवेदन पत्रों की ओर ध्यान

---

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।१५– महाराजा गंगासिंह जी को लिखित कप्तान एस. एफ. बेली का पत्र ता० १३–१२–१८९९।

लेखराम बीकानेर राज्य की सेवा में एक पुलिस जमादार था। उसको अपील कोर्ट (पुनर्विचार न्यायालय) के जज (न्यायाधीश) द्वारा धारा ३३० आई. पी. सी. के अधीन दण्डित किया गया था। इस अभियोगी ने सामन्य कार्यविधि के अनुसार कौन्सिल को अपील करने से पूर्व कप्तान बेली को आवेदन पत्र दिया था।

२. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।१५, महाराजा गंगासिंह को लिखित कप्तान बेली का पत्र ता० १४–१२–१८९९।

मूलचन्द माली बीकानेर राज्य के निर्माण विभाग (पी. डब्ल्यू. डी.) का कर्मचारी था। उस पर सरकारी रकम की ठगी का अभियोग था तथा अपील कोर्ट (पुनर्विचार न्यायालय) के न्यायधीश द्वारा उसे दण्ड दिया गया था।

३. वही, महाराजा गंगासिंह जी को कप्तान बेली का पत्र ता० १८–१२–१८९९।

देने से तथा ऐसी रिपोर्टों का आवाहन करने से महाराजा के प्रभुत्व का निरादर करने का आवेदकों का साहस बढाता है। महाराजा ने कप्तान बेली को स्मरण दिलाया कि उसके पूर्वाधिकारी ने सदैव ऐसे आवेदन पत्रों को उनके निर्णय के लिये उनको (महाराजा को) प्रेषित करने की नीति को अपनाये रखा था।[1] किन्तु कप्तान बेली ने इसके प्रत्युत्तर में १६ दिसम्बर १८६६ के अपने पत्र में लिखा कि यह पोलिटिकल एजेंट का कर्त्तव्य था कि जिस राज्य में वह अधिकार पत्र के साथ भेजा गया हो उसका शासन समुचित व ठीक ढंग से किया जा रहा है इससे वह अपने आप को संतुष्ट करे अथवा वह राज्य किस प्रकार शासित हो रहा है इससे अपने आप को अभिज्ञ रखे। उसने तर्क किया कि एक पोलिटिकल एजेंट जिसने आवेदन पत्रों को निर्णय के लिये शासक को प्रेषित कर दिया हो और जिसने यह पता लगाने का कभी प्रयत्न नहीं किया हो कि वास्तविकता क्या है वह अपना कार्य नहीं कर रहा था और केवल वेतन उपार्जन करता था। इसके अतिरिक्त उसने यह भी कहा कि यदि वह उन आवेदन पत्रों की उपेक्षा करने लग जायेगा तो उसका परिणाम यह होगा कि आवेदक सीधे गवर्नर जनरल के एजेंट तथा भारत सरकार के पास पहुंचेंगे। तब उससे उस विषय पर रिपोर्ट मांगी जावेगी तथा उसे आधिकारिक जांच पड़ताल करनी पड़ेगी।[2] इस ओर ध्यान देना रोचक होगा कि जब महाराजा ने गवर्नर जनरल के राजपूताने के लिये तत्कालीन एजेंट कर्नल विन्सेंट का एक व्यक्तिगत पत्र में इस विषय की ओर ध्यान अकर्षित किया तो उसने न केवल दृढता से यह कहा[3] कि पोलिटिकल एजेंट अपने अधिकारों की सीमा में था बल्कि महाराजा को उनके विरोध पत्र को वापस लेने की सलाह दी क्योंकि महाराजा के पत्र के लिये एजेंसी की फाइलों में रहने देने को वह उचित नहीं समझता था।

---

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।९५- कप्तान बेली को महाराजा गंगासिंह जी का पत्र ता० १८-१२-१८६६।
२. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।९५- महाराजा गंगासिंहजी को कप्तान एस. एफ. बेली का पत्र ता० १६-१२-१८६६।
३. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १३४।९५ पृ० १६- महाराजा गंगासिंह जी को कर्नल एच. ए. विन्सेन्ट का पत्र ता० १७-१-१६००।

एक अन्य रोचक घटना का भी, जो जनवरी १९०० में घटित हुई, और जो यद्यपि एक तुच्छ प्रकार की है किन्तु पोलिटिकल एजेन्टों की वृतियों को स्पष्ट रूप में उभारती है, यहां पर उल्लेख किया जाता है। कप्तान बेली हनुमानगढ जिले के परिभ्रमण के लिये प्रस्थान करने वाला था अतः महाराजा ने शिष्टाचार के नाते उसको शिकार करने का लाइसेन्स (अनुज्ञापत्र) भेजा ताकि वह किसी पशु का शिकार करना चाहे तो उसे किसी असुखद घटना का सामना न करना पड़े क्योंकि राज्य में पशुओं का शिकार आयन्त्रित था।[1] किन्तु पोलिटिकल एजेंट ने उसे आक्रमणात्मक आचार समझा तथा उसने अपने ता. २९ जनवरी १९०० के पत्र में लिखा कि महाराजा द्वारा उसे शिकार का लाइसेन्स (अनुज्ञापत्र) भेजे जाने पर वह अत्यन्त विनोदित हुआ था तथा वह उसे (अनुज्ञापत्र) को मंढवा के रखेगा और उसे बीकानेर के उन्नत राज्य के जहां पर पोलिटिकल एजेंट भी बिना लाइसेन्स (अनुज्ञापत्र) के शिकार नहीं खेल सकता उदाहरण के तौर पर अपने सम्भ्राता व अन्य लोगों को दिखायेगा।[2]

अंग्रेजी हस्तक्षेप तथा नौकरशाही की उद्धतत्ता किस हद तक पहुँच चुकी थी, निम्नांकित घटना से उसका हमें और भी सुस्पष्ट चित्र मिलता है। जब सन् १८९८ में महाराजा गंगासिंह की अठारवीं वर्षगांठ पर उनको सम्पूर्ण अधिकारों से सुसज्जित किया जा रहा था तो उस अवसर पर पोलिटिकल विभाग द्वारा तीन महत्वपूर्ण नियंत्रण थोप दिये गये। यद्यपि उन नियन्त्रणों को गुप्त रखा गया था फिर भी वे एक तेजस्वी राजा को जो किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता था क्रोधित करने के लिये प्रर्याप्त थे। उनकी अट्ठारवीं वर्ष गांठ से लेकर सन् १९४३ में उनकी मृत्यु तक अंग्रेजी हस्तक्षेप के विरूद्ध महाराजा द्वारा की गई एक

---

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।१५– कप्तान एस. एफ. बेली को महाराजा गंगासिंह जी का पत्र ता० २४–१–१९०० ।

२. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।१५– महाराजा गंगासिंह जी को कप्तान एस. एफ. बेली का पत्र ता० २९–१–१९०० ।

अनपेक्षित रूप से लम्बी लड़ाई हमें दृष्टिगोचर होती है ।[1] जैसे समय बीतता गया तथा महाराजा गंगासिंह की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती गयी हस्तक्षेप के उदाहरण कुछ कम हो गये। परन्तु अंग्रेजी सरकार के अनधिकार हस्तक्षेप के विरुद्ध अपने तथा अपने भाई राजाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिये उनका जीवन सब प्रकार से एक निरंतर संग्राम था ।

जो तीन गुप्त नियन्त्रण पोलिटिकल विभाग ने उन पर आरोपित किये थे वे ये थे —

(१) कि महाराजा की अवयस्कता की कालावधि में रीजेन्सी कौंसिल द्वारा उठाये गये कदमों या की गई करवाइयों को राज्य में अधिकार पत्र के साथ भेजे गये पोलिटिकल अफसर की सहमति के बिना परिवर्तित या रद्द नहीं किया जा सकेगा ।

(२) कि प्रशासन में कोई भी महत्वपूर्ण परिवर्तन करने से पूर्व पोलिटिकल अफसर की स्वीकृति प्राप्त की जानी चाहिये । तथा

(३) महाराजा साहब किसी भी महत्वपूर्ण विषय में पोलिटिकल अफसर के परामर्श के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं करेंगे ।[2] परन्तु अपनी स्वतंत्र प्रभुसत्ता स्थापित करने के लिये महाराजा अटलता से लड़ते रहे और अन्ततोगत्वा अपने धैर्य, सतत् उद्यम, नीति चातुर्य तथा उच्च व्यक्तित्व के कारण सन् १९०७ में उन प्रतिबन्धों का निराकरण कराने में सफल हुये ।[3]

सन् १९०४–०५ में यह संघर्ष अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया जब राज्य के विरुद्ध कुमन्त्रणा करने वाले कुछ जागीरदारों के सम्बन्ध में महाराजा के आदेश में अंग्रेजों ने हस्तक्षेप करने का प्रयास किया। विभिन्न ठाकुर जिनमें विशेष रूप से बीदासर के ठाकुर हुकमसिंह, अजीतपुरा के ठाकुर भैरूसिंह, गोपालपुरा के ठाकुर रामसिंह, सन् १९०० से

---

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ३७, महाराजा गंगासिंह जी को कर्नल एच. ए. विन्सेन्ट का पत्र ता० १९-११-१९९८ ।

२. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ३७, महाराजा गंगासिंह जी को कर्नल एच. ए. विन्सेट का पत्र ता० १९-११-१८९८ ।

३. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ३७, महाराजा गंगासिंह जी को कप्तान डनलप स्मिथ का पत्र ता० १९-४-१९०७ ।

बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ३७, महाराजा गंगासिंह जी को कर्नल डब्लू. स्टीवर्ट का पत्र ता० ६-५-१९०७ ।

निरंतर अपने उन दावों को मनवाने का दुराग्रह करते आ रहे थे जिनका निपटारा महाराजा की अवयस्कता के काल में पहले से ही कर दिया था। इसके अतिरिक्त ये लोग अन्य लोगों में असन्तोष व अश्रद्धा की भावनाएँ भी भड़काते रहते थे।, उनको दी गई समस्त चेतावनियां व्यर्थ सिद्ध हुई।

---

१. कुछ सरदारों की मनोवृत्ति ठीक प्रारम्भ से ही ऐसी नहीं थी जिसे पूर्ण रूप से वांछित समझा जा सकता हो। बीदावत जाति के सरदार इनमें विशेष रूप से प्रमुख थे।

२४ फरवरी सन् १६०० को सात बीदावत पट्टेदारों ने गवर्नर जनरल के एजेन्ट को अव्यवहित कुछ विवाद ग्रस्त विषयों पर प्रार्थना पत्र दिया, जिनमें से एक विषय का निर्णय सन् १८८५ में महाराजा डूंगरसिंह के समय में किया जा चुका था। इन सरदारों ने उसी तारीख को महाराजा गंगासिंह जी को भी समरूप प्रार्थना पत्र भेजे। विगत प्रार्थना पत्रों को निर्णय के लिये महाराजा गंगासिंह जी के पास गवर्नर जनरल के मार्फत भेजा गया था। महाराजा गंगासिंह जी ने सुजानगढ़ के नाजिम के मार्फत इन सरदारों को बुलावा भेजा कि वे आकर अपने कष्टों को उनके सामने प्रस्तुत करें। किन्तु बार बार स्मरण कराने पर भी वे नहीं आये।

मई सन् १६०० में बीदासर के ठाकुर हुकमसिंह ने महाराजा गंगासिंह जी को एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जिसके साथ एक स्मृतिपत्र का भी समावरण किया गया था जिसमें छत्तीस कष्टों को अभिव्यक्त किया गया था। इन कष्टों में कुछ ऐसे अन्य जागीरदारों के भी कष्ट सम्मिलित थे जिन्होंने राज्य के आदेशों के विरुद्ध कभी प्रतिवाद नहीं किया था। उनमें कुछ ऐसे वाद विषय भी थे जिनसे सामान्य जनता सम्बन्धित थी। इनमें से अधिकतर विषयों का निपटारा पहले ही या तो महाराजा गंगासिंहजी की अवयस्कता के समय में या इस समय से पहले ही हो चुका था। चिन्ताशील विवेचन के पश्चात महाराजा द्वारा यह निश्चित किया गया कि इस प्रकार की कार्य प्रणाली को स्वीकार नहीं किया जायगा अथवा पूर्व निर्णीत विभिन्न विषयों पर फिर से विचार नहीं किया जायगा। अतः महाराजा गंगासिंहजी ने ठाकुर हुकमसिंह को बुलाकर उपर्युक्त निर्णय से उसे अवगत किया तथा व्यक्तिगत रूप से चेतावनी दी कि वह सरदारों तथा जन साधारण के ऐसे विषय के लिये जिनसे उसका कोई सम्बन्ध न हो विवाद करने से विरत हो जाय। जहां तक अन्य तुच्छ मामलों का सम्बन्ध

इसके विपरीत अक्टूबर १९०४ में महाराजा के जन्मदिन के अवसर पर

था उन्हें समुचित ढंग से प्रस्तुत करने का उसे आदेश दिया गया। उसने राज्य के प्रति जो रुख अपना रखा था उसके विरुद्ध भी महाराजा गंगासिंहजी ने उसे चेतावनी दी। उसके ठिकाने में रहने वाले लोगों ने उसके विरुद्ध महाराजा गंगासिंह जी को प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किये थे। महाराजा ने इसके लिये उसे पुनः चेतावनी दी तथा उन लोगों को तुष्ट करने के लिये कहा।

सन् १९०१ में सरदारों द्वारा यद्यपि कम मात्रा में, इसके समरूप एक और प्रयास किया गया तथा अजीतपुरा व बीदासर के ठाकुरों को राज्य के विरुद्ध ऐसे षड्यन्त्र व भड़काने वाली कारवाइयां करने के लिये महाराजा गंगासिंहजी को उनको व्यक्तिगत रूप से चेतावनी देनी पड़ी थी। उनको अतीव विशदतापूर्वक कह दिया गया कि इस प्रकार की सभायें करने से तथा अश्रद्धा उत्पन्न करने के प्रयास करने से उन लोगों पर राज्य के प्रति अभक्ति का तथा राज्य के विरुद्ध असंतोष फैलाने का अभियोग लगाया जा सकता है जिसका परिणाम निश्चित रूप से गम्भीर होगा। जब परिस्थिति और भी बिगड़ गई तो महाराज गंगासिंह जी ने अपनी वर्ष गांठ के उपलक्ष्य में आयोजित राज्य भोज (१९०४) के अवसर पर भाषण देते हुये इसकी ओर संकेत किया परन्तु इसने भी, जिस कार्य प्रणाली को उन लोगों ने अपना रखा था उस पर स्थिर रहने से उन्हे अपभीत नहीं किया।

समय समय पर महाराजा के पास इस आशय की अफवाहें पहुंचती रहती थीं कि राज्य के कुछ सरदारों द्वारा, अन्य लोगों के बीच असंतोष फैलाने का तथा उनके द्वारा भारत सरकार को राज्य के विरुद्ध निराधार शिकायतें कराने का, गम्भीर प्रयास किया जा रहा था।

महाराजा ने इस विषय को महत्व नहीं दिया तथा उन घटनाओं पर उस समय ध्यान नहीं दिया। किन्तु महाराजा की वर्षगांठ (१९०४) के अवसर पर जो घटनायें घटित हुईं उन्होंने उन विषयों पर ध्यान देने को महाराजा को बाध्य कर दिया। सुजानगढ़ व रिणी के नाज़िमों, पुलिस की रिपोर्टों तथा अन्य स्रोतों द्वारा महाराजा को दी गई सूचनाओं से तब प्रकट हुआ कि महाराजा की वर्षगांठ के समारोह में सम्मिलित होने के लिये ताज़ीमी सरदारों के बीकानेर आने के अवसर पर, विभिन्न सरदारों के निवास स्थानों पर प्रायः नित्य सभायें की गई थी जिनमें उन्होंने अपनी कार्य योजना पर विचार-विमर्श किया था तथा इस गुट में सम्मिलित होने के लिये यथा–

जब ताजीमी सरदार प्रथा के अनुसार राजा को अभिवादन समर्पण करने के लिये बीकानेर में एकत्रित हुये तो महाराजा को यह सूचना दी गई कि वे जागीरदार उनकी श्रेणी के अन्य व्यक्तियों को यथा संभव अधिक से अधिक संख्या में गुट में सम्मिलित करने के उद्देश्य से नियमित रूप से सभायें

सम्भव अधिक से अधिक सरदारों को उकसाने का भी प्रयास किया जा रहा था। उदाहरण के लिये पुलिस की रिपोर्टों से ज्ञात हुआ कि २३ अक्टूबर १९०४ को अपनी वर्षगांठ के राज्य भोज के भाषण में महाराजा गंगासिंह जी द्वारा चेतावनी देने पर भी निम्नलिखित सरदारों के निवास स्थानों पर सभायें की गई थीं--

(१) २४ अक्टूबर, लगभग नौ बजे सायं, बीदासर के डेरे में।

(२) २५ अक्टूबर सायंकाल, अजीतपुरा के डेरे में।

(३) २६ अक्टूबर सायंकाल के लगभग सात बजे, सांडवा के डेरे में।

(४) २७ अक्टूबर सायंकाल बीदासर के डेरे में। इस तारीख को पुलिस द्वारा यह सूचना दी गई कि जब कुछ शिकायतों को प्रारूपित किया गया तो नगर के कुछ लोग भी उपस्थित थे तथा इन लोगों को भड़काने का प्रयास भी किया गया था।

(५) २८ अक्टूबर, सायंकाल बीदासर के डेरे में।

(६) २९ अक्टूबर लगभग साढे नौ बजे प्रातः सांडवा के डेरे में।

(७) २९ अक्तूबर लगभग साढे पांच बजे सांयः सांडवा के डेरे में।

इस प्रकार की गतिविधियां एक दीर्घ काल से चलती आ रही थी तथा अनेक वर्षों की धैर्यवान सहिष्णुता के पश्चात महाराजा को उन पट्टेदारों के अवांछनीय कृत्यों एवं व्यवहार पर, जो अन्ततः राज्य के विरुद्ध राज-द्रोहात्मक व अभक्तिपूर्ण प्रचार करने वालों के अगवाहों में प्रमाणित हुये थे, ध्यान देने के लिये बाध्य होना पड़ा।

जयपुर के महकमा खास की फाइल सं० १५० गोपनीय, राजस्थान राज्य के पुरालेख-संग्रहालय, बीकानेर– "विद्रोहशील व अभक्त जागीरदारों को बीकानेर दरबार द्वारा दिया गया दण्ड– महाराजा गंगासिंह जी के सामान्य आलेख ता० ३-११-१९०४।

आयोजित कर रहे थे।[1] इस सूत्र के आधार पर महाराजा ने अपने तारीख २३ अक्टूबर सन् १६०४ के भाषण में सरदारों को षड्यन्त्र करने के विरुद्ध चेतावनी दी तथा उन्हें सलाह दी कि यदि कोई यथार्थ कष्ट थे तो वे उनका उचित निरूपण करें, उन पर अवश्य यथोचित विचार किया जायगा।[2] किन्तु इस सलाह पर ध्यान देने तथा सुअवसर का लाभ उठाने

---

१. महाराजा गंगासिंह का सामान्य आलेख ता० ३-११-१६०४, महकमाखास जयपुर फाइल सं० १५० गोपनीय, राजस्थान राज्य के पुरालेख संग्रहालय बीकानेर —"विद्रोहशील व अभक्त जागीरदारों को बीकानेर दरबार द्वारा दिया गया दण्ड।"

जिन तारीखों, समय तथा स्थानों पर सभाओं के होने की सूचनायें प्राप्त हुई थीं वह पृष्ठ २२१ की पादटिप्पणी १, विषयक्रम १ से ७ तक, के अनुरूप है।

२. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २२८८।२६, भाग १- दशहरा दरबार में महाराजा गंगासिंह का भाषण तारीख २३-१०-१६०४।

"....... वर्तमान प्रकार के अवसर (जन्मदिवस आनन्दोत्सव) पर इस प्रकार के प्रसंग को छेड़ने में मुझे पूर्णतः विमुखता का अनुभव होता है किन्तु मेरी राय में एक ऐसे विषय पर ध्यान नहीं देना जो गत तीन चार वर्षों से चला आ रहा है, बुद्धिहीन होगा। अतः मेरी समझ में इस अवस्था विवरण को प्रकाशगत करने का समय अब आ गया है।

मैंने प्रोत्तित किया है कि प्रत्येक वर्ष जब सरदार लोग विभिन्न जिलों से मेरे जन्म दिवस समारोह में सम्मिलित होने के लिये आते हैं तब उनमें से कुछ द्वारा (जिनका नाम नहीं बतलाया जायगा) राज्य के प्रति प्रतिरोध आरम्भ करने के लिये एक विस्तीर्ण संख्या में अन्य सरदारों को भड़काने के प्रबल प्रयास किये जाते हैं। मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि ये प्रयास सफल नहीं हुये, किन्तु मैं चेतावनी के रूप में यह निर्देश कर देना चाहता हूं कि कहीं ऐसा न हो कि ये सरदार अपनी अज्ञानता के कारण इस गुट में फंस जायें और इस प्रकार अपने कुलों की चिरकाल सम्मानित स्वामी भक्ति पर बट्टा लगा बैठें जबकि ऐसा करना उनके स्वयं के हितों के लिये निश्चित रूप से तनिक भी श्रेयस्कर नहीं होगा क्योंकि मैं उनमें से प्रत्येक व्यक्ति को चुनौती देता हूं यदि वह यहां पर उपस्थित समस्त लोगों के संतोष के अनुरूप सिद्ध कर सकता हो कि राज्य के विरुद्ध जाने से अन्ततः उन लोगों को किसी प्रकार का लाभ हो सकता है।"

स्थान पर जागीरदारों ने सभाएं करना चालू रखा तथा अश्रद्धा व वितोष उत्पन्न करने के लिये निरंतर सचेष्ट रहे।[1] महाराजा के पास उन गतिविधियों की विश्वसनीय सूचनाएँ पहुँचने पर उन्होंने एक अल्प जांच आरंभ करने के लिये २६ अक्टूबर सन् १६०४ को तत्काल आदेश दिया। उन जागीरदारों ने राज्य के विरुद्ध सुविस्तृत वितोष व अभक्ति उत्पन्न करने का प्रयास किया था तथा न केवल इस लक्ष्य के लिये कुमन्त्रणा की थी अपितु अन्य व्यक्तियों को भी उनके गुट में सम्मिलित होने के लिये उकसाया था।[2] इन आरोपों की जांच कराने के लिये ४ नवम्बर १६०४

---

१. कृपया पृ० २१६ की पाद टिप्पणी क्र. सं. १ देखें।

२. पश्चिमी राजपूताना के राज्यों की रेजीडेन्सी की फाइल सं० ११६ (१६०५-०८), अपने दरबार के विरुद्ध ठाकुरों के षड्यंत्र का मामला, पृ. ४१-

'आदेश'

कुछ सरदारों द्वारा राज्य में सुविस्तृत रूप से असंतोष फैलाने के तथा अन्य लोगों को राज्य के विरूद्ध बिना किसी वास्तविक आधार के शिकायतें करने के लिये उनके साथ सम्मिलित होने के लिये भड़काने के प्रयास करने की सूचना दरबार को विभिन्न सूत्रों से प्राप्त होने पर, हिज हाइनेस महाराजा साहब, एक राजवी तथा दो ताजीमी सरदारों तथा दो राज्य कर्मचारियों से निर्मित एक आयोग नियुक्त करते हैं जो इस मामले की जांच करके यथा सम्भव शीघ्र अपनी रिपोर्ट हिज हाइनेस को आदेशों के लिये प्रस्तुत करेगा।

महाराजा को पूर्ण विश्वास है कि आयोग न्यायोचित ढंग से तथा सावधानी से इस मामले के साथ संव्यवहार करेगा।

आयोग निम्नलिखित व्यक्तियों से निर्मित होगा —

अध्यक्ष :- महाराज भैरू सिंह

सरदार :- (१) महाजन के ठाकुर हरीसिंह तथा
(२) भुकरका के ठाकुर कान्ह सिंह

पदाधिकारी :- (१) मुन्शी फतहसिंह, राजस्वमंत्री, तथा
(२) मुन्शी लालजीमल, नाजिम सूरतगढ।

समस्त सदस्यों के बीकानेर में उपस्थित होते ही अविलम्ब

को महाराजा ने एक आयोग नियुक्त किया जो तीन जागीरदारों तथा दो राज्यकर्मचारियों से निर्मित था। साक्ष्य के आलेखन के तथा उसका सूक्ष्म परीक्षण करने के पश्चात आयोग ने अपनी जांच का आलेख किया नामतः कि बीदासर, अजीतपुरा तथा गोपालपुरा के तीन ठाकुर उन कृत्यों के दोषी थे जिन अपराधों का संघटन भारतीय दण्ड विधान के परिच्छेद १२४ ए के अन्तर्गत आता है और यद्यपि उनके अतिरिक्त आठ व्यक्ति और भी थे जो कुमन्त्रणा के दोषी थे किन्तु उनके विरुद्ध किसी भी निर्णय का आलेख नहीं किया गया क्योंकि उन पर यथानियम आरोप नहीं लगाये गये थे।[1]

राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र करने के पीछे इन तीन जागीरदारों का क्या लक्ष्य था इसका पता पा लेना नितान्त असुगम नहीं था। बीदासर

गंगानिवास दरबार महाकक्ष में आयोग द्वारा अपनी सभा की जायगी।

गंगासिंह
महाराजा, मेजर, एड–डी–कैम्प
भैरू सिंह
रघुवर सिंह
हरी सिंह
जिवराज सिंह
बहादुर सिंह
आर. डी. कपूर

लालगढ
४ नवम्बर, १९०४।

१. आयोग के निष्कर्ष के अनुसार, बीदासर, अजीतपुरा तथा गोपालपुरा के ठाकुर बीकानेर में उनके निवास स्थानों में तथा अन्य स्थानों पर राजद्रोहात्मक सभाएं करने के तथा अन्य पट्टेदारों एवं नागरिकों को भी इस अराजनिष्ठ व्यापार में सम्मिलित होने के लिये भड़काने के दोषी थे। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित अभियोग भी आयोग द्वारा उनके विरुद्ध प्रमाणित पाये गये—

(१) अजीतपुरा के ठाकुर :— (१) जब वह अजीतपुरा में था तो वहां पर भी उसके द्वारा अश्रद्धा के प्रयास किये जाना। (२) रायसलाना में राज्य के विरुद्ध एक षड्यन्त्र करना। (३) राज्य के विभिन्न भागों में पट्टेदारों एवं जन साधारण में अश्रद्धा व वितोष फैलाने के लिये डूंगराना के रावतसिंह कांधल को नियुक्त करना। तथा (४) रिणी में एक राजद्रोहात्मक सभा कराने के प्रयास करना।

के ठाकुर हुकमसिंह के विषय में हम पूर्ववर्ती परिच्छेद में पहले से ही देख चुके हैं कि उसका पिता बहादुरसिंह १८८३–८४ के विद्रोह का मुखिया था तथा इसके लिये उसे दण्डित भी किया गया था।[1] हुकमसिंह को राज्य को ७६४०) रु० की एक धनराशि को भी जो उसके द्वारा उपकरों के सम्बन्ध में अवैध ढंग से अधिक मात्रा में वसूल कर ली गई थी, लौटाने का आदेश दिया गया था।[2] इसी प्रकार अजीतपुरा के ठाकुर भैरू सिंह को भी १८८३–८४ के विद्रोह में उसकी सहापराधिता के लिये दण्डित किया गया था तथा इसके अतिरिक्त कुछ दीवानी एवं फौजदारी के अधिकारों को स्वीकृत करने की मांग को भी सन् १८८६ में अस्वीकार कर दिया गया था। सन् १८९६ में अंग्रेजी पुलिस की शिकायतों पर उसे अच्छे व्यवहार के लिये बाध्य किया गया था तथा महाराजा ने जब उसके पट्टे का निरीक्षण किया था उस समय महाराजा से आकर मिलने के प्रथागत व्यवहार व शिष्टाचार का पालन नहीं करने के लिये सन् १९०३ में उसकी भर्त्सना की गई थी।[3] गोपालपुरा के ठाकुर ने एक परिवेदना को पाल रखा था क्योंकि उसे एक बांध को तुड़वाने का आदेश दिया गया था जिसे उसने अनधिकृत रूप से अपने पट्टे में बनवाया था।[4] आयोग ने इनमें से प्रत्येक अभियुक्त के लिये कारावास एवं अर्थ–दण्ड की सिफारिश की[5] तथा

---

(२) बीदासर के ठाकुरः– स्वयं बीदासर में वितोष उत्पन्न करने का प्रयास करना।

१. पश्चिमी राजपूताना के राज्यों की रेजीडेन्सी की फाइल सं० ११९ (१९०५–१९०८), पृ. ५, भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव को गवर्नर जनरल के राजपूताना के लिए कार्यवाहक एजेंट आनरेबल मिस्टर ई. जी. कॉल्विन का पत्र सं० १८२ तारीख ८–९–१९०५।

२. वही।

३. वही।

४. वही, पृ. ६।

५. वही पृ.३२। आयोग ने निम्न दण्ड प्रस्तावित किये—
(१) गोपालपुरा के ठाकुर रामसिंह के लिये सात वर्ष का साधारण कारावास तथा सात हजार रुपए का अर्थ दण्ड। (२) बीदासर के ठाकुर हुकमसिंह तथा अजीतपुरा के ठाकुर भैरू सिंह के लिये :– प्रत्येक को दस वर्ष का साधारण कारावास तथा दस हजार रुपए का अर्थ दण्ड। इसके अतिरिक्त आयोग ने यह भी निर्णय किया कि यदि उन्हे प्रशासकीय ढंग से दण्डित करना निर्धारित

इसके अतिरिक्त यह भी कहा कि यदि उन्हें प्रशासकीय तौर से दण्डित किया जाना निर्धारित हो तो ऐसी परिस्थिति में जो कोई भी दण्ड उपयुक्त प्रतीत होता हो प्रदान कर दिया जाये। उन ठाकुरों को क्या दण्ड दिया जाना चाहिये इस विषय में महाराजा द्वारा कौन्सिल से भी स्वतन्त्र रूप से मंत्रणा की गई थी। कौन्सिल ने भी इन तीनों अभियुक्तों को कारावास एवं अर्थदण्ड देने की सिफारिश की। इसके अतिरिक्त कौन्सिल का यह मत था कि उन जागीरदारों के अपराधों की गम्भीरता को दृष्टि में रखते हुये उनको आदर्शभूत दण्ड दिया जाना चाहिये तथा उनकी जागीरों को राज्याधिकार में ले लिया जाना चाहिये।[1] कौन्सिल की जांच के अनुसार तात्कालिक षड़यन्त्र अतीत में बरती गई उदारता के परिणाम थे।

जैसे ही ये सिफारिशें प्राप्त हुई महाराजा ने २ जनवरी

किया जाय तो ऐसी परिस्थिति में जो कोई भी दण्ड उचित प्रतीत होता हो, दिया जा सकता है।

१. पश्चिमी राजपूताना राज्यों की रेजीडेन्सी फाइल सं० ११६ (१६०५--१६०८), पृ. ३२--३३। कौन्सिल ने निम्न दण्डों की सिफारिश की ---

(१) वीदासर के ठाकुर हुकमसिंह :-- (१) सात वर्ष का कठोर कारावास एवं पांच सौ रुपए का अर्थ दण्ड, अथवा प्रशासकीय ढंग से, पट्टे के ग्राम मूमासर को स्थायी रूप से जब्त कर लिया जाना। (२) ठाकुर हुकमसिंह की अधिकार च्युति। (३) ठाकुर हुकमसिंह को जब तक वह सुधर न जाय संनिरीक्षण में रखना। (४) मूमासर ग्राम को छोड़कर, वीदासर उसके सबसे बड़े पुत्र को वयस्क होने पर प्रदान कर दिया जाय।

(२) अजीतपुरा के ठाकुर भैरूं सिंह :-- (१) सात वर्ष का कठोर कारावास तथा पांच सौ रुपए का अर्थ दण्ड अथवा प्रशासकीय ढंग से उसकी सम्पूर्ण जागीर को स्थाई रूप से जब्त कर लिया जाना। उसको संनिरीक्षण के आधीन रखाजाना।

(३) गोपालपुरा के ठाकुर रामसिंह :-- (१) पांच वर्ष का कठोर कारावास एवं तीन हजार रुपए का अर्थ दण्ड अथवा प्रशासकीय ढंग से उसके पट्टे के एक ग्राम को स्थायी रूप से जब्त कर लियो जाना। (२) ठाकुर रामसिंह की अधिकार च्युति। (३) राज्य सत्ता द्वारा जब्त किये गये ग्राम को छोड़कर शेष पट्टा उसके सबसे बड़े पुत्र को वयस्क होने पर प्रदान कर दिया जाय। (४) उसको पांच वर्ष के लिये संनिरीक्षण के आधीन रखा जाना।

सन् १६०५ को एक दरबार बुलाया जिसमें पोलिटिकल एजेंट मेजर स्ट्रेटन को भी आमंत्रित किया गया था ! आयोग की रिपोर्ट को अभियुक्तों को पढकर सुनाया गया जिसमें उन पर राजद्रोह तथा अभक्ति के अभियोग लगाये गये थे । आयोग व कौन्सिल के निर्णयों से सम्मत होते हुये भी महाराजा ने केवल प्रशासकीय दण्ड देने का निर्णय किया और उसमें भी कौन्सिल की सिफारिशों को सदयता से अकठोर बना दिया ।[1]

---

१. पश्चिमी राजपूताना के राज्यों की रेजीडेंसी फाइल सं० ११६ (१६०५-१६०८), पृ० ३४ । निम्नलिखित अनुसार दण्ड दिये गये :-

(१) बीदासर के ठाकुर हुकमसिंह को :- (१) ग्राम मूमासर को स्थायी रूप से राज्यसात् कर लिया जाय । (२) ग्राम मूमासर को छोड़-कर शेष पट्टे का, तीन वर्ष पश्चात् उस समय तक के लिये जब तक यह निश्चित नहीं कर लिया जाता कि इसे हुकमसिंह या उसके उत्तराधिकारी को वापस किया जाय, प्रतिपालक अधिकरण द्वारा पुनर्ग्रहण कर लिया जाय । (३) तीन वर्षों के लिये सम्पूर्ण पट्टे का पुनर्ग्रहण कर लिया जाय । (४) ठाकुर हुकमसिंह को पांच वर्ष तक संनिरीक्षण के अधीन रखा जाय । (५) श्रेणी में बीदासर को रावतसर से निम्न कर दिया जाय ।

(२) अजीतपुरा के ठाकुर भैंरू सिंह को :- (१) ठाकुर भैंरू सिंह की अधिकार च्युति । (२) ठाकुर भैंरू सिंह को महाराजा की इच्छा तक संनिरीक्षण के अधीन रखा जाय । (३) उसके पट्टे में से इतने ग्रामों को स्थायी रूप से राज्यसात् कर लिया जाय कि उसकी आय पट्टे के समस्त ग्रामों की आय से आधी रह जाय । (४) पट्टे के पुनर्गृहीत नहीं किये गये भाग का ठाकुर भैंरू सिंह के सबसे बड़े पुत्र को पट्टेदार नियुक्त किया जाय जिसके वयस्क होने तक यह पट्टा प्रतिपालक अधिकरण के अधीन रखा जाय । (५) अजीतपुरा के पट्टे को तृतीय श्रेणी की ताजीम से चतुर्थ श्रेणी की ताजीम में अवनत कर दिया जाय ।

(३) गोपालपुरा के ठाकुर रामसिंह को :- (१) पट्टे की भूमि से ग्राम सुलखनिया का स्थायी रूप से राज्यसात् कर लिया जाय । (२) ठाकुर रामसिंह को दो वर्ष तक संनिरीक्षण के अधीन रखा जाय । (३) पुनर्गृहीत नहीं किया गया पट्टा उस समय तक प्रतिपालक अधिकरण के अधीन रखा जाय जब तक रामसिंह राज्य को इससे सन्तुष्ट नहीं कर दे कि उसने अपने आपको सुधार लिया है अथवा उसका पुत्र वयस्क न हो जाय ।

मेजर स्ट्रेटन तथा गवर्नर जनरल के एजेंट सर आर्थर मार्टिन्डेल को इस मामले से पूर्णतः अवगत रखा गया था तथा जांच व परिनिर्णित दण्डों से वे महाराजा से सहमत थे।[1] तथापि अभियुक्तों ने विदेश विभाग एवं गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन को आवेदन पत्र भेजे। लार्ड कर्जन ने गवर्नर जनरल के एजेंट से रिपोर्ट मांगी। एजेंट द्वारा महाराजा गंगासिंह की कारवाई का समर्थन करने पर भी, भारत सरकार से विदेश विभाग के सचिव

---

१. पश्चिमी राजपूताना राज्यों की रेजिडेन्सी की फाइल सं० ११६ (१९०५–१९०८), पृ० ३ एवं ६, भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव को गवर्नर जनरल के राजपूताना के कार्यवाहक एजेंट मिस्टर ई. जी. काल्विन का पत्र सं० १८३ ता० ८–६–१९०५।

महाराजा द्वारा इस आपदा की प्रथम विशिष्ट सूचना सर आर्थर मार्टिन्डेल (गवर्नर जनरल का एजेंट) को एक स्मरण पत्र के रूप में भेजी गई थी जिसे पोलिटिकल एजेंट द्वारा उसे ९ नवम्बर १९०४ को अग्रप्रेषित किया गया था तथा उसके पश्चात् अशासकीय पत्र व्यवहार से अनुपूरित किया गया था।

जब जनवरी १९०५ के मध्य में सर आर्थर मार्टिन्डेल बीकानेर आया, उसने तथा मेजर स्ट्रेटन (पोलिटिकल एजेंट) ने महाराजा के साथ उस विषय पर विस्तृत विचार-विमर्श किया और १८ जनवरी, १९०५ को सर आर्थर मार्टिन्डेल ने एक टिप्पणी अभिलिखित की जिसमें उसने लिखा कि वह इस अन्तिम परिणाम पर पहुंचा है कि महाराजा द्वारा की गई कारवाई पूर्ण रूप से उपयुक्त है तथा विप्लव के तथ्य का आयोग के सामने सुनिश्चय प्रमाणित हो जाना प्रतीत होता है।

पूर्वोक्त पत्र की आठवीं कण्ठिका में मिस्टर काल्विन आवेदकों (अभियुक्त ठाकुर) की उस याचिका में विवृत किये गये विवाद विषयों का विश्लेषण करते हैं जो उन्हें १७ मई १९०५ को मेजर ब्रूस (पोलिटिकल एजेंट) द्वारा उसके तथा पूर्वाधिकारी मेजर स्ट्रेटन के स्मरण-पत्रों तथा महाराजा की एक टिप्पणी के साथ अग्रप्रेषित की गई थी, तथा आर्थर मार्टिन्डेल के विचारों (यथा पूर्वोक्त) से अपनी सहमति (दसवीं कण्ठिका में) व्यक्त करते हैं। वह यह भी सिफारिश करते हैं कि भारत सरकार इन आवेदकों को अवगत करे कि वह इस मामले में हस्तक्षेप करना छोड़ दें।

के पत्र सं० ३६४३-आई. ए. ता० शिमला ७ सितम्बर १६०५[1], द्वारा महाराजा के आदेशों को आपरिवर्तित करने का निर्देश दिया गया। उस आपरिवर्तन को पत्र सं० ४७८८-आइ. ए. ता० २०-११-१६०५[2] द्वारा संशोधित

---

१. पश्चिमी राजपूताना के राज्यों की रेजिडेन्सी की फाइल सं० ११६ (१६०५-१६०८), पृ० ७६, गवर्नर जनरल के राजपूताने के एजेंट मिस्टर कालिवन को भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव का पत्र सं० ३६४३ तारीख ७-६-१६०५।

"………भारत सरकार ऐसा मार्ग अपनाने के लिये उत्कंठित है जिससे यह प्रकट न हो कि महाराजा के सत्ताधिकार क्षीण कर दिये गये हैं, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये कि जो कारवाई उन्होंने की है वह यद्यपि उनके राज्य में अधिकार पत्र देकर भेजे गये पोलिटिकल एजेंट की सलाह से नहीं तो कम से कम उसकी सहमति से अपनाई गई है। अतः वह इसके लिए उद्यत है कि सरकार द्वारा अभिव्यक्त की गई सम्मति मन्त्रणा का रूप धारण करले तथा मैं अनुरोध करता हूं कि यद्यपि आवेदकों को यह सूचना दे दी जाय कि उनके साथ साथ आप महाराजा को भी यह मन्त्रणा देंगे कि वे एक विज्ञप्ति प्रकाशित करके उसमें यह घोषणा करदें कि उन्होंने अपनी उदारता का प्रयोग करते हुये उन दण्डादेशों को कम कर दिया है जिनका सम्बन्ध भूमि को स्थायी रूप से राज्यसात् करने से है, तथा इसका किन्हीं अन्य संदर्भों में जिन्हें आप उपयुक्त समझते हों संशोधन कर दिया जाय।"

२. पश्चिमी राजपूताना के राज्यों की रेजीडेन्सी फाइल सं० ११६(१६०५-१६०८), गवर्नल जनरल के राजपूताना स्थित एजेंट आनरेबल मिस्टर ई. जी. कालिवन को भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव का पत्र सं. ४७७८ आइ. ए. तारीख २०-११-१६०५।

भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव ने महाराजा के विचारार्थ निम्न लिखित आपरिवर्तनों का सुझाव देते हुये लिखा कि यह सरकार का अभिष्ट है कि वह सचिव अत्यन्त प्रबलतम आशा व्यक्त करे कि इन ठाकुरों के प्रति महाराजा अपनी व्यक्तिगत उदारता का प्रयोग किसी अनिश्चित ढंग से नहीं करेंगे अपितु इसी ढंग से करेंगे जिसे भारत सरकार अपने ६ सितम्बर १६०५ के आदेशों में समाविष्ट करने से अत्यधिक कठिनाई से नियंत्रण मात्र रख सकी है।

(१) ठाकुर हुकमसिंह के विषय में उसकी भूमि को राज्यसात् करने का

किया गया। तथापि, क्योंकि उन दण्डों को महाराजा द्वारा खुले दरबार में घोषित कर दिया गया था और क्योंकि उनमें किसी प्रकार के आपरिवर्तन से महाराजा की प्रतिष्ठा पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता था तथा कुचेष्टा-शील व्यक्तियों के इस विश्वास को बढ़ावा भी मिल सकता था- कि शासक को सर्वोच्च सत्ता का समर्थन प्राप्त नहीं है, महाराजा ने गवर्नर जनरल को व्यक्तिगत रूप से आवेदन करने की इच्छा व्यक्त की। उस निवेदन का गवर्नर जनरल के कार्यवाहक एजेंट मिस्टर ई. जी काल्विन द्वारा अभिस्ताव किया गया और इस विषय पर लिखित आवेदन पत्र पर विचार करने के लिये गवर्नर जनरल सहमत हो गया। यह आवेदन महाराजा के ३० नवम्बर १९०७ के पत्र द्वारा प्रस्तुत किया गया। अन्ततः भारत सरकार महाराजा के मूल आदेशों से भारत सरकार के विदेश विभाग के उप सचिव के पत्र सं० १०८६ आइ. ए. दिनांकित ११ मार्च १९०८ के द्वारा सहमत हो गई।[1]

दण्ड स्थिर रखा जा सकता है यद्यपि ठाकुर के भविष्य के आचरण के प्रकाश में हिज हाईनेस यह निर्णय करेंगे कि क्या उसकी आधी भू सम्पति तक को पुनर्ग्रहीत कर लिया जाना चाहिये?

(२) ठाकुर हुकमसिंह की दण्ड्यता कम गम्भीर है अतः तीन वर्षों की समाप्ति के पश्चात ग्राम मूमासर को राज्यसात् करने के दण्ड को कम कर दिया जाना चाहिये।

(३) ठाकुर रामसिंह के विषय में ग्राम सुलखनिया को राज्यसात करने का दण्ड उसके वर्तमान अपराध को देखते हुये निस्सन्देह अधिक है अतः एक वर्ष की अवधि के पश्चात इस दण्ड को घटा दिया जाना चाहिये तथा इस ग्राम का शेष पट्टे के समान प्रतिपालक अधिकरण के आधीनस्थ कर दिया जाना चाहिये।

१. पश्चिमी राजपूताना के राज्यों की रेजिडेन्सी फाइल सं० ११९ (१९०५-१९०८), पृ० १११, गवर्नर जनरल के राजपूताना स्थित एजेंट मिस्टर ई. जी. काल्विन को भारत सरकार के विदेश विभाग के उप सचिव आर. ई. हालैन्ड का पत्र सं० १०८६ आइ. ए. ता० ११-३-१९०८।

हिज हाईनेस तथा पोलिटिकल एजेंट द्वारा स्पष्ट की गई परिस्थितियों का सचेत विवेचन करने के पश्चात भारत सरकार आपके इस अभिस्ताव को स्वीकार करती है कि— (क) बीदासर के पट्टे के ग्राम

आन्तरिक प्रशासन में अंग्रेजी हस्तक्षेप इतना सुस्पष्ट हो चुका था कि जागीरदारों को राज्य से बाहर जाने की अनुमति प्रदान करने के विषय तक में पोलिटिकल एजेंट को एक प्रेषण करना पड़ता था जैसा कि ठाकुर मेघसिंह के मामले से दृष्टिगत होता है जिसने राज्य के बाहर जाने की आज्ञा के लिये प्रार्थना की थी। यह ठाकुर इस लिये राज्य के बाहर जाना चाहता था कि वह कुछ आपत्तिजनक पुस्तिकाओं को छपवाने में तथा उनका भारत व विदेश में सर्वत्र वितरण करने में समर्थ हो सके। महाराजा को इस तथ्य को पोलिटिकल एजेंट के ध्यान में लाना पड़ा एवं उन्होंने अपने तारीख १३ दिसम्बर १८९९ के पत्र में पोलिटिकल एजेंट को स्थिति की वास्तविकता की ओर संकेत करते हुये लिखा कि उन्हें ठाकुर की योजनाओं से कोई भय नहीं था तथा वे ठाकुर मेघसिंह को आवश्यक अनुमति प्रदान करने के लिये तैयार थे किन्तु ठाकुर भैरूंसिंह के इसके एक समरूप विषय में अनुमति को वांछनीय नहीं समझा गया था क्योंकि उस समय उसके विरूद्ध कुछ मामलों की जांच अपूर्ण थी।

अपने तारीख १६-१२-१८९९ के पत्र में पोलिटिकल एजेंट सहमत हो गया कि ठाकुर मेघसिंह को राज्य से बाहर जाने की अनुमति प्रदान करदी जानी चाहिये।[1]

मियांवाली डकैती के लोक विश्रुत मामले में नारायणा व खजान सिंह को न्यायालयों द्वारा मृत्युदण्ड दिया गया था किन्तु पुनरावेदन करने पर परिषद ने खजानसिंह के दण्ड को घटाकर अजीवन कारावास में परि-वर्तित कर दिया था। पोलिटिकल एजेंट कप्तान बेली ने इस मामले की फाइल को मंगवाया और अभिस्तावित किया कि न्यायाधीश द्वारा दिये गये दण्डादेश का अनुमोदन कर दिया जाना चाहिये।[2] कर्नल विन्सेन्ट ने भी

मूमासर को पूर्ण रूप से राज्यसात् करने के उनके मूल आदेशों को क्रियान्वित करने की तथा (ख) बीदासर के भूतपूर्व ठाकुर बहादुरसिंह को बीकानेर से देश निर्वासित करने की महाराजा को अनुमति मिलनी चाहिये।

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।१५; कप्तान बेली को महाराजा गंगासिंह का पत्र ता० १५-१२-१८९९ तथा बेली का उत्तर ता० १६ दिसम्बर १८९९।

२. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १३४।१५, पृ० २३— कप्तान एस. एफ. बेली का पत्र ता० ४-५-१९००।

अपने दिनांक १६ मई १६०० के पत्र[1] में कहा कि उनके विचार से कप्तान वेली द्वारा अभिव्यक्त राय को क्रियान्वित किया जाना चाहिये था।

उपरोक्त घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजकीय घोषणा तथा शासकों को दिये गये नानारुप आश्वासनों के उपरान्त जिनके अनुसार भारतीय नरेशों के साथ की गई नियुक्तियों तथा सन्धियों इत्यादि का आचार निष्ठा से पालन करने का वचन दिया गया था, इनका विभिन्न अवसरों पर विभिन्न वहानों से उल्लंघन किया जा रहा था। अंग्रेजों के ये आश्वासन कि उनके (नरेशों के) अधिकार, विशेपाधिकार तथा गौरव अविकल रहेंगे और प्रत्याभूत रहेंगे उत्तरोत्तर अप्रकाश्यता में पृष्ठाभिमुख होते जा रहे थे।

वीकानेर के प्रशासन के कर्णधार एक स्वतंत्र मनोवृति के आत्मावान तेजस्वी युवा नरेश के लिये इस प्रकार के हस्तक्षेपों के विरुद्ध लड़ने की स्वाभाविक आकांक्षा रखना अववोधनीय थी। महान राठोड़ों के युद्धमान कुटुम्ब के सदस्य होने के नाते इसमें कोई आश्चर्य की वात नहीं थी कि महाराजा गंगासिंह को राज्य के दिन प्रतिदिन के प्रशासन में केन्द्रीय सत्ता द्वारा हस्तक्षेप के रूप में पहुँचाई जाने वाली यह मर्मान्तक पीड़ा असह्य हो चुकी थी। हस्तक्षेप की इस नीति के प्रति उनकी प्रतिक्रिया ठीक आरम्भ से ही प्रकट है। कप्तान वेली को भेजे गये आखेट के अनुज्ञापत्र के विषय में उसके व्यंगपूर्ण पत्र के प्रत्युत्तर[2] में महाराजा ने तत्काल दिसम्बर १८६६ में उससे प्रश्न पूछा कि क्या वूंदी का पोलिटिकल एजेंट महाराजा की अनुमति विना वूंदी के चीतों का आखेट करेगा?

यहां तक कि योग्य, श्रेष्ठतर तथा सत्वर प्रशासन के लिये कुछ आवश्यक सुधारों के सूत्रपात करने के विषय में भी महाराजा को पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं थी। सन् १८६६ में जव उन्होंने व्यवस्था में कुछ परिवर्तन करने की योजना वनाई अर्थात् राज्य परिषद के स्थान पर सचिवों को नियुक्त करने की, तथा इस विषय में गवर्नर जनरल के तत्कालीन एजेंट सर आर्थर मार्टिन्डेल को लिखा तो उनको सलाह दी गई कि वे इस विषय में मन्दगति से अग्रसर हों तथा सुधार या परिवर्तन करने में

---

१. वीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १३४।१५, पृ० २५— कर्नल एच. ए. विन्सैन्ट का पत्र ता० २१–५–१६००।

२. वीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।१५, पृ० ८१, महाराजा गंगासिंह का पत्र ता० २–२–१६००।

एवं सर्वोपरि, अधिकारियों की अदला-बदली करने में इतनी व्यग्रता न दिखायें।[1] तथापि महाराजा गंगासिंह जैसे उत्साह, ओज व पराक्रम वाले व्यक्ति को उपर्युक्त प्रकार की मन्दगति की सलाह सुखद नहीं थी। महाराजा गंगासिंह अपनी प्रजा की अधिकाधिक उन्नति के लिये निरन्तर प्रयास करते रहे और अन्ततः सन् १९०३ में अपने राज्य की जनता के कार्य सम्पन्न करने के लिये भारत सरकार की अनुमति प्राप्त करने में सफल हुये। यद्यपि सर आर्थर मार्टिन्डेल को सम्बोधित महाराजा का तारीख ३१-७-१९०३ का पत्र फाइल में उपलब्ध नहीं है किन्तु सर आर्थर का तारीख ३-८-१९०३ का प्रत्युत्तर उपलब्ध है जिसमें अपने प्रस्तावों के लिये भारत सरकार की कृतसंकल्प सहमति प्राप्त कर लेने पर उन्होंने महाराजा का अभिनन्दन किया।[2]

अंग्रेजी सरकार न केवल राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करती थी अपितु अपनी आय में वृद्धि करने के लिये शासकों की कल्पित उपाश्रित परिष्ठा का लाभ भी उठाती थी। भारतीय राज्यों के प्रति ब्रिटिश रुख का रूपण वस्तुतः पहले से ही पिछड़े हुये इन क्षेत्रों के साधन स्रोतों के शोषण करने के मन्तव्य के अनूकूल किया जाता था। जिस ढंग से अंग्रेजों ने भारतीय राज्यों में टेलीग्राफ लाइनें लगाना आरम्भ की उससे राज्यों के व्यय पर अधिक आय कमाने का उनका अभिप्राय प्रकट होता था। किसी भारतीय राज्य के क्षेत्र में नया टेलीग्राफ कार्यालय विभाग अधिकांशतः उस राज्य से आर्थिक प्रतिभूति मांगता था तथा यह जिम्मेदारी तय करता था कि वह राज्य विभाग के लिये पन्द्रह हजार रुपये प्रति वर्ष की आय को सुरक्षित करेगा या अपर्याप्त आय तथा नये कार्यालय में कार्य व्यय के आभिक्य से होने वाली हानि की क्षतिपूर्ती करेगा। समस्त व्यय का वहन करने के पश्चात अवशिष्ट अतिरिक्त लाभ को राज्य को सौंपने के तत्संबद्ध दायित्व को स्वीकार करने के लिये टेलीग्राफ विभाग उद्यत नहीं था। वो किसी भी स्रोत को अछूता छोड़ने के विरुद्ध थे तथा टेलीग्राम के सामान्य यातायात के लिये भी रेल्वे टेलीग्राफ कार्यालय के राज्य द्वारा चलाये जाने को वो अच्छा नही समझते थे चाहे उस रेल्वे पर राज्य का

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ८६-१०२।१५, पृ० २, सर आर्थर मार्टिन्डेल का पत्र ता० २२-८-१८९९।
२. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ८६-१०२।१५, पृ० ४३, सर आर्थर मार्टिन्डेल का पत्र ता० ३-८-१९०३।

स्वामित्व हो ब्रिटिश सरकार की यह नीति बीकानेर राज्य के साथ उनके सम्बन्ध में स्पष्टतया प्रकट थी ।[1]

सन् १९०४ से पूर्व बीकानेर राज्य जोधपुर राज्य के साथ साथ अपने निज के रेल्वे टेलीग्राफ कार्यालयों का सन्धारण करता था जो एक प्रचुर मात्रा में सार्वजनिक यातायात का संचालन भी करते थे। किन्तु रेलवे टेलीग्राफ कार्यालयों तथा सरकारी टेलीग्राफ कार्यालयों के बीच कोई सम्बन्ध न होने के कारण टेलीग्रामों का आवागमन अत्यन्त विलम्बित हो जाता था जिसके फलस्वरूप लोगों को बहुत असुविधा होती थी। जनता की इस असुविधा का निवारण करने के लिये बीकानेर तथा जोधपुर राज्यों ने अंग्रेजों से निवेदन किया कि उनकी रेल्वे टेलीग्राफ लाइनों को फुलेरा स्थित सरकारी टेलीग्राफ कार्यालय से सम्बद्ध कर दिया जाये। किन्तु इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया। दूसरी ओर सरकार ने जोधपुर तथा बीकानेर के रेल्वे स्टेशन पर एक संयुक्त टेलीग्राफ कार्यालय खोलने के तथा इस प्रकार दोनों राज्यों की समस्त टेलिग्राफ आय पर स्वामित्व प्राप्त करने के अधिकार का दावा किया। इन राज्यो ने कुछ समय तक इस मांग का प्रतिरोध किया तथा मारवाड़ जंकशन में एक सरकारी टेलीग्राफ कार्यालय, जिसकी आवश्यकता का अनुभव सिन्ध की यातायात के कारण होता था, खोलने का अनुरोध किया। इसके प्रत्युत्तर में महासंचालक टेलीग्राफ विभाग ने अपने पत्र तारीख ११ मार्च १९०४ में लिखा कि मारवाड़ जंकशन में मुख्यतः बम्बई व कलकत्ता से कराची तक के तारों का परीक्षण व प्रेक्षण करने के अभिप्राय से सरकारी टेलीग्राफ कार्यालय खोला गया था। इस प्रकार की किसी अतिरिक्त मांग को पूरा करने के लिये वहां का कर्मचारीवर्ग व स्थान अपर्याप्त था। उसने निर्दिष्ट किया कि मारवाड़ जंकशन स्थित टेलिग्राफ कार्यालय किसी प्रकार की उदीयमानता प्रस्तुत नहीं कर रहा था अतः सीधे सम्पर्क में संनिहित किसी अतिरिक्त अर्थ-व्यय में योगदान न करने के लिये उसने राज्यों से अनुरोध किया। राज्यों द्वारा उनके क्षेत्रों में संयुक्त टेलीग्राफ कार्यालय स्थापित करने पर जो अनुरोध लगा दिया गया था उसे उठा लेने का भी उसने आग्रह किया। उसने आगे लिखा कि "विशेष रूप से मारवाड़ जैसे एक राज्य के सम्बन्ध में जहां का प्रगत तथा ज्ञानोदीप्त लोक समाज भारत के प्रत्येक कोने में हित

---

१. ए स्कीम आव् अरेंजमेंट (व्यवस्था की एक योजना), भाग ४, पुस्तक सं० ५४६, पृ० २१५४ (१)।

रखता है और जहां यथेष्ट प्रयोजन तथा अनुपाती प्रत्यावर्तन के साथ टेलीग्राफ पर लाभदायक व्यय निःसंकोच प्रस्तावित किया जा सकता है" इस विषय को एक वित्तीय समष्टि की भांति समझा जाना चाहिये।[1]

राज्य की प्रजा के हितों के लिये अखिल-भारतीय टेलिग्राफ विभाग की लाभ लिप्सा को चुपचाप स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था अतः जोधपुर के महाराज ने अपने प्रत्युत्तर में भारत सरकार की आकांक्षाओं को सर्वशः कार्य सम्पन्न करने की हामी भरली किन्तु १६३६० रु० प्रतिवर्ष के क्षतिपूरण की मांग की। बीकानेर-जोधपुर के रेल्वे प्रबन्धक की मन्त्रणा पर कार्य करते हुये बीकानेर राज्य ने १४००० रु० प्रतिवर्ष के क्षतिपूरण की मांग की। किन्तु इन मांगों को सन् १६०५ में अस्वीकार कर दिया गया।[2] इन मांगों को अस्वीकार करते हुये भारत सरकार ने कहा कि साम्राज्य सम्बन्धी आवश्यकताओं द्वारा जब भी ऐसा अपेक्षित समझा गया, भारतीय राज्यों को अपनी टेलिग्राफ व्यवस्था प्रदान करने का सरकार का सुपरिचित प्रचलन रहा है तथा न तो सन् १८६६ का समझौता और न सार्वजनिक समाचारों को अपने रेल्वे के तारों द्वारा भेजने के उनके द्वारा उपयुक्त विशेषाधिकार उन्हें अन्य शासकों के साथ किये जाने वाले से भिन्न किसी प्रकार के अधिमान्य व्यवहार का हकदार बनाते हैं। अन्ततोगत्वा सन् १६०७ में भारत सरकार ने राज्य की टेलिग्राफ लाइन (तार-पथ) को ३२,७०८ रुपये में खरीदा जिसे ३७५ रु० प्रति मील तार के भाव से परिगणित किया गया था।[3] किन्तु महाराजा गंगासिंह उस परिस्थिति के गतिसंग्रह करने का उसके शाश्वत रहने तक को सहन करने वाले व्यक्ति नहीं थे। उनका विश्वास था कि बुराई को उगते ही कुचल दिया जाना चाहिये। अत्याचार पूर्ण नीति के विरुद्ध उन्होंने ठीक आरम्भ से युद्ध किया तथा उस बुराई को पराजित करने के लिये, उनका अभ्रांत अवबोध रखने वाले पदाधिकारियों की सद्भावना सहित उन्होंने अपने अधिकार के समस्त साधनों का प्रयोग किया। इस प्रसंग की व्याख्या करने के लिये अनेक उदाहरणों में से केवल एक का यहां पर

---

१. स्कीम आव अरेंजमेंट (व्यवस्था की योजना), भाग ४, पुस्तक सं० ५४६, पृ० २१५४ (१)।

२. वही, पृ० २१५४ (२)।

३. वही, पृ० २१५४ (२)।

उल्लेख किया जा रहा है।

पूर्व निर्दिष्ट आखेट अनुमति घटना से महाराजा ने पोलिटिकल एजेंट कप्तान वेली के प्रति एक उपेक्षापूर्ण भावना अपना ली जो महाराजा को लिखित कप्तान वेली के पत्र तारीख २८ फरवरी, सन् १६०० से पूर्णतः व्यक्त होती है जिसमें उसने लिखा कि "क्रिसमस के पश्चात जब से आप आबू से वापस लौटे हैं, मेरे तथा श्रीमती वेली के प्रति आपका मनोभाव अधिक सदय व स्नेहशील नहीं रहा है............ क्रिसमस के कुछ समय पूर्व आवेदन पत्रों के सम्बन्ध में आपसे कुछ प्रश्न पूछ कर मैंने दुर्भाग्य से आपको विक्षुब्ध कर दिया और यद्यपि आपने लिखा था कि आपने मेरे स्पष्टीकरणों को समझ लिया........ क्रिसमस के पश्चात आपके समस्त मनोभावों ने शब्दों से भी अधिक सुबोध ढंग से व्यक्त किया है कि वेली परिवार के अतिरिक्त बीकानेर स्थित समस्त यूरोपियन....... मेरे मित्र हैं।"[1]

अपने राज्य के आन्तरिक प्रशासन में आंग्ल हस्तक्षेप को समाप्त करने के प्रयासो में महाराजा गंगासिंह ने जो सफलता प्राप्त की वह परिणाम थी उनके पुरखों द्वारा की गई सन्धि में दिये हुये वचनों पर दृढ रहने की उनकी नीति का तथा आवश्यकता पड़ने पर सर्वदा आंग्ल सम्राट की सहायता करने के लिये उनकी उद्यतता का जिससे निःसन्देह यह सिद्ध हो गया कि उन्हें (अंग्रेजों को) उनसे किसी भी प्रकार से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं थी। न केवल भारत सरकार के साथ अपने सम्बन्धों में अपितु अपने राज्य के प्रशासन में भी उन्होने चरित्र बल तथा राजनीतिज्ञता प्रदर्शित की थी।

सन् १८६५ में जब आंग्ल तथा चित्राल के बीच युद्ध घोषित कर दिया गया तथा पुनः सन् १८६६ में जब सूडान में युद्ध छिड़ गया तो महाराजा गंगासिंह ने अपनी व्यक्तिगत सेवाएँ अर्पित की[2] किन्तु महाराजा उस समय केवल १५ वर्ष के थे। अतः उनकी सुकुमार अवस्था को तथा

---

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।१५, पृ० ८२, कप्तान वेली का पत्र ता० ६-२-१६००।

२. वीटसन ए हिस्ट्री आव द इम्पीरियल सर्विस ट्रुपस आव नेटिव स्टेटस् (देशी राज्यों क साम्राजिक सैन्य दलों का इतिहास), पृ० २१।

उक्त लड़ाइयां कोई गम्भीर परिमाण की नहीं थी इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये उन्हे कृतज्ञता के साथ अस्वीकार कर दिया गया।[1] सन् १८९९ में पुनः महाराजा ने बोर युद्ध के लिये अपनी सेवाएँ अर्पित की[2] किन्तु उनके लिये व्यक्तिगत रूप से युद्ध में भाग लेने को सरकार ने वांछनीय नहीं समझा।[3]

सन् १९०० में महाराजा ने चीनी युद्ध के लिये अपनी तथा गंगा रिसाले की सेवाओं को अर्पित किया।[4] १० अगस्त १९०० को महाराजा को रेजिडेन्ट पोलिटिकल एजेंट से सूचना प्राप्त हुई कि उनके अर्पण को सम्राज्ञी द्वारा कृतज्ञता के साथ स्वीकार कर लिया गया है।[5] १ सितम्बर १९०० को महाराजा के नेत्रत्व में रेजिमेन्ट ने पोतारोहण किया तथा १४ सितम्बर को हांगकांग आ पहुँचा एवं १७ सितम्बर सन् १९०० को उसने वहां पर अवतरण किया।[6] महाराजा तथा रेजिमेन्ट ने विभिन्न लड़ाइयों में सक्रिय भाग

---

१. वीटसन, ए हिस्ट्री आव द इम्पीरियल सर्विस ट्रूपस आव नेटिव स्टेटस् (देशी राज्यों के साम्राजिक सैन्य दलों का इतिहास), पृ० २१।

२. वीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११६।१५, कप्तान एस. एफ. बेली को महाराजा गंगासिंह का पत्र ता० २६-११-१८९९।

३. वही, महाराजा गंगासिंह को कप्तान एस. एफ. बेली का पत्र ता० ५-११-१९००। कप्तान बेली लिखता है—

"सर डब्लू. कनिंघम ने परिणति में यह आशा व्यक्त की है कि यह ज्ञात करके आपका क्षोभ हल्का हो जायगा कि एक ऐसे गहन दुर्भिक्ष तथा संकट के समय में, जैसा कि अभी राजपूताने में वर्तमान है, एक नरेश साम्रज्ञी के शत्रुओं के विरुद्ध समरभूमि में अपनी व्यक्तिगत सेवा से भी, अपने निजी राज्य तथा प्रजा के हितों की देखभाल करके यथार्थतः सम्राज्ञी को कहीं अधिक मूल्यवान सेवायें अर्पित कर सकता है।"

४. वीटसन, उपर्युक्त रचना में, पृ० २१।

५. वही।

६. वही।

लिया जिनमें पोटिंग्फू का घेरा तथा पिटांग की विजय भी सम्मिलित है ।[1] शान्ति संधि के हस्ताक्षर के पश्चात जब दिसम्बर सन् १९०० में महाराजा भारत लौटे तो भारत सरकार की ओर से कलकत्ते में उनका सार्वजनिक स्वागत किया गया ।[2] रेजिमेन्ट की सेवाओं का ब्रिगेड के आदेश तारीख कलकत्ता, २१ जून १९०१ में यथा निम्नांकित उल्लेख किया गया :—

"बीकानेर रेजिमेन्ट का विदाई अभिवादन करते हुये ब्रिगेडियर जनरल कमांडिग इस रेजिमेन्ट द्वारा उत्तरी चीन में इसके सात मास के सेवाकार्य पूर्ण पर्यटन के समय की गई विशिष्ट सेवा के लिये अपनी निरपेक्ष प्रशंसा अभिव्यक्त करना चाहते हैं ।

इस रेजिमेन्ट का आचार, अनुशासन, सैनिकवत् आचारण तथा स्वास्थ्य भी आद्योपांत काफी संतोषप्रद रहा" ।[3]

इन्हीं विशिष्ट सेवाओं के बदले में भारत के सम्राट ने गंगा रिसाले के झण्डे में 'चाइना १९००' का सम्मान–चिन्ह लगाने की अनुमति दी थी ।[4] महाराजा को, जो युद्ध के घटनाक्षेत्र में जाने वाले एक मात्र भारतीय नरेश थे, जून १९०२ में सम्राट एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक में उपस्थित होने के लिये जब वह इंगलैन्ड गये हुये थे, स्वयं सम्राट द्वारा 'चाइना मैडल' प्रदान किया गया ।

सन् १९०२ में महाराजा ने सोमालीलैन्ड सैनिक कार्यवाइ के लिये अपनी तथा व्यक्तिगत गंगा रिसाले (बीकानेर ऊँट रिसाले) की सेवाएं अर्पित की ।[5] सरकार ने रेजिमेन्ट की सेवाओं को तो स्वीकार कर लिया किन्तु महाराजा के युद्ध के अग्रभाग में जाने के लिये लार्ड कर्जन सहमत नहीं हुआ ।[6] ४ नवम्बर सन् १९०२ को रेजिमेन्ट ने बीकानेर से प्रस्थान किया तथा १४ जुलाई सन् १९०४ को वापस लौटे । सोमालीलैन्ड में अपने सेवा

---

१. ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ५०८ ।
२. वही ।
३. चाइना एक्सपीडीशनरी फोर्स के चतुर्थ इन्फैन्ट्री ब्रिगेड के सेनापति मेजर जनरल जे० टी० कमिन्स, डी० एस० ओ०, द्वारा ब्रिगेड आदेश तारीख कलकत्ता २१ जून सन् १९०१ ।
दी हाउस आफ बीकानेर (बीकानेर वंश), पृ० १७३–७४ ।
४. वीटसन, उपर्युक्त रचना में, पृ० १५३ ।
५. दी हाउस आफ बीकानेर (बीकानेर वंश), पृ० ४५ ।
६. वही, पृ० ४५ एवं १७४ ।

कार्य के बाद रेजिमेन्ट ने जिदग्राली तथा धरातोल की लड़ाइयों में अपनी विशिष्टता दिखलाई[1] और सोमालीलैन्ड के युद्ध क्षेत्र की सेना के प्रधान सेनापति सर चार्ल्स इजर्टन द्वारा उसकी अत्यन्त सराहना की गई।[2]

देश व साम्राज्य के प्रति बीकानेर राज्य एवं व्यक्तिगत रूप से महाराजा की इन समस्त विशिष्ट सेवाओं के तथा उनका विभिन्न वायसरायों एवं शाही परिवार के साथ, उन लोगों के बीकानेर आने के या महाराजा के दिल्ली तथा इंगलैण्ड के पर्यटन के अवसरों पर, जो निकट सम्पर्क स्थापित हो गया था उसके परिणाम स्वरूप महाराजा का सम्मान व गौरव बहुत उन्नत हो गया जिससे हस्तक्षेप के विरुद्ध लड़ने में तथा सन् १६१० में सुजानगढ स्थित पोलिटिकल एजेंट के पद के मिटाने में, बीकानेर को पश्चिमी राजपूताना के राज्यों के रेजिडेन्ट की देखरेख में किये जाने में तथा अन्त में सन् १६१६ में बीकानेर राज्य के गवर्नर जनरल के एजेंट के साथ सीधे सम्बन्ध स्थापित कर दिये जाने में यथेष्ट सहायता मिली।[3] बीकानेर ही केवल एक ऐसा राज्य था जिसके इस प्रकार के सीधे सम्बन्ध थे।

सन् १६०२ में महाराजा को एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक में उपस्थित होने के लिये लन्दन आमंत्रित किया गया तथा १५ जून सन् १६०२ को महाराजा लन्दन पहुँचे। इस अवसर पर उन्हें 'कोरोनेशन मेडल' से विभूषित किया गया तथा प्रिंस आव वेल्स, उत्तरकालीन सम्राट

---

१. १३ ग्रिनेडियर्स (गंगा-जैसलमेर), जिस नाम से यह रिसाला राज्यों के विलीनीकरण के पश्चात् प्रसिद्ध है, २२ अप्रेल को रेजिमेन्टल दिवस मनाता है। जैसलमेर रिसाला, गंगारिसाले के अफसरों, जूनियर कमीशनड् अफसरों तथा जवानों को लेकर सन् १६४६ में खड़ा किया गया था और उसका प्रशिक्षण व शस्त्रीकरण बीकानेर में हुआ था। बीकानेर गंगा रिसाला और जैसलमेर रिसाला मिला दिये गये और नई यूनिट का नाम गंगा जैसलमेर रिसाला रखा गया। रिसाले के ग्रिनेडियर्स के साथ के पुराने सम्बन्धों के कारण बाद में इसको ग्रिनेडियर्स के साथ मिलाने का निश्चय किया गया और अब यह १३ ग्रिनेडियर्स (गंगा जैसलमेर) के नाम से प्रख्यात है।

२. दी हाउस आफ बीकानेर (बीकानेर वंश), पृ० ४५।

३. कर्नल ए० डी० मैकफर्सन (गवर्नर जनरल का राजपूताने में एजेंट) का पत्र सं० १३०८-१३०६ ता० २६-३-१६१६, परिशिष्ट १५।

जार्ज पन्चम का ए. डी. सी. भी नियुक्त किया गया। उनके भारत लौटने के कुछ समय पश्चात वह एक जनवरी सन् १६१३ को दिल्ली में राज्याभिषेक दरबार में उपस्थित हुये। १ जून सन् १६०४ में एडवर्ड सप्तम के जन्म दिवस पर उन्हें के० सी० एस० ई० (नाइट कमाण्डर आव् द स्टार आफ इन्डिया) की उपाधि से सम्मानित किया गया।[1]

क्योंकि राज्य के क्षेत्रों से सुदूरवर्ती दक्षिण में तीन गांवों–करनपुरा, पदमपुरा तथा केसरीसिंहपुरा के व्यवस्थापन में दिक्कत होती थी महाराजा ने सन् १६०५ में उन्हे भारत सरकार को सौंप दिया तथा बदले में ग्राम बावलवास व ग्राम रत्ताखेड़ा एवं पच्चीस हजार रुपये की नकद धनराशि प्राप्त करली।

नवम्बर १६०५ में प्रिंस आव् वेल्स (उत्तरकालीन सम्राट जार्ज पन्चम) तथा प्रिन्सेज मैरी बीकानेर आये तथा विदाई के समय यह अभिव्यक्त करते हुए महाराजा को लिखा कि उनके तथा महाराजा के बीच मित्रत्व अत्यधिक दृढ हो गया था।[2]

तारीख १ जनवरी सन् १६०७ को महाराजा को जी. सी. आई. ई. (ग्रांड कमान्डर आव् द इंडियन एम्पायर) की उपाधि से सम्मानित किया गया तथा सन् १६०६ में उन्हे आनरेरी लेफ्टिनेंट कर्नल (सेकिन्ड लान्सर्स) नियत किया गया। सम्राट जार्ज पंचम के सिंहासनारोहण के शीघ्र पश्चात जून सन् १६१० में सम्राट की वर्षगांठ के अवसर पर महाराजा को आनरेरी कर्नल तथा सम्राट का ए. डी. सी. नियुक्त किया गया। सन् १६११ में इंगलैण्ड में सम्राट जार्ज पन्चम के राज्याभिषेकोत्सव में सम्मिलित होने के लिये महाराजा को निमंत्रित किया गया। ६ मई सन् १६१० को महाराज कुमार सादूल सिंह सहित महाराजा ने इंगलैड के लिये प्रस्थान किया। इस यात्रा के समय केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी ने महाराजा को एल. एल. डी.

---

१. परिशिष्ट २० में महाराजा के पदकों तथा उपाधियों की सम्पूर्ण सूची दी गई है।

२. जार्ज प्रिंस–पत्र ता० २७–११–१६०५।

..... "मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि जो शुभ स्मृतियां मैं तथा प्रिन्सेस भारतवर्ष से साथ ले जायेंगे, उनमें हमारे बीकानेर के अत्यन्त रमणीय निवास काल की तथा आपके और हमारे बीच अत्यधिक सुदृढ़ हो जाने वाले मैत्री भाव की स्मृतियों से अधिक प्रिय हमें कुछ नहीं होगा।"

(डाक्टर आफ ला) की डिग्री से सम्मानित किया। लार्ड हार्डिंग द्वारा दरबार कमेटी का सदस्य नियत किये जाने पर सन् १६११ में दिल्ली में होने वाले राज्याभिषेक दरबार के प्रबन्ध कार्यों में महाराजा को समीपता से सम्मिलित किया गया। तारीख ७ दिसम्बर सन् १६११ को सम्राट और सम्राज्ञी के स्वागत में महाराजा सम्मिलित हुये तथा राज दम्पति के प्रतिनिधि से भी मिले। तारीख १२ दिसम्बर सन् १६११ को आयोजित इस दरबार में सम्राट ने महाराजा को जी. सी. एस. आई. (ग्रांड कमान्डर आव् द स्टार आव इन्डिया) के सम्मान से विभूषित किया। इस अवसर पर महाराजकुमार सादूलसिंह ने सम्राट के पेज (बाल भृत्य) के रूप में कार्य किया।

सन् १६१३ में नमक समझौते को जो सन् १८७६ में किया गया था रद्द कर दिया गया तथा एक नया समझौता किया गया जिसे २४ जुलाई सन् १६१३ को पुष्ट किया गया।[1]

---

१. एचिसन, उपर्युक्त रचना में, भाग २, पृ० ३०१-३०२।

अध्याय ८

आंग्ल-भारतीय तथा साम्राजिक राजनीति में महाराजा गंगासिंह का भाग

जैसा कि गत परिच्छेद में वर्णित किया जा चुका है, महाराजा गंगासिंह के शासन का आरम्भिक तथा उनकी अवयस्कता का काल एक कठिन परीक्षा का समय था क्योंकि उन्हें सर्वोच्च सत्ता के बढ़ते हुये हस्तक्षेप तथा राज्य के भीतर अराजकता व विधिहीनता का सामना करना पड़ रहा था। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक परिस्थितियां बदल चुकी थी और उन्होंने राज्य के प्रशासन के आधुनिक-करण की अपनी महान योजना का सूत्रपात कर दिया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में चीन की लड़ाई तथा सोमालीलैन्ड सैनिक कार्यवाही के समय एक योद्धा के रूप में अपने उत्कर्ष को वह सिद्ध कर चुके थे। महाराजा के प्रति आंग्ल-शासन ने अधिक मैत्रीपूर्ण भावना दिखानी आरम्भ करदी तथा उनके व केन्द्रीय अधिकारी-वर्ग के बीच स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गये। महाराजा ने, जो अब पहले से अधिक अनुभवी हो चुके थे, यद्यपि इस समय उनकी अवस्था तीस वर्ष से कुछ ही अधिक थी, बाह्य हस्तक्षेप के बिना प्रमुख शासकीय व प्रशासकीय सुधारों का सूत्रपात किया। उन्होंने एक प्रथम श्रेणी के योद्धा तथा राजनीतिज्ञ के रूप में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की और अपने आपको भारतवर्ष का एक महान देशभक्त तथा आंग्ल-शासन का एक निष्ठावान मित्र प्रमाणित कर दिया। उनके शासनकाल का उत्तर कालीन भाग बीकानेर के इतिहास में शायद अधिकतम महत्वपूर्ण युग का निर्माण करता है जबकि उसके शासक का राष्ट्रीय एवं साम्राजिक राजनीति में प्रमुख भाग लेने के लिये आह्वान किया जाने लगा। गंगासिंह के कारण ही बीकानेर इतना कीर्तिमान हुआ।

प्रथम महायुद्ध के आरम्भ होने पर, महाराजा प्रथम[1] राज्यकर्ता भारतीय नरेश थे, जिन्होंने ता० ३ अगस्त सन् १६१४ को सम्राट[2] तथा भारत के वाइसराय[3] को तार भेजकर, साम्राज्य के क्षेम, सम्मान तथा संरक्षण के लिये अपनी व्यक्तिगत एवं बीकानेर राज्य की बहादुर सेना की सेवाओं तथा शक्ति को तुरन्त सम्राट के समादेश में प्रस्तुत किया। सम्राट ने अपने ता० ४ अगस्त सन् १६१४ के तार में इस भेंट के लिये महाराजा को धन्यवाद दिया तथा लिखा कि उस समय तक सैनिक कारवाइ के विषय में कोई निर्णय नहीं लिया गया था किन्तु महाराजा की सहायता की भेंट को ध्यान में रखा जायगा।[4] युद्ध को जीतने तथा युद्ध-प्रयत्नों में सहायता के लिये अपनी व्यक्गित एवं अपने राज्य की सेना की सेवाओं की उदार भेंट के लिये, सम्राट के नाम से दीप्त अभिव्यंजना शैली में महाराजा को धन्यवाद देते हुये वाइसराय ने भी ता० ४ अगस्त सन् १६१४ को तार दिया।[5] वाइसराय ने लिखा कि उसे विदित है कि वह महाराजा तथा उनकी बहादुर सेना पर दृढ़ विश्वास रख सकता है। ता० ६ अगस्त सन् १६१४ को भारत के महा सेनापति ने महाराजा को यह सूचना देते हुये तार दिया[6] कि उनकी स्वतोभावी एवं अत्यन्त स्वागतनीय भेंट को कभी विस्मृत नहीं किया जायगा तथा यदि कोई ऐसा अवसर आया तो अवश्यमेव वह महाराजा तथा उनकी बहादुर सेना की सहायता का स्वागत करेंगे।

अपने बीस वर्ष के दीर्घकालीन इतिहास के कारण यह रेजिमेन्ट विख्यात हो गया था अतः युद्ध में प्रमुख भाग लेने के लिये गंगा रिसाला भवितव्य था।[7] सन् १६१४ के अक्टूबर में वह स्वेज पहुँचा। वहां गंगा

---

१. वाइसराय का खरीता जैसा कि "ए ब्रीफ स्टेटमैन्ट आव बीकानेरस् वार सर-विसेज इन द ग्रेट वार" (महायुद्ध में बीकानेर की युद्धसम्बन्धी सेवाओं का संक्षिप्त विवरण) में संदर्भित किया गया है, पृ० १८।

२. परिशिष्ट १६।

३. परिशिष्ट १७।

४. परिशिष्ट १८।

५. परिशिष्ट १६।

६. ए ब्रीफ स्टेटमैन्ट आव बीकानेरस् वार सर्विसेज इन द ग्रेट वार (महायुद्ध में बीकानेर की युद्ध-सम्बन्धी सेवाओं का संक्षिप्त विवरण) पृ० १८।

७. इस रिसाले को महाराजा गंगासिंह की अवयस्कता के समय उत्थापित किया

रिसाले की अत्यधिक मांग थी क्योंकि स्वेज के आस पास का भू-प्रदेश केमलकोर (ऊंट सेना-निकाय) के उपयोग के लिये विशेषतः उपयुक्त था। मिश्र में एक मात्र केमलकोर होने के कारण, युद्ध के साढ़े चार वर्षों की अवधि तक स्वेज के पूरब में रक्षा, भ्रमण एवं जासूसी देखभाल के कार्य इस विख्यात रेजिमेन्ट पर निर्भर रहे। ता० २० नवम्बर, १९१४ को प्रथम बार गंगा रिसाले की बिर-अल-नस में शत्रु से मुठभेड़ हुई। मिश्र के जनरल आफ़िसर कमाण्डिंग जनरल सर जान मेक्सवैल ने जनवरी सन् १९१५ में अपने विचारों को सुस्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुये महाराजा को लिखा कि बीकानेर का केमलकोर (ऊंट सेना-निकाय) अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ तथा उसके बिना वह इतनी अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता था।

सन् १९१५ के जनवरी और फरवरी महीनों में जमाल पाशा की अध्यक्षता में तुर्की सेना के अग्रसर होने पर बीकानेर गंगा रिसाले की शत्रु से निरंतर मुठभेड़ होती रही तथा फरवरी के आरम्भ में नहर पर अन्तिम आक्रमण के समय वे महाराजा के निजी समादेशन में फैरो चौकी की खाइयों में थे।[1] फ्रांस से भारत लौटते हुये मार्ग में महाराजा वहां पहुँचे थे। कातिब-अल-खेल के समीप शत्रु के साथ युद्ध में, जिसमें महाराजा स्वयं सेना का समादेशन

गया था उस समय राज्य कार्य की देखभाल रीजेन्सी कौन्सिल द्वारा की जाती थी। लार्ड एल्गिन अपने ता० २३-५-१८९४ के खरीते द्वारा महाराजा की इन शब्दों में अभ्यर्थना करता है—

"एक अत्यन्त मूल्यवान केमल कोर (ऊंट सेना) के अधिपति होने पर महाराजा अब गर्व कर सकते हैं। अपने प्रकार को भारतवर्ष में यह केवल मात्र एक ही केमल कोर (ऊंट सेना) है।"

गंगा रिसाला अपने वर्तमान सुव्यवस्थित एवं आधुनिक रूप में, महाराजा गंगासिंह के शासन के आरम्भिक काल में विकसित हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बीकानेर, ऊंटों की धरती होने के कारण तथा उनके प्रविस्तारण के लिये यहां के भू-प्रदेश के अत्यधिक उपयुक्त होने के कारण शताब्दियों पूर्व से यहां केमल कोर (ऊंट सेना) का युद्ध कार्यों में उपयोग होता रहा है।

१. ए शोर्ट हिस्ट्री आव द सर्विसेज रेन्डर्ड बाइ द इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स ड्यूरिंग द ग्रेट वार, १९१४-१८ (महायुद्ध १९१४-१८ में इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स द्वारा की गई सेवाओं का संक्षिप्त इतिहास)।

कर रहे थे। उन्होंने उन्नीस गोलियां चलाई जो सब खड़े होकर चलाई गई थी। जब तुर्क परास्त हो गये तो गंगा रिसाले ने महाराजा के समादेश में शत्रु का पीछा किया। मिश्र में आंग्ल महासेनापति सर जान मैक्सवैल के प्रेषणों में महाराजा द्वारा की हुई सेवाओं की भी प्रशंसा की गई थी। गंगा रिसाले के अत्युत्तम कार्य तथा मूल्यवान सेवाओं का लार्ड हार्डिंग[१] एवं लार्ड चेम्सफोर्ड[२] द्वारा उनकी शासकीय सूचनाओं में गुणगान किया गया था। इन प्रशंसाओं की भारत के राज्य-सचिव तथा मिश्र स्थित आंग्ल महा सेनापति की सूचनाओं द्वारा पुष्टि की ई। ता० १-१०-१९१६ तथा ता० २८-६-१९१७ के प्रेषणों में भी गंगा रिसाले की सेवाओं का उल्लेख किया गया था।[3]

सम्राट ने अपने ४ मार्च १९१८ के तार[४] द्वारा बीकानेर के राजवंश की आंग्ल सम्राट के प्रति उनकी निष्ठा के लिये सराहना की। युद्ध समाप्ति के हस्ताक्षरण के अवसर पर, तारीख १८ नवम्बर सन् १९१८ के एक अन्य समुद्री तार[५] में सम्राट ने बीकानेर की युद्ध सम्बन्धी सेवाओं तथा युद्ध के ठीक आरम्भ से भारतीय नरेशों एवं प्रजा ने जिस भावना तथा साम्राज्य के शेष भागों के साथ उद्देश्य के स्थिर एकत्व का प्रदर्शन किया था, उसके प्रति पुनः अपनी प्रशंसा को अभिव्यक्त किया। इसके अतिरिक्त वाइसराय ने महाराजा को सूचित किया कि बीकानेरी सेना ने मिश्र में अधिकतम् वीरता से युद्ध किया जिससे बीकानेर की सेना की प्रतिष्ठा और अधिक बढी है। मिश्र तथा पैलेस्टाइन में बड़ी बहादुरी से लड़ने के लिये तत्कालीन भारत के राज्य-सचिव आस्टिन चैम्बरलेन ने भी अपनी प्रशंसा के दीप्त उपहार प्रस्तुत करके[६] उनकी महिमा में चार चाँद लगाये।

इन युद्ध सेवाओं के बदले में महाराजा को सन् १९१८ में

---

१. लॉर्ड हार्डिंग का खरीता ता० १४-३-१९१६।

२. लार्ड चेम्सफोर्ड का खरीता ता० ११-१२-१९१८।

३. ए ब्रीफ स्टेटमैन्ट आव बीकानेरस् सर्विसेज इन द ग्रेट वार १९१४-१८ (महायुद्ध १९१४-१८ में बीकानेर की सेवाओं का संक्षिप्त विवरण), पृ० ५।

४. वही।

५. वही, पृ० ४।

६. वही, पृ० ६।

के० सी० बी० (नाइट कमान्डर आव् द आर्डर आव् द बाथ) की उपाधि से सम्मानित किया गया[1] तथा उनकी व्यक्तिगत सलामी को बढ़ाकर सत्रह तोपों से उन्नीस तोपों की कर दिया गया। उनको 'ग्रांड कार्डन आव द नाइल' तथा 'ब्रिटिश वार एण्ड विक्ट्री' के पदक भी मिले। सन् १६१६ में उन्हे जी० सी० वी० ओ० (ग्रांड कमांडर आव द विक्टोरियन आर्डर) बनाया गया इसके अतिरिक्त दो तुर्की राइफलें, दो वायुयान[2], सात मशीनगनें, इक्कानवे राइफलें तथा कुछ तलवारें व पिस्तौल भी, जिन सब को शत्रु से छीना गया था आंग्ल शासन द्वारा बीकानेर राज्य को भेंट की गई।

इसी बीच इन्डियन नेशनल कांग्रेस (भारतीय राष्ट्रीय महासभा) के कार्यक्रम में एक परिवर्तन हो गया था। सन् १६१५ तक कांग्रेस, साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य पद्धति पर संवैधानिक उपायों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने के पक्ष में थी। किन्तु सन् १६१४ में श्रीमती बिसेंट के कांग्रेस में प्रवेश तथा गोखले व फिरोजशाह मेहता के निधन के साथ इस लक्ष्य को बदल दिया गया तथा होम रूल आन्दोलन आरम्भ कर दिया गया। मुस्लिमलीग भी इस आन्दोलन में सहमत हो गई। सन १६१६ में किये गये 'मारले मिन्टो' सुधार, सर एस० पी० सिन्हा तथा कृष्णास्वामी जैसे भारतीय नेताओं का वाइसराय की एग्जीक्यूटिव कौन्सिल (कार्यकारिणी परिषद) में सम्मिलित होना, बंगाल का पुनरेकन, आदि यह सब कुछ जो कि भारत में राज-नीतिक आन्दोलन को शान्त तथा अनुत्तेजित करने की ओर प्रवृत हो रहा था अब इनका अर्थ आन्दोलन के प्रतिसमर्थन के रूप में लगाया जाने लगा था।[3] मित्र राष्ट्रों ने यह भी घोषित किया था कि युद्ध स्वाधी-नता की सुरक्षा करने के लिये तथा इस संसार को लोकतन्त्र के लिये क्षेम बनाने के लिये लड़ा गया था। आंग्ल-शासन भारतीयों को यह प्रतीत कराने के लिये आतुर था, कि वह उन्हे साम्राज्य से सम्बन्ध रखने वाले विषयों में सहकारी बनाने का सदा अभिलाषी है। सितम्बर सन् १६१५ में उसने भारत की इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौन्सिल (साम्राजिक विधान परिषद्) में सर मोहम्मद शफी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा सन् १६१६ में निर्णय किया कि अधिराज्य तथा उपनिवेशों पर शासन करने

१. परिशिष्ट २०।
२. बीकानेर के किले में करनी म्यूजियम में अब प्रदर्शित है।
३. सर जॉन कमिंग, पोलिटिकल इन्डिया (राजनीतिक भारत) १८३२-१९३२, पृ० ५२-६०।

वाले राज्य के बीच इस प्रकार का घनिष्ठ साहचर्य अपेक्षित है। सन् १९१७ में लन्दन में एक साम्राजिक सम्मेलन बुलाया गया तथा इस संमेलन में सम्मिलित होने के लिये जिन तीन भारतीय प्रतिनिधियों को मनोनीत किया गया उनमें बीकानेर के महाराजा भी थे।[1]

महाराजा एक देशभक्ति पूर्ण भारतीय के नाते साम्राज्य के अन्तर्गत भारत के लिये एक उच्चतर प्रस्थिति की मांग के साथ सहानुभूति रखते थे तथा अपनी स्वतन्त्रता एवं मुक्ति के लिये आंग्ल भारत की जनता की व्यग्रता के मर्म को वह भलीभांति समझते थे यद्यपि उस समय जनता में कुछ इस प्रकार की भ्रांत धारणा फैली हुई थी कि राजालोग उनकी महत्वाकांक्षाओं के प्रति संवेदनाशील नहीं थे।

अतः जैसे ही साम्राजिक सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले भारतीय प्रतिनिधियों में उन्हें मनोनीत किया गया, इस भ्रांत धारणा को मिटाने के लिये उन्होंने प्रथम अवसर को काम में लिया। यद्यपि महाराजा को राजन्य-वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के लिये चुना गया था किन्तु उन्होंने पूर्णतया अनुभव किया कि वह बीकानेर के शासक या नरेशों के प्रतिनिधि के रूप में नहीं वरन् अपने मूलराज्य (भारत) के एक प्रवक्ता के रूप में लन्दन जा रहे थे। इग्लैन्ड के लिये उनके प्रस्थान से पूर्व नरेशों द्वारा उनके सम्मान में बम्बई में दिये गये भोज में ता० ७ फरवरी १९१७ को महाराजा द्वारा दिये गये भाषण में उनकी इस अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण होता है जब उन्होंने कहा कि चाहे आप लोग आंग्ल-भारत के राज्यक्षेत्रों से आये हैं या भारतीय राज्यों के शासन क्षेत्रों से, आप सब लोग भारतीय हैं, जो अपने सम्राट के प्रति निष्ठा तथा अनुरक्ति में, अपने मूल-राज्य के प्रति अनुराग में तथा भारत के समस्त धर्ममतों एवं सम्प्रदायों के अपने भ्रातृगण के प्रति अपनी अगाध एवं अकृत्रिम उत्सुकता में पूर्णरूपेण एकीकृत हैं। इसी भाषण में उन्होंने अपना यह दृढ़ विश्वास भी प्रकट किया कि युद्ध के समाप्त होने पर भारत के सम्बन्ध में दृष्टिकोण को प्रत्येक उचित व परिपक्व राजनीतिक सुधार के अनुकूल और भी अधिक परिवर्तित कर दिया जायगा तथा ब्रिटेन के मार्ग प्रदर्शन एवं संरक्षण में अपने भाग्य का निर्माण करने की भारत की न्यायपूर्ण अभ्यर्थनाओं एवं

---

१. अन्य दो प्रतिनिधि सर जेम्स मेस्टन तथा सर एस० पी सिन्हा थे।

महत्वाकांक्षाओं को भुलाया नहीं जायगा।[1] महाराजा हृदय से सर्वदा राष्ट्रवादी थे किन्तु इस अवसर पर उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया। ऐसा प्रथम बार हुआ था कि एक बड़े राज्य के शासक ने अपने विचारों को स्पष्ट रूप से इस प्रकार के आयोजन में व्यक्त किया हो क्योंकि जब महाराजा गंगासिंह ने अपनी राष्ट्रवादिता-पूर्ण एवं देशभक्ति-पूर्ण भावनाओं को प्रकट किया उस समय महाभोज में अनेक राज्यकर्ता नरेश उपस्थित थे तथा एक आंग्ल गवर्नर उसकी अध्यक्षता कर रहा था। इससे आंग्ल भारत के राजनीतिज्ञों को बड़ा विस्मय हुआ तथा उन सबने इसका अभिनन्दन किया कि इस अधिघोषणा ने, क्योंकि यह महामहिम सम्राट के शासन द्वारा मनोनीत राज्यकर्ता नरेशों के प्रतिनिधि द्वारा की गई है, भारतीय राजनीति आन्दोलन के समस्त स्वरूप को बदल दिया है। जैसाकि उस समय के समाचार पत्रों से प्रतीत होता है इस युगारम्भ करने वाले व्याख्यान की सार्वजनिक भारतीय प्रतिक्रिया यथा निम्न लिखित हुई। भारतीय प्रतिनिधियों में महाराजा के चुनाव का अभिवादन किया गया।[2] तथा इस तथ्य की प्रशंसा की गई कि राजालोग भी अपनी देशभक्ति के कारण साम्राज्य की समस्याओं की विवेचना साहसिकता एवं स्पष्ट भाषिता के साथ सार्वजनिक रूप से कर सकते हैं।[3] महाराजा का भाषण भारतीय एकता एवं राष्ट्रीयता की भावना के विकास में एक महत्वपूर्ण अवस्था का सूचक था। उन्होंने उस पारस्परिक अविश्वास के आवरण को नष्ट कर दिया जो अब तक आंग्ल-भारत तथा देशी राज्यों के बीच सहभावना के स्वतन्त्र प्रवाह को रोक रहा था। उन्होंने तत्कालीन भारत के जीवन पर प्रकाश डाला, राजा एवं कृषक, शिक्षित एवं अशिक्षित को सहयोगार्थ प्रेरित किया तथा एक नवीन चेतना प्रदर्शित की जिसने आंग्ल-सम्राट के अधीन भारत को आंग्ल साम्राज्य की एक शोभा बना देने वाले एक परिपूर्ण जीवन के लिये उत्कण्ठित भारत के सदस्य की गहराइयों को आन्दोलित कर दिया।[4]

महाराजा लार्ड सिन्हा सहित साम्राजिक संमेलन तथा साम्राजिक

---

१. महाराजा गंगासिंह के इंगलैन्ड के लिये विदा होने से पूर्व, ताजमहल होटल, बम्बई में भारत के राज्यकर्त्ता नरेशों द्वारा उनके सम्मान में दिये गये महाभोज में उनके द्वारा ता० ७-२-१६१७ को दिया गया भाषण।
२. द मद्रास टाइम्स, १-५-१६१७।
३. अमृत बाजार पत्रिका, १५-५-१६१७।
४. इन्डियन सोशल रिफोर्मर, ११-२-१६१७।

युद्ध मंत्रि-मण्डल दोनों में उपस्थित हुये तथा यद्यपि पारिभाषिक रूप से वे राज्य-सचिव के मन्त्रणाकार एवं सहायक के रूप में इंग्लैण्ड गये थे उन्होने किसी अत्युपचारी विभेद का पालन नहीं किया। किसी अन्य सदस्य के समान महाराजा को संविमर्श में भाग लेने का ठीक वैसा ही सुअवसर प्राप्त था। श्री चेंबरलेन अबाधरूप से उनसे परामर्श लेते रहे तथा उन्हे स्पष्ट रूपेण एक सहकारी एवं सह-प्रबन्धक का स्थान दिया।[1]

यह साम्राजिक युद्ध मंत्रिमण्डल विजय के उपायों एवं विजय-विषयक सन्धि के निबन्धनों पर विचार करने के एक मात्र उद्देश्य से समवेत हुआ था। यद्यपि अतीतकाल में साम्राजिक संमेलन में आन्तरिक विषयों पर विचार करने का सामान्य प्रचलन था, और सर्व सम्मति से यह निश्चय किया गया कि जिस परिस्थिति में वह सम्मिलित हुये हैं उसकी गम्भीरता को देखते हुये संमेलन अपने आप को युद्ध से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर विचार करने में निरत रखेगा तथा अन्य मामलों को शान्ति स्थापित हो जाने तक स्थगित किया जा सकता है। फिर भी महाराजा गंगासिंह ने प्रत्येक उस सार्वजनिक समारोह में, जिसमें उन्हें निमंत्रित किया जाता था या सार्वजनिक जीवन में महत्व रखने वाले व्यक्तियों के साथ अपने वार्तालाप में, साम्राज्य के अपने सह-नागरिकों को भारत की आकांक्षाओं एवं आशाओं से परिचित कराने के किसी अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया। इसी प्रकार के एक अवसर[2] पर महाराजा ने भारत को प्रथम बार साम्राजिक युद्ध संमेलन तथा युद्ध मंत्रि मण्डल की विचारणा में भाग लेने के लिये आमंत्रित किये जाने पर अगाध संतोष प्रकट करते हुये भारत के पक्ष का पृष्ठपोषण किया और कहा कि भारत भी ग्रेट ब्रिटेन के मार्ग दर्शन में तथा उसकी सहायता से संवैधानिक सिद्धान्तों पर राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से प्रगति करने की तथा अन्ततोगत्वा स्वतंत्रता एवं आत्मशासन प्राप्त करने की उच्चाकांक्षा रखता है।

उन्होने दृढतापूर्वक कहा कि जहां तक भारत के देशी राज्यों का सम्बन्ध है, कुछ निवेशों में किये जाने वाले विश्वास के विपरीत,

---

१. द हिन्दुस्तान रिव्यू, ११ अगस्त, १६१७।

२. एम्पायर पार्लियामैन्टरी एसोसिएशन (युनाइटेड किंगडम ब्रांच) द्वारा हाउस आव कॉमन्स, हारकोर्ट रूम, में ता० २४-४-१६१७ को भारतीय प्रतिनिधियों को दिया गया मध्याह्न-भोज।

नरेश वास्तव मे इस प्रकार की प्रगति पर हर्षानुभव करेंगे तथा किसी भी राजनैतिक उन्नति पर कदापि आक्रोश नहीं करेंगे तथा तत्कालीन विद्यमान परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुये, जिनको बहाना बनाकर बहुधा भारतीय महत्वाकांक्षाओं की उपेक्षा की जाती थी, उन्होने निर्देश किया कि वे समस्याएँ ऐसी नहीं थी जिनका सामाधान करना असम्भव हो। उन्होंने बताया कि जहाँ तक जातियों की विभिन्नता का प्रश्न है, इससे कोई बाधा उपस्थित नहीं होनी चाहिये और इसके उदाहरण के रूप में उन्होने कनाडा को उद्धृत किया जहां पर लगभग इतनी ही विभिन्न जातियां वास करती हैं तथा इंग्लैण्ड तक में भी तीन विविध जातियां मौजूद हैं। उन्होंने उनको स्मरण कराया कि भारत केवल एक देश ही नहीं अपितु विशाल द्वीप है, एक राज्य ही नहीं अपितु साम्राज्य के अन्दर एक साम्राज्य है। भारत में व्याप्त अशान्ति का वर्णन करते हुये उन्होंने कहा कि यह अशान्ति दो प्रकार की है। एक तो वह जिसे राजसत्ताद्रोही तत्वों द्वारा प्रचारित किये जाने का प्रयास किया जा रहा है किन्तु जिसकी अत्यन्त साधारण प्रतिक्रिया हो रही है तथा जिसे सुगमता से उन्मूलित किया जा सकता है और दूसरी वह जो "न्याय संगत" अशान्ति है जो भारत में मन्दगति राजनीतिक प्रगति से उत्पन्न हुई है। महाराजा ने कहा कि इस 'न्याय संगत' अशान्ति को तुष्ट किया जा सकता है यदि इस समस्या के साथ सहानुभूति, संकल्प, उदारता एवं विशाल हृदयता से बर्ताव किया जाय तथा भारतीय जनता को पर्याप्त मत प्रकाशनाधिकार व सत्ताधिकार दे दिये जाये।[1]

केवल इसी एक अवसर पर ही नहीं अपितु १० मई सन् १९१७ को 'टाइम्स' को एक भेंट में उन्होने पुनः जोर देकर कहा कि भारत जैसा विशाल देश एक न एक दिन स्वतंत्र होकर रहेगा अतः समानता के आधार पर दोनों देशों में स्वेच्छाकृत मेल बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा तथा इन सुधारों का सूत्रपात जितना ही अविलम्ब किया जायगा उतना ही श्रेष्ठ रहेगा। इसी अवसर पर उन्होने इसके अतिरिक्त यह भी निर्देश किया कि आंग्ल शासन द्वारा अत्यधिक सावधानी बर्तना उनके लिये उतनी ही महान भूल होगी जितनी कि ठीक न सोचे गये व अदूर-दर्शी उग्र प्रस्तावों को स्वीकार करना। आंग्ल भारत में किसी प्रकार की राजनीतिक प्रगति से राजा लोग अप्रसन्न होंगे, आलोचकों के हृदय से राजाओं

---

१. महाराजा गंगासिंह का वक्तव्य ता० २४ अप्रेल सन् १९१७, परिशिष्ट २१।

के प्रति इस प्रकार की प्रत्येक भ्रांत धारणा एवं निराधार संदेह को दूर करने के अपने प्रयास को भी उन्होंने दुहराया। उन्होने दृढता पूर्वक कहा कि ठीक इसके विपरीत भारत को आंग्ल ध्वजा के नीचे सवैधानिक प्रणाली से राजनीतिक प्रगति करते देखकर नरेश लोग अत्यन्त आनन्दित होंगे।[१] जो लोग महाराजा के सम्पर्क में आये उन पर उनकी तीक्ष्णबुद्धि एवं राजनीतिज्ञता ने गहरा प्रभाव डाला तथा साम्राजिक युद्ध मंत्रिमंडल की पहली बैठक में इंग्लैन्ड के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री लायड जार्ज ने उनके कार्यो की अत्यन्त विभायी शब्दों में प्रशंसा करते हुये कहा —

> " 'बीकानेर' जैसा कि सुहृदयता एवं स्नेह से प्रायः उन्हे सम्बोधित किया जाता था – वे भारतीय नरेश – अपने महान देश के पुरुषत्व के भव्य प्रतिरूप हैं। हमें शीघ्र ही यह विदित हो गया कि वह पूरब के बुद्धिमान श्रेष्ठ पुरुषों में से एक है। विशेषकर भारत से सम्बन्ध रखने वाले समस्त प्रश्नों पर उनके परामर्श पर हमारी आस्था अधिकाधिक होती जा रही है।"[२]

साम्राजिक युद्ध परिषद एवं मंत्रिमंडल में प्रतिनिधि के रूप में महाराजा के चुनाव के सम्बन्ध में सर रोपर लेथब्रिज ने कहा कि आंग्ल प्रशासन एवं आंग्ल भारत के उस शिक्षित वर्ग का जो भारतीय उपमहाद्वीप में बसने वाले करोड़ों मूक इन्सानों का मान्य वक्ता बनता जा रहा है तथा नरेशों का जो शेष एक तिहाई भारत के वास्तविक शासक हैं, महाराजा यथेष्ठ रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं। उसके विचारानुसार उस समय भारत में यह व्यापक रुप से विश्वास किया जाता था कि महाराजा से अधिक उत्तम व योग्य भारतीयों का प्रतिनिधि नहीं ढूंढा जा सकता था।[३]

विभिन्न सम्मेलनों में अंग्रेजी एवं भारतीय जनता को एक दूसरे के समीप लाने के तथा भारतीय महत्वाकांक्षाओं के प्रति उनके हृदय में समझ व सहानुभूति उत्पन्न करने के महाराजा द्वारा जो प्रयास किये गये थे उनका भारतीय समाचार पत्रों ने भी यथोचित गुणगान किया। यद्यपि भारत के साथ इंग्लैन्ड के सम्बन्धों पर महाराजा को गर्व था किन्तु इसके साथ

---

१. इन्डियाज इम्पीरियल पार्टनरशिप, पृ० ३५-३८, परिशिष्ट- २२।

२. पन्नीकर, हिज हाईनैस द् महाराजा आफ बीकानेर, ए बायोग्राफी, पृ० १७७।

३. एशियाटिक रिव्यू ता० १०-५-१९१७, पृ० ४६३-६८, 'साम्राजिक युद्ध सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधित्व' शीर्षक का सर रोपर लेथब्रिज का एक लेख।

साथ भारत के सम्मान तथा आंग्ल साम्राज्य में भारत के अधिकार युक्त स्थान का भी उन्हे कम गर्व नहीं था। भारत को तलवार की शक्ति से आधीन किया हुआ था – कुछ दकियानूसी आंग्ल–भारतीय पदाधिकारियों के इस प्रियवाद की विवेक शून्यता एवं उपहासस्पदता को महाराजा ने ज्वलंत शब्दों में व्यक्त किया। उन्होंने उस अन्धविश्वास का भंडा फोड़ किया जिसका आंग्ल भारतीय सम्पादकों तथा लार्ड सिडनहम जैसे प्रशासकों द्वारा अत्यन्त परिश्रमशीलता के साथ ढिंढोरा पीटा जा रहा था। साम्राजिक सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में उनके चुनाव के समय कुछ लोगों के हृदय में जो अवसादकर आशंकायें थीं उनको उन्होंने मिथ्या सिद्ध कर दिया। उन्होंने अपने देश के सर्वश्रेष्ठ हितों के प्रति अपने पूर्ण ज्ञान एवं सजगता का परिचय दिया।[1] उन्होंने उन सिद्धान्तों की रूपरेखा निर्धारित की जिनके आधार पर आगामी कई वर्षों तक आंग्ल-भारत में प्रगति करने की सम्भावना थी।[2] उनके कथन न केवल देशभक्ति एवं पूर्ण समवेदना की भावनाओं से ओत प्रोत होते थे अपितु भारतीयों एवं अंग्रेजों के बीच सहकारिता तथा स्नेह का सन्देश भी उनमें भरा हुआ होता था। उनके व्यक्तिगत प्रभाव, समयोचित एवं सविवेक भाषणों तथा शासकीय पत्रों के कारण अभिनव कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा भारत में आंग्ल नीति के उद्देश्यों की अधिकृत घोषणा करने की मांग की।[3]

भारत के तत्कालीन राज्य-सचिव श्री आस्टिन चेम्बरलेन, महाराजा गंगासिंह की राजनीतिज्ञता से इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने उनसे भारत की समस्त महत्वपूर्ण समस्याओं पर ब्योरेवार विवरण लिखने का अनुरोध किया। क्योंकि साम्राज्य के भीतर भारत के लिये श्रेष्टतर स्थान की सम्प्राप्ति के लिये यह एक अधिकतम् महत्त्वपूर्ण प्रश्न था और इंग्लैन्ड में उनके निवास काल में महाराजा को इस विषय में लिखने का अवकाश प्राप्त नहीं हो सका था, इंग्लैन्ड से भारत लौटते समय रोम में उन्होंने अपने विश्राम को त्याग कर अविलम्ब इस विषय पर लिखकर ता० १५ मई सन् १९१७ को श्री चेम्बरलेन को भेज दिया। उन्होंने लिखा–

> "...तथापि मैं आशा करता हूँ कि कुछ सम्भाव्य घटनाओं के परिणाम स्वरूप भारत में जो गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न

---

१. युनाइटेड इन्डिया एण्ड नेटिव स्टेटस्, मद्रास, ता० ७–६–१९१७।
२. इन्डियन प्रिंसेज ता० १४–६–१९१७।
३. द इन्डियन रिव्यू ता० १७–८–१९१७।

हो सकती है उसके बारे में सत्य निष्ठा से जो मेरे निश्चित विचार हैं उनको आपके समक्ष प्रस्तुत करने का इससे मुझे अधिकार प्राप्त हो गया है। मुझे विश्वास है, तथा समस्त भारत को आशा है, कि आप इन समस्याओं पर एकाग्रता एवं कृपालुता से विचार करेंगे किन्तु इसके साथ साथ मैं पुनः आपसे साग्रह अनुरोध करने की अनुमति चाहूँगा कि साम्राज्य व भारत के हितों के लिये आप इस विषय में कोई ऐसी कारवाइ करें जो वास्तव में एक मुक्त-हस्त, संवेदनिक एवं उदारमना परिमाण में हो तथा इस कारवाइ को करने का ढंग ऐसा होना चाहिये जो पूरब के लोगों की कल्पनाओं एवं भावनाओं को विजित कर ले और जो भारत तथा इंग्लैंड में एक अधिकतम घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर दे।"[१]

भारत में स्वराज्य के प्रश्न पर महाराजा ने लिखा :—

"इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भारत में आंग्ल शासन का यह लक्ष्य है अथवा नहीं है। मैं निवेदन करूंगा कि इसका केवल मात्र एक ही उत्तर हो सकता है और वह है दृढ़ता पूर्वक स्वीकारात्मक 'हां'। भारत में आंग्ल शासन का यदि उचित समय आने पर साम्राज्य के भीतर भारत को स्वराज्य प्रदान करने का लक्ष्य नहीं है तो फिर यह अनुमान करना असम्भव है कि उनका लक्ष्य क्या है।"[२]

"यह कहना अनावश्यक होगा कि किन्हीं भी शिक्षित लोगों द्वारा स्वराज्य की अभिलाषा करना मानवीय प्रकृति का एक स्वाभाविक एवं मूल तथ्य है तथा पाश्चात्य आदर्शों के अनुसार स्वराज्य का अर्थ है जनता द्वारा राज्य अर्थात् जनतन्त्र जो स्वैरतन्त्र या अधिकारी तन्त्र के विपरीत है

---

१. श्री ऑस्टिन चेम्बरलेन को महाराजा गंगासिंह के पत्र ता० १५-५-१९१७ के साथ रोम से एक नोट भेजा गया था। यह नोट बहुत विख्यात हुआ तथा 'रोम नोट' के नाम से जाना गया।

२. रोम से भेजा गया नोट पृ० ५।

तथा दूसरे शब्दों में जिसे प्रतिनिधि शासन भी कहते हैं............"[1]

महाराजा गंगासिंह इसकी अनिवार्यता के प्रति सचेत थे अतः उन्होने स्वराज्य प्रदान करने का आग्रह किया। उन्हें विश्वास था कि ऐसा अविलम्ब करने में ही भलाई है। उनके अनुसार—

"............. इसमें विलम्ब करने से कोई सुप्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इसके विपरीत स्वराज्य प्रदान कर देने के अत्यन्त हितकारी परिणाम होंगे तथा असंतोष व आतंक दूर हो जायेंगे। अतः इन बातों को ध्यान में रखते हुये यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि स्वराज्य की घोषणा तत्काल कर दी जानी चाहिये........"[2]

इस प्रकार के निर्भीक शब्दों से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नेता, जिन्होने एक भारतीय राज्यकर्त्ता नरेश से इतने दृढ समर्थन की कदापि आशा नहीं की थी तथा इसी प्रकार साम्राज्य के समर्थनकारी लोग भी जो विश्वास करते थे कि कम से कम भारतीय नरेश भारत में स्वराज्य का इतना प्रबल पक्षपोषण कदापि नहीं करेगा, दोनों स्तम्भित रह गये। यहां तक कि राष्ट्रवादी समाचार पत्रों ने भी इसको 'एक नूतन युग का अरुणोदय' कह कर उचित रूप से इसका अभिवादन किया।

इस नोट में महाराजा ने इस अवसर का लाभ उठा कर उन आशंकाओं का भी दमन किया जो उस समय व्यक्त की जा रही थी कि स्वराज्य के पक्ष में घोषणा करने से न जाने भारतीय सेना पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ेगा। महाराजा ने जो स्वयं एक श्रेष्ठ सैनिक थे जिसने अभी अभी के महायुद्ध में अग्रिम मोर्चों में युद्ध किया था, निश्चय पूर्वक कहा कि यदि कोई जिम्मेदार पदाधिकारी वास्तव में ऐसा मत रखता है तो मैं कहूँगा कि इस प्रकार का कोई भय भारतीय मानस के लिये अनुभाव्य नहीं है तथा इसके अतिरिक्त हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिये कि हमारी भारतीय सेना में जिन वर्गों से सैनिक भर्ती किये जाते हैं उन वर्गो के सभी लोग केवल सेना में ही नौकरी नहीं करते हैं।

---

१. रोम नोट, पृ० ५।

२. वही, पृ० ११।

जबकि उन में से कुछ लोग सेना में नौकरी करते होंगे, उनके भाई बन्धुओं ने कानूनी, राजनीतिक या कोई अन्य व्यवसाय अपनाया होगा तथा वे लोग निश्चय ही परस्पर विचारों का आदान प्रदान एवं उनकी तुलना करते होंगे। देश में शिक्षा तथा पश्चिमी विचार शैली के प्रवर्धन के साथ साथ सब लोग चाहे वे सेना में नौकरी करते हों या अन्य कोई असैनिक व्यवसाय, अपने देश को भौतिक उन्नति करते हुये देखने की कामना करने लगेंगे। यदि अधिकांश लोग असन्तुष्ट एवं विषण्ण रहेंगे तथा स्वराज्य की घोषणा के अभाव में जब उन्हें अपने देश का राजनीतिक भविष्य अंधकार मय दिखाई देगा तो जैसा कि अन्य देशों में हुआ है क्रमशः हमारी सेना में भी असंतुष्टि एवं अशान्ति की भावनाएँ अवश्यमेव फैल जायेगी। इस प्रकार की घोषणा के प्रतिरोधन से ही भविष्य में सेना पर विपरीत प्रभाव पड़ने की सम्भावना है।[1]

महाराजा ने ऐसे सुधारों के सूत्रपात करने की अनिवार्यता एवं उपयुक्तता का पक्ष पोषण किया जिनसे उचित समय आने पर भारत को साम्राज्य के भीतर सुविधा के साथ स्वराज्य दिया जा सके। उनके इन सब प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप भारत में उस समय चलने वाले आन्दोलन का अंग्रेजों को प्रशस्तर एवं उचित ज्ञान हो गया तथा उसके प्रति उनके विचारों में परिवर्तन आ गया और जिसे वे अब तक एक विद्रोहात्मक आन्दोलन समझते थे उसे अब वे 'लोगों की वैध महत्वाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति' मानने लगे।

२० अगस्त सन् १९१७ की ऐतिहासिक घोषणा में प्रायः उन्हीं सिद्धान्तों का अनुसरण किया गया था जिन्हें महाराजा गंगासिंह ने अपने रोमपत्र में प्रस्तावित किया था। महाराजा ने अपने रोमपत्र में विशेष रुप से यथा निम्नलिखित एक चार सूत्री कार्यक्रम पर अधिक बल दिया था प्रथमतः यथा सम्भव अविलम्ब यह घोषणा करना कि भारत में आंग्ल शासन का मूलभूत उद्देश्य साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को स्वतंत्रता प्रदान करना है। द्वितीय, संविधान में तथा प्रान्तीय विधान परिषदों की कार्य प्रणाली में और अधिक पर्याप्त सुधार करना। तृतीय, भारत-शासन तथा प्रान्तीय परिषदों को और अधिक स्वायत्तता प्रदान करना एवं अन्ततः आंग्ल शासन एवं देशी राज्यों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों के संव्यवहार के लिये नरेन्द्र परिषद की स्थापना करना।

---

१. रोम नोट, पृ० ९--१०।

प्रथम महायुद्ध के समय में भारत के राजनीतिक क्षितिज पर दो आन्दोलनो के मेघ छाये हुये थे। उनमें से एक आन्दोलन तो ऐसे चरम पन्थी लोगों द्वारा किया जा रहा था जो शक्ति प्रयोग से अंग्रेजों को समूल उखाड़ कर फेंक देने में विश्वास करते थे तथा दूसरा आन्दोलन भारत में स्वराज्य प्राप्त करने के पक्ष में था। जब कि एक ओर इन उग्रपंथियों ने विद्रोहात्मक एवं विध्वंसक कारवाइयां आरम्भ कर दीं दूसरी ओर स्वराज्य आन्दोलन के समर्थकों ने जिनमें बाल गंगाधर तिलक भी थे इस बात पर जोर दिया कि अंग्रेज लोग भारत से सम्बन्धित प्रत्येक विषय को भारतीयों पर ही छोड़ दें। अंग्रेजो को यह भय था कि कहीं इन आंदोलनों से भारत अन्ततोगत्वा आंग्ल साम्राज्य से अलग न हो जाय। महाराजा गंगासिंह ने अंग्रेजों की इन आशंकाओं एवं भारतीयों की महत्वाकांक्षाओं के बीच एक सामंजस्य स्थापित कर दिया। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि स्वराज्य प्राप्त कर लेने के पश्चात भी भारत आंग्ल साम्राज्य का एक भाग रहेगा। स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के पश्चात भी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ हमारे साहचर्य द्वारा जो कुछ हमने आज सम्पन्न किया है वह प्रायः उस परिकल्पना के समरूप है जो महाराजा ने उस समय की थी।

महाराजा ३१ मई सन् १९१७ को भारत लौटे तथा २ जून सन् १९१७ को माउन्ट आबू पहुँचकर अपने परिवार से मिले। सन् १९१८ के जून मास में इंग्लैण्ड में आयोजित साम्राज्य युद्ध मन्त्रिमण्डल एवं सम्मेलन की विचारणाओं में भाग लेने के लिये उन्हें पुनः आमन्त्रित किया गया परन्तु कुछ अत्यावश्यक राज्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण उन्हें बड़ी अनिच्छा से इस निमन्त्रण को अस्वीकार करना पड़ा। किन्तु जब ११ नवम्बर सन् १९१८ को युद्ध विराम की घोषणा कर दी गई तथा जब युद्ध विराम सन्धि-पत्र को अन्तिम रुप देने का निर्णय किया गया तो वाइसराय ने तार[1] द्वारा महाराजा को तुरन्त इंगलैण्ड के लिये प्रस्थान करने का पुनः आग्रह किया। शान्ति सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये एक प्रतिनिधि के रुप में महाराजा के चुनाव का सब लोगों द्वारा अत्यधिक स्वागत किया गया।[2] महाराजा तथा सर एस० पी० सिन्हा जो शान्ति-सम्मेलन के लिये एक अन्य

---

१. लार्ड चेम्सफर्ड का तार ता० १२-११-१९१८, परिशिष्ट २३।

२. द लीडर ता० २१-११-१९१८।
बॉम्बे क्रानीकल ता० २६-११-१९१८।

भारतीय प्रतिनिधि थे दिसम्बर सन् १६१८ में इंगलैंड पहुँचे तथा उन्होंने वहां पर उस समय आयोजित साम्राजिक युद्ध मन्त्रि-मण्डल एवं साम्राजिक युद्ध सम्मेलन की सभाओं में भाग लिया।[1] ता० १ जनवरी सन् १६१६ को सम्राट ने महाराजा को शान्ति सम्मेलन के लिये एक पूर्णसत्ता युक्त महादूत नियुक्त किया। ११ जनवरी सन् १६१६ को मित्र एवं सहयोगी राज्यों के अध्यक्षों के साथ प्रारम्भिक वार्तालाप में भाग लेने के लिये उन्होने आंग्ल प्रतिनिधिमण्डल के साथ पेरिस के लिये प्रस्थान किया।[2] यद्यपि सम्मेलन का निदेशन न्यूनाधिक राष्ट्रपति विल्सन, श्री क्लीमेन्श्यू, श्री लायड जार्ज तथा श्री ओरलेन्डो इन चार महान व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित था किन्तु श्री लायड जार्ज प्रत्येक अवसर पर साम्राज्य के प्रतिनिधि मंडल से मंत्रणा अवश्य करते थे तथा इन समन्त्रणाओं में महाराजा सक्रिय भाग लिया करते थे।

भारतीय प्रतिनिधि मन्डल के सामने सर्वोपरि महत्वपूर्ण प्रश्न राष्ट्र-संघ में भारत के प्रतिनिधित्व का था। भारत को प्रस्तावित राष्ट्रसंघ में सम्मिलित करने के विरुद्ध यह तर्क प्रस्तुत किया जा रहा था कि न तो भारत स्वतंत्र देश है और न ही उसे स्वायत्त शासन के अधिकार प्राप्त हैं। यहां तक कि आंग्ल साम्राज्य के प्रतिनिधि मण्डल में भी अधिकांश लोग इस तर्क के समर्थक थे। अतः लार्ड सिन्हा ने एक टिप्पणी तैयार की जिसमें उन्होने वड़े ओजस्वी ढंग से इस तर्क का खन्डन करते हुये कहा कि राष्ट्रसंघ की सदस्यता के लिये आन्तरिक स्वायत्तता को आधार बनाना उचित नहीं होगा। महाराजा गंगासिंह ने २ फरवरी सन् १६१६ को इस टिप्पणी के साथ एक स्मृति पत्र सम्मिलित किया जिसमें उन्होने राष्ट्रसंघ सदस्यता से सम्वन्धित उस परिच्छेद की ओर ध्यान आकर्षित किया जिसके अनुसार ऐसे समस्त शिष्ट राष्ट्रों के लिये इसकी सदस्यता को प्रवेश्य रखा गया था जिन पर संघ के उद्देश्यों को वढावा देने का विश्वास किया जा सकता हो। महाराजा ने वतलाया कि भारतीय जातियां लगभग एक निरा-

---

१. द डेली टेलीग्राफ ता० १८-१२-१६१८।
मैनचेस्टर गार्जियन ता० २१-१२-१६१८।
द् डेली टेलीग्राफ ता० २३-१२-१६१८।

२. द् टाइम्स ता० १६-१-१६१६।

नुमान आदिकालिक संस्कृति का प्रतिरुपण करती है[1] और केवल एक यह आधार ही संघ की सदस्यता में भारत के प्रवेश को आपत्तिरहित करने के लिये पर्याप्त होगा। ततः परं महाराजा ने जोर देकर कहा कि यदि भारतीयों को उनकी प्राचीन संस्कृति एवं दाय के कारण युद्ध के विभिन्न घटनाक्षेत्रों में अन्य शिष्ट राष्ट्रों के बराबर में लड़ने के क्षम समझा जा सकता है तो संघ की सदस्यता में भारत के प्रवेशन को अस्वीकार करने का कोई भी विश्वासप्रद कारण नहीं हो सकता। राष्ट्रसंघ के प्रतिश्रव का एक हस्ताक्षरी होने के कारण जब यह स्पष्ट हो गया कि प्रत्येक अवस्था में भारत का प्रतिनिधित्व अनिवार्य हो गया है तो संघ के संविधान पर विचार करने के लिये ५ फरवरी सन् १६१६ को आयोजित एक सभा में जब भारत के प्रतिनिधित्व का प्रश्न आया तो लार्ड राबर्ट सिसल ने जो आंग्ल साम्राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, भारत को सम्मिलित करना स्वीकार कर लिया।

किन्तु जब समझौते का मसौदा सामने आया तो ज्ञात हुआ कि अनुच्छेद ७ के अनुसार सदस्यता के लिये केवल उन्ही उपनिवेशों को वरणीय माना गया था जो पूर्ण सत्तायुक्त थे। उस समय लार्ड मान्टेग्यू तथा लार्ड सिन्हा दोनों इंगलैन्ड वापस लौट चुके थे और भारतीय प्रतिनिधि मंडल का सारा कार्य भार अकेले महाराजा गंगासिंह पर ही था तथा संघ में भारत के प्रतिनिधित्व के विषय पर भारत के विरुद्ध निर्णय लिये जाने की अत्यधिक आशंका थी। अतः महाराजा ने तुरन्त १२ फरवरी सन् १६१६ को लार्ड राबर्ट सिसल को लिखा और इससे सम्बन्धित स्पष्ट सूचना मांगी। इस विषय से श्री मोन्टेग्यू तक भी इतने विक्षुब्ध थे कि उन्होने तार द्वारा महाराजा से पूछा कि 'क्या भारत सुरक्षित है?' और यदि नहीं है तो मुझे गुप्तलिपि द्वारा सूचित करें जिससे कि मैं लन्दन से पेरिस आने के पूर्व प्रधानमंत्री से भेंट कर सकूं।[2] लार्ड सिसल ने उत्तर में कहा कि अनुच्छेद ७ के अन्तर्गत केवल वही देश आते हैं जो संश्राव के हस्ताक्षर कर्त्ता नहीं है और यदि इसके भी विरुद्ध कोई तर्क प्रस्तुत किया जा सकता हो तो भी मेरे सामने भारत को मूलारूप में सम्मिलित करने की मांग करने का मार्ग खुला रह जाता है। मूलारूप की सूची उस समय तक नही बनाई

---

१. जैसा कि पन्नीकर द्वारा 'हिज हाईनेस द महाराजा आफ बीकानेर—ए बायोग्राफी' के पृ० १६८ में उद्धृत है, महायुद्ध के आरम्भ होने के अवसर पर हाउस आफ लॉर्डस् में लार्ड क्रीव का भाषण।

२. लार्ड मोन्टेग्यू का तार, परिशिष्ट २४।

गई थी। इस प्रकार एक ऐसी परिस्थिति को जो अन्यथा अत्यन्त विरुप सिद्ध होती महाराजा ने अपनी सामयिक कार्यवाइ से टाल दिया। अन्ततोगत्वा भारत का नाम विशदतापूर्व उन मूल सदस्यों में सम्मिलित कर लिया गया जो युद्ध विराम सन्धि-पत्र के भी हस्ताक्षरकर्त्ता थे।

टर्की के विभाजन के विषय में मित्र-राष्ट्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया सुझाव भी शान्ति सम्मेलन के सन्मुख एक अन्य महत्वपूर्ण एवं पेचीदा प्रश्न बना हुआ था। यूरोप निवासी प्रमुख मुसलमानों ने इस प्रकार की कारवाइ के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुये आंग्ल पर-राष्ट्र-सचिव को एक स्मृति पत्र प्रस्तुत किया था। भारतीय मुसलमान भी इससे अत्यधिक उत्तेजित हो गये थे और २० मार्च सन् १६१६ को हाजी छोटानी ने महाराजा को एक विशद तार भेजा जिसमें उन्होंने आग्रह किया था कि इस्लाम के पवित्र स्थानों को टर्की के सुल्तान के अधिकार में ही रहने दिया जाना चाहिये तथा युद्धविरामसंधि इस प्रकार की होनी चाहिये जो अंग्रेजों एवं मुसलमानों के बीच मैत्री स्थापित कर दे। इसने भारतीय प्रतिनिधि मण्डल को एक बहुत बड़े असमंजस में डाल दिया, विशेष रूप से इसलिये कि तीनों प्रतिनिधियों में से कोई भी मुस्लिम नहीं था। अतः भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिये अकेले महाराजा को पीछे छोड़कर जब लार्ड सिन्हा को इंगलैण्ड वापस लौटना पड़ा तो कुछ भारतीय समाचार पत्रों ने सुझाव दिया कि एक मुसलमान प्रतिनिधि को नियुक्त किया जाना चाहिये।[1] महाराजा ने तत्काल श्री मोन्टेग्यू को एक पत्र लिखा और उसके साथ इस तार की एक प्रतिलिपि को भी संलग्न करके भेज दिया। महाराजा ने राज्य-सचिव से इस विषय पर मनन करने के लिये अनुरोध किया कि यदि सम्भव हो सके तो एक सार्वजनिक वक्तव्य द्वारा इस आशय की एक घोषणा करदी जानी चाहिये कि भारतीय मुसलमानों के दृष्टिकोण को सर्वदा ध्यान में रखा जा रहा है तथा मुसलमानों के पक्ष का पृष्ठपोषण करने का यथा सम्भव प्रत्येक प्रयास किया जा रहा है। महाराजा ने इस तार द्वारा इसका उत्तर देने की अनुमति मांगी तथा इसके साथ २ अनुमोदनार्थ प्रारूप भी भेजा।[2] ३ अप्रैल सन् १६१६ को आंग्ल साम्राज्य के प्रतिनिधि-

---

१. बोम्बे क्रोनीकल ता० २०-१-१६१६।

२. पन्नीकर, हिज हाइनेस द् महाराजा आव् बीकानेर-ए बायोग्राफी, पृ० २०४।

श्री फिशर ने हाउस आव् द् कॉमन्स में कमान्डर वेजवुड को उत्तर देते समय जोर देकर कहा कि शान्ति-सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि

मण्डल की एक सभा में जिसमें इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री एवं राज्य-सचिव भी उपस्थित थे भारतीय प्रतिनिधिमण्डल द्वारा इस विषय पर विचार-विमर्श किया गया। उन्होंने स्वीकार किया कि यद्यपि इस प्रकार के तारों का उत्तर देना एक असाधारण बात है फिर भी इस मामले की विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये महाराजा द्वारा प्रस्तावित सिद्धान्तों पर उत्तर भेज दिया जाना चाहिये। तदनुसार राज्य-सचिव ने उपर्युक्त आशय का एक वक्तव्य देने के लिये वायसराय को तार दिया परन्तु यह वक्तव्य कभी भी नहीं दिया गया।[1]

महाराजा के इन कार्यों से न केवल यह प्रदर्शित होता है कि उनको भारत के समस्त वर्गों के हित कितने प्रिय थे अपितु इनसे उनकी तीक्ष्ण बुद्धि तथा इस तथ्य का भी प्रमाण मिलता है कि इंगलैन्ड के प्राधिकारी उनका कितना आदर करते थे।

शान्ति सम्मेलन के सामने एक अन्य प्रस्ताव भी आया जिसके द्वारा जापानियों ने जातीय समानता की घोषणा करने की मांग की थी। यह प्रस्ताव भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। यद्यपि साम्राज्य के प्रतिनिधि-मण्डल ने इसका विरोध किया किन्तु भारतीय प्रतिनिधि-मंडल ने, जिसमें महाराजा तथा लार्ड सिन्हा सम्मिलित थे, इसका समर्थन किया क्योंकि भारत में जातीय भेदभाव अत्यधिक मात्रा में विद्यमान था।

मजदूरों के लिये दैनिक कार्य को परिसीमित करने के विषय में लार्ड सिन्हा द्वारा प्रस्तावित प्रतिबन्ध का भी महाराजा ने समर्थन किया तथा देशी राज्यों को राष्ट्रपति विल्सन के प्रस्ताव के क्रियाक्षेत्र से बहिर्गत करने की मांग की। उन्होने एक महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया जिसमें उन्होने कहा कि क्योंकि भारतीय नरेशों के शासन क्षेत्र आंग्ल भारत के बाहर पड़ते हैं और क्योकि आंग्ल शासन द्वारा आंग्ल-भारत के लिये बनाये गये विधान देशी राज्यों पर लागू नहीं किये जा सकते हैं तथा पुनश्चः क्योंकि प्रत्येक देशी राज्यों के लिये विधान बनाने का केवल मात्र क्षम अधिकारी उस

मण्डल, शान्ति समझौते में भारतीय मुसलमानों के विशेष हितों के प्रति पूर्णतया सावधान है तथा श्री मोन्टेग्यू ने आश्वासन दिया कि वह तथा उनके सहकारी इस विषय में भारतीय मुसलमानों के हितों के पक्षपोषण को, जो भारत के हितों का एक अनिवार्य अंग है, अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

१. पन्नीकर, उपर्युक्त रचना में, पृ० २०५।

राज्य विशेष का शासन ही है अतः प्रारूप अभिसमय के अनुच्छेद १६ के बारे में यह स्पष्टतया समझ लिया जाना चाहिये कि जिस प्राधिकारी को विधान बनाने तथा इस प्रकार की अन्य कोई कारवाई करने का अधिकार हो वह उस राज्य विशेष का ही संस्थापित प्राधिकार होना चाहिये।[1] इस प्रकार का सामयिक प्रतिवन्ध देशी राज्यों के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि इसने देशी राज्यों की स्वायत्तता का, देशी राज्यों के शासन क्षेत्रों में स्वतः लागू हो जाने वाले इस आंग्ल अधिनियम से सार्थकता के साथ संत्राण किया।

महाराजा ने इस अवधि में श्री क्लीमैन्श्यू, श्री लायड जार्ज इत्यादि जैसे संसार प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों के साथ घनिष्ठ मैत्री के सम्बन्ध स्थापित कर लिये। यह पहला आश्चर्य जनक अवसर था कि एक भारतीय नरेश ने इस प्रकार समान भाव से आंग्ल भारतीय नेताओं के साथ कार्य किया हो। उपरोक्त वर्णन से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि महाराजा की आंग्ल भारतीय नेताओं से विस्तृत मैत्री थी तथा भारत के हितों की उन्नति के कार्यों में उनके साथ तथा विशेष रूप से गोखले एवं लार्ड सिन्हा के साथ सर्वदा उनका पूर्ण सहयोग रहा था।

महाराजा ने २४ फरवरी सन् १९१९ को सर जेम्स डन्लप स्मिथ के साथ इंगलैन्ड प्रत्यागमन किया[2] तथा कुछ दिनों के लिये सम्राट के साथ रहे। १ मार्च १९१९ को दोपहर में जब सम्राट ने हाइड पार्क में नई आधिपत्य सेना की चार ब्रिगेडों का निरीक्षण किया तो महाराजा भी एक परिसहाय के रूप में उनके साथ थे।[3]

उस समय भारत-आंग्ल संस्था ने, जिसको भारतीय लोगों की एकता एवं उन्नति को और आगे बढाने के प्रकाशित उद्देश्य से सन् १९१९ में लन्दन में स्थापित किया गया था भारत में प्रवर्तमान तत्कालीन परिस्थि-तियों के सम्बन्ध में भ्रमात्मक प्रचार जारी कर रखा था तथा भारत में किसी भी प्रकार के सुधारात्मक एवं नवनिर्माण कार्य किये जाने के विरुद्ध एक आन्दोलन छेड़ रखा था क्योंकि इस संस्था का मत था कि ऐसा

१. पायोनिअर ता० २४-४-१९१९।
द बंगाली ता० १६-५-१९१९।
२. द टाइम्स ता० २५-२-१९१९।
३. द टाइम्स ता० १-३-१९१९।

करने से भारत में सम्राट के आधिपत्य की जड़ें दुर्बल हो जाएँगी।[१] इस संस्था ने भारतीय नरेशों के विरुद्ध भी अधिक्षेप किया। अतः अवसर प्राप्त होते ही महाराजा ने ७ मार्च सन् १६१६ को लन्दन में लार्ड सिन्हा के सम्मान में आयोजित एक महाभोज में इस संस्था का भण्डाफोड़ किया। इस संस्था ने एक यह भ्रामक धारणा भी फैला रखी थी कि भारत के उप-राज्यसचिव के पद पर लार्ड सिन्हा की नियुक्ति के तथा भारत में इस प्रकार के अन्य विचाराधीन सुधारों के भारतीय नरेश विरोधी हैं। महाराजा ने, जो इंग्लैन्ड में दूसरी बार नरेशों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, इस आरोप का अत्यन्त प्राधिकृत एवं प्रबल ढंग से खंडन किया।[२] उन्होने एक अन्य आरोप का भी कि लार्ड सिन्हा की नियुक्ति से भारतीय सेना में आक्रोश फैल जायगा, सफलता पूर्वक खण्डन किया।[3]

महाराजा ने भारत में राजनीतिक एवं प्रशासकीय सुधारों की आवश्यकता से इंगलैन्ड के अभिजात वर्गीय मंडलो को सुपरिचित कराने का भी अत्यन्त उपयोगी कार्य किया।[४] श्रमिक घोषणा-पत्र का रूपांतर कराने में भारतीय प्रतिनिधियों ने प्रमुख भाग लिया तथा भारत के मुसलमानों की भावनाओं पर इसका क्या प्रतिप्रभाव पड़ेगा इसकी यथेष्ठ जांच करने से पूर्व टर्की की समस्या पर किसी भी प्रकार के निर्णय करने के विचार का भी उन्होने प्रतिरोध किया।[५]

सम्राट, प्रधान मंत्री, भारत के राज्य-सचिव तथा वाइसराय आदि सबने शान्ति सम्मेलन में महाराजा की सेवाओं का गुणगान किया।[६]

---

१. द् युनाइटेड इन्डिया एण्ड इण्डियन स्टेट्स ता० ३०-४-१६१६।
   द् लीडर ता० २-५-१६१६।
२. द् दखन हेरल्ड ता० १३-५-१६१६।
३. लार्ड सिन्हा की लार्ड के पद पर पदोन्नति के तथा भारतार्थ अवर राज्य-सचिव के पद पर उनकी नियुक्ति के अवसर पर ता० ७-३-१६१६ को लन्दन में उनको दिये गये महाभोज में महाराजा का भाषण— इन्डियन इम्पीरियल पार्टनरशिप, पृ० १६, बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव की कार्यालय फाइल सं० २२७८।२६ भाग द्वितीय-बी।
४. द् बंगाली ता० ३-४-१६१६, ए लन्दनर्स नोटबुक, लन्दन मार्च ३।
५. द् टाइम्स आव् इण्डिया ता० २७-५-१६१६।
६. राज्यकर्त्ता नरेशों एवं मुखियों के सम्मेलन की कार्यवाही, नवम्बर १६१६, पृ० ३६। तथा लॉर्ड चेम्सफोर्ड का खरीता ता० ३० जून १६१६, बीकानेर

शान्ति सम्मेलन में महाराजा के तर्क-वितर्क का इतना असाधारण प्रभाव पड़ा कि आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उन्हे डाक्टर आव सिविल लाज (व्यवहार विधि महाविज्ञ) की सम्मानक उपाधि प्रदान की।

२८ जून सन् १९१९ को युद्ध विराम सन्धि-पत्र के हस्ताक्षरित हो जाने के पश्चात, महाराजा ने ३ जुलाई सन् १९१९ को मार्सेलस से जलयान द्वारा भारत के लिये प्रस्थान किया।

सन् १९२२ में अवकाश भ्रमण के लिये जब महाराजा इंगलैन्ड गये[1] तो तत्कालीन भारत के राज्य-सचिव लॉर्ड पील ने उन्हे राष्ट्रसंघ के भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के साथ सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। किन्तु कुछ निजी कारणों से उस समय उनके लिये इस निमन्त्रण को स्वीकार करना सम्भव नही हो सका परन्तु सन् १९२४ में जब उन्हें इसके लिये पुनः आमंत्रित किया गया तो उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया।

इटली द्वारा कर्फू पर अधिकार कर लेने के अवसर पर सन् १९२४ का अधिवेशन बुलाया गया था अतः वह बहुत महत्वपूर्ण था। निःशस्त्रीकरण की चर्चा करते हुये महाराजा ने जो उस समय भाषण दिया था उसका यदि हम आज भारत के हिमालय सीमान्त प्रदेश से सम्बन्धित समस्याओं के संदर्भ में सिंहावलोकन करें तो हमारे सामने उन शब्दों का महत्व स्पष्ट हो जाता है। अपनी अदूरदर्शिता के कारण तत्कालीन भारतीय समाचार पत्रों ने महाराजा के इस भाषण की अनुचित आलोचना की थी। उस समय उन्होंने अपने भाषण में कहा कि भारत की सामरिक समस्यायें असाधारण रूप से विषम एवं जटिल हैं। उत्तर-पश्चिम के सीमान्त प्रदेश में निर्भीक, साहसी एवं उपद्रवी कबायली लोग बसते हैं जो वंश-शत्रुता एवं खून के बदले खून, के अतिरिक्त किसी भी कानून से परिचित नहीं हैं तथा जहां पर अभी तक अवैध शस्त्रों के क्रय-विक्रय पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं किया जा सका है। सीमान्त प्रदेश के अन्य भाग

महाराजा के निजी-सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २२७८।२६, भाग द्वितीय-बी, विधान सभा, बीकानेर राज्य की कार्यवाहियों का परिशिष्ट ए., अक्टूबर १९१९। तथा विधान सभा, बीकानेर राज्य में महाराजा गंगासिंह का संवरण भाषण, अक्तूबर १९१९।

१. महाराजा ने इंगलैन्ड तथा यूरोप की प्रायः सभी यात्रायें शासकीय कार्यों के लिये की थी। केवल एक या दो अवसरों पर वैयक्तिक कारणों से (स्वास्थ्य के लिये) उन्हें विदेश जाना पड़ा था।

प्रायः अगम्य सघन जंगलों से भरे हुये है जिनमें कवायलियों जैसी ही अन्य उग्र जातियां निवास करती हैं। अपनी विलक्षण दूरदर्शिता के साथ उन्होंने राष्ट्र संघ का ध्यान उस खतरे की ओर आकर्षित किया जो इस सीमान्त प्रदेशों से भारत की सुरक्षा को था। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि आर्थिक दण्डों या मध्यस्थ निर्णय के सिद्धांतों से इस विभीषिका का सामना नहीं किया जा सकता अतः सैनिक शक्ति के मान को निर्धारित करते समय उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखना अनिवार्य है।[1]

तृतीय समिति में भारतीय प्रतिनिधि होने के नाते महाराजा ने स्वास्थ्य संस्था में भारत के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विशेष बल दिया! उन्होंने वताया कि इस संस्था को भारत की ओर से एक वृहत् धनराशि प्रदान की जाती है किन्तु उसके उपरान्त भी भारत को इसका तत्संबद्ध लाभ नहीं के बराबर है। तथा इस संस्था का प्रमुख कार्यक्षेत्र रूस तथा यूरोप तक ही सीमित रखा जा रहा है। इसके पश्चात उन्होंने महामारियों के प्रकोप के परिणाम स्वरूप भारतीय जनता द्वारा भुगती जाने वाली यातनाओं की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। महाराजा के अटल प्रयासों के परिणाम स्वरूप समिति ने एक प्रस्ताव पारित करके स्वास्थ्य संस्था को उसके कार्यक्रमों एवं कार्यवाहियों का विवरण तय्यार करके अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यालय में प्रस्तुत करने को कहा। अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यालय को सन् १६१७ के रोम अभिसमय द्वारा पेरिस में स्थापित किया गया था तथा भारत भी उसका सदस्य था। इस प्रस्ताव से सार्वजनिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित राष्ट्र संघ की नीतियों का निर्धारण करने में भारत को भी बोलने का अधिकार प्राप्त हो गया। इसे वास्तव में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साफल्य कहा जा सकता है।[2]

जैसा कि विक्हैम स्टीड के नवम्बर एवं दिसम्बर १६२४ के रिव्यू आव रिव्यूज से प्रतीत होता है प्रतिनिधि मण्डल में महाराजा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। द्वितीय दृश्य में उन्होंने उल्लेख किया है कि महाराजा जब मंच पर गये तो सभा ने वह सोचकर कोई उत्साह प्रकट नहीं

---

१. नरेन्द्र मण्डल की सभाओं की कार्यवाहियां, नवम्बर १६२४, पृ० ६८–१०४, राष्ट्र संघ की सभा में अपने कार्य के सम्बन्ध में बीकानेर के महाराजा का वक्तव्य।

२. नरेन्द्र मण्डल की सभाओं की कार्यवाहियां, नवम्बर १६२४, पृ० १०५-१०६।

किया कि यथानियम 'उत्थान के कार्यों पर' एक और उपदेश सुनना पड़ेगा किन्तु महाराजा ने जब भाषण दिया तो उनके भाषण की सुस्पष्टता, संक्षिप्तता, प्रासंगिकता एवं वास्तविकता से श्रोतागण विस्मित रह गये और उन्होंने उसे दत्तचित्त होकर सुना तथा उन्हें विश्वास हो गया कि महाराजा ने जो कुछ कहा उसका अभिप्राय वह भलीभांति समझते हैं। सभा में दिये गये अंग्रेजी भाषणों में महाराजा का भाषण सर्वश्रेष्ठ था।[1]

राष्ट्र संघ की सभाओं में महाराजा गंगासिंह के कार्यों की वायसराय ने उपयुक्त प्रशंसा की तथा भारत के हित में उनके इन प्रयासों के लिये एक तार द्वारा अपना आभार प्रकट किया।[2]

सितम्बर १९३० में राष्ट्रसंघ के भारतीय प्रतिनिधि मण्डल में सम्मिलित होने के लिये महाराजा को पुनः आमंत्रित किया गया। इस बार उन्हें भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व करने के लिये आमंत्रित किया गया था। एक भारतीय नरेश को यह सम्मान प्रथम तथा अन्तिम बार प्राप्त हुआ था। सर जुल्फिकार अली खां, सर इवर्ट ग्रीवज तथा सर बसंत मलिक प्रतिनिधि मण्डल के अन्य सदस्य थे एवं सर देव प्रसाद सर्वाधिकारी, सर डेनिस ब्रे तथा सर जहांगीर कावसजी स्थानापन्न प्रतिनिधि थे। इस अवसर पर महाराजा ने तृतीय तथा चतुर्थ समितियों की विचारणाओं में भाग लिया। इन समितियों का क्रमशः निःशस्त्रीकरण एवं संघ के सचिवालय के पुनर्गठन के मामलों से सम्बन्ध था। निःशस्त्रीकरण समिति में श्री ब्रिएन्ड ने एक ऐसी यूरोपीय सहकारिता का सुझाव रखा जो उनके मतानुसार समझौते के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये एक प्रकार के क्षेत्रीय समझौते के आधार पर होनी चाहिये थी। महाराजा यूरोपीय सहकारिता में अन्तर्निहित लक्ष्यों से तो सहमत हो गये किन्तु उन्होंने भय व्यक्त किया कि इस प्रकार की कार्यवाइ से यूरोप के बाहर के देशों में भ्रांति उत्पन्न हो सकती है तथा उसके बुरे परिणाम निकल सकते हैं।[3]

लन्दन में साम्राजिक सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने के

---

१. पन्नीकर, हिज हाइनेस द् महाराजा आव् बीकानेर, ए बायोग्राफी, पृ० ३१०--३११।
२. नरेन्द्र मण्डल की सभाओं की कार्यवाहियां, पृ० १०६।
३. राष्ट्र संघ की सभा के एकादश अधिवेशन में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० १६-६-१९३०।

लिये आमन्त्रित प्रतिनिधि मण्डल के एक सदस्य होने के नाते महाराजा जेनेवा से सीधे लन्दन पहुँचे और अक्टूबर तथा नवम्बर १६३० में वहां पर होने वाली सभी सभाओं में सम्मिलित हुये। सर मोहम्मद शफी एक अन्य भारतीय प्रतिनिधि थे तथा सर जियोफ्री कारबेट एवं सर पदमजी जिनवाला दो स्थानापन्न प्रतिनिधि थे।

इस सम्मेलन में साम्राज्य के विभिन्न भागों के नागरिकों की राष्ट्रीयता एव उनकी सामान्य परिस्थिति में संकल्पित परिवर्तनों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया जा रहा था। भारतीय नरेशों के विशेष हितों के प्रतिनिधि होने के नाते महाराजा ने इंग्लैन्ड के प्रधान मन्त्री एवं भारत के राज्य-सचिव को एक टिप्पणी[1] लिखी जिसमें उन्होने उनको इस तथ्य को अभिलिखित कर लेने का अनुरोध किया कि सम्मेलन में मेरी उपस्थिति तथा उस समय वहां पर भाषण नहीं देने की मेरी अभिरुचि का यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाना चाहिये कि भारतीय राज्यों, उनके शासकों एवं नागरिकों की राष्ट्रीयता एवं परिस्थिति में किसी भी प्रकार के आपरिवर्तन को मैंने स्वीकार कर लिया है। इसके प्रत्युतर में प्रधान मन्त्री एवं भारत के राज्य-सचिव दोनों ने महाराजा को आश्वासन दिया कि वह ऐसा नहीं करेंगे।[2]

इसी बीच भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में एक तीव्र आमूलपरिवर्तन घटित हो रहा था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिता में, जिन्हे सन् १८८५ में कांग्रेस के ठीक प्रारम्भ से सांवैधानिक सिद्धान्तों पर निर्दिष्ट किया जा रहा था, सन् १६०४ में परिवर्तन आ गया और उसमें विघ्नकारी तत्वों ने अपना अस्तित्व स्थापित कर लिया। सन् १६०५ में बंगाल के विभाजन तथा कांग्रेस द्वारा आंग्ल वस्तुओं के बहिष्करण की नीति अपना लेने के फलस्वरूप और अधिक कटुता की भावनाओं का आविर्भाव हो चुका था। गोखले ने भारत के शासित्व को स्वयं भारतीयों के हितों के अनुकूल करने के तथा उचित समय आने पर जिस प्रकार का शासन साम्राज्य के अन्य स्वायत्त उपनिवेशों में प्रचलित था वैसा ही शासन भारत के लिये प्राप्त करने के कांग्रेस के लक्ष्य की घोषणा

---

१. नरेन्द्र मण्डल की सभाओं की कार्यवाहियां, मार्च १६३१, पृ० ३६।
२. वही।

करदी ।[1] लाला लाजपत राय ने घोषणा की कि भारतीय लोगों को अपनी निजी भवितव्यता का निर्णय-कर्ता बनने का पूर्ण अधिकार है तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये उनका संघर्ष पूर्णतया न्याय संगत है ।[2] यद्यपि कांग्रेस में वामपक्षियों के एक दल का बंगाल के अराजकतावादी आन्दोलन से सम्बन्ध था किन्तु इसके उपरान्त भी कांग्रेस का मुख्य तथा वृहत् अंग अब भी संवैधानिक साधनों द्वारा उन्नति प्राप्त करने के पक्ष में था । श्री वेडरबर्न ने, जो सन् १६१० में कांग्रेस के अध्यक्ष थे घोषणा की कि 'अंग्रेजों के साथ हाथ मिलाकर भारत पूर्ण सकुशलता से प्रगति के नूतन पथ पर पहले कदम बढा सकता है' ।[3] यह वृति सन् १६१६ तक जारी रही परन्तु तत्पश्चात श्रीमती बिसेन्ट ने, जो सन् १६१४ में कांग्रेस में सम्मिलित हो चुकी थी, स्व-शासन (होम-रूल) का सिद्धान्त विचारार्थ प्रस्तावित किया जिसे कांग्रेस ने लखनऊ अधिवेशन में ग्रहण कर लिया । मुस्लिम लीग, जिसे बंगाल के विभाजन के प्रश्न पर मुसलमानों के मतभेद के परिणाम स्वरूप कांग्रेस के ही कुछ सदस्यों द्वारा अस्तित्व में लाया गया था, पुनः कांग्रेस में सम्मिलित हो गई । आर्थिक संकट, शान्ति सम्मेलन में टर्की के प्रश्न पर मुसलमानों की दुश्चिन्ता, अराजकता के दमन के लिये रौलेट-बिलों के प्रयोग तथा संकल्पित सांवैधानिक सुधारों में स्थगन के भय के परिणाम स्वरूप सन् १६१६ में तनाव अपने चरम बिन्दु तक पहुँच चुका था ।

विद्रोह से पूर्व देशी राज्य एक दूसरे से पूर्णतया अलग थे तथा उनके शासकों पर एक दूसरे के राज्य कार्यो में हस्तक्षेप करने के सम्बन्ध में इतना अधिक कठोर नियंत्रण था कि गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल (सपरिषद् महाशासक) की पूर्वानुमति बिना तथा उसके माध्यम बिना वे

---

१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इक्कीसवें अधिवेशन की रिपोर्ट, पृ० १२ जैसा कि सर जॉन कमिंग की पुस्तक 'पोलिटिकल इन्डिया, १८३२-१६३२' के तृतीय अध्याय 'द् इन्डियन नेशनल कान्ग्रेस इन इट्स वेरियस फेजेज' में एल. एफ. रशब्रुक विलियम्स द्वारा उद्धृत किया गया, पृ० ५४ ।

२. वही ।

३. रैटक्लिफ, सर विलियम वेडर बर्न, पृ० १५०, जैसा कि सर जॉन कमिन्ग की पुस्तक 'पोलिटिकल इन्डिया, १८३२-१६३२' के तृतीय अध्याय 'द् इण्डियन नेशनल कान्ग्रेस इन इट्स वेरियस फेजेज' में एल० एफ रशब्रुक विलियम्स द्वारा उद्धृत किया गया, पृ० ५८ ।

आपस में पत्र व्यवहार तक भी नहीं कर सकते थे ।[1] किन्तु विद्रोह के पश्चात यातायात के द्रुत विकास ने इस प्रकार का अलगाव कमजोर कर दिया । इसके अतिरिक्त विद्रोह ने इस अलगाव के परिणामों को स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया था तथा अंग्रेज लोग अपने तथा नरेशों के बीच और अधिक घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता का अनुभव करने लग गये थे । विक्टोरिया द्वारा क्वीन एम्प्रेस की उपाधि ग्रहण करने के अवसर पर सन् १८५८ की 'सम्राज्ञी की घोषणा' से भी इसे अनुप्रेरणा मिली । इस दिशा में प्रथम कदम के रूप में विशिष्ट राज्य-कर्ता नरेशों तथा उच्चतम यूरोपीय अधिकारियों को सम्मिलित करके एक साम्राजिक प्रिविकौंसिल को स्थापित करने की योजना बनाई गई ।[2] किन्तु जो भी हो बाद में इस योजना को परित्यक्त कर दिया गया । महत्वपूर्ण विषयों में भारत के नरेशों एवं प्रमुखों की मन्त्रणा एवं विचारणा प्राप्त करने, तथा इस प्रकार सर्वोपरि सत्ता से उनका सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से आठ नरेशों को 'साम्राज्ञी के परामर्शदाता' के रूप में नियुक्त करके लार्ड लिटन ने सन् १८७७ में इस प्रकार की एक कौंसिल बनाने का पुनः प्रयास किया । किन्तु यह कौंसिल कभी भी एकत्रित नहीं हुई ।[3] अपने उपराजत्व की अवधि में लार्ड कर्जन ने भी इस प्रकार की कौंसिल का निर्माण करने की आवश्यकता एवं उसके महत्व को समझा । उन्हें विश्वास हो चुका था कि भारतीय नरेश "एक बेढंगे एवं विषमांग पुंज में बिखरे हुये कण नहीं है बल्कि एक सामंजयस्यपूर्ण एवं भव्य समष्टि में समकक्ष इकाईयां है ।"[4] उनको प्रतीति थी कि राजा लोग भारत में साम्रा-

१. कमिन्ग, पोलिटिकल इन्डिया १८३२–१९३२, अध्याय १४, "द् पोलिटिक्स आव् द इन्डियन स्टेट्स, द् चेम्बर आव् प्रिंसेज, तथा द् फेडरल आइडिया", सर रॉबर्ट ईर्सकिन हॉलेन्ड द्वारा प्रदत्त, पृ० २६१ ।

२. भारत शासन में देशी राज्यों के प्रतिनिधित्व तथा नरेन्द्र मण्डल बनाने के विषय पर महाराजा गंगासिंह द्वारा विवरण ता० ५–४–१९१४, पृ० ३–४ ।

३. द् ब्रिटिश क्राउन एण्ड द् इन्डियन स्टेट्स, पृ० ७५ ।
कमिन्ग, उपर्युक्त रचना में, अध्याय १४, "द् पोलिटिक्स आव् द् इन्डियन स्टेट्स, द् चेम्बर आव् प्रिन्सेज तथा फेडरल आइडिया" सर रावर्ट ईर्सकिन हॉलेन्ड द्वारा प्रदत्त, पृ० २६२ ।

४. भारत शासन में देशी राज्यों के प्रतिनिधित्व तथा नरेन्द्र परिषद बनाने के प्रश्न पर महाराना गंगासिंह का विवरण ता० ५–१–१९१४, पृ० ४ ।

जिक संगठन के अभिन्न अंग बन चुके हैं तथा देश के प्रशासन से उनको भी इतना ही सरोकार है जितना कि वायसराय को अतः वह उन्हें अपना सहकारी एवं साथी मानते थे ।[1] नरेशों की कौंसिल बनाने का सन् १६०४ में उन्होने भी समर्थन किया और कहा कि साम्राज्य के दायित्व में राजालोग अधिकाधिक दिलचस्पी रखते हैं तथा अपने आप को उसमें सम्मिलित करने के लिये लालायित हैं ।[2] किन्तु आंग्ल-शासन ने इस योजना को स्वीकार नहीं किया ।[3]

कर्जन के पश्चात आंग्ल विरोधी आन्दोलन के प्रभाव को अधिकाधिक महसूस किया जाने लगा और २८ मई सन् १६०६ को लार्ड मिन्टो ने लार्ड मार्लो को लिखा कि कांग्रेस के संकल्पों का कोई साध्य प्रतिसंतुलन खोजने के विषय पर वह निरन्तर सोच विचार करते रहे हैं तथा उनके विचार से नरेशों की परिषद द्वारा वह इस समस्या का समाधान कर सकते हैं ।[4] सन् १६०८ में लार्ड मिन्टो ने भारत में बढते हुये राजद्रोह

---

१. लार्ड कर्जन इन इन्डिया १८६८-१६०५, ता० २६-११-१८६६ को ग्वालियर में राजकीय महाभोज में लार्ड कर्जन का भाषण । तथा ता० २८-११-१६०२ को जयपुर में राजकीय महाभोज में लार्ड कर्जन का भाषण ।—
"महाराजा ने मुझे स्मरण कराया है कि तीन वर्ष पूर्व मैंने बलपूर्वक कहा था कि भारत के प्रशासन कार्यों में भारतीय नरेशों को मैं अपना सहकारी एवं साथी समझता हूं । तब से ठीक इसके अनुसार मैंने सदा उन्हें उनके विभिन्न गौरव पदों पर अपना सहकार्यकर्त्ता समझा है । अनेक अवसरों पर उनके निजी शासनों की परिस्थितियों एवं दशाओं के विषय पर मैंने उनके साथ विचार विमर्श किया है तथा कुछ अन्य अवसरों पर जैसा कि महाराजा को भलीभांति ज्ञात है मैंने उनका सहयोग एवं परामर्श प्राप्त किया है ।"

२. जैसा कि सर रावर्ट अर्सकिन होलैन्ड द्वारा 'द् पोलिटिक्स आव् द् इन्डियन स्टेट्स, द् चेम्बर आव् प्रिन्सेज तथा फेडरल आइडिया" में जो सर जॉन कमिन्ग की 'पोलिटिकल इन्डिया १८३२-१६३२' के चौदहवें अध्याय की रचना करता है, उद्धृत किया गया ।

३. वही ।

४. मेरी, काउन्टेस आफ मिन्टो, 'इन्डिया मिन्टो एण्ड मार्ले' १६०५-१६१०, पृ० २६ ।

के सम्बन्ध में नरेशों से अलग अलग मंत्रणा करके वास्तविक रूप से उनमें अपना विश्वास प्रकट किया। किन्तु इसका कोई अधिक ठोस परिणाम नहीं निकला और उनकी आकांक्षाएँ केवल मात्र एक सुन्दर स्वप्न बन कर रह गईं। सन् १६१३ में लार्ड हार्डिंग ने कुछ नरेशों को उन्हीं की श्रेणी से विशेष रूप से सम्बन्धित शिक्षा के एक विषय पर उनके साथ समंत्रणा करने के लिये आमंत्रित किया तथा इसी उद्देश्य से सन् १६१४ में नरेशों तथा प्रमुखों की पुनः एक सभा बुलाई गई।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चतुर्थांश में जब भारत में इस प्रकार की राजनीतिक परिस्थितियां प्रवृत्त थीं और अंग्रेज लोग एक अत्यन्त कठिन समय से गुजर रहे थे, नरेशों की भी अपनी समस्याएँ थीं। एक ओर तो उनकी संधियों का यह अर्थ लगाया जाने लगा था कि वह उस सर्वोपरि सत्ता की सुविधाओं के अनुकूल हैं जिसने एक संमित्र एवं साथी की स्थिति से धीरे धीरे तथा अगोचर रूप से अपने आप को एक निश्चित राजनीतिक सत्ता की स्थिति में स्थापित कर लिया है। इस सर्वोपरि सत्ता का क्रिया क्षेत्र अत्यन्त विशाल एवं सर्वतोमुखी बनाया गया था। लार्ड कर्जन ने तो यहां तक कह दिया कि "सम्राट की प्रभुसत्ता सर्वत्र प्रश्नातीत है। अपने निजी परमाधिकारों की सीमाओं को इसने स्वयं ही निर्धारित किया है।"[1] तथा एक अन्य भाषण में उन्होने, अंग्रेज लोग अपने कर्तव्यों तथा नरेशों के तत्संबद्ध दायित्वों के प्रति जो दृष्टिकोण रखते थे उसको अत्यन्त स्पष्टार्थ ढंग से सूत्रबद्ध किया। उन्होने कहा कि जब सर्वोपरि राज्य-शक्ति ने किसी राज्य तथा उस राज्य के नरेश को सभी शत्रुओं के विरुद्ध बचाने के कर्तव्य को निभाने का बीड़ा उठा रखा हो तो उस नरेश का यह तत्संबद्ध दायित्व हो जाता है कि वह अपने प्रत्येक व्यवहार में सर्वप्रधान सत्ता के प्रति निष्ठावान रहे एवं ऐसे प्रत्येक आचरण से विरत रहे जो सरकार के लिये अनिष्टकर हो तथा अपने राज्य के कार्यों का सचरित्रता एवं सम्मान के साथ निर्देशन करे।[2] संधियों के निबन्धों के विरुद्ध राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की आंग्ल वृति का यह एक स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण था। भारतीय राज्यो से सम्बन्धित विषयों के

---

१. भावलपुर के नवाब के अभिषेक दरबार में १२ नवम्बर १६०३ को लार्ड कर्जन का भाषण, 'लार्ड कर्जन इन इन्डिया', पृ० २२६।
२. ता० १०-१२-१६०३ को अलवर के महाराजा के अभिषेक पर लार्ड कर्जन का भाषण, 'लार्ड कर्जन इन इन्डिया', पृ० २३०।

कुछ विद्वान इन संधियों को अप्रचलित (पुरानी) समझने लग गये थे। राजनीतिक आचार में एक परिवर्तन आ चुका था और राजालोग उससे प्रसन्न नहीं थे।

दूसरी ओर आंग्ल विरोधी आन्दोलन ने राजाओं के हृदय में कुछ आशंकाएँ उत्पन्न करदी थी। देश की भावी व्यवस्था से वे चिन्तातुर रहने लगे थे तथा अपने अस्तित्व तक के पूर्ण मिटने की सम्भावना से वे त्रस्त थे। उनके शासन के विरुद्ध आंग्ल भारतीय नेताओं की समालोचना से वे अत्यधिक व्यग्र हो उठे थे। उनको डर था कि कहीं ये आन्दोलनकारी सत्ता हथिया लेने के पश्चात उनके वर्ग को पूर्णतया नष्ट न करदें। अतः अपनी आन्तरिक प्रभुसत्ता को बचाने के लिये सर्वोपरि राज्य-शक्ति के साथ अपने राज्यों के प्रत्यक्ष सम्बन्ध की आंग्ल शासन से सुस्पष्ट स्वीकृति प्राप्त करने की उनमें प्राकृतिक उत्सुकता उत्पन्न हो गई थी।[1]

बीकानेर राजवंश तथा केन्द्रीय सत्ता के बीच में जो सम्बन्ध थे उन्हे स्पष्ट समझने के लिये हमें उपयुक्त पृष्ठभूमि में, तथा राज्य-भक्ति के प्रति जो महाराजा का दृष्टिकोण था उसके प्रकाश में उनकी पश्चाद्वर्ती क्रियाओं का अवलोकन करना होगा। महाराजा, सम्राट एवं साम्राज्य, अपने राष्ट्र के रूप में भारत[2], अपनी राजगद्दी, अपने राज्य एवं प्रजा तथा भारत के राजसीवर्ग इन सब के प्रति निष्ठा रखते थे। सम्राट के प्रति उनकी निष्ठा ने साम्राज्य की कड़ियों को अटूट तथा सम्राट की सर्वोच्चता को अक्षुण्ण बनाये रखने के अदम्य उत्साह से उन्हें अभिभूत कर दिया। राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा ने उन्हें अपने देश के लिये स्वराज्य प्राप्त करने के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देने के लिये बाध्य कर दिया अतः सम्राट के

---

१. कमिंग, उपर्युक्त रचना में, अध्याय १४ "द पोलिटिक्स आव् द इन्डियन स्टेट्स, द चेम्बर आव् प्रिन्सेज एण्ड द फैडरल आइडिया" सर रॉबर्ट अर्सकिन हालैन्ड द्वारा प्रदत्त, पृ० २६४।

२. हाउस आव् कॉमन्स के हरकोर्ट कक्ष में भारतीय प्रतिनिधियों को एम्पायर पार्लियामेन्ट्री एसोसियेशन (युनाइटेड किंगडम ब्रांच) द्वारा दिये गये मध्यान्ह भोज के अवसर पर महाराजा गंगासिंह का भाषण, ता० २४-४-१९१७ —बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २२७८२६, भाग २ बी।

प्रति अपनी निष्ठा के स्वाभाविक परिणाम के रूप में उन्होने भारत की संवैधानिक प्रगति के मार्ग में बाधा डालने की कभी इच्छा नहीं की और स्वतंत्रता आन्दोलन को सर्वदा गतिशक्ति ही दी। वह अपनी तथा अन्य नरेशों की आन्तरिक प्रभुसत्ता को भी सुरक्षित रखना चाहते थे।

इस प्रकार आंग्ल-शासन एवं नरेशों के मध्य में हितों की एक तद्रूपता उत्पन्न हो गई थी। आंग्ल शासन को राजसत्ता द्रोही एवं विध्वंसक कार्यवाहियों को व्यर्थ करने के लिये राजाओं का सहयोग अभीष्ट था तथा राजालोग अपनी सुरक्षा को निरापद करना चाहते थे। महाराजा गंगासिंह ने इस सुलभ अवसर का लाभ उठाकर राज्यकर्ता नरेशों के इस निमित्त का अत्यधिक योग्यता से पृष्ठपोषण किया कि राज्यों से क्षीणतम सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक विषय पर भी राज्यकर्त्ता नरेशों का एक सम्मेलन बुलाकर उनसे मन्त्रणा की जानी चाहिये।[1] ३ मार्च १६१४ को दिल्ली में आयोजित प्रमुखों के महाविद्यालय सम्मेलन के अवसर पर भी उन्होने अपनी इस मांग की पुनरावृति की और कहा कि जिस प्रकार महाविद्यालय के विषय में यह सभा बुलाई गई है मैं आशा करता हूँ कि राज्यों से समीपी सम्बन्ध रखने वाले अन्य विषयों पर भी सोच-विचार करने के लिये वायसराय इस प्रकार की सभाओं का शीघ्र ही समाह्वान करेंगे तथा भविष्य में इस प्रकार की सभाओं को नियमित रूप से संयोजित किया जा सकेगा और उनके कार्यक्रमों का सुव्यवस्थापन किया जा सकेगा।[2] इन वचनों के महत्त्व का यथोचित गुणगान १६ मार्च १६१४ के 'टाइम्स आफ इण्डिया' में प्रकाशित हुआ।[3] सन् १६१५ में महाराजा ने पुनः वायसराय को भारतीय राज्यों तथा उनके शासको से सम्बन्धित कुछ प्रश्नों पर एक सामान्य आलेख प्रस्तुत किया। इस सामान्य आलेख में अन्य प्रश्नों के अतिरिक्त उन्होंने राजनीतिक शब्द रचना, अवस्यकता प्रशासन एवं नरेशों की परिषद आदि में परिवर्तनों के प्रश्न भी उठाये। यहां पर यह कहना सुखकर होगा कि अक्टूबर सन् १६१६ में लार्ड चेम्सफोर्ड ने नरेशों के सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन

---

१. भारत सरकार में देशी राज्यों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर महाराजा गंगासिंह का सामान्य आलेख ता० ५-१-१६१४।
२. वही, पृ० १३, दिल्ली में प्रमुखों के महाविद्यालय सम्मेलन में ता० ३-३-१६१४ को महाराजा गंगासिंह का भाषण।
३. द टाइम्स आफ इन्डिया ता० १६--३-१६१४।

(सन् १९१३ एवं सन् १९१४ में शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर संयोजित सम्मेलनों को पहले दो सम्मेलन मानकर) बुलाया। इस सम्मेलन का उद्घाटन करते समय उन्होंने घोषणा की कि राजाओं, उनके राज्यों तथा उनकी प्रजा से सम्बन्धित कुछ विषयों पर भारत सरकार को परामर्श देना इस सम्मेलन का उदिष्ट लक्ष्य है।[1]

इस सम्मेलन की कार्य सूची में दो महत्वपूर्ण विषय थे, देशी राज्यों में अभिषेक तथा प्रतिष्ठापन दरबारों के अवसर पर कुछ रीतियों को पालित किया जाने के सम्बन्ध में भारत सरकार के राजनीतिक सचिव द्वारा परिचारित एक ज्ञापन तथा भारतीय राज्यो में अवयस्कता प्रशासन का रूप। रीतियों से सम्बन्धित यह ज्ञापन इस नियम को निर्धारित करने का अभिप्राय रखता था कि प्रत्येक राजसिंहासन के उत्तराधिकार के लिये सरकार की स्वीकृति एवं उसका अनुमोदन प्राप्त करना अनिवार्य होना चाहिये।[2] महाराजा गंगासिंह ने इस मनस्कोण का इसके विभिन्न पक्षों में परीक्षण किया। उन्होंने निर्देश किया कि एक भारतीय शासक अपने पूर्वजों द्वारा विजित एवं निर्मित राज्य का दायाधिकारी होता है तथा उसे यह स्वामित्वाधिकार किसी अनुदान द्वारा प्राप्त नहीं होता है जिसके लिये अनुमति लेना आवश्यक हो। उन्होंने आगे कहा कि भारतीय शासक अपने जन्मसिद्ध अधिकार से अपने पूर्वजों का दायाधिकारी होता है। उन्होंने इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकर्षित किया कि यदि स्वीकृति को अनिवार्य बना दिया जाता है तो उसके प्राप्त होने तक उस राज्य की गद्दी रिक्त पड़ी रहेगी और यह चिरकाल-सम्मानित प्रथाओं एवं परम्पराओं का एक अतिक्रमण होगा। उन्होंने कहा कि यह, प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी तथा सम्भाव्य उत्तराधिकारी के उन अधिकारों को आपदग्रस्त कर देगा जो उद्भूत होने

---

१. दिल्ली में राज्यकर्ता नरेशों एवं प्रमुखों के सम्मेलन के प्रारम्भण में वायसराय का भाषण ता० ३०-१०-१९१६— दिल्ली में अक्टूबर-नवम्बर, १९१६ में हुये नरेशों एवं प्रमुखों के सम्मेलन की कार्यवाहियां, पृ० १६।

२. देशी राज्यों में अभिषेक एवं प्रतिष्ठापन दरबारों के अवसर पर कुछ नियमों के पालित किये जाने के सम्बन्ध में राजनीतिक सचिव द्वारा परिचारित एक ज्ञापन, अक्टूबर-नवम्बर १९१६ के राज्यकर्ता नरेशों एवं प्रमुखों के सम्मेलन की कार्यवाहियों में उल्लिखित, पृ० १६।

से भी पूर्व उसके द्वारा अर्जित कर लिये जाते हैं।[1] महाराजा ने पूर्णतया सिद्ध कर दिया कि राजनीतिक सचिव द्वारा प्रतिपादित मनस्कोण असमर्थनीय है, तथा उत्तराधिकार के विषय में यह धारा निर्धारित करते हुये एक प्रस्ताव पारित करने में वह सफल हुये कि हिन्दू राज्यों में उत्तराधिकार हिन्दू विधान एवं परिपाटियों के अनुसार होगा तथा मुस्लिम राज्यों में उन राज्यों के कानून एवं रिवाजों के मुताबिक होगा।[2]

सुदीर्घ वादविवाद के पश्चात् जिनमें, अपनी अवयस्कता की अवधि में अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर महाराजा ने प्रमुख भाग लिया था, परस्पर में मान्य समझौतों को अंगीभूत करते हुये, एक प्रस्ताव अभिस्वीकृत कर लिया गया। इस प्रस्ताव में अभिसंविदित किया गया कि प्रशासन में आंग्ल प्रणालियों का उपस्थापन करने के लिये राजाओं पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाना चाहिये तथा सुधारों का उद्भव स्वयं राजाओं की स्वेच्छा से होना चाहिये। इसके द्वारा, उन शासकीय अधिकारियों (पोलिटिकल अफसरों) को, जिनको अस्थायी रूप से किसी राज्य के प्रशासन का आभार सौंपा हुआ था उस राज्य की स्थानीय परम्पराओं को सुरक्षित रखने का निदेश दिया गया। केवल प्रशासकीय कुशलता की ओर ध्यान देना ही एक मात्र अभीष्ट लक्ष्य नहीं था! इसके अतिरिक्त उसमें यह भी निर्धारित किया गया था कि एक शासक की अवयस्कता के यावत् उस राज्य का प्रशासन साधारणतः एक परिषद अथवा एक प्रतिशासक को सौंपा जाना चाहिये, यदि ऐसा करना उस राज्य की प्रथाओं के यथार्थतः अनुरूप हो, तथा उन प्रथाओं एवं परम्पराओं का नियम निष्ठा से रक्षण एवं पालन किया जाना चाहिये। इसके अन्य प्रावधान यथा निम्नांकित थे– प्रतिशासन परिषद द्वारा यथा सम्भव स्थानीय प्रतिभा की ही सेवा नियुक्ति की जानी चाहिये, वैयक्तिक सम्पत्ति में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिये, जेवरों का विक्रय नहीं किया जाना चाहिये, राज्य के किसी भूखण्ड या प्रदेश का विनिमय, स्वत्वत्याग अथवा विक्रयण नहीं किया जाना चाहिये तथा शासक का शिक्षण एवं प्रशिक्षण, उस प्रयोजन के लिये समाहूत

---

१. राज्यकर्ता नरेशों एवं प्रमुखों के सम्मेलन में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २–११–१९१६— राज्यकर्त्ता नरेशों एवं प्रमुखों के सम्मेलन की कार्यवाहियां, अक्टूबर–नवम्बर, १९१६, पृ० ६६–६८।

२. वही, पृ० १०७।

समिति के अभिस्ताव के अनुसार होना चाहिये ।[1]

इस प्रकार इस सम्मेलन की उत्पत्ति एवं सफलता का अधिकतम श्रेय महाराजा के अश्रांत प्रयासों तथा उनकी राजनीतिक विदग्धता को ही है। इस तथ्य को सम्मेलन में भी यथोपयुक्त रूप से अभिस्वीकृत किया गया ।[2]

सन् १९१७ में जब महाराजा युद्ध सम्मेलन एवं साम्राजिक युद्ध मन्त्रीमण्डल की सभाओं में सम्मिलित होने के लिये इंग्लैन्ड गये हुये थे तो उस समय भारत के राज्य-सचिव श्री आस्टिन चेम्बरलेन ने उनसे अनुरोध किया था कि वे कुछ महत्वपूर्ण भारतीय प्रश्नों पर एक टिप्पणी लिख कर उन्हें भेजें। अतः महाराजा ने १५ मई १९१७ को रोम से एक सामान्य आलेख भेजा ।[3] इस टिप्पणी में महाराजा ने साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को स्वराज्य प्रदान करने के सम्बन्ध में घोषणा करने की आवश्यकता पर बल दिया था ।[4] इसके अतिरिक्त सामान्य आलेख में जिन अन्य विषयों का विवेचन किया गया था वह यथा निम्न हैं – 'साम्राजिक विधान परिषद तथा प्रान्तीय विधान परिषदों में और अधिक सुधार करना,' 'भारत शासन तथा प्रान्तीय शासनों में हस्तक्षेप की मात्रा को न्यूनतम करना तथा उन्हें और अधिक स्वायत्तता प्रदान करना,' तथा नरेशों की एक परिषद या सभा की सृष्टि करना ।[5]

भारतीय संवैधानिक सुधारों पर वायसराय तथा भारत के राज्य सचिव के संयुक्त प्रतिवेदन के दसवें प्रकरण में देशी राज्यों से सम्बन्धित विषयों पर सोच विचार किया गया था तथा प्रस्तावित सुधारो की रूप रेखाएँ एवं उनका सूत्रपात करने की अनुशंसा भी उसमें सम्मिलित की गई थीं। नरेन्द्र परिषद के जनवरी १९१९ के अधिवेशन में इस महत्वपूर्ण

---

१. ए. पी. निकलसन., 'स्क्रेप्स आव् पेपर', पृ० ३३८–४२ ।
   राज्यकर्त्ता नरेशों एवं प्रमुखों के सम्मेलन की कार्यवाहियां, नवम्बर १९१७, पृ० १०९--१२ ।

२. राज्यकर्ता नरेशों एवं प्रमुखों के दिल्ली सम्मेलन में नावानगर के जाम साहब का भाषण ता० ३०-११-१९१६, राज्यकर्ता नरेशों एवं प्रमुखों के सम्मेलन की कार्यवाहियां, अक्टूबर—नवम्बर १९१६, पृ० १०२ (नावानगर के जाम साहब द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव) ।

३. इसका सम्बन्ध विख्यात 'रोम नोट' से है जिसका उल्लेख पीछे पृ० २५३ पर आ चुका है ।

४. 'रोम नोट', पृ० ४ ।

५. वही ।

प्रलेख पर विमर्श किया जाने वाला था, परन्तु क्योंकि महाराजा को शान्ति सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिये लन्दन बुला लिया गया था अतः उन्होंने विभिन्न विवादास्पद विषयों पर अपने विचारों को प्रकट करते हुये एक टिप्पणी लिख कर वायसराय को भेज दी।

वायसराय तथा राज्य–सचिव के संयुक्त प्रतिवेदन में नरेशों के लिये मूलभूत महत्व रखने वाले अनेक प्रश्न उठाये गये थे जैसे नरेशों की एक स्थायी परिषद स्थापित करने, राज्यों तथा सर्वोपरि राज्य–शक्ति के सम्बन्धों का परीक्षण करने तथा उन शासकों को, जिन्हे आन्तरिक प्रशासन के पूर्ण अधिकार प्राप्त थे तथा अन्य शासकों के बीच में विभाजन रेखा खींचने आदि के प्रश्न। अपनी टिप्पणी में नरेशों की एक स्थायी परिषद स्थापित करने की मांग को स्वीकार कर लेने के प्रस्ताव का स्वागत किया। किन्तु प्रस्तावित नरेन्द्र परिषद में छोटे राजाओं के साम्प्रतिक प्रतिनिधित्व के पक्ष में महाराजा का शक्तिशाली तर्क इस टिप्पणी की अत्यन्त सजीव बात है। महाराजा ने तर्क प्रस्तुत किया कि यदि इन छोटे राजाओं को परिषद में सम्मिलित नहीं किया जायगा तो न तो वह आंग्ल-भारत में उपस्थापित सुधारों का लाभ उठा सकेंगे और न ही परिषद में अपने मामलों का प्रतिनिधान कर सकेंगे। ऐसी स्थिति में वह पीछे रह जायेंगे और शृंखला की अशक्त कड़ियां बन जायेंगे। अतः उन्होंने, नरेन्द्र परिषद में छोटे राजाओं के समुचित एवं अनुपातानुरूप प्रतिनिधित्व का पक्षपोषण किया।[1]

उस समय इंग्लैन्ड में, नरेन्द्र मण्डल को संस्थापित करने के विषय पर विचार करने के लिये भारत के राज्य-सचिव द्वारा नियुक्त समिति का अधिवेशन चल रहा था। अतः वहां पर महाराजा की उपस्थिति का लाभ उठाया गया और उन्हें इन विचारणाओं में भाग लेने के लिये आमंत्रित किया गया। उन्होंने ७ जून १६१६ को समिति में भाषण दिया तथा एक टिप्पणी भी प्रस्तुत की।[2] इन दोनों में उन्होंने राज्य के विशेष हितों से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों को संदर्भित किया नामतः प्रत्यक्ष राजनीतिक

---

१. वायसराय तथा भारत के राज्य-सचिव के संयुक्त प्रतिवेदन के दसवें प्रकरण (देशी राज्यों के सम्बन्ध में) पर महाराजा गंगासिंह की टिप्पणी, पृ० ४–५, परिशिष्ट २५।

२. 'इन्डिया आफिस कमेटी' के लिये बीकानेर के महाराजा गंगासिंह की टिप्पणी, १६१६।

सम्बन्ध, सलामियों का संशोधन, संधि अधिकारों का प्रश्न, राज्यकर्ता नरेशों की प्रतिष्ठा एवं उनके विशेषाधिकार, तथा सर्वोपरि सत्ता द्वारा हस्तक्षेप। नरेशों की अधिराज परिष्ठा एवं नरेन्द्र मण्डल को अस्तित्व में लाने के लिये आवश्यक साधनों से सम्बन्धित विचार्य विषयों पर महाराजा के विचारों को अंगीकार कर लिया गया तथा नरेशों की जिस अधिराज परिष्ठा के लिये उन्होंने आग्रह किया था उसे मान लिया गया।[1] नरेन्द्र मण्डल को अस्तित्व में लाने के लिये आवश्यक साधन के सम्बन्ध में अनुभव किया गया कि संसदीय विधान द्वारा ऐसा करना सम्भव नही है क्योंकि संसद को इस प्रकार का कोई अधिकार नहीं है, और न ही भारत सरकार प्रशासकीय क्रिया द्वारा इस विषय में कुछ कर सकती है। महाराजा ने अपने विशिष्ट राजनीतिक सुमेधत्व के साथ तुरन्त सुझाव दिया कि इसके लिये एक राजकीय घोषणा करदी जानी चाहिये और इस प्रकार दोनों कठिनाइयों का समाधान कर दिया। यह न्याय रूप से कहा जा सकता है कि महाराजा ने न केवल एक स्थायी नरेन्द्र परिषद स्थापित करने के प्रस्ताव को ही प्रवर्तित किया था तथा उसकी विस्तृत योजना निष्पादित करके उसको मान्यता देने के लिये भारत सरकार को प्रतीति कराई थी, अपितुः उसके संघटन को अन्तिम रूप देने का अधिकतम श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है।

इस प्रकार, अटल एवं अविराम प्रयासों के परिणाम स्वरूप अन्ततः नरेन्द्र मण्डल को स्थापित करने का निर्णय किया गया और ८ फ़रवरी १९२१ को दिल्ली में पुराने किले के भीतर दीवानेआम में सम्राट की ओर से कनोट के ड्यूक द्वारा इस मण्डल का अधिकारिक उद्घाटन किया गया। महाराजा को, जिन्होंने मण्डल को अस्तित्व में लाने के लिये इतने कठोर प्रयास किये थे तथा जो राज्यकर्ता नरेशों एवं प्रमुखों के सम्मेलन के महामन्त्री रह चुके थे, मण्डल का प्रथम चाँसलर चुना गया। सन् १९२६ में, इस पद पर पांच वर्ष तक कार्य करने के पश्चात, महाराजा ने नरेन्द्र-मण्डल के चाँसलरपद से अवकाश ग्रहण किया।

उस समय भारत सरकार के साथ राजपूताना के राज्यों के जो सम्बन्ध थे तथा उनको सुधारने के लिये महाराजा गंगासिंह ने जो सहयोग दिया था इस स्थान पर उनका संक्षिप्त वर्णन करना असंगत नहीं होगा।

---

१. पन्नीकर, 'हिज हाइनैस द महाराजा आफ बीकानेर, ए बायोग्राफी,' पृ० २२७-२८।

भारत सरकार तथा राजपूताना के नरेशों के सम्बन्धों के सरलीकरण का प्रश्न सर्व प्रथम सन् १९१५ में विवादास्पद हुआ था तथा भारतीय सरकार द्वारा उसकी जांच भी की गई थी। भारत सरकार के राजनीतिक-सचिव ने उस समय इस विषय पर सात नरेशों के विचारों से अपने आपको अवगत किया था किन्तु उनमें से केवल तीन नरेश परिवर्तन के पक्ष में थे अतः इस प्रश्न को वहीं समाप्त कर दिया गया।[1] बाद में, लार्ड चेम्सफोर्ड तथा श्री मान्टेग्यू के संयुक्त प्रतिवेदन के दसवें प्रकरण (देशी राज्यों से सम्बन्धित) पर अपनी टिप्पणी में महाराजा ने इस प्रश्न को पुनः उठाया और कहा कि राजाओं का कम से कम बड़े राजाओं तथा भारत सरकार के बीच में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना, साम्राजिक शासन तथा नरेशों, दोनों के लिये हितकर होगा।[2] सन् १९१८ में प्रकाशित मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन के अभिस्तावों में इस तथ्य को स्वीकार कर लिया गया। इस प्रतिवेदन में कहा गया था कि एक सामान्य नियम के रूप में समस्त महत्वपूर्ण राज्यों के भारत सरकार के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित कर दिये जाने चाहिये क्योंकि केन्द्रीय शासन के साथ दो या इससे अधिक मध्यवर्ती अधिकरणों के अन्तरेण सम्पर्क स्थापित करने की कार्यप्रणाली से उचित अवबोधन एवं सत्वर कार्य संचालन में बाधा पड़ती है।[3] 'इन्डिया आफिस कमेटी' ने, जिसका आयोजन सन् १९१९ में इंग्लैन्ड में हुआ था तथा जिसने मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन पर विचार-विमर्श किया था, अभिस्ताव

---

१. राजपूताने के राज्यकर्ता नरेशों को राजपूताने में गवर्नर जनरल के एजेंट श्री आर. ई. हॉलैन्ड का अजमेर से भेजा गया गोपनीय परिपत्र ता० २७ मार्च १९२० जो सरकार तथा राजपूताने के राज्यों एवं नरेशों के बीच में राजनीतिक सम्बन्धों के सरलीकरण' के विषय पर महाराजा गंगासिंह की सन् १९३२ की टिप्पणी में द्वितीय परिशिष्ट के रूप में पृ० ११६ पर उद्धृत।

२. वायसराय तथा भारत के राज्य-सचिव के संयुक्त प्रतिवेदन के दसवें प्रकरण (देशी राज्यों से सम्बन्धित) पर महाराजा गंगासिंह की टिप्पणी, पृ० ९-१०।

३. राजपूताने के राज्यकर्ता नरेशों को राजपूताने में गवर्नर जनरल के एजेंट श्री आर. ई. हॉलैण्ड का गोपनीय परिपत्र ता० २७ मार्च १९२० जो सरकार तथा राजपूताना के राज्यों एवं नरेशों के राजनीतिक सम्बन्धों के सरलीकरण' के विषय पर महाराजा गंगासिंह की सन् १९२३ की टिप्पणी में द्वितीय परिशिष्ट के रूप में पृ० ११६ पर उद्धृत।

किया कि क्योंकि भारत सरकार ने इस प्रकार के सम्बन्धों को सुगम करने की नीति को अंगीकार कर लिया है अतः उसके लिये अनिवार्य हो गया है कि वह राज्य-सचिव के अनुमोदनार्थ एक योजना प्रस्तुत करें किन्तु कमेटी के प्रस्तावों कों प्रस्तुत करने के पूर्व नरेशों के विचारों को जानना आवश्यक है।[1] महाराजा, गवर्नर जनरल के एजेंट के पद के अन्तकरण तथा विभिन्न वर्ग के राज्यों में एकाकी माध्यम के रूप में अधिकार पत्र के साथ भेजे गये आवासी प्रतिनिधियों के सातत्य के पक्ष में थे।[2] किन्तु राजपूताने में गवर्नर जनरल के एजेंट श्री आर. ई. हालैण्ड ने एजेंट के पद के रक्षाकरण का पक्षपोषण किया।[3] अतः ६ मई १९२० को महाराजा ने श्री हालैण्ड के पत्र का व्यक्तिगत रूप से प्रत्युत्तर दिया तथा राजपूताना के नरेशों द्वारा गृहीत मनस्कोण को न्याय संगत सिद्ध करने के लिये सन् १९२३ की अपनी टिप्पणी[4] में शक्तिशाली तर्क प्रस्तुत किया।

सन् १९२६ के लगभग, आंग्ल-भारत में प्रवर्तमान अस्थिर दशाओं का अप्रत्यक्ष प्रभाव राज्यों पर भी पड़ रहा था और वे राजनीतिक आन्दोलन में अन्तर्ग्रस्त होते जा रहे थे। राज्यों के मामलों में सर्वोपरि सत्ता द्वारा किये जाने वाले हस्तक्षेपों तथा विशिष्ट नरेशों, उदाहरणार्थ उदयपुर के महाराणा फतहसिंह, के विरुद्ध की गई कुछ कार्यवाहियों के परिणाम स्वरूप शासकों के हृदय में आशंकायें उत्पन्न हो गई थीं। उन्होंने अनुभव किया कि भारत में किये जाने वाले प्रत्येक राजनीतिक त्वरण के साथ उनके प्रतिश्रुत अधिकारों एवं विशेषाधिकारों का ह्रास हो रहा है। उस समय क्योंकि लार्ड इर्विन आंग्ल-भारत में सुधार कार्यों को त्वरित करने की समस्या को सुलझाने में अत्यन्त गम्भीरता से कार्यरत थे, इन राजाओं ने, जो आंग्ल शासन के साथ अपने राजनीतिक सम्बन्धों का यथातथ्य

---

१. 'इन्डिया आफिस कमेटी' के लिये महाराजा गंगासिंह की टिप्पणी, १९१९, पृ० १५–१६।

२. आंग्ल शासन तथा राजपूताने के नरेशों एवं राज्यों के बीच राजनीतिक सम्बन्धों के सरलीकरण पर महाराजा गंगासिंह की टिप्पणी, पृ० १०।

३. राजपूताना के राजाओं को श्री आर. ई. हॉलैण्ड का परिपत्र ता० २०-३-१९२०, पृ० ११८–२६।

४. आंग्ल शासन तथा राजपूताना के नरेशों एवं राज्यों के बीच राजनीतिक सम्बन्धों के सरलीकरण के प्रश्न पर महाराजा गंगासिंह की टिप्पणी, पृ० १०।

अवबोधन एवं यथोचित मूल्यांकन कराने के लिये दीर्घकाल से संप्रयास कर रहे थे, साग्रह अनुरोध किया कि उनकी इस मांग को तुरन्त स्वीकार किया जाना चाहिये। अतः नवम्बर १९२६ में नरेन्द्र मण्डल की सभा का उद्घाटन करते समय वायसराय ने अपने भाषण में, इस विषय पर उनकी स्थायी समिति के साथ स्पष्ट एवं स्वतन्त्र विमर्श करने का संकेत किया।[1] महाराजा गंगासिंह ने सन् १९२२ में जब वह नरेन्द्र मण्डल के चाँसलर थे, ऐसा ही एक सुझाव रखा था।[2] इसे अविलम्ब स्वीकार कर लिया गया। मई सन् १९२७ में वायसराय ने नरेन्द्र मण्डल की स्थायी समिति से सम्बन्धित शासकों को उनके साथ विचार–विमर्श करने के लिये शिमला बुलाया। वहां पर नरेशों ने अविलम्वय रूप से इस विषय पर विचार करने के लिये एक कमेटी नियुक्त की जाने की अपनी मांग की पुनरावृत्ति की। इस मांग को स्वीकार कर लिया गया और वायसराय ने भारत के राज्य-सचिव को भारतीय राज्यों की एक समिति नियुक्त करने की अनुशंसा की। वायसराय को उनके इस सहानुभूति प्रकाशक संकेत के लिये राजाओं द्वारा धन्यवाद दिया गया। इस प्रकार की समिति का सुझाव सर्वप्रथम महाराजा गंगासिंह द्वारा जब वह नरेन्द्र मण्डल के चाँसलर थे, सन् १९२४ में ही दे दिया गया था।[3] इस प्रकार, भारतीय राज्यों की एक समिति जिसे लोकप्रसिद्ध रूप से 'बटलर कमेटी' कहा जाता है, नियुक्त हुई।

बटलर कमेटी के समक्ष राजाओं के मामले को सुव्यक्त एवं सुचिष्ट रूप से प्रस्तुत करने के लिये, तथ्यों एवं वास्तविकताओं को संगृहीत करना तथा मामले को प्रस्तुत करने के उचित ढंग को निर्धारित करना आवश्यक था। अतः महाराजा गंगासिंह ने १६ अगस्त १९२६ को बीकानेर में विभिन्न राज्यों के मंत्रियों की एक सभा बुलाई। सभा में उन्होने सबसे अधिक महत्व नरेशों के उन नये उत्तरदायित्वों को दिया जिनको संतोषप्रद ढंग से निभाने पर ही उनके राज्यों का भविष्य निर्भर करता था। तद्–नन्तर उन्होने इसके लिये ग्रहणीय कार्यविधि प्रस्तावित की। उन्होंने कहा कि हम लोग अभी एक अत्यन्त कठिन समय से गमन कर रहे हैं तथा इस

---

१. नरेन्द्र मण्डल दिल्ली में वायसराय का भाषण ता० २२–११–१९२६, नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, नवम्बर १९२६, पृ० १४।

२. नरेन्द्र मण्डल दिल्ली में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २३-२-१९२८, नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, फरवरी १९२८, पृ० ७३।

३. वही, पृ० ७२–७३।

तथ्य को भी मानना ही पड़ेगा कि देश में राजनीतिक विचारधारा का एक वर्गविशेष हमारे पक्ष में नहीं है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि यह भलीभांति हृदयंगम कर लेना चाहिये कि समय बदल रहा है और हमें अपने आपको नई परिस्थितियों के अनुयुक्त करना होगा और कहा कि मैं अनुभव करता हूँ कि कुछ राज्य वास्तव में प्रगतिशील हैं किन्तु कुछ राज्यों में अभी सुधारों की अतिमात्र आवश्यकता है और अनुरोध किया कि ऐसे किसी भी कार्य को जिसे कर्त्तव्य एवं मनीषा ने अधिप्रेरित किया हो, अकृत नहीं छोड़ना चाहिये।[1] इस विषय पर विचार करने के लिये महाराजा ने

---

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २२७८। XXXVI, भाग III C, बीकानेर में संयोजित मन्त्रियों की सभा में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० १६-८-१९२६।

"कोई भी व्यक्ति जो गम्भीरता एवं चित्तासक्ति के साथ चिन्तन करता है वह इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकता कि वास्तव में हम लोगों का भविष्य यदि अनन्य रूप से नहीं तो विशद रूप से स्वयं हम शासकों पर ही निर्भर करता है अर्थात् हम राजा लोग हमारे महान उत्तरदायित्वों को कहां तक समझते हैं तथा हमारे उन समादृत कर्तव्यों को कहां तक चिरतार्थ करते हैं जिनका हमें सर्वशक्तिमान ईश्वर ने अवधाता बनाया है, किस ढंग से हम लोग अपने राज्य कार्यों का निदेशन करते हैं तथा हमारे राज्यों और प्रजाओं के कल्याण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विषयों की ओर हम कितना ध्यान देते हैं। आने वाला युग हमारे लिये निर्भ्रान्त रूप से अत्यन्त विषम होगा ······ इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देने से कोई भी लाभ नहीं होगा कि कुछ विशिष्ट राजनीतिक सिद्धान्तों के समर्थक समुदायों (आंग्ल-भारत में) की प्रवृत्ति हमारे पक्ष में नहीं है ····· जमाना बदल रहा है तथा राजाओं और राज्यों को भी अपने आप को नवीन परिस्थितियों के अनुयुक्त करना होगा। हमारे कुछ राज्य अपनी अत्युत्तम सिद्धियों के लिये तथा अपने महान लक्ष्यों के लिये जिनको प्राप्त करने के लिये वह इतनी उद्योगपरायणता से संघर्ष कर रहे हैं, प्रत्येक प्रकार से न्याय संगत गर्व कर सकते हैं। किन्तु दूसरी ओर कुछ राज्यों में सुधार कार्यों की आवश्यकता प्रतीयमान है। यह राजाओं तथा उनके मन्त्रियों, हम सभी के लिये आवश्यपालनीय है कि हम यह दृढ़ संकल्प करलें कि कर्तव्य एवं मनीषा द्वारा अधिप्रेरित किसी भी कार्य को हम उपेक्षित नहीं करेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत के राज्यों एवं उनके राजाओं के भावी प्रारब्ध का निर्णय तो ईश्वरेच्छा के अनुसार ही होगा किन्तु यदि हम

सन् १९२७ में नरेशों की भी एक सभा बुलाई। फरवरी १९२८ में बटलर कमेटी का स्वागत करते हुये नरेन्द्र मण्डल में एक प्रस्ताव में महाराजा गंगासिंह ने कहा कि राज्यों के साथ जो साम्राज्य के सम्बन्ध हैं उनको नियंत्रित करने वाले तन्त्र को सुधारने की तथा उसे अद्यावधिक करने की आवश्यकता अतिदेय है। उनका मत था कि यह समस्या चाहे कितनी ही दुःसाध्य क्यों न हो किन्तु सहानुभूति, सद्भावना तथा सत्यनिष्ठ एवं सुक्त राजकौशल के साथ यदि इस समस्या को सुलझाने के प्रयास किये जायें तो इसे अवश्यमेव सुलझाया जा सकता है। १६ अगस्त १९२६ को बीकानेर में मन्त्रियों की सभा में महाराजा ने राजाओं की, उनके अपने अपने राज्यों एवं प्रजा के प्रति जिन जिम्मेदारियों के प्रति संकेत किया था, उनमें उन्होंने अपने दृढ़ विश्वास को पुनः प्रकट किया। उन्होंने कहा कि किसी शासक एवं उसके राज्य को सुरक्षा एवं सत्त्व को सर्वदा आंग्ल-सेना के अवलम्बन पर नहीं रखा जा सकता अपितु उस शासक को अपने शासन को अपनी प्रजा की शुभकामना, राजभक्ति एवं सन्तुष्टि पर आधारित करके ही उसे स्थायी रूप से सुरक्षित एवं संधारित करना होगा।[1] अतः उन्होंने

उचित रूप से हमारे कर्तव्यों का पालन करें तथा हमारे उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखें तो आश्वासित रूप से ईश्वर अपनी अनन्त अनुकम्पा के साथ हमें अपना अभयहस्त एवं सन्दर्शन प्रदान करेगा।"

१. नरेन्द्र मण्डल दिल्ली में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २३–२–१९२८, नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, फरवरी १९२८, पृ० ७८।
"···और न ही आप श्रीमानों को मेरे द्वारा यह स्मरण कराने की आवश्यकता है कि एक राजा एवं उसके राज्य की सुरक्षा एवं शक्ति सदा के लिये आंग्ल–सेना पर या उसकी निजी सेना पर निर्भर नहीं कर सकती किन्तु वह अपने शासन को केवल अपनी प्रजा की उन्मुखता, राज्य भक्ति संतुष्टि एवं सहकारिता पर आधारित करके ही उसे स्थायी रूप से सुरक्षित एवं संपोषित बना सकता है। अतः, जहां भी आवश्यक हो, अनिवार्य एवं अनुपेक्ष रूप से हमें अपने राज्यों के आन्तरिक मामलों को सुव्यवस्थित कर लेना चाहिये····सर्वनाशी परिणामों के अनेक दृष्टान्त हमारे सामने हैं···केवल व्यक्तिगत रूप से सर्वसत्ताधिकारी के लिये ही नहीं किन्तु मेरी नम्र राय में, राज्य तथा समाज के लिये भी कई प्रकार से सर्वनाशी·····इस संसार के कुछ महानतम् राज्यों एवं साम्राज्यों के अत्यन्त शक्ति-

राय दी कि यह परम आवश्यक है कि राजा लोग सर्व प्रथम अपने आन्तरिक मामलों को सुव्यवस्थित करें। उन्होंने राज्यों की अर्थ व्यवस्था पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला और कहा कि राज्यों के वित्तीय साधनों को विकलांग करने से तथा घाटे का बजट प्रस्तुत करने से अहितकर राजनीतिक प्रभाव पड़ता है। उन्होंने कहा कि यदि राजा लोग अपनी प्रजा की समृद्धि को प्रोन्नत करें तथा 'विधान की परमेष्ठिता' के सिद्धान्त का पालन करें तो प्रजा के किसी भी भाग द्वारा प्रतिरोध की भावनाओं को व्यक्त किये जाने का कोई कारण ही नहीं हो सकता। प्रत्युत उन्हें भारतीय पत्रकारों का समर्थन प्राप्त हो सकता है। तथापि, उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि नरेशों को, इस विषय में कि उनके राज्यों के लिये क्या अच्छा है या क्या बुरा है, बाहर के किसी भी व्यक्ति की राय नहीं माननी चाहिये।[1]

किन्तु जब बटलर कमेटी की संरचना का पता लगा तो एक व्यापक असंतोष फैल गया क्योंकि उसमें कुछ नरेशों एवं उनके मंत्रियों को सम्मिलित ही नहीं किया गया था। कुछ तथाकथित मित्रों ने समाचार पत्रों के माध्यम द्वारा तर्क प्रस्तुत किया कि राजाओं के लिये इस कमेटी का बहिष्कार करना एक अत्यन्त बुद्धिमानी का काम होगा, किन्तु महाराजा ने इस सुझाव का अत्यन्त दृढता से विरोध किया और कहा कि यदि उन्होंने कमेटी का बहिष्कार किया तो यह केवल मूर्खता की पराकाष्ठा होगी तथा प्रत्येक रीति से यह राजकौशल का ठीक प्रतिवाद होगा।" उन्होंने नरेशों से अनुरोध किया कि जो सुअवसर उन्हें प्राप्त हुआ है उसका वे लाभ उठायें तथा आशा एवं विश्वास के साथ भविष्य की प्रतीक्षा करें।[2]

उस समय, आंग्ल-भारत में समाचार पत्रों में एवं सार्वजनिक मंचों से ये आलोचनायें की जा रहीं थी कि आंग्ल-भारत में संवैधानिक

मान् अधीश्वरों का भी यही दारुण अन्त हुआ है जिन्होंने समय के लक्षणों की अवहेलना की और उसके परिणाम स्वरूप शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो गये अथवा जो अपने अविवेकी स्वेच्छाचारी शासन के द्वारा अपनी संतति के लिये विनाश का कारण बन गये।"

१. नरेन्द्र मण्डल दिल्ली में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २३-२-१९२८, नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, फरवरी १९२८, पृ० ७२-८६।

२. बीकानेर विधान सभा का संस्थगन करते समय महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २०-१-१९२८, 'द ग्रोथ आव् पोलिटिकल फोरसेज इन इन्डिया', पृ० २०।

प्रगति का गतिरोध करने के लिये राजा लोग अंग्रेजों के साथ षड्यन्त्र में सम्मिलित हो गये हैं। महाराजा ने अत्यन्त दृढ़ता से इन आरोपों का खण्डन किया और निर्देश किया कि ठीक इसके विपरीत नरेशों ने सामूहिक रूप से अनेक अवसरों पर यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है कि वे न केवल आंग्ल-भारत में अपने देशवासियों की राजनीतिक एवं संवैधानिक प्रगति के प्रति सहानुभूतिक हैं अपितु उन्होंने उनके प्रति अपना अनुमोदन एवं पक्ष-पोषण भी व्यक्त किया है, और उन्होंने सन् १९१७ में लन्दन में दिये गये अपने भाषणों की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया।[1]

फरवरी १९२८ में कमेटी बीकानेर आई तथा महाराजा एवं बीकानेर के प्रधान मन्त्री सर मनु भाई एन. मेहता ने, राज्यों से सम्बन्धित मामलों पर उसके साथ विचार-विमर्श किया। सितम्बर १९२८ में बटलर कमेटी के साथ विमर्श करने के लिये नरेन्द्र मण्डल की ओर से कई राज्य-कर्ता नरेशों ने इंग्लैण्ड के लिये प्रस्थान किया। किन्तु महाराजा नहीं गये। उन्होंने अपने स्थान पर अपने प्रधान मन्त्री को प्रति-नियुक्त किया।

क्योंकि देशी राज्यों के मामलों का आंग्ल-भारत के लिये स्वीकृत किये जाने वाले सुधारों से एक विशेष सम्बन्ध था, आंग्ल-भारतीय नेता राजाओं की मांगों के प्रति अमनोयोगी नहीं थे। लखनऊ में आयोजित 'आल पार्टीज कान्फ्रेन्स' ने अपने प्रतिवेदन में एक वाक्यांश निवेशित किया कि "स्वतन्त्र राष्ट्र भी देशी राज्यों के सम्बन्ध में उन्हीं अधिकारों का प्रयोग करेगा तथा उनके प्रति, संधियों से आविर्भूत होने वाले अथवा अन्य उन्हीं दायित्वों का पालन करेगा, जिन अधिकारों एवं दायित्वों को भारत सरकार द्वारा एतत्कालपर्यन्त प्रयुक्त एवं पालित किया गया है।" 'आल पार्टीज कान्फ्रेन्स' की एक रिपोर्ट को, जिसे लोक प्रसिद्ध रूप से 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से जाना जाता है, उसके नेता द्वारा प्रकाशित कर दिया गया तथा यह प्रत्याशा व्यक्त की गई कि राजा लोग इसे स्वीकार कर लेंगे।[2]

---

१. बीकानेर विधान सभा का संस्थगन करते समय महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २०-१-१९२८, 'द ग्रोथ आव् पोलिटिकल फोरसेज इन इन्डिया', पृ० २१-२२।

२. ६ सितम्बर १९२८ को सर मनुभाई एन. मेहता को उनके इंग्लैन्ड विदा होने के पूर्व अवसर पर दिये गये एक सायभोज में महाराजा गंगासिंह का भाषण, 'द ग्रोथ आव् पोलिटिकल फोरसेज इन इन्डिया' पृ० ४९।
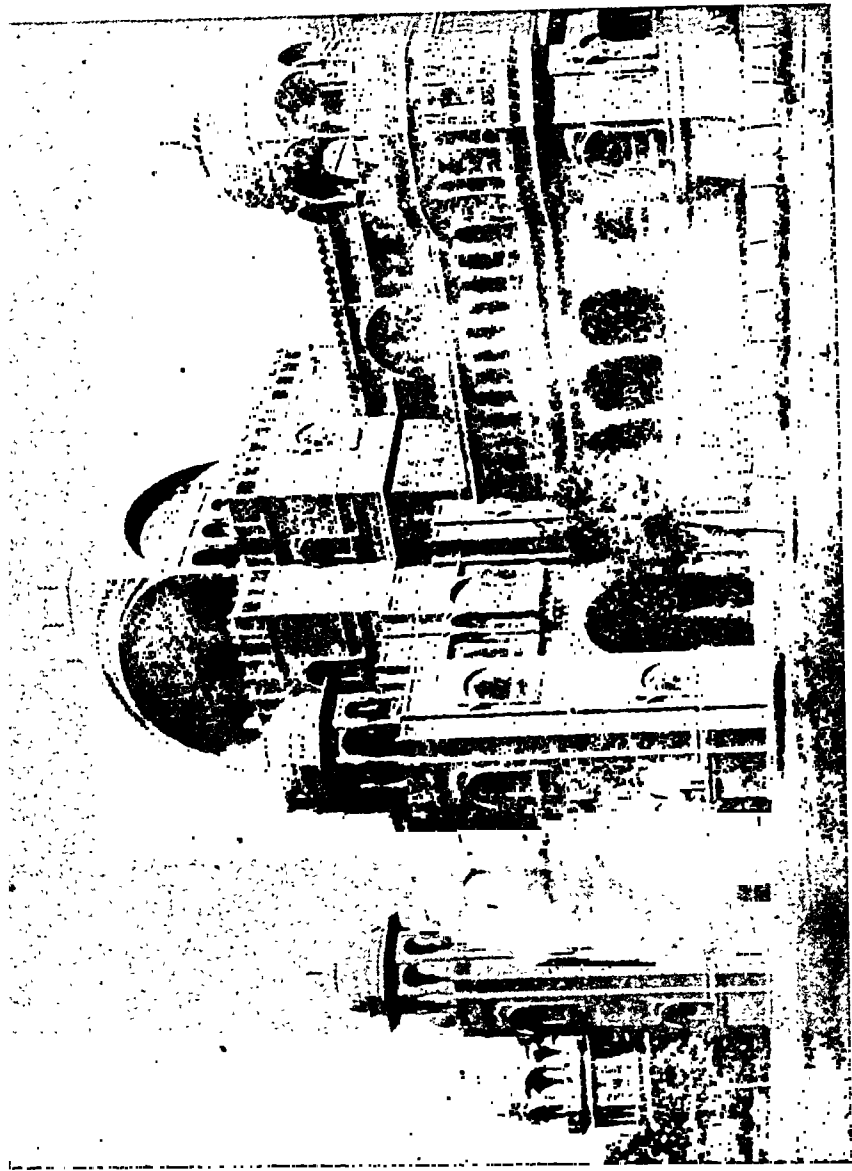
लालगढ़ पैलेस, बीकानेर जिसको महाराजा श्री गंगासिंहजी ने १९०२ में बनवाया

महाराजा ने सम्यक् रूप से अभिज्ञात किया कि आंग्ल-भारत में ऐसे 'सच्चरित्र एवं भले' व्यक्ति भी हैं जो चाहते हैं कि नई व्यवस्था में देशी राज्यों के साथ भी निरपेक्ष व्यवहार होना चाहिये। किन्तु यह एक ऐसा विषय है कि इसके वैधिक एवं अन्य पक्षों की उचित जांच किये बिना ही इसके साथ अगम्भीरता से व्यवहार नहीं किया जा सकता। "एतत्काल-पर्यन्त प्रयुक्त एवं पालित" की शब्द योजना से प्रतीत होता है कि राजाओं द्वारा अपने संभावित अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के विरूद्ध उत्तरोत्तर बढ़ते हुये अतिचारों को दूर करने के लिये जो सतत प्रयास किये जा रहे हैं, उनका अस्वीकरण एवं प्रतिक्रमण किया जा रहा है।[1] महाराजा ने दृढ़तापूर्वक कहा कि यह आरोप दुर्भावनापूर्ण है कि मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड के प्रतिवेदन के दसवें प्रकरण में राज्यों से सम्बन्धित जिन प्रस्तावों को सम्मिलित किया गया है वे राजाओं तथा अंग्रेजों के एक षड़यन्त्र का परिणाम हैं। इस विषय पर अपनी संमत्रणाओं के यावत् राजाओं ने अपने पटियाला सम्मेलन में भारत के अनेक प्रमुख नेताओं को विशेष रूप से आमन्त्रित किया था तथा लार्ड सिन्हा, पण्डित मदन मोहन मालवीय, श्री श्रीनिवास शास्त्री, सर अली इमाम, सर एन. एस. समर्थ एवं श्री चिन्तामणि ने इस सभा में भाग लिया और उनमें से कुछ लोगों ने वास्तव में बहुमूल्य सुझाव भी दिये।[2]

बटलर कमेटी के प्रतिवेदन को, जिसे अप्रैल १९२९ में प्रकाशित किया गया था, देखकर राजाओं को अत्यन्त विक्षोभ हुआ। इसमें केवल एक इसी तथ्य को अंगीकार किया गया था कि देशी राज्यों के संधि-विषयक सम्बन्ध क्योंकि सम्राट के साथ है अतः उनको देशी राज्यों की सहमति बिना किसी भी ऐसी अन्य सत्ता को नहीं सौंपा जा सकता जिस पर कि सम्राट का पूर्ण नियंत्रण न हो। प्रतिवेदन के शेष भाग में मुख्यतः भारत सरकार की विगत एवं वर्तमान कार्यवाहियों का औचित्य समर्थन किया गया था। यद्यपि तत्कालीन कार्यकारी राजनीतिक-सचिव श्री राबर्ट अर्सकिन हालैन्ड ने स्वयं यह स्वीकार किया था कि "राज्यों के साथ सम्बन्धों को प्रभावित करने वाली कुछ रीतियां एक ऐसी क्रियाविधि द्वारा प्रवर्तित हो गई है जिसका

---

१. ९ सितम्बर १९२८ को सर मनुभाई एन. मेहता को उनके इंग्लैन्ड विदा होने के पूर्व अवसर पर दिये गये एक सायंभोज में महाराजा गंगासिंह का भाषण— 'द ग्रोथ आव् पोलिटिकल फोरसेज इन इन्डिया' पृ० ५०-५१।

२. वही, पृ० ५४-५५।

आशय भले ही उपकारी रहा हो फिर भी वह कुछ हद तक यथेच्छ अवश्य है",[1] तो भी बटलर कमेटी की राय थी कि 'इन रीतियों ने संधियों के अन्धकारमय कोनों को प्रकाशमान कर दिया है'। प्रतिवेदन में इसके आगे निर्दिष्ट किया गया था कि इन क्रियाविधियों की परिभाषा देना या उनको परिसीमित करना अनावश्यक एवं अवांछनीय है। राजाओं की इस मांग के प्रति, कि सर्वोपरि सत्ता को अवहित रूप से सीमांकित किया जाना चाहिए, प्रतिवेदन में कहा गया था कि "सर्वोपरि सत्ता सर्वदा सर्वोपरि ही रहनी चाहिये।"

फरवरी १९३० में नरेन्द्र मण्डल के अधिवेशन में महाराजा गंगासिंह ने राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के आधार की परिभाषा के सम्बन्ध में प्रस्ताव रखते हुये, इस विषय में बटलर कमेटी द्वारा अपनाई गई विचार पद्धति की तीव्र भर्त्सना की। उन्होंने स्वीकार

---

१. नरेन्द्र मण्डल दिल्ली में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २७-२-१९३०, —नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, फरवरी १९३०, पृ० १४१-४२। "...क्योंकि आंग्ल सत्ता ने देश को एक समन्वित समष्टि में संयोजित कर दिया है अतः नवीन परिस्थितियों के दवाव से पिछले दिनों एक संवैधानिक सिद्धान्त का निरन्तर विकास होता रहा है। इस सिद्धान्त को, उदाहरणार्थ (विभिन्न मामलों में) सर्वोपरि राज्य-शक्ति के साथ अनेक राज्यों के मौलिक सम्बन्धों पर यद्यपि अधिरोपित किया गया है किन्तु यह सिद्धान्त भारतीय राज्य-संस्था की आवश्यकताओं के सामंजस्य से विकसित हुआ है न कि भारतीय नरेशों की प्रभुसत्ता को परिसीमित करने की किसी स्पृहा से। इस प्रकार के नये सिद्धान्त के प्रति अतीत में शासकों की सम्मति अंशतः तो इस कारण से नहीं ली गई कि वहुधा अलग अलग राज्यों को प्रभावित करने वाले पूर्वादर्शों से इस सिद्धान्त को खण्डशः विकसित किया गया था तथा अंशतः इसलिये कि एक यथोचित कालावधि में संयुक्त सम्मति प्राप्त करना अव्यवहार्य था। यद्यपि इन नवीन कार्यों की न्याययुक्तता एवं अनिवार्यता अनुपेक्ष्य थी किन्तु फिर भी मानना पड़ेगा कि संधियों पर इनके प्रभाव का अनुमान उस समय नहीं लगाया गया जिसके परिणाम-स्वरूप राज्यों के साथ सम्वन्धों पर प्रभाव डालने वाली कुछ रीतियां एक ऐसी प्रक्रिया से प्रवर्तित हो गई जो आशय में उपकारी होते हुये भी कुछ सीमा तक निरंकुश अवश्य है।"

किया कि, क्योंकि सर्वोपरि सत्ता ने बाह्य आक्रमण एवं आन्तरिक विद्रोह के विरुद्ध राज्यों के सामान्य संरक्षण का दायित्व ले रखा है, उसे हस्तक्षेप करने का अधिकार है किन्तु यह अधिकार कुछ सुनिश्चित मामलों तक ही सीमित है। उन्होंने निर्देश किया कि कभी कभी तो, मामले की स्थिति तथा वास्तविकता की ओर ध्यान दिये बिना ही, केवल राजप्रतिनिधियों की सत्ता एवं उनके अधिकारों का प्रदर्शन करने के उद्देश्य से ही यह हस्तक्षेप किया गया है। अतः सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न, सर्वोपरिसत्ता द्वारा उसके हस्तक्षेप करने के अधिकारों का परिसीमन करने का तथा उन क्षेत्रों को सूक्ष्म तथा निर्धारित करने का है जहां इस प्रकार का हस्तक्षेप किया जा सकता है। महाराजा ने स्पष्ट किया कि प्रत्येक वायसराय राजनीतिक सचिव तथा यहां तक कि राजाओं के राजदरबार में नियुक्त राजनीतिक-अधिकारियों के साथ ही नीतियां एवं राजनीतिक आचार भी बदल जाते हैं। यह सिद्ध करने के लिये भी उदाहरणों का अभाव नहीं है कि एक नरेश को घोर अपमान सहना पड़ा तथा उसकी प्रतिष्ठा एवं महिमा को गम्भीर क्षति पहुँचाई गई। इसका प्रभाव उसके सम्पूर्ण चरित्र पर पड़ा। महाराजा ने कहा कि कमेटी द्वारा जो अभिस्ताव प्रस्तुत किये गये हैं वह भारत सरकार द्वारा घोषित अभिस्तावों के सीमातीत हो गये हैं। उन्होंने कहा कि जब विभिन्न प्रान्त अधिकतर स्वायत्तता के लिये तथा नये अधिकारों के उपहार के लिये दुहाई मचा रहे हैं, राजा लोग भी अपनी मूल आन्तरिक स्वायत्तता के पुनः स्थापन की प्रत्याशा करते हैं।[1]

---

१. नरेन्द्र मण्डल में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २७-२-१६३०, नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, फरवरी १६३०, पृ० १२३-२६

"....एक अधिकतम् महत्वपूर्ण विषय जो समाश्वत रूप से उपयुक्त है, वह यह है कि प्रत्येक राजा तथा उससे सम्बन्धित शासन को इस विषय पर अपना अभिवेदन प्रस्तुत करने का पूर्णरूप से अवसर दिया जाना चाहिये ....वायसराय या राजनीतिक-सचिव के परिवर्तन के साथ तथा यहां तक कि कुछ अवस्थाओं में अपने राजदरबारों में नियुक्त राजनीतिक-अधिकारियों के परिवर्तन के साथ भी बहुधा नीतियों एवं राजनीतिक आचारों में परिवर्तन आ जाने को सम्भाव्यता है। तथा दुर्भाग्यवशात् भूतकाल में ऐसी भी घटनायें हुई है जबकि न केवल सम्बन्धित शासक का अनादार किया गया है— इसका उद्देश्य चाहे उपकारी रहा हो या अपकारी— परन्तु बहुधा उस शासक

बटलर कमेटी द्वारा किये गये अभिस्तावों से महाराजा अधिक संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने इस असंतोषजनक निष्पत्ति को विवादास्पद प्रश्नों की अत्यधिक विषम प्रकृति पर आरोपित किया और इस प्रतिवेदन को इन समस्याओं को हल करने की दिशा में पहला कदम समझते हुये आशा प्रकट की कि इस मामले पर और अधिक विमर्श करने से राज्य के पक्ष में न्याय एवं उचित परिणाम निकल सकते हैं। उनके विचार में प्रतिवेदन में सर्वोपरि सत्ता के सम्बन्ध में कुछ ऐसे नवीन सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया था जो आंग्ल-शासन के प्रतिज्ञात वचनों एवं विभिन्न साम्राजिक घोषणाओं के प्रसंग में असमर्थनीय थे। उनका विश्वास था कि यदि इस समस्या को, विगत पूर्वादर्शों से निरपेक्ष होकर तथा उचित एवं अनुचित के निरूपण के

के साथ घोर अन्याय किया गया तथा उसकी प्रतिष्ठा एवं महिमा को ही क्यों वरन् उसके सम्पूर्ण चरित्र को अप्रतिकार्य क्षति पहुंचाई गई "...... इसके अतिरिक्त, कमेटी ने वास्तव में एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, उसने, स्वयं भारत सरकार द्वारा अब तक अध्यर्थित हस्तक्षेप के क्रियाक्षेत्र के दीर्घीकरण का सुझाव रखा है।.... यह वास्तव में नए सिद्धान्त एवं नवीन अध्यर्थनायें हैं। यह घातक सिद्धान्त हैं क्योंकि यह हस्तक्षेप को उन परिस्थितियों पर आश्रित करते हैं जिन पर हो सकता है कि शासक का कोई वश ही न हो ... ... अवश्यमेव, हमारे परम्परागत प्रतिष्ठानों को तथा प्रथाओं को अज्ञानी सनक एवं महारव द्वारा अभ्यर्थित परिवर्तनों के सामने अरक्षित नहीं छोड़ा जा सकता .... विभिन्न प्रान्त, अधिकतर प्रान्तीय स्वायत्तता के लिये, केन्द्रीय शासन के हस्तक्षेप से अधिकतर मुक्ति के लिये तथा अपने निज के सत्ताधिकार पर अल्पतर आयन्त्रण के लिये, चित्कार कारी दुहाइयां मचाते रहे हैं। वह नवीन अधिकारों का परिदान मांगते हैं। राज्य अपनी उस आद्य परिष्ठा के परावर्तन की मांग करते हैं जिस पर वास्तव में उनका स्वामित्व था। यदि आंग्ल-भारतीय विधान मण्डलों तथा प्रान्तीय शासनों को, उनके आन्तरिक प्रशासन में केन्द्रीय शासन के हस्तक्षेप की मात्रा को न्यूनतम करने के उद्देश्य से, अधिकतम स्वायत्तता दी जानी है तो देशी राज्य और भी अधिक न्याय संगति के साथ, अपनी आद्य आन्तरिक स्वयत्तता के प्रत्यर्पण की, मांग कर सकते हैं ताकि वे इसका निकटवर्ती या दूरवर्ती भविष्य में अनधिकार हस्तक्षेपों से संत्राण कर सकें।"

आधार पर निर्णीत किया जाता तो हितकारी परिणाम निकल सकते थे ।'

इसी बीच एक परिनियत आयोग को नियुक्त किया गया। यह आयोग जो 'साइमन आयोग' के नाम से विख्यात है, इस तथ्य की जांच करने के लिये भारत आया कि भारत में और अधिक संवैधानिक प्रगति करने की कहां तक आवश्यकता है। इन सभी क्रमिक उद्घाटनों— विशेष रूप से जैसा कि नेहरू प्रतिवेदन में परिकल्पित किया गया था आंग्ल-भारत द्वारा अखिल भारत के लिये अधिराज्य प्रतिष्ठा की मांग, बटलर कमेटी के निष्कर्ष तथा साइमन आयोग की नियुक्ति के परिणाम स्वरूप राजा लोग स्वभावतः उद्विग्न हो उठे थे।

लार्ड इर्विन का, जो छुट्टी पर इंग्लैन्ड जा रहे थे, विचार था कि वह इस अवसर का लाभ उठा कर, भारत की समस्याओं पर और अधिक विस्तृत रूप से विचार करने की आवश्यकता को साम्राजिक शासन के हृदयस्त करेंगे। राजाओं ने अनुभव किया कि उनके लिये भी वायसराय से मिलकर अपनी मांगों को उन्हें पूर्णरूप से समझा देने का यह उपयुक्त अवसर है। अतः नरेन्द्र मण्डल के चांसलर ने बम्बई में प्रतिनिधि राजाओं की एक सभा बुलाई। महाराजा गंगासिंह ने उस सभा की अध्यक्षता की। ७ जून १९२९ को यह सभा आरम्भ हुई तथा इसमें, बटलर कमेटी के अभिस्तावों पर राजाओं तथा राज्य के विचारों को स्पष्टार्थ ढंग से सूत्रबद्ध कर दिया गया ताकि भारत सरकार को राजाओं के अभिप्राय अभ्रान्त रूप से ज्ञात हो जायें।

नरेन्द्र मण्डल में भाषणों का लहजा बदल चुका था। इससे न केवल भारत सरकार को अपितुः आंग्ल-भारत की जनता को भी भारी विस्मय हुआ। बटलर कमेटी की योजनाओं के विरोध का बल स्पष्ट था। नरेशों के स्थान को सुरक्षित करने की तथा एक सुनिश्चित विचार पद्धति अपनाने की आवश्यकता थी।

सर जान साइमन ने ईंग्लैन्ड के प्रधानमन्त्री को संकेत किया कि भारत के शासन के उस अन्तिम रूप के बारे में, जिसमें राज्यों को भी सम्मिलित किया जाना है, केवल राजाओं की सहमति से ही कोई संकल्प करना सम्भव है। अक्टूबर १९२९ में जब लार्ड इर्विन वापस भारत लौटे

---

१. नरेन्द्र मण्डल, दिल्ली में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २७-२-१९३०, नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, फरवरी, १९३०, पृ० ९२-९३।

तो उन्होंने सूचित किया कि महामान्य सम्राट लन्दन में एक गोल मेज सम्मेलन बुलाना चाहते हैं ताकि सभी सम्बन्धित पक्षों के पारस्परिक विचार विमर्श द्वारा भारत की समस्याओं के समाधान को ढूंढने का प्रयास किया जा सके ।[1] महाराजा ने इस प्रस्ताव का सोत्साह स्वागत किया और कहा कि राजा लोग अपने आंग्ल-भारत निवासी भ्रातृगण के साथ अपने बन्धनों को भलीभांति समझते हैं तथा हम सबको उनकी संवैधानिक प्रगति अति-प्रिय है । महाराजा ने उन्हें आश्वासन दिया कि राजा लोग भारत को दो विसंवादी टुकड़ों में विभक्त करना कदापि नहीं चाहते हैं । उन्होंने उनकी महत्वाकांक्षाओं के प्रति राजाओं के पूर्ण समर्थन एवं स्वभाव का पुनर्वचन दिया ।[2]

गोल मेज सम्मेलन को नवम्बर १९३० में सम्मिलित होने के

---

१. 'गजट आफ् इन्डिया एक्सट्रा आर्डीनरी' ता० ३१ अक्टूबर, १९२९ ।

२. ता० २-११-१९२९ को 'एसोसिएटेड प्रेस आफ इन्डिया' के साथ महाराजा का समालाप —

"......... राजा लोग इस तथ्य को भलीभांति समझते है कि वह अपने आंग्ल भारत निवासी बन्धुओं के साथ रक्त, जाति एवं धर्म के बन्धनों से बंधे हुये हैं अतः वह आंग्ल-भारत द्वारा अधिराज्य प्रतिष्ठा की सम्प्राप्ति में रोड़े अटकाने की अथवा उसकी संवैधानिक उन्नति में बाधक बनने की किंचित् मात्र भी इच्छा नहीं रखते हैं । राजालोग इस बात की इच्छा तो क्या कल्पना भी नहीं कर सकते कि देश को भ्रातृ घातक वैमनस्य से एक दूसरे के साथ निरन्तर लड़ते रहने वाले दो विषम टुकड़ों में विभाजित कर दिया जाय तथा वह भी देश की एकता के लिये उतनी ही आन्तरिकता के साथ आशा करते हैं जितनी कि उसके मित्र आंग्ल-भारत के राजनीतिक नेता ...." "......... अतीत में भी उन्होंने अपने आंग्ल-भारत निवासी स्वदेश वासियों की न्याय संगत महत्वाकांक्षाओं के साथ अपनी सहानुभूति को पुनः पुनः अभिव्यक्त किया है । यही नहीं, गत जून मास में बम्बई सम्मेलन में उन्होने, आंग्ल-साम्राज्य के अभिन्न अंग के रूप में अधि-राज्य प्रतिष्ठा प्राप्त करने के आंग्ल-भारत के लक्ष्य का भी हार्दिक स्वागत किया है....." इसके आगे उन्होंने कहा कि "इस प्रकार के सम्मेलन (गोल मेज सम्मेलन) में राजाओं का समर्थन एवं सहयोग एक अत्यन्त यथार्थ एवं व्यावहारिक ढंग से प्राप्त हो सकेगा ।"

लिये इंग्लैन्ड बुलाया गया तथा १२ नवम्बर १६३० को 'हाउस आफ लार्डस्' में महामान्य सम्राट द्वारा उसका उद्घाटन किया गया। अपने उद्घाटन भाषण में सम्राट द्वारा इस सम्मेलन के उद्देश्यों की संक्षिप्त आवृत्ति की गई जैसे भारत की भावी शासन पद्धति पर विचार-विमर्श करना तथा उनके (सम्राट के) संसद के मार्गदर्शन के लिये उन आधारों के बारे में पारस्परिक मतैक्य को ढूंढ निकालना, जिन पर इस शासन पद्धति को स्थापित किया जाना है।[1] सम्मेलन में, आंग्ल प्रतिनिधि, आंग्ल भारतीय प्रतिनिधि तथा भारतीय राज्यों के प्रतिनिधि, ये तीन प्रत्यर्थी दल थे। भारतीय राज्यों के प्रतिनिधि मण्डल में अलवर, बड़ोदा, भोपाल, बीकानेर, धोलपुर, कश्मीर, नावानगर, पटियाला, रीवां तथा सांगली के शासक तथा सर प्रभाशंकर पट्टनी, सर मनुभाई मेहता, सरदार साहिबजादा सुल्तान अहमद खां, नवाब सर मोहम्मद अकबर हैदरी, सर मिर्जा एम. इस्माइल तथा कर्नल के. एन. हक्सर, सम्मिलित थे।[2] सम्मेलन की पश्चाद्वर्ती सभायें सेन्ट जेम्स पैलेस में हुईं।

अभाग्य वश सर लेस्ली स्काट के परिकल्प[3] के असत्य निर्देश के परिणाम स्वरूप इस सम्मेलन से सम्बन्धित आंग्ल-भारतीय प्रतिनिधि मण्डल की यह धारणा बन गई कि भारतीय राज्यों के प्रतिनिधि आंग्ल भारत की अभ्यर्थनाओं का विरोध करेंगे तथा आंग्ल-भारत को स्वराज्य एवं अधिराज्य प्रतिष्ठा से वंचित रखने में आंग्ल-शासन का साथ देंगे। परिस्थिति आशंका एवं अविश्वास से भरी हुई थी। आंग्ल भारतीय प्रतिनिधि भारतीय राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा अपनाये जाने वाले रुख के प्रति सशंक थे। भारतीय राज्यों के प्रतिनिधियों के लिये एक किंकर्तव्यविमूढ बना देने वाली स्थिति उत्पन्न हो गई थी। यदि आंग्ल-भारत की महत्वाकांक्षाओं के प्रति वह किसी प्रकार के बाधक सिद्ध होते तो अपनी

---

१. भारतीय गोल मेज सम्मेलन का उद्घाटन करते समय सम्राट का भाषण ता० १२ नवम्बर १६३० 'प्रोसीडिन्गस् आफ प्लेनरी सेशन आफ द राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस, १६३०-३१, पृ. ११।

२. वह बाद में बीकानेर के प्रधानमंत्री बन गये थे।

३. राज्यों के सन्धि सम्बन्ध सर्वोपरि राज्य-शक्ति के साथ होने के कारण, उन्हें, राज्यो की सहमति बिना किसी ऐसी आंग्ल भारतीय सत्ता को नहीं सौंपा जा सकता था जिस पर सम्राट का पूर्ण रूप से नियंत्रण न हो।

मातृभूमि के प्रति निष्ठावान नहीं होने का आरोप सम्भवतः उन पर लग सकता था । दूसरी ओर यदि आंग्ल-भारत के हक-तकाजों के साथ वे अपने आपको पंक्तिवद्ध करते तो उनको अपने स्वयं के उस विशिष्ट स्थान को, आपदग्रस्त करने का खतरा मोल लेना पड़ता, जिसकी रक्षा सम्राट पर निर्भर करती थी। अतः राज्यों के विशिष्ट स्थान की रक्षा करते हुये आंग्ल-भारत की यथार्थ मांगों का भी समर्थन करना किसी भी प्रकार से सहज कार्य नहीं था । इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये भी महाराजा गंगासिंह ही भवितव्य थे । अतः इंग्लैन्ड में महाराजा के निवास स्थान , कार्ल्टन होटल, में पूर्णाधिवेशन के आरम्भ होने से पूर्व एक असाधारण हलचल रहा करती थी । महाराजा ने सभी मतों के आंग्ल-भारतीय नेताओ को आमंत्रित किया तथा इस समस्या पर मतैक्य प्राप्त करने के उद्देश्य से उनके साथ विस्तृत विचार-विमर्श किया ।

ता० १७ नवम्बर १६३० को सम्मेलन के पूर्णाधिवेशन में सर तेज बहादुर सप्रू ने भारत की ओर से वाद आरम्भ किया तथा भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने के पक्ष में अत्यन्त शक्तिशाली तर्क प्रस्तुत किये, "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के एक अभिन्न अंग के रूप में हमारी निज की सीमांत रेखाओं के भीतर हमें स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये ।"[1] उन्होंने राजाओं के प्रति कहा कि राजा लोग पहले देशभक्त हैं और बाद में राजा और उनसे अनुरोध किया कि वे एक ऐसे संयुक्त भारत की रचना करने के लिये प्रस्तुत हो जायें जिसका प्रत्येक भाग आत्म शासित हो, जो अपनी सीमाओं के भीतर निरपेक्ष स्वतन्त्रता का उपभोग करता हो तथा जो शेष भाग के साथ यथोचित सम्बन्धों से विनियमित हो ।[2] इस व्यवस्था में नरेशों के सम्मिलन का उन्होंने तीन कारणों से स्वागत किया; प्रथमतः इसलिये कि उनको सम्मिलित करने से राज्य संघटन में एक स्थिरता उत्पन्न हो जायगी; द्वितीयतः इसलिये कि इससे एकीकरण की प्रक्रिया तुरन्त आरम्भ हो जायगी और अन्ततः इसलिये कि प्रतिरक्षा से सम्बन्ध रखने वाले विषयों में उनका अनुभव अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा ।[3]

---

१. गोल मेज सम्मेलन, लन्दन के पूर्णाधिवेशन में सर तेज वहादुर सप्रू का भाषण ता०. १६ नवम्बर, १६३०—' प्रोसीडिन्गास् आफ द् राउण्ड टेवल कान्फ्रेंस १६३०-३१, पृ. २३ ।

२. वही, पृ. २४ ।

३. वही, पृ. २५ ।

ठीक इसके बाद भाषण देते हुये महाराजा ने आंग्ल राज्य विशारदों से अनुरोध किया कि वे इस सुअवसर पर अपनी राजनीतिज्ञोचित क्षमता का परिचय दें तथा किन्हीं भी कठिनाइयों के कारण धैर्य न खोयें क्योंकि कुछ भी हो यह कठिनाइयां आखिरकार दुरत्य नहीं है। उन्होंने कहा कि "इस कार्य की अपरिमेयता ही इस कार्य को उत्तम रूप से किये जाने के योग्य बना देती है।" उन्होंने निर्देश किया कि भारत द्वारा अन्ततोगत्वा अधिराज्य प्रतिष्टा की उपलब्धि, सन् १६१७ की घोषणा में अन्तर्निहित है तथा अनति प्राचीन काल में भी इसका पुनर्वचन दिया गया है। उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कहा कि ऐसी परिस्थिति में किसी भी प्रकार की अन्यमनस्क कार्यवाहियों से तथा किसी भी प्रकार के अनाड़ी एवं अपरिष्कृत ढंग से संविधान का जीर्ण संस्कार करने से पार नहीं पड़ेगा। इसके साथ साथ उन्होंने सम्राट के प्रति राजाओं की निष्ठा तथा अपने संधि अधिकारों पर राजाओं द्वारा ग्रहण की गई अवस्था एवं अन्य सभी ऐसे विषयों पर जोर दिया जिनका नरेश प्रतिनिधित्व करते थे।[1] उन्होंने निश्चय पूर्वक कहा कि राजा लोग भारतीय हैं तथा वे लोग अपने देश की उन्नति के पक्ष में हैं और समस्त भारत की अधिकतम समृद्धि एवं संतुष्टि में भाग लेने की तथा उसमें अपना योग दान करने की इच्छा रखते हैं।[2] अतः उन्होंने

---

१. गोल मेज सम्मेलन के पूर्णाधिवेशने में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २७-११-१६३०-- गोल मेज सम्मेलन की कार्यवाहियां, १६३०-३१, पृ. २८-३०।

२. वही, पृ ३१-३२, —

"हम राजा लोग भारतीय हैं-- उसके प्राचीन इतिहास से हमारा गहरा सम्बन्ध है, हम उसकी मिट्टी के बने हुये हैं। उस प्रत्येक वस्तु से जिससे भारत को गौरव व समृद्धि प्राप्त हो हमें अत्याधिक लगन है। वह प्रत्येक वस्तु जो हमारी समृद्धता को धक्का पहुंचाती है अथवा हमारी संस्थाओं की स्थिरता को कमजोर करती है, हमारी तरक्की में बाधक हैं और हमारे गौरव को कम करती है।"

"हम भारतीय राज्यों के निवासी, समस्त भारत की अधिकतम समृद्धि एवं संतुष्टि में भाग लेने तथा उसमें अपना योगदान करने की इच्छा रखते हैं। मुझे विश्वास है कि भारतीय राज्यों तथा आंग्ल-भारत से संरचित एक संघीय प्रणाली के शासन द्वारा हम यह योगदान सर्वोत्तम ढंग से कर सकते हैं।"

राज्यों के हित में न्याय संगत सुरक्षणों सहित एक सन्धान राज्य स्थापित करने की योजना का स्वागत किया तथा नरेशों की महानता के साथ भारत की महानता में अपनी ध्रुव श्रद्धा की अभिपुष्टि की। उन्होंने निर्देश किया कि इस कारण से हमें सर्व प्रथम इस विभिन्नता को स्वीकार करना चाहिये। हमें असम्भव एकरूपता में नहीं वरन् सम्मिलित विभिन्नता में एकता को ढूंढना चाहिये। उन्होंने सम्मेलन को विश्वास दिलाया कि राजा लोग अपनी मातृभूमि की अधिकतम समृद्धि एवं संतुष्टि में भाग लेने के लिये तथा उसमें अपना योगदान करने के लिये उद्यत हैं। उन्होंने अपनी इस दृढ धारणा को भी व्यक्त किया कि राज्यों तथा आंग्ल-भारत से संरचित एक संघीय प्रणाली के शासन द्वारा ऐसा किया जा सकता है यद्यपि दोनों सह-भागियों की परिस्थिति भिन्न है– राज्य पहले से ही प्रभुत्व सम्पन्न एवं आत्म शासित हैं जबकि आंग्ल–भारत को उसकी सत्ता निक्षेपण द्वारा प्राप्त है, फिर भी इन दोनों को सम्बद्ध करने के उपाय को खोजना सम्भव है। किन्तु उन्होंने चेतावनी दी कि इस अवस्था परिवर्तन के मध्य में एक पर्याप्त अन्तर्वर्ती अवधि अनिवार्य रूप से होनी चाहिये तथा इस सहभागिता को बलप्रयोग द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता अतः इसका उद्भव मुक्त संकल्प एवं स्वेच्छा से ऐसी शर्तों पर होना चाहिये जिनसे राज्यों के समुचित अधिकार सुरक्षित रह सकें।[1] इस विषय पर राजाओं द्वारा प्रस्तुत की गई युक्ति को विशद करते हुये उन्होंने निर्देश किया कि राजाओं के सन्धि अधिकारों की विद्यमानता को मौलिक रूप से मान्यता देना अत्यावश्यक है तथा इन अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिये और राजाओं की सहमति विना किसी एक पक्षीय कार्यवाही से इनको हस्तान्तरित नहीं किया जाना चाहिये। उन्होने विभिन्न सन्धियों के अन्तर्गत राजाओं के अधिकारों एवं दायित्वों से सम्बन्धित समस्त न्याय योग्य विषयों पर विचार एवं निर्णय करने के लिये एक पूर्ण अधिकार प्राप्त सर्वोच्च न्यायालय स्थापित करने की मांग की। इसके अतिरिक्त उन्होंने साधिकार कहा कि उनके राज्यों के नितान्त आन्तरिक मामलों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों में, उन राज्यों की अनुपस्थिति में उनके पक्ष के विरुद्ध मामला नहीं चलाया जाना चाहिये।

---

१. गोल मेज सम्मेलन के पूर्णाधिवेशन में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० १७–११–१९३०–गोल मेज सम्मेलन के पूर्णाधिवेशन की कार्यवाहियां, १९३०–३१, पृ. ३१–३२।

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये उन्होंने, राजनीतिक सचिव के साथ कार्य करने के लिये तथा वायसराय को परामर्श देने के लिये भारतीय राज्यों की एक परिषद् बनाने की सिफारिश की।[1] अपने भाषण के समाप्त करने के पूर्व उन्होंने सम्राट के प्रति राजाओं की निष्ठा तथा मातृभूमि के प्रति उनकी भक्ति पर एक बार फिर जोर दिया।

नरेशों द्वारा इस प्रकार के मत को ग्रहण किये जाने की प्रत्याशा किसी को नहीं थी अतः इससे सबको विस्मय हुआ। भारत को हर्ष हुआ तथा इंग्लैण्ड के प्रतिक्रिया वादियों को आश्चर्य। आंग्ल-प्रधान मन्त्री ने भी कहा कि संघ के पक्ष में राजाओं की घोषणा ने न केवल हमारे हृदयों को हर्षित किया है वरन् हमारे कर्तव्यों को भी सुलभ बना दिया है।[2] तथा भारत सरकार ने व्यक्त किया कि इस प्रकार की स्थिति का सामना करने के लिये उनके सचिवालय के पास कोई प्रस्तुत योजना नहीं है। यहां तक कि महात्मा गांधी ने भी, जब सन् १९३१ में वे गोलमेज सम्मेलन के अधिवेशन में उपस्थित हुये, कहा कि– मैं अनुभव करता हूँ तथा मुझे विदित है कि राजा लोगों को अपनी प्रजा के हित सर्वप्रिय हैं। मैं जानता

---

१. गोल मेज सम्मेलन के पूर्णाधिवेशन में महाराजा गंगासिंह का भाषण, ता० १७–११–१९३०, गोल मेज सम्मेलन के पूर्णाधिवेशन की कार्यवाहियां, १९३०–३१, पृ० ३१–३२।

२. सर जॉन कमिंग की 'पोलिटिकल इन्डिया १८३२–१९३२' में सर रॉबर्ट अर्सकिन द्वारा प्रदत्त १४ वें अध्याय 'द पोलिटिक्स आफ द इन्डिया स्टेटस, द चेम्बर आफ प्रिन्सेज एन्ड द फीडरल आइडिया' के पृ० २६६ पर वे कहते हैं:—

"नरेशों की घोषणा ने परिस्थिति को आमूल परिवर्तित कर दिया है .... इसने एक साथ ही न केवल हमारी राजनीतिक दूरदृष्टि को असीमित कर दिया है, न केवल हमारे हृदयों को हर्षित कर दिया है, न केवल हमें हमारी आंखें उठा कर एक त्रिभायी क्षितिज को दृष्टिगत करने का अवसर दिया है अपितु हमारे कार्यों को भी सुलभ बना दिया है। एक यथार्थतः संयुक्त संघबद्ध भारत के इष्टप्रदेश तक पहुंचाने वाले मार्ग को उद्घाटित करने में नरेशों ने अधिकतम् मूल्यवान अंशदान दिया है।"

गोल मेज सभा के पूर्णाधिवेशन की कार्यवाहियां १९३०–३१, पृ० १७३।

हूँ कि उनके हितों को सुरक्षित रखने के लिये वह कट्टरता से दावा करते हैं ..... मैं उनका शुभ चिन्तक हूँ, मैं उनके लिये अधिकतम् ऐश्वर्य की कामना करता हूँ तथा मैं यह भी वन्दना करता हूँ कि उनका ऐश्वर्य एवं उनका क्षेम उनकी अपनी प्यारी जनता, उनकी अपनी प्रजा के त्वरण के लिये उपयुक्त हो।"[१]

राजाओं के मनोभाव में इस प्रकार के परिवर्तन के कारणों को ढूंढने के लिये अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं हैं। कुछ ज्ञानोदीत नरेशों तथा विशेष रूप से महाराजा गंगासिंह द्वारा ग्रहण की गई विचार-पद्धति विश्वासरूपेण इस परिवर्तन का एक मुख्य कारण थी। उन्होंने सदैव एक ऐसे संयुक्त स्वायत्त भारत का मानसदर्शन किया था जिसमें नरेशों के अधिकारों एवं परमाधिकारों को सुरक्षित रखा गया हो। इस महत्वपूर्ण वक्तव्य ने सम्मेलन के स्वरूप को पूर्णतया बदल दिया। राज्यों के प्रति केन्द्र के उत्तरदायित्वों तथा नरेशों के साथ केन्द्र के सम्बन्धों के प्रश्न को बहाना बना कर अंग्रेज केन्द्र के उत्तरदायित्व पूर्ण शासन स्थापित करने के विषय में टाल-मटोल कर रहे थे किन्तु अब उनका यह बहाना असमर्थनीय हो गया। ऐसे दो भारत होने की युक्ति को, जो एक दूसरे से स्वतन्त्ररूप से विकसित हो सकते हों, महाराजा का समर्थन कभी भी प्राप्त नहीं हुआ था तथा एक देशभक्त भारतीय के नाते उन्हें अपनी मातृभूमि की महानता तथा भारत के साथ देशी राज्यों की अविकल एकता में अगाध श्रद्धा थी।

संघीय उत्तरदायित्व को सिद्धान्त रूप में विनिश्चित कर लिये जाने के पश्चात, इसका विवरण निष्पादित करने के लिये, लार्ड चांसलर लार्ड सेन्की की अध्यक्षता में एक कमेटी, जिसे 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' के नाम से जाना जाता है, नियुक्त की गई।[२] इस कमेटी में कार्य करने के लिये भारतीय प्रतिनिधि मण्डल में से जिन सदस्यों को मनोनीत किया गया था उनमें महाराजा गंगासिंह, भोपाल के नवाब, सर अकबर हैदरी तथा सर मिर्जा इस्माइल सम्मिलित थे। राज्यों के विचारों को कमेटी के समक्ष रखने के कार्य में महाराजा ने प्रमुख भाग लिया तथा उनके कार्यों की कमेटी में तथा उसके बाहर लार्ड सेन्की द्वारा सराहना की गई। उन्होंने इसके लिये

१. गांधी, 'द् इन्डियन स्टेटस् प्राब्लम', पृ० ५५--५६।
२. इसे सेन्की कमेटी भी कहा जाता है।

महाराजा को धन्यवाद देते हुये कहा कि यदि मुझे महाराजा की सहायता एवं मन्त्रणा प्राप्त नहीं होती तो फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी के अध्यक्ष के रूप में मेरा स्वयं का कार्य दूना कठिन होता।[1] भारत के राज्य-सचिव ने भी सम्मेलन में महाराजा द्वारा किये गये अत्युत्तम कार्यों के प्रति अपनी प्रशंसा व्यक्त की और कहा कि इस तथ्य को कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता कि महाराजा ने सम्मेलन में सर्वाधिक प्रमुख भाग लिया और उन्होंने न केवल भारत में एक संघीय प्रणाली का शासन स्थापित करने के पक्ष में अत्यन्त महत्वशाली निर्णय लिया अपितु भारत के लिये सन्धान राज्य के पथ को एक आदर्श पथ मान कर उस पर चलने के लिये अपने अन्य नरेश भ्रातृगण को भी प्रोत्साहित किया।[2]

जनवरी १९३१ में प्रथम गोल मेज सम्मेलन को सितम्बर १९३१ तक के लिये स्थगित कर दिया गया। प्रतिनिधियों ने भारत प्रत्यागमन किया। इन्डियन नेशनल कांग्रेस जैसी प्रमुख भारतीय राजनीतिक पार्टी द्वारा प्रथम गोल मेज सम्मेलन में सम्मिलत होने से इन्कार कर देने का महाराजा को खेद था। कांग्रेस के अधिकांश वरिष्ठ नेता उस समय कारावास में थे। इनमें से कुछ नेता जैसे महात्मा गाँधी, महाराजा के निजी मित्र थे तथा महाराजा उनका अत्यधिक आदर करते थे। कुछ अन्य भारतीय नेताओं के साथ साथ महाराजा भी इस तथ्य को यथार्थ रूप से महसूस

---

१. महाराजा गंगासिंह को लार्ड सेन्की का पत्र ता० २२-१-१९३१-- नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, मार्च १९३१, परिशिष्ट 'जे', पृ० ३१-- "मैं आशा करता हूं कि जब तक यह पत्र आपके पास पहुंचेगा भारत में आपके अपने देशवासी आपका हार्दिक स्वागत कर चुके होंगे। इस स्वागत के आप पूर्ण रूप से अधिकारी हैं।

आपने गोल मेज सम्मेलन में जो महत्वपूर्ण भाग लिया है उसके लिये कृपया मेरा सद्भावी धन्यवाद स्वीकार करें। प्रारम्भ से अन्त तक आपने हम सबका अत्युत्तम अग्रणीत्व किया। आपके सहयोग एवं परामर्श बिना फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी के अध्यक्ष के रूप में मेरा स्वयं का कार्य दुगना कठिन होता। इसके लिये मैं आपका आभारी हूं ....।"

२. महाराजा गंगासिंह को भारत के राज्य-सचिव डब्लू. वेजवुड वेन का पत्र ता० २१-१-१९३२,— नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, मार्च १९३१, परिशिष्ट 'आई', पृ० ४२।

करते थे कि जब तक सम्मेलन में कांग्रेस भाग नहीं लेगी तब तक उसके विचार-विमर्शों का कोई लाभदायक परिणाम नहीं निकल सकेगा। अतः कांग्रेस को सम्मेलन में सम्मिलित करने के महत्व को सरकार के हृदयस्थ करने में उन्होंने अपने कुछ आंग्ल-भारतीय मित्रों के साथ प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किये। अन्ततोगत्वा यह प्रयत्न सफल हुये। कांग्रेसी नेताओं को मुक्त कर दिया गया। गांधीजी और वायसराय के बीच में विचार गोष्ठी हुई और अन्त में महात्मा गांधी को अपना एक मात्र प्रतिनिधि मनोनीत करके कांग्रेस ने सम्मेलन की विचारणाओं में भाग लेने का निर्णय कर लिया। तथापि गांधीजी द्वारा इंग्लैन्ड के लिये प्रस्थान करने तक इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बाधायें उपस्थित होती रहीं किन्तु महाराजा ने, वायसराय, गांधीजी तथा कांग्रेस में अपने निजी मित्रों व अन्य व्यक्तियों के साथ अनौपचारिक विचार विमर्शों द्वारा द्वितीय गोल मेज सम्मेलन में कांग्रेस के भाग ग्रहण को सुनिश्चित करने के लिये प्रत्येक कदम पर भरसक प्रयत्न किये। १० जून १६३१ को महात्मा गांधी महाराजा से भेंट करने बम्बई में महाराजा के निवास स्थान 'देवी भवन' गये तथा दोनों ने देर तक स्पष्ट ढंग से बातचीत की। इसी बातचीत के मध्य में महाराजा ने गांधीजी की इंग्लैन्ड यात्रा के लिये अपनी देखरेख में उचित व्यवस्था करने की इच्छा व्यक्त की और गांधीजी ने विनोद में महाराजा को वाष्प--पोतों का रसदपूरक कहा। बाद में गांधीजी की इंग्लैंड यात्रा का प्रबन्ध, 'मुलतान' नामक जलयन की पीछे की छत पर गांधीजी की पाकशाला के लिये विशेष सुविधा के साथ, वस्तुतः महाराजा के हाउस-होल्ड विभाग द्वारा ही किया गया।[1] महाराजा ने गांधीजी के साथ अपनी भेंट में कांग्रेस द्वारा गोल मेज सम्मेलन में भाग लेने के महत्व पर तथा सम्मेलन में गांधीजी की उपस्थिति की अनिवार्यता पर अधिकतम बल दिया।[2] गांधीजी के साथ इस अवसर पर 'बातचीत के विषयों' की एक प्रतिलिपि से ऐसा प्रतीत होता है कि एक दूसरे के पारस्परिक हितों से सम्बन्धित अनेक अन्य विषयों पर भी विचार-विमर्श किया गया था।[3] २२ जुलाई १६३१ को महाराजा ने गोल मेज सम्मेलन की फेडरल स्ट्रक्चर

---

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ६१४।२८, महाराजा गंगासिंह का पत्र ता० ४-७-१६३१।
२. वही, ता० ६-७-१६३१।
३. वही, पृ० ११-१५।

कमेटी के नये सदस्यों में महात्मा गांधी के नाम को देखकर इस पर हर्ष प्रकट करते हुये गांधीजी को पत्र लिखा।[1] महात्मा गांधी तथा महाराजा की मुलाकात का यह एकमात्र अवसर नहीं था। इससे पूर्व भी दोनों अनेक बार मिल चुके थे। इससे प्रकट होता है कि महाराजा गांधीजी में कितनी श्रद्धा रखते थे तथा यह भी संदेहातीत रूप से सिद्ध हो जाता है कि वे देश के लिये स्वतंत्रता प्राप्त करने के महान कार्य में अपना सहयोग देने के लिये कितने अधिक आतुर थे।

द्वितीय गोल मेज सम्मेलन ने सितम्बर १६३१ में अपना कार्य आरम्भ किया। संविधान बनाने का मुख्य कार्य फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी के पास था जिसमें अब महात्मा गांधी एवं पं मदनमोहन मालवीय भी सम्मिलित थे। इसी बीच नरेशों में परस्पर कुछ मतभेद उत्पन्न हो गये अतः महाराजा ने यद्यपि द्वितीय गोल मेज सम्मेलन में भाग लिया तथा इसके विस्तृत विचार-विमर्शों में उनका योगदान अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुआ फिर भी उन्होंने इसमें प्रथम गोल मेज सम्मेलन जितनी दिलचस्पी नहीं ली। किन्तु महाराजा निराश होने वाले व्यक्ति नहीं थे और इंग्लैण्ड से वापस भारत लौटते ही उन्होंने अपने नरेश भ्रातृगणों में एकता लाने के लिये अपनी समस्त शक्ति लगादी। सन् १६३२ में नरेशों तथा मंत्रियों के दिल्ली सम्मेलन में वे पटियाला के महाराजा भूपेन्द्रसिंह के साथ इस अभीष्ट एकता को प्राप्त करने के कार्य में सफल हुये। इस सम्मेलन में उन अनिवार्य सुरक्षणों को निर्धारित कर दिया जिनके अन्तर्गत नरेश लोग संघ में मिलने के लिये तय्यार थे।[2]

इस मुख्य कार्य के सम्पन्न हो जाने पर तथा इस विषय में मुख्य सिद्धान्तों को ग्रहण कर लिये जाने के पश्चात नरेशों के लिये तृतीय गोल मेज सम्मेलन में भाग लेना आवश्यक हो गया। अतः नरेशों के स्थान पर राज्यो के वरिष्ठ मंत्री संयुक्त प्रवर समिति में भाग लेने के लिये इंग्लैन्ड गये जिनमें बीकानेर के प्रधान मंत्री सर मनुभाई मेहता भी सम्मिलित थे।

---

१. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ६१४।२८, महाराजा गंगासिंह जी का पत्र ता० २२-७-१६३१।

२. नरेन्द्र मण्डल द्वारा पारित प्रस्ताव (कार्य-सूची सं० १०) ता० १-४-१६३२, नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, मार्च-अप्रेल, १६३२, पृ० १०१, ५७-७४।

सन्धिवार्ता की अवधि में महाराजा ने छोटे राज्यों के लिये पर्याप्त प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के कार्य की ओर विशेष ध्यान दिया तथा यह संतोषप्रद बात है कि संघीय विधान मण्डल में सदस्यता के विनिधान का अन्तिम निर्णय लेते समय महाराजा की इस मांग को यथा सम्भव पूर्ण किया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि संघ बनाने की योजना का अंकुरण बहुत पहले सन् १९१४ में ही हो गया था जब उस दूरदर्शी वायसराय लार्ड हार्डिंग ने इस प्रकार के संयुक्तिकरण की साध्यता को अभिज्ञात कर लिया था विशेष रूप से एक ऐसे तन्त्र को विकसित करने की योजना जिसके द्वारा दोनों भारतों (आंग्ल–भारत तथा राजसी–भारत) के बीच में एक सतत एवं सहज सहकारिता स्थापित हो सके जो कि स्वराज्य प्राप्त करने के लिये नितान्त अनिवार्य थी। जनवरी १९१४ में महाराजा गंगासिंह ने वायसराय को एक मसविदा प्रस्तुत किया था जिसमें उन्होने सुझाव रखा था कि समस्त देशी राज्यों का प्रतिनिधान करने वाले एक एक संघीय मण्डल का क्रमशः विकास किया जा सकता है तथा यदि आवश्यक हो तो इस मण्डल में आंग्ल–भारतीय प्रांतों का भी उनके तत्सम्बधी राज्यपालों तथा उप–राज्यपालों द्वारा प्रतिनिधान किया जा सकता है।[1] इस प्रकार आंग्ल–भारत तथा भारतीय--भारत को एक प्रकार से संघबद्ध करने की योजना विचार विषय बनी और महाराजा के इस वक्तव्य की, वायसराय तथा भारतीय समाचार पत्रों दोनों द्वारा उच्च स्वर से प्रशंसा की गई। लार्ड हार्डिंग ने कहा कि महाराजा द्वारा व्यक्त किये गये विचारों के साथ उन्हे पूर्ण सहानुभूति है।[2] समाचार पत्रों ने विवेचना की कि कुछ लोगों में देशी राज्यों की सर्वथा उपेक्षा करने की प्रवृति है तथा वे लोग इस तथ्य को भूल जाते हैं कि देशी राज्यों के शासक अपने हितों को सम्पूर्ण देश के हितों से भिन्न नहीं समझते हैं। समाचार पत्रों ने इसके आगे लिखा कि शासकों द्वारा

---

१ भारत सरकार में देशी राज्यों के प्रतिनिधान तथा नरेशों के परिषद का निर्माण करने के विषयों पर महाराजा गंगासिंह का मसविदा ता० ५-१-१९१४।

२. 'चीफस् कॉलिज कान्फ्रेन्स', दिल्ली, में महाराजा गंगासिंह के भाषण के प्रत्युत्तर में लार्ड हार्डिंग का भाषण ता० ३–३–१९१४।
"मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि बीकानेर के महाराजा द्वारा उनके भाषण में व्यक्त किये गये भावों को मेरी सम्पूर्ण सहानुभूति प्राप्त है।"

उनके शासनक्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों में, उनके तथा सरकार के बीच में और अधिक समीपस्थ विचार विनिमय की मांग पूर्णरूप से न्याय्य है तथा इसके अतिरिक्त इस प्रकार के विचार विनिमय सम्भवतः साम्राजिक शासन के लिये भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।[१] ता० १६ मार्च १९१४ के 'टाइम्स आफ इन्डिया' ने सम्मेलन का विवरण देते हुये लिखा कि महाराजा द्वारा की गई अधिघोषणा, जिसका बाद में वायसराय ने समर्थन किया, ध्यान देने योग्य है। इस पत्र ने आगे लिखा कि नरेशों की एक परिषद बनाने की योजना तो लार्ड लिटन के समय में ही बन गई थी किन्तु उसे अव्यवहार्य मानकर अब तक उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। उस समय उस योजना पर जो आपत्ति उठाई गई थी उसकी प्रामाणिकता को समझना कठिन नहीं है। किन्तु अब जो प्रस्ताव महाराजा द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं वे उचित एवं नम्र हैं क्योंकि उनमें भारत के शासन में किसी भी प्रकार का सहभाग प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं की गई है वरन् नरेशों, उनके राज्यों तथा उनकी प्रजा से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर केवल उनसे परामर्श करने की मांग की गई है। महाराजा ने कहा कि कोई भी व्यक्ति जो इस स्थिति को यथार्थ रूप से समझता है मेरे इन शब्दों की अपरिहार्यता पर सन्देह नहीं कर सकता।

प्रथम महायुद्ध के उद्भेद ने तथा देश एवं साम्राज्य के प्रति नरेशों की अटल आसक्ति एवं भ्रुवक परायणता ने आंग्ल-शासन की चिन्तन शैली को यथेष्ट मात्रा में प्रभावित किया और शासन के विषयों में नरेशों को सम्मिलित करने की नवीन नीति का अंगीकरण और अधिक सुनिश्चित हो गया। युद्ध समाप्ति के शीघ्र बाद जब सन् १९१७ में लार्ड मान्टेग्यू भारत की तत्कालीन परिस्थितियों का अनुशीलन करके उनका विवरण लिखने भारत आये तो उन्होंने अपने प्रतिवेदन में प्रस्तावित सुझावों में नरेशो तथा भारत सरकार के बीच में दोनों के सामान्य हितों के विषयों पर समन्वय करने के किसी साधन का प्रावधान रखने का अभिस्ताव किया।[२] सन् १९१७ में बीकानेर में आयोजित नरेशो एवं मन्त्रियो के सम्मेलन में भी इस योजना को विचार विषय बनाया गया।

तथापि आंग्ल-भारत में एक ऐसा समुदाय था जो नरेशों से

---

१. 'पायोनियर' ता० ११-३-१९१४।

२. महाराज कुमार रघुवीरसिंह, 'इन्डियन स्टेट्स एण्ड द न्यू रिजीम', पृ० ७०-७१।

कुपित था तथा उन लोगों की धारणा थी कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये आवश्यक सुधारों के मार्ग में देशी राज्य तथा उनके नरेश बाधक हैं। भारत सरकार के गृहमन्त्री सर मेल्काम हेली जैसे कुछ प्रमुख आंग्ल अधिकारियों का भी यही मत था।[१] देशी राज्यों में आंग्ल-भारत से विचारों का अन्तःसरण, अधिकांश राज्यों में उस समय विशेष रूप से प्रवर्तमान परिस्थितियों में, संक्रामक सिद्ध हो रहा था। १६ अगस्त १९२६ को बीकानेर में मन्त्रियों के सम्मेलन का उद्घाटन करते समय महाराजा गंगासिंह ने इस स्थिति का अत्यन्त जीवन्त वर्णन किया। उन्होंने कहा कि इस तथ्य के बारे में दो राय नहीं हो सकती कि नरेशों का भविष्य विशद रूप से स्वयं नरेशों पर तथा उस सीमा पर निर्भर करता है जिस सीमा तक वे अपने राज्यों तथा अपनी प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों को समझते हैं तथा इन कर्तव्यों का पालन करते हैं। उन्होंने नरेशों को चेतावनी दी कि युग बदल रहा है तथा उन लोगों को इस तथ्य के प्रति विस्मरणशील नहीं रहना चाहिये कि कुछ विशिष्ट विचारधाराओं के समर्थक समुदायों की प्रवृत्ति उनके पक्ष में नहीं है और उन्हे अब अपने आपको नवीन परिस्थितियों के अनुयुक्त करना होगा।[२]

परिस्थितियां लगभग गतिहीन ही रहीं तथा इस आदर्श का अंगीकरण केवल विचार विमर्श का विषय ही बना रहा परन्तु जब आंग्ल-भारत में और अधिक सुधार करने के प्रश्न को विचाराधीन किया गया तथा जब विभिन्न समितियों एवं सम्मेलनों ने भावी शासन के रूप पर विमर्श करना आरम्भ किया तो इसकी ओर अधिक ध्यान दिया जानेलगा।

सर्वदलीय सम्मेलन की कार्यवाइयों ने, जिनमें नरेशों के प्रति "निर्भ्रान्त रूप से विद्वेष की भावना" को प्रकट किया गया था तथा जिनमें "एक अतिव्याप्त ढंग से सभी प्रकार के अपशब्दों एवं कटूक्तियों का बिना किसी मर्यादा के प्रयोग किया गया था", नरेशों की आंखें खोलदीं।[3]

---

१. महाराज कुमार रघुबीरसिंह, 'इन्डियन स्टेटस एन्ड द् न्यू रीजीम', पृ० ११५।

२. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २२७८।२६, भाग तृतीय सी., महाराजा गगासिंह का भाषण ता० १६-८-१९२६।

३. बीकानेर के महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २२७८।२६, भाग तृतीय-सी., सर मनुभाई मेहता के इंग्लैन्ड विदा होने के अवसर पर उनके सम्मान में महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० ८-६-२९२८।

इसके अतिरिक्त महाराजा गंगासिंह, संघीय केन्द्रों द्वारा इकाइयों के अनन्य कार्यक्षेत्रों में अनधिकार हस्तक्षेप करने की दुर्नामा प्रवृत्ति से पूर्णतया परिचित थे अतः उन्होंने दूरदर्शिता से काम लिया और ठीक आरम्भ से ही इस बात पर बल दिया कि प्रान्तों के साथ किसी भी संघ में राज्यों को सम्मिलित करने से पूर्व शर्त के रूप में कुछ आवश्यक सुरक्षणों को उपबन्धित किया जाना चाहिये। ये शर्तें, जैसा कि अप्रेल १६३२ में नरेन्द्र मण्डल द्वारा पारित एक प्रस्ताव में घोषित किया गया, इस प्रकार हैं-- कि आवश्यक सुरक्षणों को संविधान में समाविष्ट किया जाना चाहिये, कि राज्यों के सन्धियों, सनदों तथा प्रतिज्ञाओं से उद्भूत होने वाले अधिकार अक्षत रहने चाहिये, कि राज्यों की प्रभुसत्ता अक्षुण्ण रहनी चाहिये तथा राज्यों के प्रति सर्वोपरि राज्य-शक्ति के दायित्व अपरिवर्तित रहने चाहिये।[२]

सितम्बर १६३२ में गोलमेज सम्मेलन के तृतीय अधिवेशन में इन मांगों को सुसम्पादित करने के लिये तथा संघ की नवीन योजना में इनको प्रतिभूत कराने के लिये राज्यों द्वारा सर मनुभाई मेहता तथा सर लियाकतहयात खां को प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। सर मनुभाई ने महाराजा गंगासिंह तथा अन्य नरेशों की ओर से प्रतिनिधित्व किया। वहां से वापस लौट कर उन्होंने जो अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया उसमें उन्होंने इन शर्तों का यथा निम्नलिखित

---

२. नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, मार्च-अप्रैल, १६३२, पृ. १०१-कार्यसूची सं. १०-गोलमेज सम्मेलन के लिये देशी राज्यों के प्रतिनिधि मण्डल के कार्य सम्बन्ध में प्रस्ताव —

"यह मण्डल घोषणा करता है कि भारतीय राज्य यह मानकर अखिल भारतीय संघ में सम्मिलित होंगे कि सर्वोपरि राज्य-शक्ति उनके लिये निम्नलिखित प्रति-भूतियों को उपलब्ध करने के उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लेगी :—

(क) कि आवश्यक सुरक्षणों को संविधान में सन्निहित किया जाएगा,
(ख) कि संविधान के अन्तर्गत, सन्धियों, सनदों या प्रतिज्ञाओं से उद्भूत होने वाले उनके अधिकार अनुल्लंघनीय एवं अनुल्लंघित रहेंगे।
(ग) कि उनके राज्य की प्रभुसत्ता एवं आन्तरिक स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहेगी तथा उसका पूर्णतया आदर किया जायगा और राज्यों के प्रति सर्वोपरि राज्य-शक्ति के दायित्व अपरिवर्तित रहेंगे...... "

संक्षिप्त विवरण दिया—

(१) भारतीय राज्यों की अखण्डता, उनकी आन्तरिक प्रभुसत्ता तथा उनकी पूर्ण स्वायत्तता के प्रतिपालन के लिये अनिवार्य समझे जाने वाले सभी आवश्यक सुरक्षणों को नवीन संविधान में प्रतिभूत किया जाय।

(२) विधान परिषद में राज्यों के प्रतिनिधित्व के बारे में पचास प्रतिशत के अधिप्रतिनिधित्व के बारे में उनकी मांगों को पूरा किया जाय।

(३) नरेन्द्र मण्डल के सदस्य प्रत्येक राज्य को, अवशिष्ट राज्यों के लिये सामूहिक प्रतिनिधित्व की थोड़ी गुंजाइश छोड़ते हुये, संघीय विधान मण्डल में वैयक्तिक रूप से एक मत का स्वयमेव अधिकार प्राप्त होना चाहिये।

(४) राज्यों के सन्धि अधिकारों को अक्षत रखा जाय तथा उनकी स्वयं की अविमुख अनुमति बिना उनमें किसी भी प्रकार का पक्षान्तर या प्रकारान्तर नहीं किया जाये तथा राज्यों के इस प्रकार के सन्धि अधिकारों की रक्षा करने के सर्वोपरि राज्य--शक्ति के अधिकार को सुरक्षित रखा जाय।

(५) संघीय विषयों के कार्य क्षेत्र को इस प्रकार से सीमाबद्ध कर दिया जाय कि भविष्य में किसी भी संघीय विधान मण्डल को राज्यों की अविमुख सम्मति के बिना इस कार्यक्षेत्र को, संविधान में संशोधन करके, बढाने का कोई अधिकार न रहे, और

(६) भविष्य में किसी भी समय संघ की सदस्यता से पृथक होंने के राज्यों के अधिकार को मान्यता दी जाय।[1]

उन्होंने कहा कि इनमें से, पहले, चौथे तथा पांचवें वाक्यांशों की मांगों के बारे में विश्वस्त रूप से समझा जा सकता है कि वह सम्पन्न हो गई हैं किन्तु शेष तीन मांगों के विषय में कोई प्रगति नहीं की जा सकी है। तथापि उन्होंने दिल्ली समझौते के मंत्रियों के अभिस्तावों का समर्थन

---

१. नरेन्द्र मण्डल द्वारा सूत्र बद्ध की गई शर्तों को तृतीय गोल मेज सम्मेलन में सुसम्पादित की गई संघ की नवीन योजना में प्रतिभूत करने के लिये लन्दन भेजे गये मंत्रियों की गोपनीय रिपोर्ट ता० ६–३–१९३३, पृ० २-३।

किया। इन मंत्रियों ने सर्वसम्मति से अभिस्ताव किया था कि अखिल भारत संघ में सम्मिलित होकर देशी राज्य बुद्धिमानी का परिचय देंगे।[1]

इन प्रस्तावित संवैधानिक सुधारों से सम्बन्धित श्वेत पत्र को जो एक वर्ष से भी अधिक समय की विचारणाओं के पश्चात् निर्गत हुआ था, मार्च १९३३ में प्रकाशित कर दिया गया। नरेशों ने अनुभव किया कि श्वेतपत्र में परिकल्पित योजना में तथा उस योजना में जिसे गोल मेज सम्मेलन में संकल्पित किया गया था, भारी अन्तर है। अतः राजसी वर्ग में बढ़ते हुये अविश्वास को देखकर वायसराय ने उन्हें इस विषय में पुनः आश्वस्त करना आवश्यक समझा। नरेन्द्र मण्डल के मार्च १९३३ के अधिवेशन में उन्होंने अपने उद्घाटन् भाषण में कहा कि इन प्रस्तावों को सब प्रकार से पूर्ण नहीं समझा जाना चाहिये तथा ऐसी कोई भी वस्तु को विधेयक में सम्मिलित नहीं किया जायगा जिस पर श्वेत पत्र द्वारा विचार न कर लिया गया हो और यदि इस पर भी राजा लोग सुरक्षणों तथा अन्य वाद विषयों के सम्बन्ध में कुछ और तथ्यों को इसमें समाविष्ट करने की इच्छा रखते हैं तो वे अपने दृष्टिकोण को संयुक्त प्रवर समिति के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं।[2]

इसी बीच, विशेष रूप से विधान मण्डलों में प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर राजसी वर्ग में फूट पड़ गई। दूसरी ओर आंग्ल-शासन ने अपनी स्थिति को दृढ़ कर लिया और उन्होंने न केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विरुद्ध अपितु नरेशों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों में भी अपने रुख को कठोर कर लिया। आंग्ल-शासन द्वारा ग्रहण किये गये मनस्कोण का सारांश लार्ड विलिंगडन के इस कथन में विशद रूप से मिलता है कि- "संघ के रूप के बारे में यदि ऐसा निर्णय करना है जो सभी पक्षों के लिये उचित एवं न्याययुक्त हो तो हम किसी भी विशिष्ट वर्ग के मतों को स्वीकार नहीं कर सकते और महामान्य सम्राट की सरकार केवल एक

---

१. नरेन्द्र मण्डल द्वारा सूत्र बद्ध की गई शर्तों को तृतीय गोल मेज सम्मेलन में सुसम्पादित की गई संघ की नवीन योजना में प्रतिभूत करने के लिये लन्दन भेजे गये मंत्रियों की गोपनीय रिपोर्ट ता० ६-२-१९३३, पृ०३-५।

२. नरेन्द्र मण्डल में वायसराय का भाषण ता० २०-३-१९३३, नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाहियां, मार्च १९३३, पृ० ३।

निष्पक्ष एवं न्याय संगत समझौता प्राप्त करने में दिलचस्पी रखती है।"[1] इसके परिणाम स्वरूप 'गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया एक्ट १९३५' तथा संविलयन का संशोधित प्रारूप विलेख उत्पन्न हुये। इसको स्वीकृत के लिये प्रस्तुत करते हुये वायसराय ने कहा कि इसमें घोषित शर्तों के लिये समझा जाना चाहिये कि राज्यों के मन्तव्यों को तुष्ट करने के लिये यह दूरतम सीमा है जहां तक महामान्य सम्राट की सरकार जा सकती थी।[2] इसी बीच, क्योंकि भारतीय आस्थाओं में द्रुतगति से एक विषम सीमा तक परिवर्तन हो चुका था अतः राज्यों के लिये समस्त स्थिति पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो गया।

सामान्यतया तथा विशेषतया बीकानेर राज्य के संविलयन के विषय में महाराजा गंगासिंह के विचार, ता० २७-१-१९३९ के लार्ड लिनलिथगो के पत्र के उनके प्रत्युत्तर में विशद रूप से प्रदर्शित हैं। उन्होंने लिखा कि राज्यों को उनकी संधियों तथा समझौतों से उद्भूत होने वाले उनके अधिकारों के सम्बन्ध में पर्याप्त संरक्षण नहीं दिया गया है तथा राज्य इन अधिकारों को त्यागने के लिये उद्यत नहीं हैं। संघीय विषयों की सूची को अनल्प मात्रा में वढ़ा दिया गया है तथा राज्यों द्वारा संघीय कानूनों की व्यवस्था करने के जो अन्तिम प्रस्ताव रखे गये हैं वे न केवल समझौते

---

१. नरेन्द्र मण्डल में वायसराय का भाषण ता० २०-३-१९३३, नरेन्द्र मण्डल की कार्यवाइयां, मार्च, १९३३, पृ० ४।
"प्रथमतः यदि इस प्रकार के निर्णयों (संघ के आकार के सम्बन्ध में) को सभी पक्षों के प्रति उचित सिद्ध करना है तो सरकार किसी भी विशेष वर्ग या समुदाय के मत को स्वीकार नहीं कर सकती तथा द्वितीयतः महामान्य सम्राट की सरकार केवल एक निष्पक्ष एवं न्याययुक्त समझौता प्राप्त करने में दिलचस्पी रखती है।"

२. महाराजा गंगासिंह को लार्ड लिनलिथगो का पत्र ता० २७-१-१९३९।
"इस समय घोषित की गई शर्तों के बारे में वास्तविक रूप से समझ लिया जाना चाहिये कि अब इनमें और अधिक शिथिलीकरण की गुंजाइश नहीं है क्योंकि ये शर्तें उस दूरतम सीमा का प्रतिनिधान करती हैं जहां तक, समस्त वाद विषयों पर, जिनमें राज्यों के कल्याण एवं हितों को सुरक्षित करने के विषय को प्रमुखरूप से ध्यान में रखा गया था, अधिकतम् गम्भीर चिन्तना करने के पश्चात्, राज्यों द्वारा व्यक्त की गई आकांक्षाओं एवं आशंकाओं को तुष्ट करने के लिये महामान्य सम्राट की सरकार ने जाना सम्भव पाया।"

की वार्ताओं की विभिन्न अवस्थाओं में प्रतिपादित किये गये प्रस्तावों से मूल रूप से भिन्न हैं अपितु तत्वतः भी भिन्न हैं ।[1] इसके आगे अपने पत्र में महाराजा गंगासिंह ने आंग्ल--भारत में गतवर्ष से प्रवर्तमान विध्वंसक प्रवृत्तियों की ओर निर्देश करते हुये कहा कि एक संघीय राज्य-व्यवस्था में अनिवार्य रूप से इकाइयों के बीच में सामंजस्य होना चाहिये तथा इस व्यवस्था को, प्रत्येक इकाई द्वारा परस्पर एक दूसरे की पूर्ण आन्तरिक स्वायत्तता को मान्यता देने पर ही केवल आधारित किया जा सकता है । उन्होंने खेद प्रकट करते हुये कहा कि तथापि ऐसा नहीं किया गया प्रत्युत् कुछ मुख्य प्रान्तों के अन्दर विध्वंसक प्रवृत्तियो को इस ढंग से कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया गया जिसके परिणाम स्वरूप समीपवर्ती राज्यों की सत्ता को अज्ञात रूप से क्षति पहुँची । उन्होंने कहा कि इस प्रकार की स्थिति की अवहेलना नहीं की जा सकती क्योंकि इस बात की भी क्या प्रतीति है कि तत्काल या भविष्य में किसी समय मेरे स्वयं के राज्य पर इसका प्रभाव नहीं पड़ेगा ।[2]

---

१. लार्ड लिनलिथगो को महाराजा गंगासिंह का पत्र ता० १७-७-१९३९, पैरा १० ।

२. वही, पैरा १२ तथा १३ ।

"आंग्ल--भारत के साथ संघबद्ध करने की किसी भी योजना के निर्धारण में राज्यों के लिये प्राणभूत महत्व के एक तथ्य की ओर मैं आप महामहिम का भद्र ध्यान आकर्षित करूंगा । मैं उन प्रवृत्तियों को संदर्भित कर रहा हूं जो आंग्ल--भारत में, विशेष रूप से गत वर्ष के यावत् प्रकट हुई हैं । प्रान्तीय स्वायत्तता के वास्तविक कार्यकरण के अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि वहां पर मुख्यतः सहकारिता की भावना का पूर्ण अभाव है । जैसा कि आप महामहिम भली भांति समझते हैं कि इकाइयों का सामंजस्य एक संघीय राज्य-व्यवस्था का अनिवार्य रूप से परम सिद्धान्त होना चाहिये तथा इस व्यवस्था को केवल, प्रत्येक इकाई द्वारा अन्य इकाइयों की स्वतन्त्रता एवं आन्तरिक स्वायत्तता को मान्यता देने पर ही आधारित किया जा सकता है ।"

"दुर्भाग्यवश, भारत में गत एक वर्ष के यावत् कुछ मुख्य प्रान्तों ने राज्यों के प्रति विद्वेष की निश्चित भावना को प्रदर्शित किया है । उन्होंने न केवल, दूसरी इकाइयों की आन्तरिक स्वायत्तता के आदर को प्रतिभूत करने के लिये संविधान में निर्दिष्ट सुरक्षणों को ही कार्यान्वित नहीं किया है अपितु

इन परिस्थितियों ने कम से कम कुछ समय के लिये महाराजा व सामान्यतः दूसरे राजाओं का भी दृष्टिकोण बदल दिया। इसकी अभिव्यक्ति वायसराय को लिखे गये उपर्युक्त पत्र में मिलती है। इसमें महाराजा ने कहा कि यद्यपि संघ के कानूनी ढाँचे को ऐसा बनाया गया है कि इकाइयों को पूर्ण आन्तरिक स्वायत्तता रहे लेकिन यह स्पष्ट है कि जिन राजनैतिक दलों के कार्यक्रम में राजाओं और उनकी रियासतों को कोई स्थान नहीं है, उनके दबाव में आकर कुछ प्रान्तीय सरकारों द्वारा यह मूल बात हटाई जा सकती है और बचाव निरर्थक किये जा सकते हैं। उन्होंने यह भी लिखा कि यह अनुभव किया जा रहा है कि रियासतों के अधिकारों का जान बूझ कर अतिक्रमण करने की इस नीति की जड़ इस बात में है कि राजाओं को डरा कर उनको ब्रिटिश भारत के राजनैतिक दलों की नीति के साथ एक कर दिया जाय। अतः उन्होंने तर्क दिया कि ऐसी परिस्थितियों में संघ में सम्मिलित होना उस विनाशकारी आन्दोलन को बढ़ावा देने के समान होगा, जिसका उद्देश्य रियासतों के लोगों को अपने शासकों के प्रति जो राजभक्ति है, उससे विमुख करना है। उन्होंने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि अगर उन्हें संघ में सम्मिलित होने का विकल्प मानना पड़े तो इसका मतलब उनका ऐसे लोगों के साथ काम करना होगा जिसका उद्देश्य पूर्ण स्वतन्त्रता है और जो खुले रूप में ब्रिटिश साम्राज्य के विरोधी हैं। ऐसा करना उनके दृढ़ विश्वास के विपरीत होगा। अतः उन्होंने कहा कि उनके लिये इसके सिवाय और कोई चारा नहीं है

निश्चित रूप से अपने अधिकार क्षेत्रों के भीतर से विनाशक गतिविधियों को इस ढंग से कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया है जिससे समीपवर्ती राज्य सरकारों के प्रभुत्व की नींवें खोखली हो सकें। यद्यपि यह हर्ष का विषय है कि मेरा स्वयं का राज्य अब तक इस वैरपूर्ण नीति के प्रभाव से बचा हुआ है किन्तु जैसा कि आप महामहिम यथार्थ रूप से अनुमान कर सकते हैं कि अन्य स्थानों पर घटित होने वाली इन घटनाओं के प्रति मैं अपनी आंखें बन्द नहीं कर सकता विशेष रूप से जब इस बात की भी कोई प्रतीति नहीं है कि भविष्य में किसी समय ये प्रवृत्तियां मेरे पर तथा मेरे राज्य पर भी प्रभाव नहीं डालेंगी।"

कि वे संघ में सम्मिलित होने से अलग रहें।[1]

तो भी व्यवस्थित राजनैतिक विकास की नितान्त आवश्यकता में उनका विश्वास जरा भी कम नहीं हुआ और दूसरे ही पैरा में उन्होंने भारत के व्यवस्थित राजनैतिक विकास में अपने विश्वास को दोहराया जिसे राजा लोग भी उतना ही चाहते थे जितना ब्रिटिश भारत के लोग। किसी प्रकार के संघ से ही केवल यह हो सकता है और उन्होंने यह आशा प्रकट की कि भारत के राजनैतिक विकास की समस्या ऐसे तरीके से सुलझायी जायेगी जो सबको ठीक लगे।[2]

भारत में एक शान्ति पूर्ण राजनैतिक समझौता कराने के अपने प्रयत्नों में राजा लोग निराश हो चुके थे और ब्रिटिश भारत के राजनैतिक दलों के शत्रुतापूर्ण रूख से दुःख अनुभव करते थे। लेकिन महाराजा गंगासिंह के कथन से यह स्पष्ट था कि राजाओं ने यह आशा कभी नहीं छोड़ी कि उनके इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति के लिये और अच्छी परिस्थितियां आयेंगी। आगे महाराजा गंगासिंह ने अपने राजनैतिक जीवन में अनेक अवसरों पर महान दूरदर्शिता का परिचय दिया। भारतीय राजाओं के अधिकारों और विशेष अधिकारों के लिये कड़ा संघर्ष करने वाले होते हुये भी उनमें देशभक्ति की कमी कभी नहीं रही। महाराजा भविष्य के ज्ञाता थे। सन् १६३७ में ही उनके द्वारा जोधपुर राज्य के दीवान कर्नल डी. एम. फील्ड को लिखे एक पत्र[3] में महाराजा ने स्पष्ट शब्दों में यह बात बताई कि रियासतों के शासन की जिम्मेदारी जल्दी ही इस समय के आन्दोलनकारियों के कन्धों पर आने वाली है और केवल वे ही इसे निभायेंगे। अतः उन्होंने यह भी लिखा कि यह वांछनीय है कि इनमें से ईमानदार लोगों की मदद करके उन्हे बचाया जाय ताकि समय आने पर वे जिम्मेदारी उठाने को तैयार हों अन्यथा जिम्मेदारी संदिग्ध लोगों के पास चली जायेगी। ऐसा लिखते समय महाराजा के मन में श्री जयनारायण व्यास का मामला था।

---

१. ता० १७-७-१६३६ को महाराजा गंगासिंह द्वारा लार्ड लिनलिथगो को लिखे गये पत्र के पैरा १४-१६।
२. वही, पैराग्राफ १७, परिशिष्ट १६।
३. ता० २१-२-१६३७ को महाराजा गंगासिंह द्वारा कर्नल डी. एम. फील्ड को लिखा गया पत्र, परिशिष्ट १७।

श्री जयनारायण व्यास उस समय अत्यधिक आर्थिक कठिनाई में थे और उनके साथियों ने उनके साथ विश्वासघात किया था। अतः यह पता चला कि वे जीवन निर्वाह के लिये सिनेमा लाईन अपनाने की सोच रहे थे। इसलिये महाराजा ने कर्नल फील्ड पर जोर डाला कि वह इस बात का ध्यान रखे कि श्री जयनारायण व्यास जोधपुर में रह सके और राजनीति से सम्पर्क बनाये रख सके। इससे श्री व्यास रियासत के भावी शासन में जो निश्चित रूप से तत्कालीन आन्दोलनकारियों के हाथों में जाने वाला था, भाग लेने का अवसर प्राप्त कर सके। इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखने की है कि श्री जयनारायण भारतीय रियासतों के शासकों एवं उनकी प्रशासन पद्धति के सामान्य रूप से तथा महाराजा गंगासिंह के विशेष रूप से, कड़े आलोचक थे तो भी महाराजा गंगासिंह के हृदय में श्री व्यास के प्रति कोमलता का भाव था। इस बात से जहां महाराजा की उदारता प्रकट होती है वहां यह भी पता चलता है कि महाराजा के मन में देश का हित ही सर्वोपरि था।

अतः यह दुःख की बात थी कि ब्रिटिश भारत के राजनैतिक दलों की प्रतिक्रियावादी और शत्रुतापूर्ण प्रवृति ने राजाओं के मन में एक स्वाभाविक अविश्वास और सन्देह उत्पन्न कर दिया। न केवल अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये, जो एक मूल प्रवृत्ति है बल्कि संघ की अपनी मूल धारणा को पूर्ण न होते देख कर भी राजा लोग निराश हो गये। तो भी महाराजा गंगासिंह ने यह आशा कभी नहीं छोड़ी कि इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति के लिये और परिस्थितियां आयेंगी।

यद्यपि हमारा विषय बीकानेर राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध बताना है पर महाराजा गंगासिंह द्वारा किये गये अधिकाधिक प्रसाशकीय सुधारों पर दृष्टिपात किये बिना हमारा ऐतिहासिक विषय पूर्ण नहीं हो सकता, विशेषतः ऐसे समय जबकि भारतीय रियासतों में सुधारों पर गम्भीरता से विचार नहीं होता था। इससे एक ज्ञान प्राप्त राजा पर पश्चिम का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

महाराजा गंगासिंह का हमेशा यह विश्वास रहा कि जिस राज्य की सरकार अपनी जनता का जितना ही भला करेगी उसकी स्थिरता और शक्ति उतनी ही अधिक होगी। यह बात बहुधा उन्होंने अपने भाषणों

में जोर देकर कही ।[1] उन्होंने अच्छी सरकार के लक्षणों में अधिकांश लोगों द्वारा मान्य सात बातें बताई—

(१) शासक का निजी खर्च (प्रिवीपर्स) अच्छी तरह से निश्चित होना चाहिये ।

(२) जीवन और सम्पति सुरक्षित होनी चाहिये ।

(३) कानून का शासन होना चाहिये ।

(४) राजकीय सेवाएं स्थिर होनी चाहिये ।

(५) प्रशासन श्रेष्ठ और निरन्तर चालू रहना चाहिये ।

(६) सरकार को आम जनता की भलाई का ध्यान रखना चाहिये ।

(७) उसे लोगों को सन्तुष्ट रखना चाहिये ।

ये सिद्धान्त आधुनिक राजा का आदर्श प्रकट करते हैं । ये आज भी एक अच्छी सरकार के मार्ग दर्शक सिद्धान्त माने जाते हैं । उन्होंने इसका अनुसरण करने का प्रयत्न किया और अपने साथी राजाओं को भी ऐसा ही करने को कहा । वे जैसा मानते थे वैसा ही करते थे । अपने राज्य की जनता को सुरक्षा और सन्तोष प्रदान कर उन्होंने लोगों से कृतज्ञता पाई ।

महाराजा डूँगरसिंह के शासन काल में राज्य के सभी महत्वपूर्ण विभागों का गठन किया गया था । नियमित न्यायालय की स्थापना की गई । एक उत्तरदायी और योग्य पद्धति की सरकार बनाई गई और शिक्षा की एक अच्छी पद्धति की नींव रखी गई ।[2] रीजेंसी कौंसिल के

---

१. बीकानेर विधान सभा को स्थगित करते हुये महाराजा गंगासिंह का ता० २०-१-१६२८ का भाषण । साथ ही नरेन्द्र मण्डल में ता० २३-२-१६२८ को उनका भाषण ।

२. महाराजा डूँगरसिंह की प्रस्तर मूर्ति का अनावरण करते समय महाराजा गंगासिंह का भाषण —

"नियमित न्यायालय की स्थापना कर के, राज्य को जिलों और तहसीलों में विभाजित करके, राजस्व निर्धारित करने की पुरानी पद्धति को मिटाकर भूमिकर के निश्चित सिद्धांत लागू कर के, जगात का पूर्ण सुधार करके, एक नियमित पुलिस दल का गठन करके और कई दूसरे सुधार कर के उन्होंने एक दृढ और उन्नत शासन की नींव रखी ...."

पन्नीकर, हिज हाइनेस दी महाराजा आफ बीकानेर, ए बॉयग्राफी, पृ० २५-२६ ।

अध्यक्ष सर चार्ल्स वेली ने रीजेंसी के प्रशासन काल में न्यायिक प्रशासन पद्धति को और गठित किया। १८ वर्ष के युवक के रूप में जब महाराजा गंगासिंह ने पूर्ण अधिकार प्राप्त किये तो उन्होंने देखा कि ये सुधार काफी नहीं थे। उनमें और सुधार किया जा सकता था अतः उन्होंने यह कार्य एक निश्चित और योजना बद्ध तरीके से किया।

दिसम्बर सन् १८९८ में महाराजा द्वारा राज्य के पूर्ण अधिकार प्राप्त करने पर रीजेंसी कौंसिल स्टेट कौंसिल के रूप में बदल दी गई। रीजेंसी कौंसिल का अध्यक्ष दीवान बना। अमी मोहम्मदखाँ बीकानेर राज्य का प्रथम दीवान था। राज्य का मुख्य कार्यालय महकमा खास नव-निर्मित किया गया यद्यपि महाराजा ने सेना, उपचार व स्वास्थ्य और सार्वजनिक निर्माण जैसे कुछ विभाग ले लिये। पर उन विभागों की देख-भाल करने वाला व्यक्ति अपने विभाग पर नियन्त्रण रखता रहा। पर शीघ्र ही यह अनुभव किया गया कि उस पद्धति में बहुत सुधार करने की आव-श्यकता है क्योंकि सदस्यों के अधिकारों की व्याख्या ठीक से नहीं की गई थी और कौंसिल के सदस्यों तथा महकमा खास के दोहरे रूप से विलम्ब और गड़बड़ी होती थी।

सन् १९०२ में महकमा खास को एक सचिवालय में बदल दिया गया। सचिव सीधे महाराजा के प्रति उत्तरदायी थे। दीवान का पद समाप्त कर दिया गया। पर कौंसिल काम करती रही। अब वह एक न्यायिक और सलाहकार रूप लिये हुये थी और महाराजा स्वयं उसकी कारवाई की अध्यक्षता करता था।

इसी वर्ष महाराजा ने अलग प्रिवीपर्स और अच्छी तरह से निर्धारित सिविल लिस्ट की पद्धति चालू की। प्रिवीपर्स की रकम राज्य की सामान्य आमदनी का पांच प्रतिशत निश्चित की गई। इसका श्रेय महा-राजा गंगासिंह को ही है कि वह भारत के राजाओं में सर्व प्रथम थे जिन्होंने अच्छी सरकार के अपने विचारों के अनुसार ऐसा किया।

प्रशासन में अधिक श्रेष्ठता लाने और उसे व्यक्तिगत सम्पर्क का रूप देने की दृष्टि से सन् १९०५ में एक वार्षिक भू-राजस्व सम्मेलन

---

१. महाराजा के बीकानेर राज्य के शासन की मुख्य बातों से सम्बन्धित टिप्पणी, १८९८-९९ से १९३०-३१, पृ० १५।

२. फोर डिकेड्स आफ प्रोग्रेस इन बीकानेर, पृ० १२६।

करने की पद्धति लागू की गई। इन सम्मेलनों में नाज़िम (कलेक्टर) और विभागों के प्रधान बुलाये जाते थे। यह भी अनुभव किया गया कि जिले के अधिकारियों और उन्हें साथ साथ बुलाने से प्रशासन की श्रेष्ठता भी बढ़ेगी और लोगों की खुशहाली के लिये अधिक काम किया जा सकेगा। अतः सन् १६०८ में महाराज़ा ने इसमें कुछ गैर सरकारी सदस्य जोड़ कर सम्मेलन का रूप व्यापक बना दिया। यद्यपि सम्मेलन के नाम से विदित होता है कि इसका सम्बन्ध केवल राजस्व से था पर इसकी मीटिंगों में प्रशासन के सभी प्रश्नों पर विचार किया जाता था। इससे महाराजा की जनता के विभिन्न वर्गों और जातियों की स्थिति सुधारने के लिये बहुत से महत्व-पूर्ण परिवर्तन और सुधार किये गये।[1]

अधिक विकेन्द्रीकरण करने की दृष्टि से और कार्यपालिका से असम्बद्ध एक न्यायपालिका स्थापित करने की दृष्टि से महाराजा ने सन् १६१० में एक मुख्य न्यायालय की स्थापना की। इसमें एक न्यायाधीश और उसके सहायक दो दूसरे जज रखे गये। बीकानेर बड़े गर्व के साथ कह सकता है कि यह राजपूताना में प्रथम राज्य था जिसने कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग करने का ऐसा कदम उठाया।[2]

सन् १६१२ में महाराजा के शासन की रजत जयन्ती मनाये जाने के अवसर पर जो अनेक सुधार किये गये उनमें दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रीजेन्सी कौंसिल के समय उर्दू सरकारी भाषा बना दी गई थी यद्यपि जनता को इससे काफी असुविधा और असन्तोष था। बीकानेर के लोगों की बोलचाल की भाषा हमेशा से मारवाड़ी या राजस्थानी रही है। यह ऐसी लिपि में लिखी जाती है जो देवनागरी का राजस्थानी रूप कहा जा सकता हैं।[3] महाराजा ने घोषणा की कि हिन्दी पुनः सरकारी

---

१. महाराजा के बीकानेर राज्य के शासन की मुख्य बातों से सम्बन्धित टिप्पणी १८६८-६६ से १६३०-३१, पृ० १८।

२. वही, पृ० २६-३०।

३. महेन्द्र पाल प्रतिहार (८८८-६०८ ई०) के गुरू राजेश्वर के अनुसार ६ वीं और १० वीं शताब्दी में राजस्थान में अपभ्रंश बोली जाती थी। इसीसे वह भाषा बनी जिसे डाक्टर एल. पी. टेसीटोरी ने "पश्चिमी राजस्थानी कहा है। इसी से राजस्थानी का विकास हुआ। मारवाड़ी इसकी मुख्य बोली है अनूप संस्कृत लॉयब्रेरी में सैंकड़ों ख्यातें (लेखक के अधिकार में) तथा प्रादेशिक वीर गीत और प्रगीत मुक्तक इसके प्रमाण है।

काम काज की भाषा बनाई जायेगी। यह आदेश सन् १९१४ में पूर्ण रूप से लागू हुआ। इससे जनता को बड़ी राहत मिली।[1] दूसरी घोषणा महाराजा के प्रगतिशील विचारों की द्योतक थी। यह एक प्रतिनिधि सभा स्थापित करने के बारे में थी। अपनी इच्छा घोषित करते हुये महाराजा ने कहा कि यह उनका दृढ़ मत है कि राज्य की भलाई में शासक और शासित दोनों का समान हित है। ज्योंही जनता अपने को योग्य प्रमाणित करे तो सरकार में उसका भी भाग होना चाहिये और उसे भी अपनी बात कहने का अवसर दिया जाना चाहिये। इस दिशा में एक उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये उन्होंने अंग्रेज सरकार की प्रशंसा की।[2] महाराजा द्वारा

---

१. महाराजा के बीकानेर राज्य के शासन की मुख्य बातों से सम्बन्धित टिप्पणी १८९८–९९ से १९३०–३१, पृ० १७।

२. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २२७८।३६ भाग १–ए, महाराजा गंगासिंह का भाषण ता० २४–९–१९१२।

"प्रगतिशील राष्ट्र और सरकार तथा प्रत्येक विवेकशील राजा या शासक का यह कर्तव्य है कि वह केवल वर्तमान और भूत को ही न देखे बल्कि भविष्य को भी देखे। प्रत्येक को समय के अनुसार चलना चाहिये और अपना शासन इस प्रकार प्रेरित और गठित करना चाहिये, अपने कार्य ऐसे बनाने चाहिये कि उनसे केवल वर्तमान की आवश्यकता ही पूरी न हो बल्कि आगे बढ़ाये जाने में भी समर्थ हो। इससे आगे उत्पन्न होने वाली किसी स्थिति का योग्यता से मुकाबला कर सकेंगे। कोई भी पीछे नहीं रहना चाहता। जो पीछे रहेगा वह अपने लक्ष्य तक कभी नहीं पहुंचेगा।"

× × ×

"इन वरदानों में सबसे महत्वपूर्ण घोषणा प्रजा प्रतिनिधि सभा से सम्बन्ध रखती है। इसका कारण सुधारों की घोषणा के गजट की सूचना में पहले ही बताया जा चुका है। यह कारण मेरा यह विश्वास है कि राज्य की भलाई में शासकों और शासितों दोनों का समान हित है अतः ज्योंही ये अपनी योग्यता का प्रमाण दें तो शासितों को सरकार में प्रगतिशील प्रतिनिधित्व और भाग लेने का अधिकार होना चाहिये।"

"अपने महान गौरव और सम्मान के अनुरूप अंग्रेज सरकार ने इस दिशा में समस्त आधुनिक विश्व के समक्ष एक शानदार उदाहरण प्रस्तुत किया। सभी सरकारों का उद्देश्य और लक्ष्य जनता का भला है और होना चाहिये। वही सरकार सर्वश्रेष्ठ है जो अपने यहां के अधिक से

१० नवम्बर १९१३ को प्रतिनिधि सभा का उद्घाटन किया गया। प्रतिनिधि सभा की स्थापना की बड़ी प्रशंसा हुई।[1] उस समय इसमें कुल ३५ सदस्य थे। इनमें से ६ कौंसिल के सदस्य, ३० चुने हुये सदस्य और १६ मनोनीत सदस्य थे। सन् १९३७ तक यह संख्या बढाकर ४५ कर दी गई। इनमें ६ सदस्य कार्यकरिणी परिषद के, २० चुने हुये और १६ मनोनीत थे।[2] सन् १९१७ में प्रतिनिधि सभा को विधान सभा नाम दिया गया था और

अधिक लोगों का अधिक से अधिक भला कर सके। मैं पूर्ण ईमानदारी के साथ कहता हूँ कि जब कभी आवश्यकता पड़ी है पिछले १४ वर्षों में मैंने विभिन्न श्रेणी व वर्गों के नेताओं से सलाह ली है। मैंने न केवल उनसे स्वतन्त्र सलाह ली बल्कि उनकी खरी सलाह और ईमानदारी से की गई आलोचना का स्वागत किया है। यह बात कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि मैंने और राज्य के प्रशासन ने इस प्रकार की सलाह और आलोचना पर पूर्ण रूप से विचार किया है और उसे महत्व दिया है।

१. बॉम्बे क्रोनिकल ता० ७-११-१९१३।

"कई देशी रियासतों में विधान परिषदें हैं। हैदराबाद में विधान परिषद् तो काफी समय से है पर उसके बारे में बहुत कम ज्ञात है। बड़ौदा में सीमित अधिकारों वाली एक छोटी विधान परिषद् है। मैसूर में प्रतिनिधि सभा है पर यह केवल परामर्शदात्री है ..... पर बीकानेर में व्यापक अधिकारों वाली परिषद् बनाई जा रही है। इससे राज्य की जनता को जो प्रेरणा और नियन्त्रण प्राप्त होगा, यह बराबर प्राप्त रहेगा, इसे भी व्यवहारतः सुरक्षित कर दिया गया है।

दी ट्रिब्यून ता० १४-११-१९१३।

"यह केवल बीकानेर राज्य के लिये नहीं बल्कि उत्तरोत्तर सारे भारत के लिये महत्वपूर्ण घटना है। यह जनतांत्रिक उन्नति के निश्चित सोपानो का चिन्ह है ... बीकानेर में संवैधानिक सुधार के बुद्धिमतापूर्ण और लाभकारी कार्य का हम स्वागत करते हैं।"

टाइम्स ऑफ सीलोन, कोलम्बो, ता० १२-११-१९१३।

"कल बीकानेर के महाराजा ने नई प्रतिनिधि सभा का उद्घाटन किया। यह समारोह शानदार था इसमें जनता ने बहुत रुचि ली।

२. फोर डिकेड्स आफ प्रोग्रेस इन बीकानेर, पृ० ७४।

इसके चुने हुये सदस्यों की संख्या बढा कर १० से १५ कर दी गई थी।[1]

इसी वर्ष और सुधार किये गये। इनमें नगरपालिकाओं को अधिक अधिकार और स्वतन्त्रता दी गई थी। राज्य की नगरपालिकाओं द्वारा दिये गये अभिनन्दन का उत्तर देते हुये महाराजा ने कहा कि नई पद्धति के अधीन नगर पालिकाओं को और अधिक स्वायत्तता प्रदान की गई है तथा नगर के आकार के अनुसार चुने हुये सदस्यों की संख्या भी बढा दी गई है। उन्होंने यह भी कहा कि नगरपालिकाओं को अपने अर्थ पर व्यवहारतः पूर्ण नियन्त्रण तथा अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये धन एकत्रित करने का अधिकार भी दे दिया गया है।[2] स्वायत शासन के विकास की दृष्टि से निश्चय ही यह एक महत्वपूर्ण कदम था।

महाराजा के हृदय में किसानों और दूसरे लोगों की भलाई की गहरी भावना थी। ग्रामीणों के कर्ज को मिटाने और उनमें मितव्ययता व अपनी सहायता आप करने की आदत डालने की आवश्यकता अनुभव करके सन् १९२० में विधान सभा में सहकारी समिति कानून पास हुआ। राज्य में प्रथम सहकारी समिति ने कार्य आरम्भ किया। अक्टूबर १९३० के अन्त तक राज्य में ऐसी ८९ समितियां बन गई थीं। इनकी सदस्य संख्या १९४२ थीं।[3] आज सहकारी समितियों को भारत सरकार द्वारा बहुत ही महत्व दिया जाता है। महाराजा गंगासिंह ने राज्य की ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में सहकारी समिति के कार्य का महत्व सन् १९२० में ही अनुभव कर लिया था। महाराजा को यह देखकर सन्तोष हुआ कि सहकारी समितियों का कार्य सफलता से हो रहा ।

किसानों की आवश्यकताओं और अभिलाषाओं को ठीक से समझने की दृष्टि से महाराजा गंगासिंह ने सन् १९२१ में एक जमींदार बोर्ड की स्थापना की ताकि किसान-और सरकार एक दूसरे के और भी निकट आ जाय। जब गंगानगर एक अलग प्रशासनिक डिवीजन बन गया तो सन् १९२९ में इन जमींदार बोर्डों की संख्या बढा कर २ कर दी

---

१. महाराजा के बीकानेर राज्य के शासन की मुख्य बातों से सम्बन्धित टिप्पणी, १८९८-९९ से १९३०-३१, पृ० २०।

२. वही, पृ० २३।

३. वही, पृ० ३७।

गई। इनमें से एक बीकानेर तथा दूसरा गंगानगर डिवीजन के लिये था।[1]

सन् १९२२ में महाराजा ने एक राजकीय घोषणा पत्र द्वारा एक उच्च न्यायालय की स्थापना की ताकि न्याय और अधिक अच्छी तरह से मिल सके। लेकिन न्यायाधीशों की नियुक्ति, पद वृद्धि और उन्हें हटाना पूर्णतः महाराजा की इच्छा और खुशी पर निर्भर था।[2]

सन् १९२४ में कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों का नाम बदल कर मन्त्री कर दिया गया। मन्त्रीमण्डल का निर्माण प्रथम विश्वयुद्ध के समय से किया गया था। उस समय उसमें केवल ३ सदस्य थे। लेकिन इस समय इसमें परिषद के सभी सदस्य शामिल थे। सन् १९२४ में इसे खत्म कर दिया गया।[3]

राज्य के जो कर्मचारी असामयिक मर जाते थे उनके घरवालों को बाद में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। प्रजाहित की दृष्टि से महाराजा ने राज्य कर्मचारियों के लिये सन् १९२७–२८ में जीवन बीमा और धन समपर्ण बीमा योजना को लागू किया। बचत की भावना बढ़ाने की दृष्टि से एक बचत बैंक भी चालू किया गया।[4]

सन् १९२८ में ग्राम पंचायतों को दीवानी, फौजदारी और प्रबन्ध सम्बन्धी निश्चित अधिकार प्रदान किये गये।[5] यह बात उल्लेखनीय है कि आज जिस विचार को इतना अधिक महत्व दिया जाता है उसे महाराजा गंगासिंह ने अपने शासन के इतने आरम्भ में ही लागू कर दिया था।

इस प्रकार पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के समय से ही महाराजा ने राज्य को आधुनिक बनाने और राज्य सरकार में प्रजा का प्रगतिशील सम्बन्ध जोड़ने में सफलता से प्रयत्न किया। ध्यान देने की बात यह है कि महाराजा ने यह सब अपनी स्वेच्छा से किया। ब्रिटिश भारत की तरह जनता की किसी मांग पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। इससे विदित होता है कि भारत में राजा

---

१. महाराजा के बीकानेर राज्य के शासन की मुख्य बातों से सम्बन्धित टिप्पणी, १८९८–१८९९ से १९३०–३१; पृ० २४।
२. वही, पृ० ३०।
३. वही, पृ० १६।
४. वही, पृ० ४३–४६।
५. फोर डिकेड्स ऑफ प्रोग्रेस इन बीकानेर; पृ० ७७।

का जो उच्च आदर्श है उसे प्राप्त करने के लिये उन्होंने कितने उत्साह से प्रयत्न किया। उनके अनुसार यहां के राजा के आदर्श अधिक उन्नत देशों के आदर्श से भिन्न नहीं है और उनका विश्वास था कि लोग अपने उत्तर-दायित्व का सफल निर्वाह तभी कर सकते हैं जब उन्हें शिक्षा का लाभ मिले। इसीलिये चिकित्सा और जन स्वास्थ्य के अतिरिक्त वे शिक्षा का बहुत अधिक ध्यान रखते थे।

बीकानेर के रेगिस्तानी इलाके में गाँव विखरे हुये और एक दूसरे से काफी दूर हैं। अतः शिक्षा का प्रसार यहां निश्चय ही एक कठिन समस्या थी। पर महाराजा के लिये कोई भी कठिनाई अजेय नहीं थी। उनका व्रत था कि किसी भी सूरत में हार न मानी जाय। इसी से प्रेरित होकर उन्होंने अपने राज्य में सब जगह शिक्षा संस्थाओं का जाल बिछा दिया। सन् १९४३ तक राज्य में १४१ सरकारी स्कूल, १३७ सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल और १९१ मान्यता प्राप्त निजी स्कूल तथा एक डिग्री कालेज था।[1] इसके अलावा महाराजा गंगासिंह का बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय से गहरा सम्बन्ध था। उन्होंने समय समय पर चन्दा देकर हमेशा इसकी सहायता की। महाराजा सन् १९२२ से १९२८ तक इस विश्व विद्यालय के प्रोचांसलर थे। सन् १९२९ से लेकर सन् १९४३ में अपनी मृत्यु के समय तक वे इसके कुलपति रहे। सन् १९४१ में स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय यहां के विद्यार्थियों ने अनुशासन हीनता और तोड़ फोड़ की कारवाई की। फलस्वरूप विश्वविद्यालय बन्द कर दिया गया। इसके जल्दी खुलने की कोई आशा न थी। तब महाराजा गंगासिंह के प्रयत्नों से ही विश्व विद्यालय पुनः आरम्भ हुआ। इस सम्बन्ध में महाराजा ने लार्ड लिनलिथगो, सर मौरिस हैलेट (यू. पी० का गवर्नर) और डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय के उपकुलपति) से लम्बा पत्र व्यवहार किया।[2] पंडित मदन मोहन मालवीय से महाराजा का

---

१. रिपोर्ट ऑन दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी बीकानेर स्टेट, १९४२–४३, पृ० १०२।

२. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० LXV, महाराजा गंगासिंह को लिखा लार्ड लिनलिथगो का पत्र ता० ३०–१०–१९४२।

"मैं आपसे पूर्णतः सहमत हूं कि यथाशीघ्र इन युवकों को उनके काम में लगाया जाय। मैं सर मौरिस हैलेट के पत्र की प्रतिलिपि संलग्न कर रहा हूं। इसमें जो बातें लिखी हैं उनसे मैं समझता हूं कि उन्होंने

बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध था। मैं उस समय छोटा बालक था। मुझे स्पष्ट याद है कि हम बच्चों को उस महान नेता के सामने बुलाया गया। हमसे कहा गया कि उनके चरण छू कर उनसे आशीर्वाद मांगें। तब से उनकी दयालुता हमारे मन पर अमिट छाप डाले हुये है।

महाराजा निरन्तर इस बात का ध्यान रखते थे कि उनकी प्रजा को मुफ्त इलाज सुलभ हो। सन् १८९७-९८ में राज्य में केवल १४ सरकारी अस्पताल थे। सन् १९२३ तक उनकी संख्या बढ़कर ४६ हो गई। प्रिंस विजयसिंह जी मेमोरियल जनाना और मर्दाना अस्पताल तो राजस्थान और उत्तरी भारत के सर्वश्रेष्ठ और सर्व सुसज्जित अस्पतालों में से एक था।[1]

महाराजा इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि ये सुविधायें और सुधार तभी स्थायी हो सकते हैं जब साथ साथ राज्य का आर्थिक विकास हो और इसकी वित्तीय स्थिति सुदृढ़ हो। अतः प्रथम आवश्यक कदम भू-राजस्व पद्धति को ठीक प्रकार से गठित करने के लिये उठाया गया जो कि किसान के भी हित में था। राज्य का प्रथम नियमित बन्दोबस्त सन् १८९२-९३ में सर पैट्रिक फैगन द्वारा किया गया। बन्दोबस्त की अवधि १० साल थी। लेकिन सन् १८९९-१९०० के अकाल के कारण दुबारा बन्दोबस्त ६ वर्ष के लिये स्थगित कर दिया गया। इसके अनुसार बन्दोबस्त और जाँच कार्य सन् १९०९ में और सन् १९१४ में पूरा हुआ। इससे राज्य को ९०४४५५) रु० की आय हुई। बन्दोबस्त के सम्बन्ध में अंतिम आज्ञा प्रदान करने से पूर्व उसकी और आगे जाँच करने हेतु महाराजा ने सन् १९४२ में पंजाब सरकार से मि० जी० डी० रडकिन, आई० सी० एस० की सेवायें प्राप्त की। मिस्टर रडकिन ने बन्दोबस्त में एक सामान्य संशोधन करवाया और बिना किसी बड़े परिवर्तन के मालगुजारी की दर स्वीकार कर ली गई। भू-राजस्व पद्धति का पूर्णतः पुनर्गठन किया गया। अधिकार और मालिकाना हक स्वीकार किये गये और राजस्व के कई श्रोतों का एक उचित

उपकुलपति द्वारा सुझाये गये कार्यक्रम को मान लिया है। इसके अनुसार सारी कक्षायें ११ नवम्बर से पूर्व पुनः खुल जायेगी। .... यह कहने की आश्यकता नहीं कि आपने इस मामले में जो रुचि ली और कष्ट उठाया है उसके लिये मैं श्रीमान् का बहुत कृतज्ञ हूं। एक कठिन समस्या को निपटाने में मुझे और सर मौरिस हैलेट को आपके सुझावों से बहुत ही अधिक सहयोग मिला है।"

१. रिपोर्ट ऑन दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ बीकानेर स्टेट, १९४२-४३, पृ० ११४।

वर्गीकरण किया गया जैसे कि दत्तक और उत्तराधिकारी शुल्क, लावारिस की सम्पति का राज्य को मिलना, अचल सम्पति की बिक्री पर कर आदि।[१]

राज्य की आय का दूसरा महत्व पूर्ण साधन चुंगी और कर से था। इन महकमों का पुनर्गठन करने के लिये और उनके सम्बन्ध में नियम बनाने के लिये महाराजा ने सन् १६१० में पंजाब सरकार से मि. जे. एच. कोक्स की सेवायें उधार ली। उसकी सिफारिस के फलस्वरूप चुंगी और जकात विभाग को मिलाकर एक कर दिया गया। सन् १६११ में जकात कानून और चुंगी कानून व चुंगी दर सूची बनाये गये। सन् १६१२ के अन्तर्राष्ट्रीय अफीम समझौते को ध्यान में रख कर बाद में जैसे जैसे आवश्यकता हुई इन कानूनों और सूचियों में भी संशोधन किया गया। इस मद में रीजेंसी के प्रशासन में कुल आमदनी आठ लाख बयासी हजार चार सौ तेइस रुपये थी जो सन् १६२६-२७ में बढ़ कर बीस लाख पिचानवे हजार दो सौ पिचानवे रु० हो गई।[२]

किसी भी आदर्श राज्य में यातायात और संचार की सुरक्षित सस्ती और पूर्ण सुविधा होनी आवश्यक है। इससे जनता को आराम मिलता है। व्यापार और उद्योग को बढ़ाने में यह एक महत्वपूर्ण कड़ी है अतः इसी से राज्य का आर्थिक विकास भी होता है। महाराजा बहुत समझदार थे। अपनी प्रजा की भलाई की इच्छा उनमें निरन्तर बनी रहती थी। अतः उन्होंने इन विषयों पर भी पूर्ण ध्यान दिया। राज्य की भूमि दुर्गम और जगह जगह रेतीले टीलों वाली है अतः यहां लम्बी सड़कें बनाना आर्थिक दृष्टि से कठिन है। रेगिस्तानी आँधियाँ चलने पर कोई भी पक्की सड़क रेत से दब जाती है और तब उस सड़क पर चलना असम्भव हो जाता है। महाराजा के पूर्ण अधिकार पाने के समय सड़कों की लम्बाई लगभग २६.१३ मील थी जो सन् १६४३ में बढ़कर १३५ मील हो गई।[३]

अतः दूर आने जाने का साधन एक मात्र रेल थी। महाराजा के नाबालिग काल में सन् १८८६ में भारत सरकार और बीकानेर व जोधपुर राज्यों के बीच जोधपुर से बीकानेर तक रेल लाइन बनाने का एक समझौता

---

१. महाराजा के बीकानेर राज्य के शासन की मुख्य बातों से सम्बन्धित टिप्पणी, १८६८-६६ से १६३०-३१, पृ० ३१-३६।
२. वही, पृ० ३८-३६।
३. फोर डिकेड्स ऑफ प्रोग्रेस इन बीकानेर, पृ० १०८।

हुआ था ।[1] जोधपुर राज्य की सीमा से वीकानेर तक रेल लाइन सन् १८६१ तक शुरू हुई । सन् १८६८ तक वीकानेर से दुलमेरा तक भटिंडा की ओर ४२ मील लम्बी रेल लाइन और वनाई गई । इससे रेल लाइन की कुल लम्बाई ८६.७५ मील हो गई । सन् १८६६ की १३ दिसम्बर को महाराजा ने एक समझौता किया । इसके अनुसार रियासत में रेलों द्वारा अधिकृत अथवा बाद में अधिकार में ली जाने वाली समस्त भूमि पर अंग्रेज सरकार का पूर्ण और एक मात्र अधिकार और क्षेत्र माना गया ।[2] सन् १६०२ में वीकानेर भटिंडा लाइन पूर्ण होकर चालू हुई ।

इस रेल लाइन के खुलने से व्यापार की वृद्धि में एक महत्व-पूर्ण विकास हुआ क्योंकि यह बम्बई और पंजाब के बीच एक सीधा और कम दूरी वाला सम्पर्क वन गया । यद्यपि डिगाणा-हिसार रेल लाइन की योजना सन् १६०२ में ही बन गई थी पर आवश्यक स्वीकृति प्राप्त करने में कठिनाइयाँ होने के कारण यह कार्य सन् १६०७ में ही हाथ में लिया जा सका । सन् १६११ में यह लाइन पूरी हुई और चालू हुई । राज्य के भीतर जो दूसरी महत्वपूर्ण रेल लाइनें चालू हुई वे वीकानेर–रतनगढ़, रतनगढ़–सरदारशहर, कैनाल–लूप लाइन, और हनुमानगढ़–सादुलपुर लाइनें थीं । दूसरी महत्वपूर्ण रेल लाइन, जो सादुलपुर को रेवाड़ी से मिलाती है, की योजना सन् १६३० में वनाई गई लेकिन इसकी स्वीकृति सन् १६३७ में मिली और यह काम सन् १६४० में पूरा हुआ । सन् १६४३ में महा-राजा की मृत्यु के समय राज्य में रेल लाइनों की कुल लम्बाई ८८३.०५

---

१. एचिसन–पूर्व उद्धृत, भाग ३, पृ० २६६–२६७ ।
   १३ जुलाई सन् १८८६ को अंग्रेज सरकार, जोधपुर राज्य और बीकानेर राज्य में जो समझौता हुआ उसके अनुसार वीकानेर और जोधपुर को जोड़ने के लिये रेल लाइन निर्माण का कार्य शुरू हुआ । उस समय जोधपुर रेलवे और इस नये विस्तार को मिला कर इसे जोधपुर–वीकानेर रेलवे नाम दिया गया । कुछ समय के लिये इसका प्रवन्ध जोधपुर रेलवे के मैनेजर (प्रवन्धक) के अधीन रखा गया और उसके पद का नाम वदल कर मैनेजर, जोधपुर वीकानेर रेलवे कर दिया गया । १ नवम्बर सन् १६२४ से वीकानेर स्टेट रेलवे का प्रवन्ध अलग कर दिया गया ।

२. वही, पृ० २०१ ।

३. यह वीकानेर से दिल्ली तक का सवसे कम दूरी का मार्ग है ।

मील हो गयी थी और इससे ७१७६३१४) रु० वार्षिक आय होती थी।[१] सन् १९३६-३७ में भी रियासत में प्रति १००० वर्ग मील के पीछे ३४.१३ मील लम्बी रेल लाइन थी। बड़ौदा को छोड़कर भारतीय रियासतों में रेल यातायात के विकास में बीकानेर का प्रथम स्थान था।[२] जब बीकानेर का राजस्थान में एकीकरण हुआ तो ९ करोड़ रू. की लागत पूंजी की रेल सामग्री राजस्थान सरकार को सौंप दी गई।

भूतपूर्व बीकानेर रियासत के दूर दूर तक फैले इलाके का काफी भाग रेगिस्तान के मध्य में है। सम्भवतः यह भारत के सबसे सूखे भागों में से एक है। यहाँ की औसत वर्षा १२ इंच है। कुछ इलाकों में तो इससे भी कम वर्षा होती है। यहाँ नदियाँ नहीं हैं। पानी के साधन बहुत ही कम और काफी दूरी पर उपलब्ध हैं। भूतकाल में बीकानेर के शासकों की यह इच्छा रही कि इस इलाके को काफी मात्रा में पानी मिले। उनका मुख्य लक्ष्य हमेशा यही था कि लोगों का कष्ट दूर करने के लिये और राज्य के यथा सम्भव अधिक से अधिक भाग को सिंचित करने के लिये मीठे पानी के साधन ज्ञात किये जायँ।

सतलज नदी से सिंचाई के लिये बीकानेर में पानी पहुँचाने का विचार सबसे पहले पंजाब के इन्जिनियर कर्नल डायस द्वारा सन् १८८५ में प्रस्तुत किया गया। लेकिन कोई व्यावहारिक कदम इस बारे में तब नहीं उठाया गया।[3] महाराजा डूंगरसिंह के शासन-काल में सन् १८८४ में इस बात के लिये प्रयत्न किये गये थे कि अबोहर नहर का विस्तार करके पानी बीकानेर इलाके में लाया जाय।[४] लेकिन पंजाब सरकार ने यह कह कर

---

१. रिपोर्ट ऑन दी एडमिनिस्ट्रेशन आफ दी बीकानेर स्टेट फॉर १९४२-४३, पृ० ९६-९७।

२. फोर डिकेड्स ऑफ प्रोग्रेस इन बीकानेर, पृ० १०३।

३. फोर डिकेड्स आफ प्रोग्रेस इन बीकानेर, पृ० ९२।

४. राज्य परिषद् द्वारा ता० २०-११-१८८४ को पोलिटिकल एजेंट को लिखी गई कैफियत। इसे राजस्थान सरकार के पुरालेख विभाग के निदेशक श्री नाथूराम खड़गावत ने स्मरण पत्र के मसौदे में उद्धृत किया है ताकि अकाली दल द्वारा गंगानगर जिले को प्रस्तावित पंजाबी भाषी राज्य में मिलाये जाने के लिये की गई माँग के विरुद्ध राजस्थान सरकार अपने पक्ष का बचाव कर सके। परिशिष्ट 'जी'

इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि नहर पूरी बन चुकी है और केवल अतिरिक्त पानी ही नहर में से दिया जा सकता है। लेकिन यह पानी भी कभी ही मिलता था।[1]

सन् १८८७ में बीकानेर राज्य सरकार ने इस प्रश्न को पुनः पोलिटिकल एजेंट के सम्मुख उठाया।[2] लेकिन वहाँ से यह उत्तर मिला कि जो नहरें पहले बन चुकी हैं उनका पानी केवल अंग्रेजी इलाके के लिये ही काफी होगा अतः उनसे पानी दिये जाने की कोई आशा नहीं।[3] रीजेंसी कौंसिल के समय भी ये प्रयत्न जारी रहे पर कोई परिणाम नहीं निकला। सन् १८६८-६६ और १८६६-१६०० के भयंकर अकाल में जब राज्य के लोगों ने अकथ्य कष्ट उठाये तभी केन्द्रीय सरकार की आँखें खुलीं और उन्होंने स्थिति की गम्भीरता अनुभव की।[4] उन्हें इस तथ्य की महत्ता विदित हुई कि अब तक सिंचाई की जिन योजनाओं को क्षेत्रीय या प्रान्तीय हित की संकीर्ण दृष्टि से देखा जाता था उनमें अधिक से अधिक लोगों को अधिक से अधिक लाभ मिले यह दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिये। इस पर भारत की नदियों का पानी इसी प्रकार काम में लाने के लिये एक आम योजना बनी।[5]

---

१. ता० १४-३-१८८५ का पोलिटिकल एजेंट का उत्तर, इसे राजस्थान सरकार के पुरालेख विभाग के निदेशक श्री नाथूराम खड़गावत ने स्मरण पत्र के मसौदे में उद्धृत किया है ताकि अकाली दल द्वारा गंगानगर जिले को प्रस्तावित पंजाबी भाषी राज्य में मिलाये जाने के लिये की गई माँग के विरुद्ध राजस्थान सरकार अपने पक्ष का बचाव कर सके। परिशिष्ट 'जी'।

२. ता० १-३-१८८७ का कौंसिल का पोलिटिकल एजेंट को पत्र, वही।

३. ता० २१-५-१८८७ का पोलिटिकल एजेंट का कौंसिल को पत्र, वही।

४. सन् १६०१ में लार्ड कर्जन ने एक कमेटी नियुक्त की। उसके अध्यक्ष सर कोलिन स्कॉट मोंक्रिफ थे। इसका उद्देश्य अकाल को मिटाने के लिये सिंचाई के प्रश्न पर विचार करना था। इस कमेटी ने सन् १६०३ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

५. सतलज के पानी का कुछ भाग बीकानेर को दिये जाने के प्रश्न पर पंजाब सरकार के वित्तीय आयुक्त सर लेविस तूपर ने ता० २४-१०-१६०५ के अपने नोट में लिखा, "मैं इस बात पर बहुत जोर दूँगा कि नदी के अग्रभाग का अधिकार किसी को उससे पानी लेने का दावा करने का आधार नहीं माना जाना चाहिये और नदी से अतिरिक्त पानी

सन् १६०३ में महाराजा गंगासिंह ने चीफ इन्जिनियर के रूप में मिस्टर ए० डब्लू० ई० स्टेन्डले की सेवायें प्राप्त की। उसने बीकानेर के बहुत से बंजर भू-भाग को सतलज द्वारा सींचे जाने की सम्भावनायें बतायीं। उस समय राजपूताना के सिंचाई परामर्शदाता इन्जिनियर सर स्विटन जैकब थे। उन्होंने भी इन प्रस्तावों का पूर्ण समर्थन किया।[1]

भारत सरकार भी इस मामले में सक्रिय थी। मि० आर० जी. कैनेडी ने सन् १६०५ में प्रथम सतलज घाटी योजना तैयार की। इसके अनुसार बीकानेर रियासत के उत्तर का काफी भाग सिंचित होना था।[2] लेकिन भावलपुर राज्य (जिसका शासक उस समय नाबालिग था) की स्वार्थी नीति इस योजना की स्वीकृति में एक बहुत बड़ी बाधा थी। यद्यपि सन् १६०६ में एक निर्णय हुआ पर योजना केवल १६१२ में ही स्वीकृत हुई। भावलपुर राज्य का मुख्य एतराज यह था कि चूंकि सतलज नदी बीकानेर की सीमा में नहीं है अतः बीकानेर को नदी के पानी में हिस्सा बँटाने का अधिकार नहीं है।[3] इंग्लैंड और अमरीका में नदी तट सम्बन्धी जो कानून थे उनकी समानता पर यह एतराज आधारित था। बीकानेर सरकार ने पश्चिमी राजपूताना स्टेट्स के रेजीडेन्ट को ता० २ फरवरी १६१६ को लिखे अपने पत्र में इस एतराज का खण्डन किया।[4]

माँगने का हक तो निश्चय ही नहीं माना जाना चाहिये।"

भावलपुर राज्य की रीजेंसी कौंसिल के ज्ञापन पर रिपोर्ट के पैरा १४ में उद्धृत (सतलज घाटी नहर योजना) सर डेंजियल इवेट्सन द्वारा महाराजा गंगासिंह को ता० १६-१०-१६०६ को लिखा गया पत्र—"नहर के सम्बन्ध में मेरा सिद्धान्त यह है कि पानी का उपयोग भारत के लोगों के सर्वोत्तम लाभ की दृष्टि से होना चाहिये। इसमें इस बात का भेद नहीं करना चाहिये कि वे एक भारतीय राजा की प्रजा हैं अथवा अंग्रेजी इलाके में रहते हैं।"

१. गंगनहर के शिलान्यास के समारोह में ता० ५-१२-१६२५ को महाराजा गंगासिंह का भाषण।
२. गंगनहर के शिलान्यास के समारोह में ता० ५-१२-१६२५ को महाराजा गंगासिंह का भाषण।
३. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २६६६ A-LIV (२२४७)— सतलज नहर योजना के सम्बन्ध में ज्ञापन, १६१६, पृ० ६।
४. परिशिष्ट २८।

इसी बीच पंजाब सरकार का दृष्टिकोण भी असहानुभूतिपूर्ण हो गया था। भावलपुर का रुख और भी कड़ा हो गया अतः किसी समझौते पर हस्ताक्षर नहीं हो सके। तभी प्रथम विश्वयुद्ध से इस कार्य में बाधा पड़ गई। इन बाधाओं से न घबराते हुये महाराजा इसके लिये निरंतर प्रयत्न करते रहे। इन निरन्तर प्रयत्नों के फलस्वरूप तथा महाराजा गंगासिंह के केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धों के कारण वे बीकानेर राज्य के दावे का औचित्य भारत के समक्ष सिद्ध कर सके। सन् १९१८ में तत्कालीन पोलिटिकल सेक्रेटरी मि० हॉलेन्ड ने महाराजा को लिखा कि सभी सम्भव भागीदारों के सर्वोत्तम हितों को ध्यान में रखते हुये अतिरिक्त प्राप्त जल का उपयोग किया जाना चाहिये और इसमें अंग्रेजी इलाके और भारतीय रियासतों की सीमाओं का कोई ख्याल नहीं किया जाना चाहिये। उसने यह भी लिखा कि सरकार को ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता जिससे कि बीकानेर को सिंचाई की योजनाओं के लाभ से केवल यह कहकर वंचित कर दिया जाय कि राज्य में से कोई नदी नहीं बहती। भारत सरकार का मत था कि किसी नदी का पानी अंग्रेजी इलाके की जनता और पड़ौसी रियासतों की जनता में इस प्रकार बाँटा जाना चाहिये कि उससे सार्वजनिक हित पूरा होने में सर्वोत्तम प्रतीत हो।[1]

प्रस्तावित योजना के तकनीकी पहलू पर विचार करने के लिये दिल्ली में एक त्रिपक्षीय सम्मेलन[2] बुलाया गया। जैसा कि महाराजा गंगासिंह को प्रतीत हुआ, उन्होंने अपनी यह आशंका प्रकट की कि सम्मेलन तो केवल तकनीकी प्रश्नों पर विचार के लिये ही बुलाया गया है पर भावलपुर राजनीतिक प्रश्न को खुला रखने का विचार लिये हुये है।[3] अतः महाराजा ने सर

---

१. बीकानेर महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल संख्या ८६६-LIV (२२३५)— सर रोबर्ट अर्सकिन हॉलैंड के पत्रांक १८५३IB ता० १७-१०-१९१८ के संलग्न स्मरण पत्र, पृ. ४।

२. यह सम्मेलन १० और ११ दिसम्बर सन् १९१९ को हुआ।

३. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल संख्या ८६६-LIV (२२३६)— महाराजा गंगासिंह का कौंसिल के मेम्बर सर क्लॉड हिल के नाम ता० २३-१०-१९१९ का पत्र—

"सामान्यतः ऐसे सम्मेलन में सम्मिलित होकर हम बहुत ही प्रसन्न होंगे। पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह तकनीकी प्रश्नों पर विचार के लिये बुलाया जा रहा

क्लॉड हिल को पत्र लिखा। उसने उत्तर में यह आश्वासन दिया कि इस मामले के राजनैतिक पहलू पर विचार करने का कोई प्रश्न नहीं है। यदि किसी ने ऐसे विचार का अनुरोध किया तो वह निश्चित रूप से निषेधाधिकार का प्रयोग करेगा। क्लॉड हिल ने यह भी लिखा कि सन १९१८ के सम्मेलन में जो मूल सिद्धान्त स्वीकार किया गया, उससे हटने का उसका कोई इरादा नहीं है। सर जान डैंटन के साथ तकनीकी पहलुओं पर विचार करने से इसके राजनैतिक पहलू की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। उसने आगे लिखा कि वह स्वयं बहुत आशावान नहीं है कि तकनीकी पहलुओं में जो मतभेद है वह अधिक कम हो सकेगा। पर चूंकि पंजाब सरकार ने सभा का सुझाव दिया है अतः उसने सम्मेलन करना ही सर्वोत्तम समझा। उसने यह आशा भी प्रकट की कि अगले १५ दिनों में वह इस मामले में अग्रिम सुझाव देने की स्थिति में होगा।[1] ४ सितम्बर सन् १९२० को ही एक समझौता हो सका। इस पर हस्ताक्षर हुये और यह योजना स्वीकृति के लिये राज्य मन्त्री के पास भेज दी गई। पर सन् १९०५ की मूल योजना से इसमें काफी परिवर्तन कर दिया गया था। मूल योजना में बीकानेर इलाके की १८ लाख एकड़ भूमि सिंचाई के अन्तर्गत रखी गई थी पर परिवर्तित योजना के अनुसार केवल एक हजार वर्ग मील ही सिंचाई के अन्तर्गत रखी गई। यह एक बहुत बड़ी योजना थी। इसमें ८० मील लम्बी पक्की नहर व १५७ मील लम्बी रेलवे लाइन का निर्माण तथा मन्डियों, स्कूलों, अस्पतालों, पुलिस चौकियों और दूसरे कार्यालयों की स्थापना की जाने वाली थी। इस योजना पर लगभग साढ़ेपांच करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान था। यह धनराशि जुटाना भी कोई साधारण बात न थी।

है। भावलपुर राजनैतिक प्रश्न को खुला रखने का इरादा रखता है। वह मानों यह दिखाना चाहता है कि गत वर्ष वह किसी बात पर सहमत नहीं हुआ। वास्तव में निमन्त्रण के अपने उत्तर में उसने ऐसा लिखा भी है। पर अपने उपस्थित होने की शर्त में यह स्पष्ट किया है कि अपने पूर्व ज्ञापन में वर्णित तकनीकी प्रश्नों के अलावा कोई पूर्वाग्रह नहीं रखेंगे। इसमें यह बात भी जोड़ दी गई है कि वे सारे मामले को अन्तिम रूप से निपटाने के पूर्ण पक्ष में हैं।"

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ८६६—LIV (२२३६)— सर क्लॉड हिल का महाराजा को लिखा गया ता० २९–१०–१९१९ का पत्र।

यह योजना सन् १६२७ में पूर्ण हुई। नहर के उद्घाटन का समारोह २६ अक्टूबर सन १६२७ को लार्ड इर्विन के करकमलों से हुआ। उस समय अनेक विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित थे। अपनी एक महत्वपूर्ण अभिलाषा पूर्ण होते देखकर उस दिन निश्चय ही महाराजा गंगासिंह को अपार हर्ष हुआ। इस अवसर पर लार्ड इर्विन ने अपने भाषण के अन्त में कहा था—

.........."इस महान उपलब्धि के प्राप्त होने पर मैं आपको हमारी अत्यधिक हार्दिक बधाई देता हूँ ....।"[1] इस अवसर पर सम्राट पंचम जॉर्ज का भी एक समुद्री तार मिला जिसमें लिखा था — "...... आपके इलाके के एक भाग में सिंचाई का लाभ प्राप्त करने में आई हुई कठि-नाइयों पर विजय प्राप्त करने में आपने जो प्रयत्न किये उनकी सफलता पर और इस स्मरणीय उपलब्धि पर मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ.....।[2]

महाराजा ने जो स्वप्न देखे थे, गंग नहर योजना तो केवल उसका एक भाग थी। उनकी अभिलाषा थी कि राज्य के और अधिक इलाके सिंचित हों। उन्होंने इसके लिये प्रयत्न किया। यह योजना भाखरा बाँध योजना के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि इस प्रस्ताव पर सर्व प्रथम सन् १६१६ में मि. एच. डब्लू. निकलसन ने विचार किया। पर सन् १६२७ तक इसका कोई स्पष्ट परिणाम नहीं निकला। महाराजा को यह कितनी प्रिय थी इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि जिस दिन लार्ड इर्विन ने गंगनहर का उद्घाटन किया उसी दिन महा-राजा ने भाखरा बाँध योजना के बारे में अपनी आशा के बारे में उन्हें स्मरण दिलाया। यह योजना पंजाब सरकार की सिंचाई की योजनाओं में प्रतीक्षित सूची में थी और लार्ड इर्विन के कार्यकाल में ही स्वीकृत की जाकर कार्यान्वित किये जाने वाली थी।[3] महाराजा ने पंजाब सरकार और केन्द्रीय सर-कार से इस प्रश्न पर बात की। २० मार्च सन् १६२६ को उन्होंने पंजाब के राज्यपाल को एक निजी पत्र लिखकर पूछा कि यह योजना कब आरम्भ होने की सम्भावना है।[4] राज्यपाल ने उत्तर दिया कि बम्बई सरकार ने

---

१. ता० २६–१०–१६२७ को शिवपुर (बीकानेर राज्य) में लार्ड इर्विन का भाषण।
२. पन्नीकर, हिज हाइनेस दी महाराजा ऑफ बीकानेर, ए बायोग्राफी, पृ० २६८।
३. महाराजा गंगासिंह का शिवपुर में ता० २६–१०–१६२७ को भाषण।
४. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २६६६–A–LIV (२२४७), महाराजा गंगासिंह का ता० २०–३–१६२६ का पत्र।

एक बाधा खड़ी कर दी है और वह उस सवाल की जाँच करवा रहा है।[१] महाराजा ने अपने प्रधान मन्त्री को कहा कि वह योजना से सम्बन्धित अधिकारियों से सम्पर्क कायम करे ताकि उचित कदम उठाया जा सके। प्रधानमन्त्री ने तुरन्त अम्बाला के उप-आयुक्त से सम्पर्क स्थापित किया। वहां से बहुत महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त हुई। सन १६३० में महाराजा ने पंजाब के राज्यपाल को पुनः एक निजी तार भेजकर यह जिज्ञासा प्रकट की कि इस मामले में क्या हुआ।[२] राज्यपाल ने उत्तर दिया कि बम्बई सरकार अब भी बाधक बनी हुई है और पटियाला के साथ एक कष्टदायक विवाद खड़ा हो गया है।[3] सन् १६३१ में राज्यपाल ने पुनः महाराजा को स्थिति से अवगत कराया। उसने लिखा कि कुछ अपूर्ण प्रस्ताव तैयार किये गये हैं और सम्बन्धित कई राज्यों को उनके जांच हेतु भेजे गये हैं।

३० नवम्बर सन् १६३२ को लाहौर में एक मीटिंग हुई। इसमें पंजाब और पटियाला, फरीदकोट व नाभा रियासतों[४] के प्रतिनिधि शामिल हुये। उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि योजना का लाभ केवल पंजाब की रियासतों तक ही सीमित रखा जाय।[५]

इस बाँध से बिलासपुर का काफी इलाका पानी में डूबने वाला था। लेकिन इस इलाके को पाने के लिये जो बातचीत हुई वह आसानी से सफल होने वाली नहीं थी। यद्यपि मूलतः यह मामला पंजाब सरकार और बिलासपुर रियासत को ही तै करना था पर महाराजा गंगासिंह ने स्वयं बिलासपुर के राजा से सारी जानकारी प्राप्त की और अपनी राय सर

---

१. महाराजा बीकानेर के नीजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं २६६६-LIV (२२४७), पंजाब के राज्यपाल का ता० २३-३-१६२६ का पत्र।

२. महाराजा गंगासिंह द्वारा पंजाब के राज्यपाल सर ज्योफ्रे द मोन्मोटरेन्सी को ता० १८-७-१६३० को भेजा गया तार।

३. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २६६६ A-LIV, महाराजा गंगासिंह को लिखा गया पंजाब के राज्यपाल का ता० १८-७-१६३० का पत्र

४. पटियाला, नाभा, जीन्द, फरीदकोट और बिलासपुर।

५. मीटिंग की कारवाई, विषय सं० २।

सिकन्दर हैयातखाँ (पंजाब के प्रधान मंत्री)[1] को भेज दी। सर सिकन्दर हैयातखाँ ने वापस लिखा कि पंजाब सरकार के जो अधिकारी बिलासपुर बातचीत के लिये भेजे जा रहे हैं उन्हें इस मामले से अवगत करा दिया गया है और महाराजा के सुझावों से मिलते जुलते निर्देश उन्हें दिये गये हैं।[2] महाराजा ने जो इतना लम्बा पत्रव्यवहार किया, निजी विचार-विमर्श और पहुँच की, उसी का यह परिणाम था कि उन्हें सर सिकन्दर द्वारा इस योजना से सम्बन्धित फाइल पर एक टिप्पणी लिखवाने में सफलता मिली। इस टिप्पणी में कहा गया है कि जब यह योजना पूर्ण हो तो बीकानेर रियासत को अपने हिस्से का उचित मात्रा में जल मिलना चाहिये। दुर्भाग्य से महाराजा अपने इस श्रम को फलीभूत देखने के लिये जीवित न रहे।

सन १८९७-९८ में जब महाराजा ने पूर्ण अधिकार सम्भाले थे तो राज्य की साधारण आय १६,१५,३१९) रु० थी। इन विकास कार्यों के फलस्वरूप सन् १९३६-३७ में वह उत्तरोत्तर बढ़कर १,३५,१६,०२१) रु० हो गई। रियासत ने बड़ी रेल और नहर योजनाओं के लिये जो ऋण लिये थे वे सब भी सन् १९३६-३७ तक पूर्णतः लौटा दिये गये थे।[3] सन् १८९७ से १९३६-३७ की समस्त अवधि में रियासत का बजट बचत का रहा, केवल सन् १८९९-१९००, जो कि अकाल का वर्ष था, व १९२०-२१ और १९२१-२२ के बजट में ही बचत नहीं थी। सन् १९३६-३७ के बजट में ३४,४८,०००) रु० की बचत थी।[4]

सन् १९३८ में जब जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया के समक्ष अपनी माँगें प्रस्तुत कीं तो योरोप में स्थिति बहुत ही तनावपूर्ण हो गई। महाराजा ने एक सैनिक की अन्तःप्रेरणा और एक राजनीतिज्ञ की दूरदर्शिता से क्षितिज पर उमड़ती इस कालीघटा को शीघ्र पहचान लिया। उन्होंने तुरन्त ब्रिटिश सम्राट को एक तार भेज कर लड़ने के लिये अपनी अपनी

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २६९६ A-LIV (२२४७) महाराजा गंगासिंह का ता० ८-१२-१९३८ का सर सिकन्दर हैयातखाँ के नाम पत्र।

२. वही, सर सिकन्दर हैयातखाँ का ता० ११-१२-१९३८ का महाराजा गंगासिंह के नाम पत्र।

३. फोर डिकेड्स आफ प्रोग्रेस इन बीकानेर, पृ० १२२-२५।

४. वही, पृ० १२०।

सेना की और रियासत के समस्त साधनों की सेवायें उन्हें अर्पित की ।[1] महाराजा ने वाइसराय को भी एक तार भेजा और ये सेवायें और सहायता अर्पित की । सम्राट[2] और वाइसराय[3] ने इसकी बहुत प्रशंसा की । महाराजा सादूलसिंह ने भी, जो उस समय युवराज थे, लड़ने के लिये अपनी सेवायें सम्राट को अर्पित की ।[4] अगस्त सन् १९३९ में जर्मनी से युद्ध अवश्यमभावी हो गया । भारत के राजाओ में सब से पहले महाराजा गंगासिंह ने ही २६ अगस्त को सम्राट को समुद्री तार तथा वाइसराय को तार भेजकर गतवर्ष के सितम्बर में सेवायें अर्पित करने की बात को पुनः दोहराया । सम्राट और वाइसराय ने पुनः इसकी सराहना की ।[5]

३ सितम्बर सन् १९३९ को युद्ध की घोषणा की गई । ४ सितम्बर को महाराजा ने पुनः सम्राट को समुद्री तार भेजा और अपनी सेवाओं की बात दोहराई ।[6] ५ सितम्बर सन् १९३९ के समुद्री तार में स्वयं सम्राट ने धन्यवाद देते हुये निजी रूप से तार की पहुँच स्वीकार की ।[7] युवराज सादूलसिंह ने भी लड़ने के लिये २ सितम्बर को सम्राट को अपनी सेवायें अर्पित की लेकिन अंग्रेज सरकार के लिये उनका अनुरोध स्वीकार करना असम्भव था ।[8] ६ सितम्बर को महाराजा ने वाइसराय को एक तार भेज कर

---

१. महाराजा गंगासिंह का ता० १६–९–१९३८ को सम्राट को समुद्री तार ।

२. ता० १७–९–१९३८ का सम्राट का समुद्री तार— "आपके कल के तार के लिये मैं बहुत कृतज्ञ हूं । इस चिन्ताजनक घड़ी में आपने स्वामी–भक्ति और श्रद्धा के जो भाव व्यक्त किये हैं, मैं उनकी बहुत सराहना करता हूं ।"

३. ता० १७–९–१९३८ का वाइसराय का तार ।

४. बीकानेर एन्ड दी वार (१९३९–४५), पृ० २ ।

५. वही, पृ० ३ ।

६. वही, पृ० ३ ।

७. वही, पृ० ४ ।

"आपके सन्देश के लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं इससे मुझे अत्यधिक सन्तोष हुआ है । इस संकट के समय आपने स्वामी–भक्ति और श्रद्धा की भावना से प्रेरित होकर सहायता देने का जो मूल्यवान अनुरोध किया है मैं उसकी बहुत अधिक सराहना करता हूं ।"

८. बीकानेर एन्ड दी वार (१९३९–४५), पृ० ५ ।

युद्ध कार्यों में लगाने के लिये सम्राट को डेढ़ लाख रुपये और १००० पौंड भेंट किये।[1] वाइसराय ने यह भेंट कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार की और महाराजा को सूचित किया कि वह इस सहायता की सूचना राज्य मन्त्री को दे रहा है।[2]

महाराजा ने बीकानेर की शुतर सेना (गंगा रिसाला) में तीन कम्पनियों की वृद्धि करके उसकी लड़ने की शक्ति को लगभग दुगुना करने, भारत में सेवाओं के लिये एक दूसरी पैदल सेना बनाने, सेना की संख्या बढ़ाकर पाँच पैदल बटालियन करने, बीकानेर रेलवे वर्कशाप में हथियार बनाने, विशेष रूप से युद्ध में घायलों के लिये बनाये गये अस्पताल में ४०० घायल सैनिकों को रखने और यातायात के लिये खच्चर देने की बात भी कही।[3] वाइसराय ने कृतज्ञतापूर्वक इस बात को स्वीकार करते हुये कहा कि महाराजा के लिये सबसे उत्तम काम यही होगा कि वे बीकानेर राज्य की सेनाओं के विस्तार के प्रस्तावों को लागू करने में निजी रूप से देख भाल करें।[4]

अब काम का समय था और महाराजा ने युद्ध प्रयत्न में सक्रिय भाग लिया। १७ अगस्त सन् १९४० को गंगारिसाला बीकानेर से रवाना होकर लड़ने के लिये मध्यपूर्व में पहुँचा और दिसम्बर सन् ४२ के अन्त में भारत लौटा।[5] जब रिसाला मध्य पूर्व में था तो महाराजा गंगासिंह ने इसका निरीक्षण किया। उस समय लेखक भी उनके साथ था। इसी यात्रा के समय महाराजा गंगासिंह ने अदन में गंगारिसाले को देखा। इस रिसाले ने जो काम किया उसकी सभी ने सराहना की। लार्ड वेवल ने महाराजा को लिखा कि गंगारिसाले ने सर्वश्रेष्ठ काम किया है और बीकानेर की उच्च परम्परा को योग्यता से कायम

---

१. एक लाख रु० राज्य द्वारा और पचास हजार रु० महाराजा के निजी कोष से दिये गये थे। एक हजार पौंड स्वर्गीय महारानी दादीजी श्री भटियानीजी साहिबा द्वारा दिये गये थे।
२. ता० ६-९-१९३९ का वाइसराय का तार।
३. महाराजा गंगासिंह का वाइसराय को ता० १५-९-१९३९ का तार व १५।१८-९-१९३९ का पत्र।
४. ता० २०-६-१९४० का वाइसराय का पत्र।
५. बीकानेर एन्ड दी वार, (१९३९-४५), पृ० १४ और १६।

रखा है।[1] उसके नीचे गंगारिसाले ने जिस अनुशासन और प्रभावपूर्ण ढंग से शानदार काम किया उसकी प्रशंसा करते हुये एयरवाइस मार्शल रीड ने महाराजा को एक सराहना का पत्र लिखा।[2]

भारत लौटकर गंगारिसाले ने जून सन् १९४४ के अन्त तक सिन्ध में अपनी सेवायें दी और दिसम्बर सन् १९४५ में बीकानेर लौटा। इस अवधि में रिसाले ने हूरों की गड़बड़ी को दबाने और टिड्डी मारने के अभियानों में भाग लिया। यहाँ भी रिसाले के काम की बड़ी प्रशंसा की गई। सिंध के राज्यपाल ने रिसाले के सेनापति को एक प्लेट भेजी जिस पर उसकी और खैरपुर के नवाब की प्रशंसा अंकित थी।[3] उत्तरी कमान के मुख्य-

---

१. ता० १३–८–१९४१ को महाराजा के नाम लार्ड वेवल का पत्र।

२. एयर वाइस मार्शल जी. आर. एम. रीड का ता० २४–६–१९४१ को महाराजा के नाम पत्र।

"अदन में ब्रिटिश सेनाओं के वायु सेनापति के अपने पद को छोड़ने के अवसर पर मैं विशेष रूप से श्रीमान् को आपकी प्रसिद्ध रेजीमेन्ट गंगारिसाला की प्रशंसा में लिखना चाहता हूं। मेरे अधीन उन्होंने जो शानदार काम किया उसके लिये मैं उन्हें बधाई देता हूं।

मैंने बहुधा सुना है कि आपने और आपकी समस्त प्रजा ने सम्राट को हमेशा महान मदद दी है। अतः मैं अनुभव करता हूं कि समस्त रियासतों की सेनाओ में जो एक सर्वश्रेष्ठ सेना है उसके कार्य के बारे में आप जानना चाहेंगे। मैं ईमानदारी के साथ कहता हूं कि उनके अदन में होने से बहुत प्रसन्नता हुई है। यद्यपि उनके शौर्य प्रदर्शन के अवसर यहाँ कम थे तो भी उनके व्यवहार और अनुशासन ने उन्हें प्रशंसा का पात्र बना दिया है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इस सेना ने समुद्र पार की अपनी इस चौथी कार्य अवधि में अपनी परम्पराओं को योग्यता से कायम रखा है।

लेफ्टिनेंट कर्नल खेमसिंह जी और गंगारिसाले के सभी लोगों को अब विदा करते हुये मुझे हार्दिक दुःख हो रहा है।"

३. राज्यपाल का ता० १७–६–१९४४ को महाराजा सार्दूलसिंह के नाम पत्र—

"अब चूंकि बीकानेर गंगा रिसाला सिंध से विदा हो चुका है अतः मैं अपनी तथा अपनी सरकार की ओर से अभी हाल की हूरों की गड़बड़ी के समय रिसाले

कार्यालय के सेनापति ने भी २५ नवम्बर सन् १९४४ को गंगारिसाले के सेनापति को एक पत्र लिख कर रिसाले द्वारा किये गये शानदार कार्य की प्रशंसा की।[1]

बीकानेर की एक दूसरी सेना–सादूल लाइट इन्फेन्ट्री–समुद्र पार सेवा के लिये ता० १८ नवम्बर १९४० को बीकानेर से रवाना हुई। समुद्र पार जाने से पूर्व इस सेना की संख्या बढ़ाकर ३ से ४ कम्पनी कर दी गई थी और उसका यन्त्रीकरण भी कर दिया गया था। आरम्भ में इस सेना को अड्डों की मशीनों की निगरानी रखने और तेल क्षेत्रों की रक्षा करने के लिये लगाया गया। बाद में इसे रूस को रसद पहुँचाने के मार्ग को खुला रखने का काम सौंपा गया। यह सेना दिसम्बर सन् १९४५ में भारत लौटी।[2]

बीकानेर की विजय बैटरी का भारतीय रियासतों की सेनाओं के पहाड़ी तोपखाने के अनुसार पुनर्गठन किया गया। यह सेना शाही सेना के साथ समुद्र पार सेवा के लिये ता० ८ सितम्बर १९४१ को बीकानेर से रवाना हुई। पैदल सेनाओं की सहायता करने में इस सेना ने अराकान में एक महत्वपूर्ण कार्य किया। जब जापानी सेनाओं ने मित्र राष्ट्रों की सेना पर आक्रमण किया तो विजय बैटरी ने शत्रु को गहरी क्षति पहुँचाई और उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। जब जापानी मणिपुर की ओर बढ़े तो विजय बैटरी को हवाई जहाजों से वहाँ पहुंचाया गया। पाँचवीं डिवीजन के साथ मिल कर इसने दुश्मन को करारी हार दी। इसके कार्यों की बहुत प्रशंसा हुई। बीकानेर राज्य की सेनाओं के प्रधान सेनापति को लेफ्टिनेन्ट कर्नल प्यू ने लिखा कि जापानी तोपखाने की गोलाबारी के समय भी सारे लोगों

द्वारा की गई अमूल्य सेवाओं के बदले प्रशंसा करना चाहता हूँ।

× × × ×

मैं कर्नल खेमसिंह को एक छोटी प्लेट भेज रहा हूं। इस पर मैंने और खैरपुर के शासक ने अपनी प्रशंसा अंकित कर दी है। मैं आशा करता हूं कि रिसाला इसे सिन्ध में अपनी सेवाओं की स्मृति के रूप में स्वीकार करेगा ... ...।"

१. बीकानेर एन्ड दी वार (१९३९–४५), पृ० १८।

२. वही, पृ० १९–२०।

का व्यवहार, साहस और प्रसन्नता सराहनीय थी।[1] युद्ध में विजय बैटरी ने जो वीरता दिखलाई और उल्लेखनीय कार्य किया उसकी प्रशंसा करते हुये लेफ्टिनेन्ट जनरल सर मोन्टेग्यू स्टोप्फोर्ड ने महाराजा को पत्र लिखा।[2] लेफ्टिनेंट जनरल सर ओलिवर लीज ने भी विजय बैटरी द्वारा किये गये प्रशंसनीय कार्य की सराहना करते हुये महाराजा को लिखा।[3]

महाराजा गंगासिंह के शासन-काल में बीकानेर के राजघराने का केन्द्रीय सत्ता -- अंग्रेजों -- के साथ सम्बन्ध बहुत ही मधुर था। दोनों के पारस्परिक हितों की दृष्टि से इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। महाराजा गंगासिंह के आरम्भिक दिनों में पोलिटिकल अफसरों के हस्तक्षेप से स्थिति विकट हो जाती थी। महाराजा ने सफलता से इसका विरोध किया। लेकिन अपने सद्व्यवहार के कारण महाराजा ने इन हस्तक्षेपों के कारण केन्द्रीय सत्ता के

---

१. ता० २६-६-१९४४ को लेफ्टिनेंट कर्नल एल. एच. ओ. प्यू, आर. ए., द्वारा बीकानेर राज्य की सेनाओं के प्रधान सेनापति को लिखा गया पत्र--

"........ इस मामले में मेजर किशनसिंह, उसके अफसरों और सैनिकों ने मुझे जो सहायता और श्रद्धा प्रदान की है, मैं उसकी बहुत अधिक सराहना करता हूं। मुझे निर्बाध सहायता प्राप्त हुई है। मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है कि अब मेरा सम्पूर्ण सेना का कार्यालय विजय बैटरी के खच्चरों पर ही चलता है। पीछे रहने की अपेक्षा विजय बैटरी के ड्राइवरों और अनेक तोपचियों ने ड्राइवरों का सराहनीय कार्य करने का निश्चय किया है। पिछले महिने में सभी लोगों का व्यवहार, साहस, प्रसन्नता और श्रम सराहनीय रहा है, चाहे जापानी तोपखाने की गोलाबारी हो रही हो और चाहे ६ हजार फीट से ऊँचे जंगल से ढकी पहाड़ियों पर मानसून में कारवाई करते समय असुविधा हो, वे वैसे ही रहे हैं। मुझे गर्व है कि ऐसे लोग मेरे नीचे काम करते हैं। मैं विशेष रूप से इस बात से प्रसन्न हूं कि विजय बैटरी के सैनिकों और जिन बैटरियों में वे इस समय काम कर रहे हैं उनके सैनिकों में परस्पर गहरी मित्रता और सहयोग की भावना है। ये लोग आपस में बड़े ही प्रेम से रहते हैं।"

२. ता० १२-१०-१९४५ को दक्षिणी पूर्वी एशिया कमान की १२ वीं सेना के सेनापति ले० जनरज सर मोन्टेग्यू स्टोप्फोर्ड का महाराजा सादूलसिंह के नाम पत्र।

३. ता० १३-६-१९४५ को ले० जनरल सर ओलिवर लीज का महाराजा सादूलसिंह के नाम पत्र।

साथ अपने सम्बन्धों को बिगड़ने नहीं दिया। राज्य के आन्तरिक प्रशासन में पोलिटिकल एजेंट को हस्तक्षेप करने का कहां तक अधिकार है, इस बारे में महाराजा और कप्तान वेली में कुछ मतभेद था। पर महाराजा ने अपने नाबालिग काल में न्यायपालिका के पुनर्गठन का सारा श्रेय उसी को दिया।[1] महाराजा ने विभिन्न पोलिटिकल एजेंटों — गवर्नर जनरल और वाइसराय के एजेंटों के साथ जो वृहद् पत्र व्यवहार किया वह उनके मित्रतापूर्ण सम्बन्धों का पुष्ट प्रमाण है। हम देखते हैं कि सन् १९०० में ही कप्तान वेली के साथ मतभेदों के सम्बन्ध में महाराजा को कर्नल विन्सेंट ने लिखा कि मुझे खुशी है कि आपने मुझे साफ साफ लिख दिया है।[2] सन् १९०२ में लार्ड कर्जन ने महाराजा को सूचित किया कि राज्याभिषेक के अतिथि राजाओं में वे भी चुने गये हैं। लार्ड कर्जन ने उनको अपनी सलाह दी और ऐसा करते समय उनको लिखा कि सच्चे मित्र के नाते मैं एक निजी पंक्ति पहले ही लिखना चाहता हूँ क्योंकि मुझे विश्वास है कि मैं जो कुछ कहूँगा आप उसे ध्यान देकर सुनेंगे।[3] तब से यह मित्रता और भी दृढ हो गई। अपना पद छोड़ने से पूर्व लार्ड कर्जन ने महाराजा को लिखा कि मेरे दिल में आपके प्रति श्रद्धा हो गई है अतः मैं आपके जीवन की प्रत्येक घटना को बहुत ही रुचि से और ध्यान पूर्वक देखता हूँ। भारत छोड़कर जाने पर भी मेरी यह भावना नहीं मिटेगी।[4]

---

१. लालगढ़ में हुये एक दरबार में ता० २९-९-१९१० को महाराजा गंगासिंह का भाषण, बीकानेर स्टेट राज पत्र— असाधारण, ता० २९-९-१९१०।

२. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १३४-XV, ता० १९-१-१९०० का कर्नल एच. ए. विन्सेन्ट का पत्र—
"आपके ता० २० के पत्र से मुझे कुछ चिन्ता हो गई है। मुझे डर है कि आप चिढ़े हुये हो। आप जानते हैं मुझे इस बात से बहुत खुशी होगी कि आप मुझे अब की तरह हमेशा साफ साफ लिखें .....।"

३. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ३-VIII, ता० २४-५-१९०२ का लार्ड कर्जन का महाराजा के नाम पत्र—
"भावलपुर के नवाब की जगह राज्याभिषेक अतिथि के रूप में सम्राट को आपके नाम की सिफारिश करते हुये मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। पर एक सच्चे मित्र के रूप में मैं आपको एक निजी पंक्ति पहले से ही लिखना चाहता हूं क्योंकि मुझे विश्वास है कि मैं जो कुछ कहूंगा आप उसे ध्यान देकर सुनेंगे ....।"

४. वही, ता० १-९-१९०५ का लार्ड कर्जन का पत्र।

सन् १६०५ तक ये सम्बन्ध इतने दृढ हो गये कि जब उस वर्ष प्रिंस ऑफ वेल्स भारत आया तो उसकी भ्रमण सूची में बीकानेर भी शामिल किया गया। बीकानेर से विदाई के समय प्रिंस आफ वेल्स ने महाराजा को लिखा कि भारत से मैं जो मधुर स्मृतियां ले जाऊँगा उनमें बीकानेर का निवास सबसे अधिक स्मरण रहेगा। आपमें और मुझमें जो गहरी दोस्ती हुई है उसकी मधुर स्मृति भी मुझे सदा रहेगी।[1]

महाराजा ने अपनी रियासत के शासन का प्रबन्ध बहुत बुद्धिमानी से किया। सम्राट के प्रति उनमें अविचल स्वामी-भक्ति थी। अंग्रेज अधिकारियों के साथ उनके गहरे सम्बन्ध थे। फलस्वरूप केन्द्रीय सत्ता की दृष्टि में उनका सम्मान निरंतर बढता गया। उपर्युक्त कारणों से तथा अपने निजी उत्साह और योग्यता से सन् १६१० में वे उन प्रतिबन्धों को हटवाने में समर्थ हुये जो कि उन पर पूर्ण शासन अधिकार प्राप्त के समय लगाये गये थे।

श्री गोखले ने महाराजा को जो पत्र[2] लिखे उनमें एक से विदित होता है कि दोनों गहरे मित्र थे और दोनों का एक दूसरे में पूर्ण विश्वास था। इस पत्र में गोखले ने महाराजा की इस इच्छा का स्पष्ट संकेत दिया है कि गोखले को वाइसराय के और अधिक निकट आना चाहिये। इसमें एक घटना का भी उल्लेख है जिससे वे दोनों निकट आये। केन्द्रीय सत्ता और महाराजा में मित्रता का जो गहरा सम्बन्ध था, उसी से प्रभावित होकर महाराजा ने वाइसराय तथा इस महान राष्ट्रीय नेता के बीच निकट सम्पर्क तथा अधिक सद्भाव बढ़ाया। भारत की राष्ट्रीय प्रगति के लिये महाराजा की यह सेवा शानदार थी।

महाराजा ने अपनी जनता के लिये दूरगामी सुधार करके अपनी गहरी समझ का परिचय दिया। सन् १६१३ में उन्होंने एक प्रतिनिधि सभा की स्थापना की। इससे वे अपनी प्रजा के प्रिय बन गये। इससे केन्द्रीय सत्ता की दृष्टि में उनका गौरव और भी बढ़ गया। सन् १६१४ के महायुद्ध में

---

१. दी आउस आफ बीकानेर, पृ० ४१, ता० २७-११-१६०५ का प्रिंस ऑफ वेल्स (जार्ज पंचम) का पत्र।

२. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ६५५-XVIII (२६१A), ता० २५ फरवरी १६१२ का महाराजा के नाम श्री गोखले का पत्र, परिशिष्ट २६।

महाराजा ने लड़ने के लिये बारबार अपनी सेवायें अर्पित कीं। उन्होंने इसमें धन और जन की सहायता दी। इससे सम्राट के प्रति उनकी सहानुभूति और भी दृढ़ रूप में मानी जाने लगी। महाराजा की असाधारण योग्यता और अविचल स्वामीभक्ति इस प्रकार सिद्ध होने से यह स्वाभाविक ही था कि शाही युद्ध सम्मेलन और युद्ध मन्त्री मण्डलों में भाग लेने के लिये एक प्रतिनिधि के रूप में उनका चयन किया गया। वहाँ उनके सही निर्णय और तीव्र बुद्धि की बड़ी प्रशंसा हुई। महाराजा के मन में अपने देश का हमेशा ध्यान रहता था। श्री गोखले के पत्र से यह बात प्रमाणित होती है। महाराजा स्पष्ट रूप से अपनी मातृभूमि के लिये संघर्ष करते रहे और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में मांग की कि भारत में भी एक ऐसी सरकार बनाई जानी चाहिये जिससे कि इसका दर्जा भी साम्राज्य के दूसरे स्वशासित राज्यों जैसा हो जाय।

राज्य मन्त्री द्वारा स्पष्ट शब्दों में इच्छा प्रकट किये जाने पर महाराजा ने उन्हें भारत से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रश्नों के बारे में एक नोट १५ मई सन् १९१७ को दिया। यह नोट बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। २० सितम्बर सन् १९१७ को अंग्रेज सरकार ने एक ऐतिहासिक घोषणा की जिसने भारत के राजनैतिक विकास के प्रवाह को मोड़ दिया। महाराजा ने अपने द्वारा लिखित नोट में न केवल ऐसा ही चाहा था बल्कि परोक्ष रूप से उसका संकेत भी कर दिया था।

सन् १९१८ और १९१९ में भारत के प्रतिनिधि रूप में महाराजा का चयन संधि सम्मेलन और राष्ट्र संघ के लिये किया गया। वास्तव में उनके प्रयत्नों से ही इनमें भारत का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया गया था। इससे भी बीकानेर के राजघराने और केन्द्रीय सत्ता के बीच मित्रता और गहरा सम्बन्ध होने का प्रमाण मिलता है। पर इससे भी अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि महाराजा के प्रयत्नों से ही राष्ट्र मंडल में भारत को समान साझेदार का दर्जा मिला। फलस्वरूप शाही सम्मेलनों और राष्ट्र-संघ में भारत को स्थायी रूप से प्रतिनिधित्व मिल गया।

महान गंगनहर की योजना बनाने और दीर्घ बातचीत के बाद इसे लागू करने में महाराजा की दूरदर्शिता, शक्ति और लक्ष्य की एकाग्रता तो थी ही पर साथ ही इसमें केन्द्रीय सत्ता द्वारा महाराजा को प्राप्त सहयोग भी एक मुख्य कारण था। यह सहयोग उन्हें लार्ड कर्जन, सर डेंजिल इबट्सन, सर क्लॉड हिल, सर मालकम हेली और अन्य अनेक लोगों द्वारा प्राप्त

हुआ था। चीन और सोमलीलैंड के संघर्षों में तथा दोनों महायुद्धों में उनके द्वारा प्रदत्त सहायता इस बात का प्रमाण है कि सम्राट के प्रति उनकी स्वामीभक्ति बड़ी दृढ़ थी। सभी लोगों ने इसे स्वीकार किया है, यह बात हम कई अवसरों पर देख चुके हैं।

दूसरी ओर महाराजा का ब्रिटिश भारत के राष्ट्रवादियों से, जो भारत के लिये ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य या स्वतन्त्रता की मांग कर रहे थे, गहरी दोस्ती थी। श्री गोखले महाराजा के प्रति जो सम्मान का भाव रखते थे और महाराजा गंगासिंह ने श्री गोखले को जो सहयोग दिया था उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। सन् १९२९ में पंडित मदनमोहन मालवीय ने महाराजा को सुझाव दिया कि मातृभूमि और भारतीय रियासतों के समान हित की दृष्टि से यह वाँछनीय है कि बटलर समिति की सिफारिशों पर नरेन्द्र मण्डल की स्थायी समिति पहले ब्रिटिश भारत के कुछ नेताओं से विचार-विमर्श करे। इसके बाद ही महाराजा गंगासिंह अपने विचार वाइसराय को बतायें।[1] महाराजा ने पण्डित मदन मोहन मालवीय को विश्वास दिलाया कि राजा लोग न तो अपने देश के हितों को खतरे में डालेंगे और न ब्रिटिश भारत की उचित राजनैतिक आकांक्षाओं में बाधक होंगे।[2]

सन् १९३० में गोलमेज सम्मेलन के विचार–विमर्श में कांग्रेस द्वारा भाग न लेने से महाराजा गंगासिंह खुश नहीं थे। गोलमेज सम्मेलन में महाराजा ने जोरदार शब्दों में इस बात की मांग की कि भारत को ब्रिटिश सम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासित राज्य का दर्जा दिया जाय तथा ब्रिटिश भारत व भारतीय रियासतों का एक संघ बना दिया जाय। लेकिन उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण शर्तें भी चाही। जैसा पहले लिखा जा चुका है, सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह थी कि सम्राट के साथ राजाओं के समझौते के अधिकारों को माना जाय और उनकी इच्छा के बिना उन्हें बदला न जाय। भारत लौट कर उन्होंने यह प्रयत्न किया कि गोलमेज सम्मेलन के अगले अधिवेशन में कांग्रेस अवश्य ही भाग ले। ५ मार्च सन् १९३१ को पंडित मदन

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ३५५–XVIII (२९१), पं० मदन मोहन मालवीय का महाराजा को ता० १५–६–१९२९ का तार।

२. वही, महाराजा गंगासिंह का पंडित मदन मोहन मालवीय को ता० १८–६–१९२९ का तार।

मोहन मालवीय ने महाराजा को एक तार दिया।[1] इसमें उन्होंने महाराजा को लिखा कि कांग्रेस और सरकार में हुये संतोषजनक समझौते की आपको सूचना देते हुये मुझे खुशी होती है। इससे स्पष्टतः अनुमान लगाया जा सकता है कि इस मामले में महाराजा का कम से कम कुछ हाथ अवश्य था। १० जून १९३१ को महाराजा ने बम्बई के अपने निवास स्थान पर महात्मा गाँधी से भेंट की। इसमें उन्होंने महात्मा गांधी पर जोर दिया कि गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस के भाग लेने और महात्मा गांधी के उसमें सम्मिलित होने की आवश्यकता है।[2] उन्होंने इस बात का भी वचन दिया कि वे गांधीजी की इंग्लैण्ड यात्रा का प्रबन्ध करेंगे और साथ ही जहाज पर उनके लिये एक अलग रसोईघर का भी प्रबन्ध कर देंगे।[3]

इससे स्पष्ट है कि उनमें निरन्तर तीन निष्ठायें साथ साथ काम कर रही थीं। उनकी प्रथम निष्ठा सम्राट के प्रति थी। यह उनमें धार्मिक पवित्रता का रूप धारण कर चुकी थी अतः वे एक क्षण के लिये भी नहीं सोचते थे कि भारत सम्राट से अपने सम्बन्ध तोड़ लें अथवा साम्राज्य से अलग हो जाय। उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत राष्ट्र मण्डल का एक सदस्य रहकर ही उन्नति कर सकता है और सुरक्षित रह सकता है। उनका मत था कि भारत की सीमायें दूर दूर तक फैली हुई हैं और वे अंग्रेजी समुद्री बेड़े और सेना की शक्ति से ही सुरक्षित रह सकती है। साथ ही भारत का व्यवस्थित और शान्तिपूर्ण विकास ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा प्रदत्त सुविधाओं और साधनों पर काफी निर्भर है।

अपनी मातृभूमि के प्रति उनकी निष्ठा उनके हृदय में सर्वदा सर्वोपरि थी। वे सच्चे मन से चाहते थे कि भारत को उसका पूर्ण राजनैतिक दर्जा प्राप्त हो। ब्रिटिश भारत को उचित आकांक्षाओं के प्रति उनकी सहानुभूति थी। जब कभी अवसर आया उन्होंने उसकी वैधानिक प्रगति को बढ़ाने में उदार तरीके अपनाने पर जोर दिया। सन् १९१७ में अपनो इंग्लैंड यात्रा के समय

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल संख्या ३५५-XVIII (२९१), पंडित मदनमोहन मालवीय का महाराजा गंगासिंह के नाम ता० ५-३-१९३१ का तार।

२. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ६१४-XVIII, महात्मा गाँधी के नाम महाराजा गंगासिंह का ता० ६-७-१९३१ का पत्र, परिशिष्ट ३०।

३. वही, ता० ४-७-१९३१ का पत्र, परिशिष्ट ३१।

उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता की मांग का समर्थन प्राप्त किया। इससे बाद में होने वाली घटनाओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा। अंग्रेजों को यह विश्वास करा दिया गया था कि भारतीयों की आकांक्षायें केवल विद्रोही आन्दोलन का परिणाम हैं। जब महाराजा ने, जिनकी सम्राट के प्रति अटूट श्रद्धा असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो चुकी थी, भारत के राजनैतिक विकास की मांग की तो अंग्रेजों का यह मत अधिक समय तक न रह सका। उन्होंने ही स्पष्ट शब्दों में इस बात की आवश्यकता बताई कि ब्रिटिश सरकार को सीधे और अधिकृत रूप में यह घोषणा कर देनी चाहिये कि उसका मूल उद्देश्य भारत को स्वराज्य प्रदान करना है। उन्होंने इस भय का निराकरण किया कि राजा लोग ऐसी कार-वाई को नापसन्द करेंगे। राजाओं में से एक होते हुये उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि भारतीय राजा इसी धरती के सपूत हैं। वे इसके सुधार के मार्ग में बाधक बनने की अपेक्षा उसमें आनन्द को अनुभव करेंगे। उन्होंने इस बात से ही संतोष नहीं किया बल्कि इस बात पर भी जोर दिया कि भारत में सुधार उदार एवं सहानुभूति की भावना के साथ साथ शीघ्रता से किये जायं। उनका मत था कि "शुभस्य शीघ्रम्"।

राजतन्त्र, अपनी रियासत और अपनी प्रजा के प्रति भी उनकी निष्ठा बिल्कुल स्पष्ट थी। उनका कहना था कि मुगलों से पूर्व भी भार-तीय रियासतों का अस्तित्व था और वे पूर्णसर्वाधिकार सम्पन्न थीं। उनका मत था कि युग की विचित्र परिस्थितियों के कारण अंग्रेज सरकार के साथ जो समझौते हुये वे शब्दबद्ध प्रतिज्ञायें थीं जिनका पालन किया जाना चाहिये। जब उन्होंने देखा कि राजनैतिक व्यवहार और परम्परा द्वारा उन समझौतों की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं तो उन्होंने स्वयं सर्वोच्च सत्ता की उच्छृं-खलता से संघर्ष करने का निश्चय किया। भारतीय रियासतों की स्थिति के सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार बहुत ही दृढता और स्पष्टता के साथ अंग्रेज सरकार के समक्ष रखे। अंग्रेज सरकार ऐसे शब्द सुनने की अभ्यस्त नहीं थी। महाराजा गंगासिंह को ही इस बात का श्रेय है कि वे राजनीतिक व्यवहार में परिवर्तन कराने में सफल हुये। इससे रियासतों के प्रति सर्वोच्च सत्ता की नीति बदल गई और राजाओं को हमेशा के लिये लाभ हुआ। अतः यह स्वभाविक ही था कि जब नई व्यवस्था बनने वाली थी तो उन्होंने संधि में दिये गये अधिकारों के उपयुक्त बचाव पर जोर दिया ताकि भविष्य में उन्हें न मिटाया जा सके। उनका भय निर्मूल नहीं था। भारतीय रियासतों के प्रति निंदा और अप-शब्दों का एक अन्धाधुंध आन्दोलन

चल रहा था।

ब्रिटिश भारत के आन्दोलनकारियों की हरकतों से वे अशान्त थे। महात्मा गांधी ने अपनी विलक्षण पद्धति में राजाओं को अपनी ओर से सलाह दी कि वे "एक ऐसे संगठन (कांग्रेस) से जो भविष्य में बहुत जल्दी, हमें आशा करनी चाहिये कि दोस्ती की तरह, सर्वोच्च सत्ता का स्थान लेना चाहता है, मेल करे।"[1] कांग्रेस का कहना था कि रियासतों के साथ ब्रिटेन के सम्बन्ध भारत पर उसके अधिकार के फलस्वरूप थे और ज्योंही वह अधिकार समाप्त होगा त्योंही उन सम्बन्धों का भी कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। यही कारण था कि महाराजा को बचाव की माँग करनी पड़ी। वे पूर्ण आन्तरिक स्वायत्तता की वैधानिक गारन्टी और समझौते में दिये हुये अपने अधिकारों को चालू रखना चाहते थे। वे यह भी आश्वासन चाहते थे कि किसी भी भावी संघ में राजाओं का प्रवेश उनकी स्वेच्छा से होना चाहिये और उनकी स्थिति समान भागीदार जैसी होनी चाहिये। आत्म जीवन की मूल मानवीय प्रवृति की दृष्टि से भी महाराजा द्वारा रखी गई शर्तों को अनुचित कहकर उनकी आलोचना नहीं की जा सकती।

इन परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली निष्ठाओं के प्रति लगाव के कारण कई बार गलतफहमी पैदा हुई। एक ओर महाराजा गंगासिंह राजनैतिक (विदेश) विभाग के लिये उलझन थे। वह उनके मन की गहराई को नहीं जान सका। उनमें सम्राट के प्रति अति स्वामीभक्ति थी। यदि कोई उनके अधिकारों को छीनने का प्रयत्न करता तो वे उसके लिये संघर्ष करते। स्वातन्त्र्य आन्दोलन के प्रति वे अपनी देशभक्ति पूर्ण भावनावों को निडरता और अत्यधिक उत्साह से प्रकट करते। दूसरी ओर ब्रिटिश भारत के नेता भी कभी कभी उनकी ईमानदारी में सन्देह प्रकट करते कि वे ब्रिटिश भारत की प्रगति का समर्थन सच्चे मन से करते हैं या नहीं। पर ये अकेले महाराजा गंगासिंह ही थे जिन्होंने तीनों को एक मधुर योजना में जोड़ दिया। सम्राट के संरक्षण में उन्होंने एक ऐसे संघ की कल्पना की जिसमें भारतीय रियासतें समान जागीरदार के रूप में मानी जाने वाली थीं और राजाओं को सीधे वाइसराय की देख रेख में रखकर उनके विशेषाधिकार और समझौते के अधिकार सुरक्षित रखे जाने वाले थे।

---

१. माइकेल एडवर्डस्, दी लास्ट इयर्स ऑफ ब्रिटिश इन्डिया, पृ० १८१।

कुछ काल अस्वस्थ रहने के उपरान्त महाराजा गंगासिंह का २ फरवरी सन् १६४३ को प्रातः ५-२५ पर अपने बम्बई के निवास स्थान पर स्वर्गवास हो गया। अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु बम्बई के राज्यपाल का एक प्रतिनिधि और काश्मीर, ग्वालियर आदि कई रियासतों के राजा आये। प्रातः ६ बजे एक विशेष विमान द्वारा शव बीकानेर लाया गया जहां उनका अन्तिम संस्कार किया गया। उनके स्वर्गवास से हमें, विशेषतः मुझे जो हानि हुई उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि मेरे प्रति उनका बहुत ही दुलार और ध्यान था। हमें यह देखकर बहुत धैर्य मिला कि हमारे शोक में बीकानेर का प्रत्येक नागरिक सम्मिलित है। महाराजा की मृत्यु का शोक केवल उनके परिवार और उनकी प्रजा को ही नहीं हुआ बल्कि समस्त भारत और विदेशों में भी अनुभव किया गया।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में एक शोक सभा हुई। भारत के वर्तमान राष्ट्रपति श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् उस समय हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। उन्होंने उस शोक सभा में कहा "इस विद्यालय में उनकी असीम रुचि थी। जहां तक इस विश्वविद्यालय और हिन्दू आदर्शों के बढाने का प्रश्न था वे अपने उत्साह में अद्वितीय थे। उनके रूप में हमने इस विश्वविद्यालय का एक महान संरक्षक, एक महान मित्र जिसके प्रौढ़ निर्णय और मधुर अनुभव का हम हमेशा विश्वास कर सकते थे, खो दिया। उनका ऐसा उत्तराधिकारी पाना सरल नहीं होगा जो विश्वविद्यालय में इतनी गहरी रुचि ले सके।"[1]

इस अवसर पर भारत सरकार द्वारा काली रेखाओं से घिरा एक असाधारण गजट निकाला गया। महाराजा को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये वाइसराय ने कहा, "उनका जीवन कठिन और वैविध्यपूर्ण प्रवृतियों का था। महाराजा साहब ने अपने अनुपम गुणों और प्रभावशाली व्यक्तित्व से जीवन में प्रसिद्धि और ख्याति का एक असाधारण स्थान प्राप्त किया। अपनी रियासत में उन्होंने प्रगति और समृद्धि के एक नये युग का सूत्रपात किया नरेन्द्र मण्डल में उन्होंने महान कार्य किया जिसका भारतीय इतिहास में अपना स्थान होगा। साम्राज्य और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के अधिक व्यापक क्षेत्र में

---

१. स्टेट्समैन ता० ५-२-१६४३।

उन्होंने केवल अपनी इज्जत ही नहीं बढ़ाई बल्कि अपनी मातृभूमि के लोगों व राजाओं का भी सम्मान बढ़ाया।"[1] वाइसराय ने महाराज कुमार सादूलसिंह को संवेदना का एक तार भी भेजा। इसमें कहा गया था कि महाराजा की मृत्यु केवल राजाओं की ही नहीं बल्कि भारत और साम्राज्य की भी हानि है।[2]

भारत के राज्य मन्त्री मि० एमरी ने कहा, "बीकानेर के महाराजा की मृत्यु से भारत ने अपना सर्व प्रसिद्ध सार्वजनिक व्यक्ति तथा साम्राज्य ने प्रथम श्रेणी का एक सैनिक राजनीतिज्ञ खो दिया है।"[3]

लार्ड वेवल के एक निजी तार के अतिरिक्त सर्वोच्च सेनापति ने भी महाराज कुमार को एक संवेदना का तार भेजा। इसमें उसने कहा कि श्रीमती वेवल और भारतीय सेना, जिसके महाराजा आनरेरी कर्नल थे, अपनी संवेदना उसके साथ ही भेज रहे हैं।[4]

लंदन डेली टेलिग्राफ में एक पत्रकार ने लिखा "रजत जयन्ती समारोह में घोड़ा गाड़ी में सेंट पाल्स जाते हुये उनके महान व्यक्तित्व को लंदन याद करता है। तब असंदिग्ध रूप से यह वही राजा थे जिनके सर विलियम आपरेन, और सर जैम्स गैटिन ने युद्ध नेताओं के बीच सुन्दर ढ़ंग से वर्णन किया है। वे तब भी गौरव और सुन्दर आकृति वाले थे जो एक उच्च राजकुल की द्योतक थी। उनकी भूरी और सुन्दर आँखें आनन्द-मग्न भीड़ का अभिवादन अपनी चमक द्वारा स्वीकार करती थी।"[5]

सर एडवर्ड ड्यूरांट ने "फील्ड" में लिखा, "उनके स्वर्गवास से ब्रिटिश साम्राज्य का एक सर्वाधिक निष्ठावान सलाहकार, और शिकार का एक सर्वाधिक निष्ठावान और चतुर नायक खो गया है। निजी मित्रों को उनकी मृत्यु से कभी पूर्ण न होने वाली क्षति हुई है।"[6]

"टाइम्स आफ इन्डिया" द्वारा महाराजा का जीवन बहुत ही सुन्दर ढ़ंग से इस प्रकार व्यक्त किया गया है "महाराजा का जीवन वीरता

---

१. स्टेटसमैन ता० ४-२-१९४३।
२. वही, ता० ५-२-१९४३।
३. दी टाइम्स ऑफ इन्डिया ता० ४-२-१९४३।
४. स्टेटस्मैन ता० ६-२-१९४३।
५. दी हिन्दू ता० ७-२-१९४३।
६. दी फील्ड ता० २०-२-१९४३।

और स्थायी उपलब्धियों का एक शानदार रेकार्ड था। अपने जीवन के ६३ वर्षों में उन्होंने अधिकांश, एक आदर्श एकाग्रता से अपनी जनता की सेवा के लिये, अपने देश की सेवा के लिये और ब्रिटिश राष्ट्र मंडल की सेवा के लिये बिताया। ऐसा कर के उन्होंने बीकानेर को प्रसिद्ध कर दिया और स्वयं भी विश्व में प्रसिद्ध हो गये।"[१]

---

१. दी टाइम्स ऑफ इन्डिया ता० ३-२-१९४३।
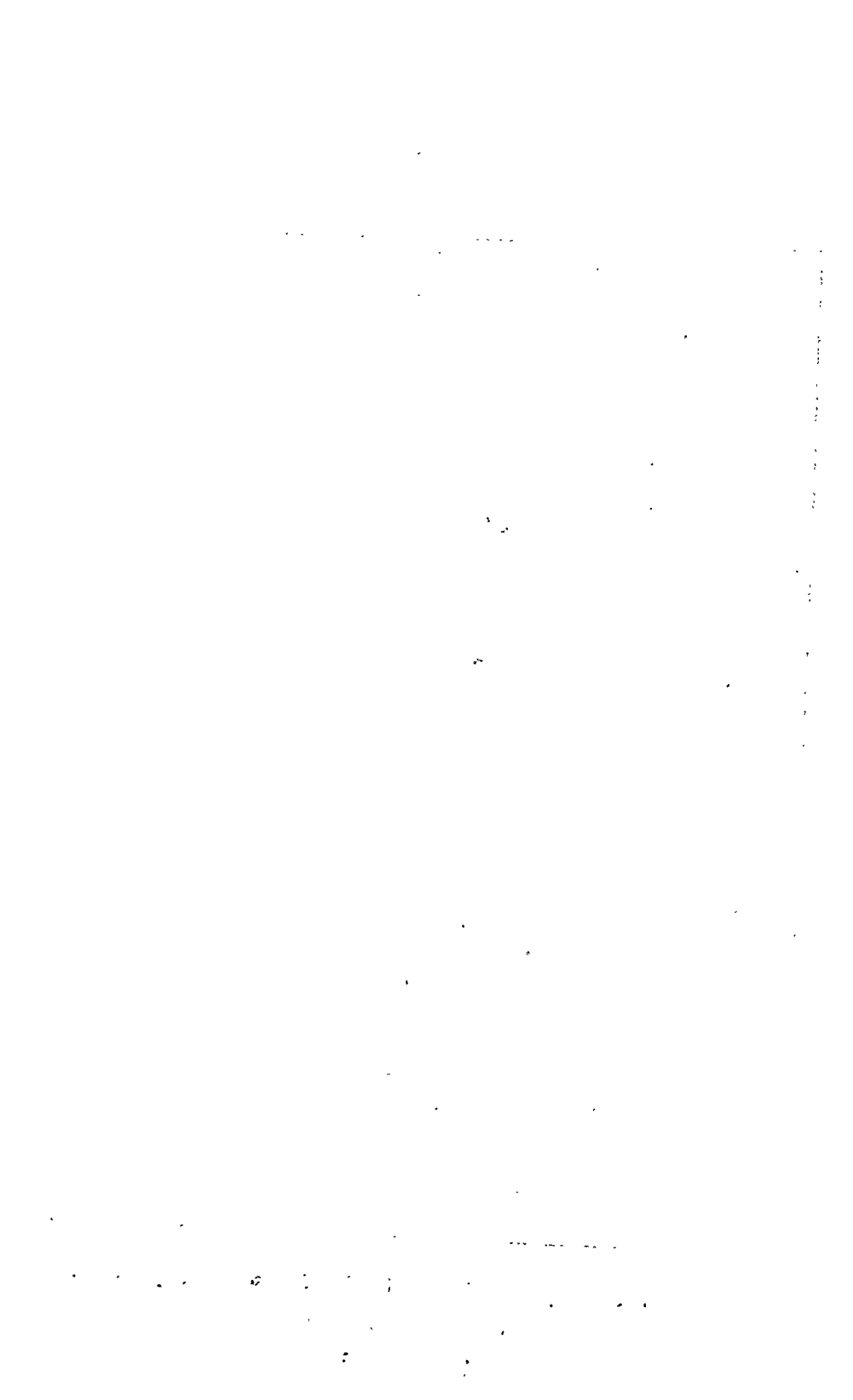
लेफ्टिनेन्ट जनरल हिज़ हाईनेस महाराजा श्री सादूलसिंहजी बहादुर, बीकानेर
(राजस्थानी साफे में)
१९४३-१९४९

अध्याय ६

भारत के एकीकरण में बीकानेर का योग

महाराजा सादूलसिंह का जन्म ७ सितम्बर सन् १६०२ को हुआ था। २ फरवरी सन् १६४३ को महाराजा गंगासिंह का स्वर्गवास होने पर वे बीकानेर के २२ वें शासक के रूप में गद्दी पर बैठे। १८ वर्ष के बालिग होने से पूर्व उन्हें विभिन्न मंत्रियों और उच्चाधिकारियों के साथ रखा गया ताकि उन्हें प्रशासन का व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त हो सके। जब यह बालिग हुये, तो महाराजा गंगासिंह ने विधिवत् दरबार करके उन्हें मुख्यमंत्री[1] के अधिकार प्रदान किये। इस पद पर वे साढ़ेचार वर्ष रहे।[2] इस प्रकार जब वे बीकानेर के शासक हुये तो राज्य प्रशासन का उन्हें पूर्ण ज्ञान था।

महाराजा सादूलसिंह के ६ वर्ष के राज्य-काल में रियासतों और ब्रिटिश भारत में महान राजनैतिक उथल-पुथल और क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। स्वयं बीकानेर रियासत में सरकार के रूप को और अधिक जनतान्त्रिक बनाने के लिये अनेक कदम उठाये गये। इसी अवधि में भारत को द्वितीय महायुद्ध के संकट में से निकलना पड़ा और भारत इसी समय मन्दगति से, पर निश्चित रूप से, स्वतन्त्रता प्राप्ति की ओर बढा।

महाराजा सादूलसिंह का शासन काल बीकानेर राजघराने और

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २२७८-XXVI, भाग २-बी, महाराजकुमार सादूलसिंह के बालिग होने पर ता० ६-६-१६२० को महाराजा गंगासिंह का भाषण।

२. सन् १६२५ के आरम्भ में महाराज कुमार सादूलसिंह ने प्रार्थना की कि उन्हें मुख्य मन्त्री के पद से मुक्त कर दिया जाय। अनिच्छा होते हुये भी उनका यह अनुरोध मान लिया गया।

केन्द्रीय सत्ता के बीच राजनैतिक सम्बन्ध की घटनाओं से भरा हुआ था। महाराजा के राज्यारोहण के बाद की प्रथम घटना भारत सरकार का वह निर्णय था जिसके अनुसार अन्य रियासतों की तरह बीकानेर का राजनैतिक सम्बन्ध पोलिटिकल एजेंट के माध्यम से कायम रखना था। पहले यह सम्बन्ध सीधा राजपूताना के रेजीडेंट के माध्यम से था। इसे बदल कर अब पुनः पोलिटिकल एजेंट के माध्यम से कर दिया गया। बीकानेर के लिये पोलिटिकल एजेंट पश्चिमी राजपूताना की रियासतों का रेजीडेंट था। भारत सरकार का राजनैतिक विभाग महाराजा गंगासिंह की इस सफलता से प्रसन्न नहीं था कि वे सीधे राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित कर लें। सारी रियासतों में केवल बीकानेर को ही यह विशेषाधिकार मिला हुआ था। अतः ज्योंही अवसर मिला राजनैतिक विभाग ने सीधे सम्बन्ध का विशेषाधिकार समाप्त कर दिया। वास्तव में ७ मार्च १९४३ का एक स्मरण लेख मिलता है। इसमें रेजीडेंट के साथ होने वाली बात के विषय लिखे हैं। इससे पता चलता है कि ८ मार्च सन् १९४३ को महाराजा के राज्यारोहण पर उन्हें वाइसराय का खरीता भेंट करने से पूर्व ही इस विषय में उनकी सहमति माँगी गई थी और उन्हें देनी पड़ी थी।[1] यह केवल औपचारिकता के कारण था कि इस परिवर्तन को लागू करने की अधिकृत सूचना कुछ समय बाद दी गई।[2]

खरीता भेंट करते समय रेजीडेंट ने अपने भाषण में कहा कि महाराजा विश्व इतिहास के एक विकट समय में गद्दी पर बैठे हैं। और रियासत अधिक समय तक बाहरी प्रभावों से अछूती रहने की आशा नहीं रख

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१–XXVI, भाग २। इसका समर्थन महाराजा सादूलसिंह द्वारा जोधपुर स्थित पश्चिमी राजपूताना रियासतों के रेजीडेंट मेजर एलिंग्टन को ता० २३-३-१९४३ को लिखे गये पत्र से भी होता है— महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ११०–XV।

२. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १८४–XIV, कर्नल जी. वी. बी. गिलन (राजपूताना के रेजीडेंट) का महाराजा सादूलसिंह के नाम पत्रांक सी/२१–४३ ता० २५–३–१९४३।
महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १०–XV, मेजर एन. एस. एलिंग्टन (पश्चिमी राजपूताना की रियासतों का रेजीडेंट) का महाराजा सादूलसिंह के नाम ता० २१–३–१९४३ का पत्र।
महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १८४–XIV, महाराजा सादूलसिंह का कर्नल गिलन के नाम ता० २७–३–१९४३ का पत्र।

सकती । उसने आगे कहा कि आर्थिक अन्तर्निर्भरता, यातायात की सुविधाओं और गति में वृद्धि, समाचारपत्रों और रेडियों द्वारा वाह्य विचारों का प्रभाव, आदि कारणों से रियासत अधिक समय तक स्वसीमित या आत्मनिर्भर नहीं रह सकती । उसने ध्यान दिलाया कि भारत के लोगों का विकास समस्याएँ उत्पन्न करेगा । ऐसी स्थिति में आशा है कि महाराजा नये राजनैतिक विचारों के विकास के साथ साथ लाभकारी का उपयोग करना और हानिकारक का त्याग करना जान जायेंगे ।[1]

अपने उत्तर में महाराजा ने कहा कि मैं जानता हूँ कि विश्व एक अद्वितीय अपार संकट से गुजर रहा है और संघर्ष के वाद यह निश्चय ही दूरगामी और सवको प्रभावित करने वाले परिवर्तन लेकर सामने आयेगा । उन्होंने कहा कि मुझे विश्वास है कि नये और शक्तिशाली विचारों के प्रवाह से तथा वाह्य प्रभावों से रियासतें अधिक समय तक अप्रभावित नहीं रह सकतीं । मैं अनुभव करता हूँ कि शासक के लिये दूरदर्शी होना वहुत आवश्यक है ।[2]

अपने राज्यारोहण पर महाराजा ने "प्रजाहित व्रतिनो वयम्" (अपनी प्रजा की सेवा में) को अपना लक्ष्य और मार्ग दर्शक सिद्धांत घोषित किया । ता० ८ मार्च १९४३ के अपने भाषण में उन्होंने इस बात को दोहराया कि वैधानिक सुधार लागू करने के मामले में मैं अपने यशस्वी पिताजी का अनुसरण करूँगा । उन्होंने यह प्रवल आशा प्रकट की कि राज्य की जनता राज्य के प्रशासन से उत्तरोत्तर अधिक सम्वन्धित हो ।[3]

जब महाराजा सादूलसिंह गद्दी पर विराजे तो द्वितीय महायुद्ध वड़े जोरों से चल रहा था । युवराज काल में उन्होंने पहले भी लड़ने के लिये अपनी सेवायें अर्पित की थीं । अब उन्होंने पुनः युद्ध में जाने की इच्छा व्यक्त की ।[4] महाराजा वनने के वाद उन्होंने ता० २५ जुलाई सन् १९४३ के पत्र में फिर यह वात दोहराई । इस वार उनकी इच्छा स्वीकृत हुई । अपने द्वितीय पुत्र महाराज कुमार अमरसिंह के साथ महाराजा ता० २६ अक्टूवर सन् १९४३

---

१. महाराजा वीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१–XXVIII, भाग ३ । वीकानेर में खरीता दरवार में ता० ८–३–१९४३ को राजपूताना के रेजीडेंट का भाषण ।
२. वही, ता० ८–३–१९४३ को महाराजा सादूलसिंह का भाषण ।
३. वही ।
४. वही ।

को बीकानेर से रवाना हुये। उन्होंने ईरान स्थित सादूल-लाइट इन्फेन्ट्री, इराक स्थित बीकानेर की ४६ जी. बी. टी. कम्पनी तथा अन्य रियासतों की सेनाओं, शाही सेना और मित्र राष्ट्रों की सेनाओं का निरीक्षण किया। इसमें चौथी भारतीय डिवीजन और ३१वीं भारतीय और बख्तरबन्द डिवीजन सम्मिलित है। नवम्बर सन् १९४३ में वे भारत लौटे और बीकानेर लौटते समय मार्ग में उन्होंने गंगारिसाले का निरीक्षण किया जो उन दिनों सिन्ध में नियुक्त था।[1]

नवम्बर सन् १९४४ में महाराजा पुनः आसाम-बर्मा युद्ध मोर्चे पर गये। वहाँ बीकानेर विजय बैटरी जापानियों के विरुद्ध युद्ध-रत थी। दिसम्बर सन् १९४४ में महाराजा बीकानेर लौट आये।[2] बीकानेर लौटते समय जब महाराजा कलकत्ता से गुजरे तो वहाँ व्यापार के लिये बसे हुये बीकानेर के एक लाख से अधिक लोगों ने आपका महान स्वागत किया। महाराजा और उनके स्टाफ को १९३९--४५ का स्टार, बरमा स्टार, डिफेंस मेडल और वार मेडल प्राप्त हुये।[3]

बीकानेर ने युद्ध में जो दूसरे महत्वपूर्ण योग दिये उनमें दूसरी और तीसरी इन्फेन्ट्री बटालियनों का गठन[4], एक इन्फेन्ट्री प्रशिक्षण केन्द्र, एक तोपखाना प्रशिक्षण केन्द्र और एक गार्ड बटालियन का गठन है। इसके अतिरिक्त बीकानेर में एक युद्ध बंदी शिविर खोला गया और युद्ध में घायलों और बीमारों के लिये दो सैनिक अस्पताल खोले गये। फरवरी सन् १९४४ में लार्ड और लेडी वेवल ने तथा सन् १९४५ में लेडी माउन्ट-बेटन ने इन सैनिक अस्पतालों का निरीक्षण किया और उनकी बहुत प्रशंसा की।[5] छोटे टैंक और वायुयान खरीदने, भारतीय और अंग्रेज सैनिकों को

---

१. बीकानेर एन्ड दी वार (१९३९--४५), पृ० ८।
२. वही, पृ० ६।
३. महाराजा सादूलसिंह को मिली उपाधियाँ, पदक, सम्मान आदि की एक सूची परिशिष्ट ३२ में दी गई है।
४. दूसरी इन्फेन्ट्री बटालियन का नाम बाद में करणी इन्फेन्ट्री कर दिया गया था।
५. लार्ड वेवल ने अपनी सम्मति इस प्रकार लिखी है—
"मेरी पत्नी और मैंने २ फरवरी को सैनिक अस्पताल सं० १ का निरीक्षण किया। रोगियों की सुविधा और उपचार के लिये यहाँ जो कुछ किया जाता है उससे तथा इसकी कार्य कुशलता से हम बहुत प्रभावित हुये हैं।"

सुविधायें देने, लंदन के लोगों की सहायता करने तथा रैडक्रॉस जैसे अन्य सहायता कार्यों के लिये महाराजा के निजी कोष और रियासत की ओर से १५,१६,०६३ रु० ६ आने २ पाई की आर्थिक सहायता दी गई।[1] महाराजा और बीकानेर राज्य की सेनाओं ने विभिन्न युद्ध सेवाओं में जो योग दिया उसके उपहार स्वरूप सर्वोच्च सेनापति ने महाराजा को २३ दिसम्बर सन् १९४६ को एक तोप भेंट की। बीकानेर में यह तोप लेफ्टिनेंट जनरल सर फ्रैंक मैसरवी द्वारा प्रदान की गई। इस अवसर पर भाषण देते हुये उसने बीकानेर राज्य की विभिन्न सेनाओं द्वारा प्रदत्त सहायता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।[2] दक्षिणी पूर्वी एशिया की

लेडी माउन्ट बैटन ने इस प्रकार लिखा–

"रोगियों का जो अत्यधिक ध्यान रखा जाता है उससे तथा सर्वोत्तम निवास एवं शानदार सामग्री से मैं बहुत प्रभावित हुई हूं। मुझे ज्ञात है कि स्वयं श्रीमान् की गहरी और निजी रुचि से इन अस्पतालों में बहुत अन्तर आ गया है। इससे यहाँ काम करने वालों और उपचार कराने वालों का उत्साह बहुत बढ़ गया है। अन्य कई बातों के अलावा इससे युद्ध प्रयत्नों में जो महान योग मिला है, मैं उसकी चर्चा सम्राट और सम्राज्ञी से करूँगी।"

--बीकानेर एन्ड दी वार (१९३९--४५), पृ० ४९।

१. बीकानेर एन्ड दी वार (१९३९--४५), पृ० २९–७५।

२. बीकानेर बुलेटिन, वर्ष ४ अंक ५, जनवरी १९४७, पृ० ७–८, २३ दिसम्बर सन् १९४६ को बीकानेर में दिया गया लेफ्टिनेंट जनरल सर फ्रैंक मैसरवी का भाषण—

"सन् १९३९–४५ के विश्वयुद्ध में श्रीमान ने और बीकानेर राज्य की सेनाओं ने जो सेवायें प्रदान की हैं उनके उपहार स्वरूप महामना सर्वोच्च सेनापति और भारतीय सेना की ओर से यह तोप भेंट करते हुये मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।

× × × ×

भारतीय रियासतों की सेनाओं में गंगारिसाला सबसे पहला था जो रियासत से बाहर समुद्र पार लड़ने के लिये गया। साढ़े चार वर्षों तक यह सेना समुद्र पार देशों में और हूरों के विरुद्ध सिंध के रेगिस्तान में कारवाई कर के राज्य में लौट आई।

बाहर जाने वाली दूसरी सेना सादूल लाइट इन्फेन्ट्री थी। इसने रियासत से बाहर पाँच वर्षों से अधिक समय तक सेवायें दी। इसने अपने अनेक सैनिक कार्य उत्साह और योग्यता से किये। इसके बाद में विजय बैटरी

विजय में बीकानेर के योगदान के उपहार स्वरुप महाराजा को जापानी अफसरों की एक तलवार भी भेंट की गई। यह तलवार जापानियों द्वारा दक्षिणी पूर्वी एशिया कमान में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को समर्पित की गई थी। दक्षिणी पूर्वी एशिया कमान की ओर से महाराजा को एक युद्ध स्मारिका भी भेंट की गई।[1]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बीकानेर के राजघराने ने हमेशा अपने वचनों का पालन किया है और संधि की शर्तों के अनुसार बराबर सम्राट का साथ दिया है। जब कभी अवसर आया है सम्राट की सेवा में बीकानेर रियासत की सेनायें ब्रिटिश साम्राज्य की सेनाओं के कंधे से कंधा लगा कर लड़ी हैं। महाराजा सादूलसिंह के शब्दों में "जब से सम्राट के साथ बीकानेर का समझौता हुआ है तब से साम्राज्य की शायद ही कोई ऐसी बड़ी सैनिक कारवाई हो जिसमें बीकानेर की सेना ने अपना महत्वपूर्ण

का अवश्य उल्लेख करूँगा। इसने सन् १९४१ से सन् १९४५ तक पहले उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त में तथा बाद में सातवीं भारतीय डिवीजन में बर्मा में सेवायें दी। मैं डेढ़ वर्ष तक सातवीं भारतीय डिवीजन का सेनापति रहा। उस अवधि में विजय बैटरी को अपने सेनापतित्व में पाकर मुझे गर्व हुआ। जिन अनेक युद्धों ने सातवीं भारतीय डिवीजन को ख्याति दी उनमें विजय बैटरी की वीरता और योग्यता के प्रति मैं व्यक्तिगत रूप से श्रद्धा-नत हूं।

इन प्रसिद्ध सेनाओं के अतिरिक्त ४९ जी. टी. कम्पनी और बीकानेर रियासत के काफी लोगों द्वारा भारतीय सेना में भर्ती होकर बहुत शानदार काम किया गया।

इन बहादुर सेनाओं के पीछे हर समय श्रीमान और बीकानेर रियासत के लोगों की शक्ति थी जो अपने अधीन प्रत्येक उपाय से युद्ध प्रयत्नों को बढ़ावा दे रहे थे। युद्ध के विभिन्न मोर्चों पर श्रीमान् ने अपने निरीक्षण के समय बीकानेर रियासत के और भारतीय सेना के बीकानेर रियासत के लोगों को जो उत्साह प्रदान किया, वह मुझे ज्ञात है।

श्रीमान् ने और आपकी जनता ने हमें जो बहुमूल्य सहायता दी उसके लिये मैं महामना सर्वोच्च सेनापति और समस्त भारतीय सेना की ओर से आभार एवं कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

१. बीकानेर बुलेटिन वर्ष ४ अंक ६, अप्रैल १९४७, पृ० १७।

भाग अदा न किया हो।[1]

युद्ध की सफल समाप्ति में यथासम्भव महत्वपूर्ण योग देने की महाराजा की गहरी इच्छा थी। साथ ही बीकानेर को जनता की भलाई और राज्य के प्रशासन के साथ उसे सम्बन्धित करने का अपना वचन भी हमेशा उनके ध्यान में रहता था। ये बातें उनके मन में सदा सजग रहती थीं।[2] बीकानेर का अधिकांश भाग 'थार' रेगिस्तान के अन्तर्गत है। यहां पानी सुलभ कराने और यहां के निवासियों के लिये पीने के पानी का प्रबन्ध करने के प्रश्न को महाराजा ने प्राथमिकता प्रदान की। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सर्व प्रथम महाराजा ने सन् १९४३ में "सादूल जल प्रदाय और ग्रामीण पुनर्निर्माण कोष" बनाकर उसमें ४० लाख रुपये दिये।[3] राज्य के विकास में बीकानेर के लोगों को समर्थ बनाने की दृष्टि से उन्हें शिक्षित करना भी उन्हें बहुत प्रिय था। सन् १९४५ में महाराजा ने शिक्षा विस्तार की वृद्धि में प्रेरणा देने हेतु दो छात्रवृत्तियाँ आरम्भ कीं। ये रुड़की इन्जिनियरिंग कालेज में पढ़ने के लिये थी और बाद में यहाँ से बीकानेर के योग्य विद्यार्थियों को अमरीका में प्रशिक्षण की भी सुविधायें प्रदान की गई थीं। इसके लिये पाँच हजार पौंड की रक़म प्रदान की गई।[4] बृहद् भारत छात्र-वृत्तियों के लिये महाराजा ने बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय को भी ४ लाख रुपये प्रदान किये। इस रकम से ७५) रुपये प्रति मास की १३ छात्रवृतियाँ दी जाने वाली थीं। इनमें से ८ छात्रवृतियाँ तो विश्व के विभिन्न भागों में बसे भारतीय विद्यार्थियों के लिये थीं और शेष पाँच कम्बोडिया, स्याम, इण्डो-नेशिया, लाओस और बाली द्वीप समूह के एक एक विद्यार्थी के लिये थीं।[5] इसके अतिरिक्त बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय को गंगा भवन नाम

---

१. बीकानेर बुलेटिन, वर्ष ४ अंक ६, जनवरी १९४७। १९३९-४५ के विश्व युद्ध में दी गई सेवाओं के बदले में सर्वोच्च सेनापति द्वारा भेंट की गई तोप को ग्रहण करते समय २३ दिसम्बर सन् १९४६ को महाराजा सादूलसिंह का भाषण।

२. महाराजा सादूलसिंह का ता० २६-५-१९४५ को विधान सभा को संदेश।

३. महाराजा के शासन के प्रथम १८ महीनों की कुछ मुख्य बातों पर टिप्पणी, पृ० ३।

४. बीकानेर बुलेटिन वर्ष ४ अंक ६, जनवरी सन् १९४७, पृ० ३२।

५. बीकानेर बुलेटिन, वर्ष ४ अंक ६, अप्रैल १९४७, पृ० १५।

से एक छात्रावास और सादूलवाटिका नाम से एक मन्दिरोद्यान बनाने के लिये १ लाख रुपये प्रदान किये गये ।[1] बीकानेर रियासत में तेजी से राजनैतिक परिवर्तन हो रहे थे । इन्हीं के कारण आगे चल कर बीकानेर का भारतीय संघ में विलय हुआ । इन से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि विषयान्तर होते हुये भी महाराजा गंगासिंह व महाराजा सादूलसिंह के पूर्वार्द्ध शासन काल में रियासत पर अंग्रेजी प्रभाव की संक्षेप में समीक्षा की जाय ।

शेष भारत की भाँति आधुनिक बीकानेर अंग्रेजों से अपने सम्पर्क के कारण गहरे रूप में प्रभावित हुआ था । राज्य में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार और यहाँ की राजनीति में ब्रिटिश विचारों के आने के कारण न केवल राज्य के प्रशासनिक ढांचे में बल्कि यहाँ की संस्कृति में भी तेजी से परिवर्तन हुआ । रियासत के शासन को आधुनिक और पाश्चात्य ढंग का बनाने में भारतीय और विदेशी अफसरों ने निष्ठा से महाराजा गंगासिंह को योग दिया । बीकानेर राज्य के प्रशासन में विदेशी प्रतिभाओं का उपयोग कुछ आलोचना का विषय रहा है । महाराजा गंगासिंह ने स्वयं अपनी स्थिति को स्पष्ट किया है । अपने सम्मान में दिये गये भोज के भाषण के उत्तर में उन्होंने कहा— "..... मुझे ज्ञात है कि हमारी रियासत से बाहर कुछ क्षेत्रो में इस सम्बन्ध (रियासत के प्रशासन में अंग्रेज अफसरों को लगाने) में कुछ नाराजी है लेकिन जहाँ तक प्रशासन के हितों का सम्बन्ध है, मैं अन्य किसी बात की परवाह नहीं करता । जब मैं अनुभव करता हूँ कि अंग्रेज अफसरों की नियुक्ति से योग्यता और उपयोगिता अधिक बढ़ जायेगी, जब मेरी परिषद् के सदस्य महसूस करते हैं कि अंग्रेज अफसर बहुत ही योग्य और इन पदों के लिये बहुत ही उपयुक्त हैं तथा उन्हें सौंपे गये कार्य को वे सन्तोषजनक ढंग से करते हैं तो यह स्वाभाविक है कि उनकी सेवाओं का लाभ उठाया जाय अन्यथा रियासत के प्रति अपने कर्तव्य पालन में हम असफल रहेंगे ।" बीकानेर राज्य के कुछ अफसरों ने जो विदेशी थे, गंगनहर योजना बनाते समय रेगिस्तान में तम्बू में निवास किया था और राजपूताना में ग्रीष्म ऋतु की भयंकर गर्मी के समय ऊंट पर यात्रा की । इनमें एक अंग्रेज नागरिक मि० जी० डी० रडकिन का नाम

---

१. बीकानेर राज्य के प्रधान मन्त्री के कार्यालय की सन् १९४९ की फाइल सं० ८ (राजस्थान राज्य पुरालेख विभाग, बीकानेर में उपलब्ध) ।

लिया जा सकता है जो राज्य में राजस्व मन्त्री थे। यह मि० रडकिन के अथक परिश्रम का ही परिणाम था कि गंगनहर योजना को थोड़े ही समय में अन्तिम रूप दिया गया और उत्तरी बीकानेर की बंजर भूमि हरी भरी बन गई। बाद में इसे राजस्थान का अन्न क्षेत्र कहा गया। यहाँ कुछ अन्य प्रसिद्ध विदेशी अफसरों के नाम लिखे जाते हैं—

१. मि० ए० डब्लू० ई० स्टेन्डले, सचिव सार्वजनिक निर्माण विभाग।
२. मि० हैमिल्टन हार्डिंग, पुलिस के इन्सपेक्टर जनरल और बाद में गृहमन्त्री।
३. मि० जे० फेयरफील्ड, मैनेजर बीकानेर स्टेट रेलवे।
४. मि० आर० एच० टी० मैकेंजी, चीफ इन्जिनियर, सार्वजनिक निर्माण विभाग।
५. मि० चार्ल्स टाड हन्टर, सलाहकार।
६. मि० बी० ए० इंग्लिश, संचालक शिक्षा, विभाग।
७. मि० एस० सी० कुक, इलेक्ट्रीकल व मैकेनिकल इंजिनियर।
८. डा० वेन गार्टन, प्रधान चिकित्सा अधिकारी (जर्मन यहूदी)।
९. डा० वान एलेन, चीफ सर्जन (अमेरिकन)।

मन्त्री नियुक्त किये जाने लगे और थोड़े ही समय में बीकानेर रियासत का प्रशासनिक ढांचा अधिकांशतः ब्रिटिश भारत के समान ही कार्य करने लगा। मन्त्रियों के नीचे बहुत योग्य अधिकारी काम करते थे।[1] यद्यपि कार्यपालिका के समस्त मुख्य अधिकार महाराजा के पास थे तो भी सन् १९१२ में ही विधान सभा स्थापित कर दी गई थी। यह भारत के साथ अंग्रेजों के सम्पर्क के ही कारण थी। रियासत के एकीकरण तक विधान सभा ने बहुत अच्छी तरह से काम किया।

बीकानेर में सरकारी काम काज की भाषा उर्दू थी। बाद में उसका स्थान हिन्दी ने ग्रहण किया तो भी अंग्रेजी भाषा को सर्वाधिक महत्व दिया जाने लगा। राज्य में समस्त पत्र व्यवहार अंग्रेजी में किया जाने लगा। विधान सभा की अधिकांश कारवाई हिन्दी में थी। न्यायपालिका को कार्य पालिका से अलग करने का विचार भी ब्रिटिश राजनैतिक पद्धति से किया

---

१. बीकानेर के अधिकारियों की योग्यता के कारण एकीकरण के समय यहाँ के बहुत से अफसर राजस्थान सरकार में उच्च पदों पर नियत किये गये। परिशिष्ट ३३।

गया था और बीकानेर में सन् १९१२ में ही लागू कर दिया गया था।

ब्रिटिश भारत की तरह बीकानेर की स्कूलों में भी अंग्रेजी को शिक्षा का अनिवार्य माध्यम बना दिया गया। शहरों में भी लोगों को अंग्रेजी में बातचीत करते पाना सामान्य बात न थी लेकिन अंग्रेजी के आरम्भ करने से गांवों की स्कूलों के लड़के लड़कियां अंग्रेजी पढ़ना, लिखना और बोलना सीख गये।

महाराजा गंगासिंह को अपने यहां के अस्पतालों पर बड़ा गर्व था। मानवता की सेवा के लिये उन्होंने इन अस्पतालों में अमेरीका, इंग्लैंड और जर्मनी के काफी डाक्टर रखे।

द्वितीय महायुद्ध के बाद बीकानेर राज्य ने भी कुछ वायुयान प्राप्त किये। स्वयं महाराजा सादूलसिंह अपनी हवाई यात्रा के लिये 'डव' नामक एक अंग्रेजी वायुयान का प्रयोग करते थे। बीकानेर में एक फ्लाइंग क्लब कायम करने का प्रस्ताव सरकार के समक्ष स्वीकृति के लिये था पर बीकानेर के एकीकरण के कारण यह कार्य रूप में परिणित नहीं हुआ। लेखक पहला बीकानेरी था जिसने निजी वायुयान चालक का लाइसेंस प्राप्त किया।

क्लब जीवन और विदेशी खेल काफी लोकप्रिय हो गये। सभी ओर से उन्हें बढ़ावा मिला। स्कूलों और कालेजों में भी विदेशी खेल खेले जाने लगे। महाराजा गंगासिंह के विदेश भ्रमण का ही सम्भवतः यह प्रभाव था कि उनके शासन काल में आधुनिक पाश्चात्य पोशाक का बीकानेर में प्रचलन हुआ। सरकारी अफसर और राजपरिवार के सदस्य बहुधा आधुनिक पाश्चात्य ढंग की पोशाक पहनते थे। लेकिन उत्सवों के अवसर पर भारतीय पोशाक अचकन और साफा धारण किये जाते थे।

बीकानेर राज्य में खेती के नये तरीकों और सिंचाई का प्रचलन महाराजा गंगासिंह द्वारा किया गया जो बहुत ही लाभकारी हुआ। यद्यपि बीकानेर 'थार' रेगिस्तान में राजस्थान के एक सूखे भाग में स्थित है तो भी उसे हमेशा अपने सुन्दर पुष्पों का गर्व रहा है। लालगढ़ और गजनेर व सार्वजनिक बागों में सुन्दर उद्यान बने हुये हैं। शरद ऋतु में इनके पुष्प दर्शनीय होते हैं। गंगनहर आने के बाद गंगानगर में विभिन्न प्रकार के खटाई वाले फल लगाने का प्रयोग बहुत ही सफलता के साथ किया गया है। कृषि प्रदर्शनियों में गंगानगर के माल्टों ने अखिल भारतीय पुरस्कार प्राप्त किये हैं। भारत के किसी भी एक जिले में इतने ट्रैक्टर नहीं हैं जितने आज गंगानगर

जिले में हैं।

औद्योगीकरण को भी बहुत बढ़ावा मिला। महाराजा सादूलसिंह के शासनकाल में बीकानेर का औद्योगिक विकास बड़ी तेजी से हुआ। महाराजा गंगासिंह और महाराजा सादूलसिंह के समय यातायात और संचार में काफी सुधार हुआ। रेल की लाइनों का विस्तार किया गया और अधिकांश बड़े नगरों को रेलों और सड़कों से जोड़ दिया गया। नगरों का विद्युतीकरण महाराजा गंगासिंह के समय ही आरम्भ हो चुका था। यहाँ के रोशनीघर की बिजली केवल बीकानेर नगर में ही नहीं बल्कि रतनगढ़ और चूरू भी पहुँचाई जाती थी। चूरू, दिल्ली और बीकानेर के मध्य में स्थित है। महाराजा सादूलसिंह की योजना एक विद्युत् केन्द्र बनाने की थी। वे चाहते थे कि पाँच हजार और उससे अधिक आबादी वाले हर एक नगर में बिजली हो। बाद के वर्षों में, विशेषतः महाराजा सादूलसिंह के समय स्थापत्य योजना में भी तीव्रता से परिवर्तन हुआ। बीकानेर में मि० मेकेन्जी और ब्रूमफील्ड जैसे अंग्रेज और योरोपियन शिल्पकारों का इस पर प्रभाव पडा।[१]

खाने पीने में अंग्रेजी और फ्रांसिसी पदार्थों ने पाकशाला (रसोवड़ा) विभाग में प्रवेश कर लिया। पश्चात्य ढ़ंग के भोज, जिनके मेन्यू (व्यंजनों की सूची) फ्रेंच भाषा में लिखे हुये होते थे, यहां भी सामान्य बन गये। पाश्चात्य संगीत का भी बीकानेर के सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव पड़ा। क्लबों में और महलों में होने वाले बड़े भोजों में पाश्चात्य नृत्य कोई असाधारण बात न रही। गंगारिसाले का सैनिक बैंड भारत के सर्वोत्तम बैंडों में से एक था। कई बार ग्रीष्मकाल में इसे आबू बुलाया जाता था जो कि राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेंट का निवास था। महाराजा सादूलसिंह सात वाद्यों का एक आर्केस्ट्रा भी रखते थे। यह पाश्चात्य समवेत संगीत और पाश्चात्य नृत्य संगीत बजाता था। सन् १९४९ में जब लार्ड माउन्ट बेटन बीकानेर आये तो उन्होंने इस आर्केस्ट्रा को सुनकर उसकी बहुत प्रशंसा की। दोपहर और रात्रिकालीन

---

१. महाराजा सादूलसिंह की नगर निर्माण योजना में गहरी रुचि थी। उन्होंने कई नये नगर बसाने की योजना बनाई। राज्य का एकीकरण हो जाने के कारण इनमें से अधिकांश केवल कागजों पर नक्शे के रूप में ही रहे। एकीकरण के बाद विकास का सारा महत्व जयपुर को दिया जाने लगा जो राजस्थान की राजधानी है। भूतपूर्व अन्य रियासतों की राजधानियों का विकास एकाएक रुक गया।

भोज के समय इस आर्केस्ट्रा ने पाश्चात्य समवेत संगीत और भारतीय शास्त्रीय संगीत दोनों ही बजाये। सादूल लाइट इन्फेन्ट्री के बैग पाईप (मशक) बैंड ने भी सार्वजनिक जुलूसों और सेना के प्रयाण के समय जनता द्वारा काफी सराहना प्राप्त की। रेगिस्तान की शुष्कता में यह हृदय में रस का संचार करता था।

महाराजा का जनतन्त्र में गहरा विश्वास था। वे अपनी प्रजा का हित चाहते थे अतः उन्होंने बीकानेर के शासन को और भी जनतान्त्रिक बनाने की ओर ध्यान दिया।

बीकानेर विधान सभा का अधिक लोकप्रिय आधार पर पुनर्गठन करने के लिये महाराजा साहब ने सन् १९४६ में[1] एक घोषणा पत्र द्वारा अपना निर्णय घोषित किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये संविधान समिति और मताधिकार निर्वाचन क्षेत्र समिति की नियुक्ति की घोषणा की गई। इन्हें क्रमशः संविधान का मसविदा बना कर पेश करने और निर्वाचन क्षेत्रों की सीमा निर्धारित करने का काम सौंपा गया।[2]

सामान्यतः इस घोषणा पत्र का जनता द्वारा स्वागत किया गया पर अखिल भारतीय कांग्रेस के प्रति-रूप बीकानेर प्रजा परिषद ने कुछ शंकायें और सन्देह प्रकट किया। तो भी इसके नेताओं ने समाचार पत्रों में घोषित किया कि प्रजा परिषद् की कार्य समिति और कार्यकर्ता सम्मेलन ने संविधान और मताधिकार समितियों में बीकानेर सरकार से सहयोग करने का निर्णय किया है और वे घोषणा पत्र को सीधे अस्वीकार नही करेंगे।[3] काफी सोच विचार के बाद दिसम्बर सन् १९४७ में "बीकानेर संविधान एक्ट १९४७" प्रकाशित किया गया। इसके अनुसार महाराजा के संरक्षण में कार्य करते हुये जनता के प्रति उत्तरदायी सरकार बननी थी। अगस्त १९४६ के घोषणा पत्र और इस एक्ट के प्रकाशन के बीच अधिक प्रतीत होने वाली अवधि का कारण मताधिकार और संविधान के सम्बन्ध में विभिन्न वर्गों की राय मालूम करने का भारी कार्य था। इसके अलावा एक कारण यह भी था कि विशेषतः बीकानेर सरकार को विभाजन के फलस्वरूप देश में हुई महान उथल-पुथल के कारण लाखों विस्थापितों को अपने

---

१. महाराजा सादूलसिंह की दिनांक ३१-८-१९४६ की घोषणा।
   दी स्टेटसमैन ताः ४-९-१९४६।
२. महाराजा सादूलसिंह की दिनांक ३१-८-१९४६ की घोषणा।
३. हिन्दुस्तान टाइम्स ताः २७-९-१९४६।

इलाके में से (बीकानेर एक सीमा राज्य होने के कारण)भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत सुरक्षित पहुँचाने का कठिन कार्य करना पड़ा। भागते हुये मानवों का यह विश्व का सबसे बड़ा और सबसे विशाल विस्थापन था।

सन् १६४७के एक्ट से व्यापक मताधिकार पर आधारित एक दो सदन वाली व्यवस्थापिका अस्तित्व में आई। कुछ बातों को छोड़कर सारा शासन एक परिषद को सौंप दिया गया जो कि व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थी। यह भी विचार किया गया कि दो वर्षों के भीतर ही महाराजा के संरक्षण में एक पूर्ण उत्तरदायी सरकार बनाई जाय।[१]

पूर्ण उत्तरदायी सरकार और भी जल्दी कायम करने की दृष्टि से महाराजा ने २ फरवरी सन् १६४८[२] को अपने इस निर्णय की घोषणा की कि अप्रैल १६४८ में उत्तरदायी सरकार बनाई जायेगी। बीकानेर संविधान एक्ट १६४७ में सोचे गये अन्तरिम प्रबन्ध को भी उन्होंने हटा दिया। मार्च १६४८ में महाराजा ने अपने जनवरी सन् १६४८ के इस निर्णय को फिर दोहराया[३] कि चुनावों के बाद नई व्यवस्थापिका संविधान एक्ट में संशोधन कर सकेगी। उन्होंने मताधिकार व एक्ट में और परिवर्तन करने की अपनी इच्छा भी व्यक्त की। उन्होंने कहा कि इससे चुनाव कुछ समय के लिये स्थगित करना आवश्यक हो जायगा। पर तुरन्त कदम उठाने की दृष्टि से महाराजा ने अपनी मन्त्री परिषद् की जगह १८ मार्च १६४८ से एक मिला जुला अन्तरिम मन्त्रिमण्डल बनाने की घोषणा की। इसका काम बीच की अवधि में राज्य के दैनिक शासन को चालू रखना था।[४]

मिले जुले मन्त्रिमण्डल में कांग्रेस के प्रतिनिधियों और महाराजा द्वारा मनोनीत राज्य के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों की संख्या बराबर बराबर रखी गई। कांग्रेस में सरकार के सम्मिलित होने की शर्तों और विभागों के बंटवारों के बारे में कांग्रेस तथा महाराजा में काफी सलाह मशविरा और विचार विमर्श हुआ। अन्त में १८ मार्च १६४८ को एक मिलीजुली सरकार

---

१. महाराजा सादूलसिंह की दिनांक ४-१२-१६४७ की घोषणा।
२. महाराजा सादूलसिंह की दिनांक २-२-१६४८ की घोषणा
३. महाराजा सादूलसिंह की दिनांक १८-३-१६४८ की घोषणा।
४. वही।

बनाई गई। इसमें ये लोग शामिल थे —

(१)	कुँवर जसवन्तसिंह दाउदसर[1]		प्रधान मन्त्री
(२)	चौधरी हरदत्तसिंह	(कांग्रेस)	उप प्रधान मन्त्री
(३)	पंडित गौरीशंकर	(कांग्रेस)	मंत्री
(४)	सरदार मस्तानसिंह	(कांग्रेस)	"
(५)	चौधरी कुम्भाराम	(कांग्रेस)	"
(६)	रिक्त, नाम की घोषणा बाद में की जानी थी		"
(७)	ठाकुर कुमेरसिंह, माणकरासर		"
(८)	सेठ कुशालचन्द डागा		"
(९)	पंडित सूरजकरण आचार्य		"
(१०)	मोहम्मद अहमद बक्स सिंधी		"

मिले जुले मन्त्री मण्डल के निर्माण के समय यह मान लिया गया था कि कांग्रेस २३ सितम्बर सन् १९४८ और उसके बाद के दिनों में होने वाले आम चुनावों में भाग लेगी और इस बीच मन्त्री मण्डल चालू नियम पद्धति से ही काम करेगा।

कुछ समय तक कार्य ठीक चलता रहा। पर थोड़े समय उपरान्त यह बात देखी गई कि कांग्रेस का असन्तुष्ट दल जो मिले जुले मंत्री मण्डल निर्माण के पक्ष में नहीं था राज्य के विरुद्ध आन्दोलन करने लगा।

आन्दोलन कारियों के आरोपों का खण्डन करने के लिये बीकानेर में सुनारों की गवाड़ में एक सार्वजनिक सभा की गई। उसमें प्रधान मन्त्री कुँवर जसवन्तसिंह ने भाषण दिया। इसमें अन्य मन्त्री तथा कांग्रेस

---

१. कुंवर जसवन्तसिंह दाउदसर ठाकुर मेजर पृथ्वीराजसिंहजी के पुत्र हैं। उन्होने सन् १९२७ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। १९-७-१९३१ से वे महाराजा गंगासिंह के सहायक निजी सचिव तथा १९३१-३६ व १९३७-४० की अवधि में निजी सचिव रहे। सन् १९४० में वे विदेश और राजनैतिक सचिव बने और सन् १९४१ में सार्वजनिक निर्माण मन्त्री नियुक्त किये गये। इस पद पर वे सन् १९४८ तक रहे। सन् १९४८ में वे प्रधानमन्त्री नियुक्त किये गये। जब महाराजा गंगासिंह शाही सम्मेलन, राष्ट्रसंघ और गोलमेज सम्मेलनों में भाग लेने के लिये इंग्लैण्ड व योरूप गये तो सन् १९३० और सन् १९३१ में कुँवर जसवन्तसिंह उनके साथ गये। वे महाराजा के निकट सम्पर्क में रहे।

द्वारा मनोनीत मंत्री भी थे। पर यह सभा शोरगुल में खत्म हो गई और कांग्रेसी मन्त्री- उपद्रवी तत्वों को शान्त करने की कोशिश करने एवं व्यवस्था कायम करने की बजाय सभा छोड़कर खिसक गये।

आन्दोलन चलता रहा। असन्तुष्ट कांग्रेसियों ने अब रियासत के एकीकरण की आवाज उठाई और महाराजा ने इन असन्तुष्टों की ये कारवाइयाँ सरदार पटेल को बताईं। बीकानेर रियासत कायम रहने योग्य इकाई[1] मान ली गई थी। महाराजा अधिक उत्तरदायी सरकार बनाने के लिये उत्सुक ही नहीं थे बल्कि उसके लिये आवश्यक कदम भी उठा चुके थे। आम चुनाव भी निकट थे अतः महाराजा ने आन्दोलन तुरन्त बन्द कराने के लिये सरदार पटेल को कहा। फलस्वरुप आन्दोलन बन्द हो गया।

कुछ समय उपरान्त महाराजा को इलाज के लिये इंग्लैंड जाना पड़ा। उनकी अनुपस्थिति में युवराज होने के नाते इन पंक्तियों के लेखक को अपनी माता – राजमाता सुदर्शना कुमारी जी – की सलाह से उनका काम देखना पड़ा। महाराजा ने यह प्रबन्ध भी कर दिया कि महाराजा के तत्कालीन सलाहकार श्री मेहरचन्द महाजन की सलाह लेखक को उपलब्ध हो सके। यह बात देखने में आई कि कांग्रेसी मन्त्रियों ने चालू नियम पद्धति की शीघ्र ही उपेक्षा करनी आरम्भ कर दी। इस बारे में एक उदाहरण काफी है— एक कांग्रेसी मन्त्री ने एक विभागाध्यक्ष को मौके पर तुरन्त बर्खास्त कर दिया। नियमानुसार वह केवल महाराजा की आज्ञा से ही हटाया जा सकता था। इतना ही नहीं, वह अफसर एक निश्चित अवधि के लिये था और अपनी अवधि की समाप्ति से पूर्व नहीं हटाया जा सकता था। मन्त्री के इस कार्य से प्रधान मन्त्री सहमत नहीं हुआ। कांग्रेसी मन्त्रियों ने इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। चूंकि महाराजा इंग्लैंड में थे अतः उनकी जगह काम कर रहे युवराज ने यह मामला उनके

---

१. जिन रियासतों के विधान निर्मात्री परिषद में अलग प्रतिनिधि थे उन्हें कायम रहने योग्य इकाई माना गया था। अलग प्रतिनिधित्व के अलावा १० लाख से अधिक आबादी और १ करोड़ या उससे ऊपर आय वाली रियासत को भी कायम रहने योग्य राज्य माना गया था। एकीकरण के समय बीकानेर की आय ३ करोड़ थी। सन् १९४१ की जनगणना के अनुसार इसकी आबादी १२ लाख से कुछ अधिक थी। सन् १९५१ में बीकानेर की आबादी १४,८३,७३५ और १९६१ में २१,४०,९४९ थी।

पास इंग्लैंड भेजा। महाराजा ने आदेश दिया कि मेरे बीकानेर लौटने तक इस मामले को विचाराधीन रखा जाय। महाराजा ने वापस लौटकर इस मामले की परिस्थितियों की पूर्ण जांच करवाई और बाद में अफसर को उसके पद पर पुनः स्थापित कर दिया।

यह घोषणा कर दी गयी थी कि बीकानेर राज्य में आम चुनाव २३ सितम्बर सन् १९४८ और उसके बाद के दिनों में होंगे। चुनाव की तैयारी का काम ठीक प्रकार से चल रहा था। पर अगस्त १९४८ में स्टेट कांग्रेस कमेटी ने चुनावों को स्थगित करने की मांग की। महाराजा उस समय योरूप में थे। लेखक ने उन्हें इस माँग से अवगत कराया। लेखक के पास महाराजा के स्पष्ट आदेश थे कि निश्चित तिथि पर उत्तरदायी शासन सौंपने का कार्य किसी भी कारण से रुकने न दिया जाय। चूंकि कांग्रेस ने चुनाव स्थगित करने की अपनी इच्छा का कोई प्रबल कारण नहीं बताया था अतः जनतन्त्र की गति में रुकावट पैदा करने की उनकी प्रार्थना को लेखक स्वीकार नहीं कर सका। जनतन्त्र में दृढ़ विश्वास होने के कारण तथा अपने पिता के समय पर बीकानेर में चुनाव कराने और यथासम्भव शीघ्र जनतान्त्रिक सरकार कायम करने के दृढ़ निश्चय से सहमत होकर चुनाव का समय कायम रखा गया। लेखक को अब भी अच्छी तरह से याद है कि राजस्थान कांग्रेस के नेता श्री हीरालाल शास्त्री और श्री गोकुल भाई भट्ट बीकानेर आये थे और चुनाव स्थगित करने के प्रश्न पर उन्होंने मेरे से लम्बी बातचीत की थी।[1] बीकानेर स्टेट कांग्रेस कमेटी ने चुनाव

---

१. यह बड़े आश्चर्य की बात है कि चार वर्ष बाद राजस्थान विधान सभा के प्रथम आम चुनावों में श्री गोकुल भाई भट्ट और श्री जयनारायण व्यास हार गये। श्री हीरालाल शास्त्री ने चुनाव ही नहीं लड़ा। वृहद् राजस्थान के निर्माण पर कुछ समय के लिये हीरालाल शास्त्री प्रथम मुख्य मन्त्री बने पर जनवरी १९५१ के आसपास उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। उनके बाद श्री सी. एस. वेंकटाचार्य कुछ काल तक इस पद पर रहे। अप्रैल सन् १९५१ में श्री जयनारायण व्यास मुख्य मन्त्री बने। बाद में प्रथम आम चुनाव में हारने के कारण उन्होंने मार्च १९५२ में यह पद रिक्त कर दिया। लेकिन बाद में सितम्बर सन् ५२ में किशनगढ़ से एक उप-चुनाव में जीत कर वे पुनः मुख्य मन्त्री बन गये और इस पद पर १९५४ तक रहे।

स्थगित करने की अपनी मांग का चाहे जो कारण बताया हो, वापस लौट-कर महाराजा सादूलसिंह ने एक प्रेस विज्ञप्ति[1] में उसका खण्डन भी किया। पर असली कारण यह था कि बीकानेर स्टेट कांग्रेस कमेटी को जनता पर अपने प्रभाव का विश्वास नहीं था। अतः वह कुछ अधिक समय प्राप्त करना चाहती थी। चुनावों में अपनी सफलता पर उसे गहरा सन्देह था। चुनाव न लड़ने और शक्ति परीक्षण का मुकाबला करने की उनकी इच्छा ध्यान देने योग्य थी। विशेषतः ऐसे समय जबकि स्टेट्स पीपुल्स कॉफ्रेंस ने विश्व को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की थी कि रियासतों में जनमत पर इसका पूर्ण अधिकार है। बीकानेर और जोधपुर के सम्बन्ध में उनका यह दावा उचित था अथवा नहीं यह बात संदेहास्पद है। चार साल बाद ही सन् १९५२ के प्रथम आम चुनाव में कांग्रेस बीकानेर के संसदीय चुनाव में हार गई। कांग्रेस यहाँ से सन् १९५७ में भी हार गई और सन् १९६२ में तो उसने बीकानेर से कोई उम्मीदवार ही खड़ा नहीं किया। बीकानेर नगर से राजस्थान विधान सभा के लिये अब तक कोई कांग्रेसी उम्मीदवार नहीं जीता।[2]

---

१. महाराजा सादूलसिंह की ता० १–९–१९४८ की प्रेस विज्ञप्ति।

२. यहाँ आम चुनावों में राजस्थान विधान सभा के परिणाम लिखने रोचक होंगे--

	१९५२	१९५७	१९६२
कांग्रेस	८२	१२०	★८८
निर्दलीय	३५	–	२१
जनसंघ	८	५६	१५
स्वतन्त्र			३६
अन्य	३५		१५
	१६०	१७६	१७६

★सन् १९६२ में जब चुनावों का परिणाम घोषित हुआ तो विधान सभा में कांग्रेस के ८८ तथा अन्य सभी दलों के ८८ सदस्य थे लेकिन बाद में एक निर्दलीय सदस्य कांग्रेस दल में सम्मिलित हो गया। राजस्थान के लोक सभा और राज्य सभा के लिये आम चुनावों में इस प्रकार सदस्य

बीकानेर स्टेट कांग्रेस कमेटी ने २८ अगस्त १९४८ को एक प्रस्ताव पास किया। इसमें कहा गया कि कांग्रेस आम चुनाव में भाग न ले और मिले जुले मन्त्रिमण्डल में से अपने प्रतिनिधियों को त्याग पत्र दिलवाकर वापस बुला ले। इससे एक विकट स्थिति पैदा हो गई। महात्मा गांधी के विचार चुनाव स्थगित करने की इस मांग के बिल्कुल विरुद्ध थे। उन्होंने श्री एन. सी केलकर को लिखा था कि मैं चाहता हूँ कि रियासतों में वहाँ की जनता को स्वायत्त शासन मिले और राजा लोग अपने आपको जनता का संरक्षक समझें।[1] तो भी जब महाराजा सादूलसिंह अपनी रियासत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार बनाने का प्रयत्न कर रहे थे[2] तो कांग्रेस द्वारा संचालित प्रजा परिषद इसके कार्य में रोड़ा अटकाने का पूर्ण प्रयत्न कर रही थी। इससे स्थिति खराब हो गई। युवराज द्वारा महाराजा को बराबर सूचना दी जा रही थी। अतः वे ३१ अगस्त १९४८ को बीकानेर लौट आये। उन्होंने शीघ्र इस

चुने गये।

	लोकसभा			राज्यसभा		
	कांग्रेस	विरोधी दल	कुल	कांग्रेस	विरोधीदल	कुल
१९५२	१२	८	२०	६	३	९
१९५७	१८	३	२१	९	१	१०
१९६२	१५	६	२१	७	३	१०

१. एम. के गाँधी— दी इन्डियन स्टेट्स प्रोबलम्, पृ० ६५।
ता० २-७-१९३४ के अपने पत्र में महात्मा गाँधी ने श्री एन. सी. केलकर को लिखा— "मैं चाहूंगा कि रियासतें अपने यहाँ की जनता को स्वायत्त शासन प्रदान करें और राजा लोग अपने आपको अपनी प्रजा का सच्चा संरक्षक समझें। वे अपने लिये राज्य की आय का एक अल्प और निश्चित प्रतिशत ही लें। मैंने यह आशा नहीं छोड़ी है कि राजा लोग अपनी जनता के सच्चे संरक्षक बनकर गर्व का अनुभव करेंगे। मैं उनकी रियासतों को नष्ट करना नहीं चाहता।"

२. सन् १९४६ में दिल्ली से स्नातक बन कर लेखक अपने पिता महाराजा सादूलसिंह और उनके शासन के, राज्य के एकीकरण होने तक, निकट सम्पर्क में रहा। लेखक बीकानेर और दिल्ली में होने वाली कुछ सर्वाधिक महत्वपूर्ण बैठकों में भी सम्मिलित हुआ और वह अपने निजी ज्ञान के आधार पर यह प्रमाणित कर सकता है कि बीकानेर राज्य में अधिकाधिक राजनैतिक सुधार करने में महाराजा सादूलसिंह की गहरी रुचि थी।

गतिरोध को दूर करने का प्रयत्न किया। महाराजा ने अध्यक्ष, बीकानेर स्टेट कांग्रेस कमेटी को एक पत्र लिखा। इसमें कांग्रेस द्वारा उठाये गये विभिन्न प्रश्नों का स्पष्टीकरण मांगा गया था। उन्होंने यह भी लिखा कि उत्तर ४ सितम्बर सन् १९४८ तक भेज दिया जाय ताकि चुनाव की नियत तिथिं में कोई बाधा न पड़े।[1] यदि जनतान्त्रिक सिद्धान्तों की दृष्टि से देखा जाय तो जनतन्त्र के निर्माण में जो दल भाग न ले उसे छोड़ दिया जाना चाहिये और पूर्ण जनतान्त्रिक शासन लागू करने के लिये चुनाव करा दिये जाने चाहिये लेकिन कांग्रेस ने स्वातन्त्र्य संग्राम में जो कार्य किया था उससे बहुत से लोगों का विचार था कि बीकानेर में होने वाले चुनावों में कांग्रेस भी अवश्य भाग ले। अतः महाराजा ने सरदार पटेल से भेंट का समय निश्चित किया और दिल्ली गये। सरदार पटेल के निवास पर दोपहर के भोजन के समय महाराजा ने उनसे इस विषय में विचार विमर्श किया। सरदार पटेल ने उन्हें सलाह दी कि वे इस मामले में वी० पी० मेनन, हीरालाल शास्त्री, जयनारायण व्यास और गोकुल भाई भट्ट से, जो उस समय दिल्ली में थे, और विचार विमर्श करें। अन्त में महाराजा को चुनाव स्थगित करने की सलाह दी गई।

६ सितम्बर सन् १९४८ को महाराजा बीकानेर लौटे। कांग्रेस मन्त्रियों ने अपने त्याग पत्र दे दिये थे। महाराजा के पास इसके अलावा और कोई चारा न था कि वह उन्हें स्वीकार करे, अन्तरिम मन्त्रिमण्डल को भंग करे और चुनावों को स्थगित करे। ७ सितम्बर सन् १९४८ को प्रेस विज्ञप्ति में इस निर्णय की घोषणा की गई। साथ ही महाराजा ने अपनी यह इच्छा भी व्यक्त की कि वे राज्य के बाहर के व्यक्ति को प्रधान मन्त्री नियुक्त करना चाहते हैं ताकि किसी को शिकायत करने का कोई मौका न मिले। जब तक भारत सरकार से ऐसे अफसर की सेवायें ऋण रूप में प्राप्त न हों तब तक के लिये महाराजा सादूलसिंह ने कँवर जसवन्तसिंह दाउदसर को ही प्रधान मन्त्री रखने का निश्चय किया।[2] आवश्यक प्रशासनिक आदेशों द्वारा ८ सितम्बर १९४८ में ये परिवर्तन लागू हुये। अक्टूबर १९४८ में जोधपुर के भूतपूर्व दीवान श्री सी. एस. वैंकटाचारी, आई. सी. एस., द्वारा प्रधान मन्त्री का पद सम्भालने तक कंवर जसवन्तसिंह इस पद पर कार्य करते रहे।

---

१. ता० १-९-१९४८ की महाराजा सादूलसिंह की प्रेस विज्ञप्ति।

२. ता० ७-९-१९४८ की महाराजा सादूलसिंह की प्रेस विज्ञप्ति।
बीकानेर राजपत्र— असाधारण, ता० ८-९-१९४८।

बीकानेर कांग्रेस द्वारा की गई इस जल्दबाजी की कारवाई ने शेष भारत के पहले ही बीकानेर में पूर्ण उत्तरदायी सरकार बनाने का अवसर खो दिया। कम से कम बीकानेर के लिये उनका यह दावा आत्मग्लानि पूर्ण सिद्ध हुआ कि बीकानेर के विलय के लिये उन्हें जनता का समर्थन प्राप्त था।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि जापानी आक्रमण के बाद जब भारत में संकट की स्थिति पैदा हो गई तो ११ मार्च १९४२ को चर्चिल ने हाउस ऑफ कॉमन्स में एक घोषणा की थी। उसने कहा कि युद्ध मंत्री-मंडल सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेज रहा है ताकि ब्रिटिश सरकार ने उनकी इच्छाओं के अनुसार जिन सुधारों का प्रस्ताव किया है उनके बारे में भारतीयों के भय और शंकाओं का निवारण किया जाय। यह प्रस्ताव या तो सम्पूर्ण रूप में स्वीकार करने थे या सम्पूर्ण रूप में अस्वीकार करने थे। सर स्टैफोर्ड क्रिप्स २२ मार्च सन् १९४२ को भारत आया। जहां तक भारतीय रियासतों का प्रश्न था इन प्रस्तावों में पहले के समझौते के पुनर्परीक्षण की बात कही गई थी।[1] २ अप्रैल सन् १९४२ को राजा लोग सर स्टैफोर्ड क्रिप्स से मिले। राजाओं के प्रतिनिधि रूप में क्रिप्स से मिलने वालों में महाराजा सादूलसिंह, नवानगर के ज़ाम साहब और पटियाला के महाराजा थे। काफी विचार विमर्श के बाद भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि मंडल ने एक प्रस्ताव पास किया।[2] इसमें कहा गया कि अपनी रियासतों की अखण्डता और प्रभुसत्ता के अनुरूप राजा लोग

---

१. वी० पी० मेनन— दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ दी इन्डियन स्टेट्स, पृ० ४८।

२. भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि मण्डल द्वारा ता० १०-४-१९४२ को पास किया गया प्रस्ताव—

"भारत के लिये एक संविधान बनाने में अपनी मातृभूमि के हित में भारतीय रियासतें रियासतों की अखण्डता और प्रभुसत्ता के अनुरूप प्रत्येक उचित तरीके से अपना योग देने में हमेशा की तरह प्रसन्न होंगी पर रियासतों को इस बात का विश्वास दिलाया जाय कि जिन रियासतों के लिये अलग रहना सम्भव न होगा तो इस प्रकार की रियासतें या रियासतों का समूह अपनी इच्छा के अनुसार अपना एक संघ बना सकेंगे। इस संघ को इस उद्देश्य के लिये बनाये गये उपयुक्त और स्वीकृत तरीके के अनुसार पूर्ण प्रभुसत्ता का दर्जा प्राप्त होगा।"

देश के हित में सभी सम्भव सहयोग देने को तैयार होंगे। लेकिन सर स्टैफर्ड क्रिप्स जो प्रस्ताव लेकर आये थे उन्हें कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने ठुकरा दिया अतः राजाओं द्वारा उसे मानने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं हुआ।

बाद में समय के प्रवाह को ध्यान में रखते हुये, शीघ्र ही परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव करते हुये और भारतीय रियासतों के प्रशासन के विरुद्ध ब्रिटिश भारत के नेताओं द्वारा बहुधा निंदा वचन सुन कर सन् १९४४ में नरेन्द्र मण्डल की स्थायी समिति ने राजाओं की एक छोटी समिति बनाई। महाराजा सादूलसिंह इसके अध्यक्ष थे। इसका काम अच्छे शासन के मानदण्ड के लिये प्रस्ताव तैयार करना था। इस समिति को सामान्यतः बीकानेर समिति कहा जाता था। राजाओं की स्थाई समिति में इस समिति की रिपोर्ट पर बोलते हुये महाराजा सादूलसिंह ने कहा कि रियासतों ने अपने को एक "व्यवस्था" के रूप में मानने की माँग की थी और यह मान ली गई थी। फलस्वरूप रियासती व्यवस्था की तुलना श्रेष्ठ शासित राज्यों की योग्यता से नहीं की जाती। रियासतों के शासन के लिये उन रियासतों का उदाहरण दिया जाता है जो अपना कोई दोष न होते हुये भी साधनों के अभाव में अपनी जनता की सेवा ठीक प्रकार से करने की स्थिति में नहीं।[1] महाराजा ने आगे कहा कि अब अलग-थलग रहने के सिद्धान्त से चिपके रहना सम्भव नहीं। उन्होंने राजाओं से अनुरोध किया कि वे समय रहते ही चेत जायं और कुछ व्यावहारिक कदम उठायें।[2] इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने सुझाव दिया कि छोटी छोटी रियासतें परस्पर मिल कर अथवा बड़ी रियासतों के साथ मिलकर इस प्रकार की इकाइयाँ बनायें जो आधुनिक परिस्थितियों में अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने

---

१. राजाओं की स्थाई समिति की दिनांक ३०-९-१९४५ की अनौपचारिक बैठक में महाराजा सादूलसिंह का भाषण —
"इन रियासतों की वर्तमान परिस्थितियों से जनमत सही या गलत सभी रियासतों को समान समझता है।"

२. वही।
इस अंतिम क्षण में भी यदि हम सच्चा प्रयत्न नहीं करते तथा यहां और अभी कुछ व्यावहारिक कार्य करने के बारे में हम अविलम्ब आपस में सहमत नहीं होते, तो बाद में शायद कुछ न हो सके।"

में समर्थ हो सके। उन्होंने यह भी कहा कि यदि सिद्धान्त रूप में यह बात मान ली जाय तो उनके पद की सुरक्षा के लिये एक योजना बनाई जा सकती है। वाइसराय और भारत सरकार के राजनैतिक सलाहकार इस बारे में विचार विमर्श के लिये सहमत हो गये हैं।[1] एक अन्य दृष्टिकोण से भी महाराजा ने अपनी बात का औचित्य बताया। उनका विश्वास था कि शीघ्र ही राजाओं के सामने यह समस्या आयेगी कि भारत के भावी ढाँचे में रियासतों का क्या रूप हो।[2] उन्होंने चेतावनी दी कि यदि छोटी छोटी रियासतों ने समूह बनाकर जनता को आवश्यक सुविधायें प्रदान न कीं और

---

१. राजाओं की स्थाई समिति की दिनांक ३०-६-१९४५ की अनौपचारिक बैठक में महाराजा सादूलसिंह का भाषण—

"......समय समय पर आप में से कुछ श्रीमानों ने शिकायत की है कि राजनैतिक विभाग या राजनैतिक अफसर आप पर अनुचित दबाव डालते रहे हैं। अकेले या सामूहिक रूप में रियासतों के किसी समूह पर डाले जाने वाले किसी अनुचित दबाव से यदि हम बचना चाहते हैं और यदि हम चाहते हैं कि राजनैतिक विभाग अपनी योजना पर, जिसे छोटी रियासतों के बहुत से शासक पसंद नहीं करते, अपने तरीके से अमल न करें तो मुझे इस बात में जरा भी सन्देह नहीं है कि हम को भी सहमत होकर ऐसी योजना बनानी चाहिये जिसे हम उनके सामने रख सकें। यदि हम ऐसी योजना बना सके तो मैं सोचता हूं कि इन मामलों के बारे में राजनैतिक विभाग की नीति का कुछ सीमा तक संशोधन कराने में अधिक कठिनाई नहीं होगी। इससे वास्तविक आपत्तियों का निराकरण हो सकेगा।"

२. बीकानेर बुलेटिन, वर्ष ५ अंक १, अगस्त १९४७।
बीकानेर वाणिज्य मंडल के उद्घाटन पर दिनांक ७-८-१९४७ को श्री के. एम. पन्निकर का भाषण—

"घटना प्रवाह को पहले से ही देखने वाले लोगों में महाराजा एक हैं। युद्ध समाप्ति से महीनों पूर्व जबकि तुरन्त स्वतन्त्रता देने की कोई बात न थी, अप्रैल सन् १९४५ में ही महाराजा ने अपने बन्धु राजाओं से यह कहा कि वे एक ऐसा संगठन बनायें जो ब्रिटिश भारत के साथ, उसे उनकी दूरदृष्टि के अनुसार शीघ्र मिलने वाली आजादी में हिस्सेदार बनने के लिये सहयोग देने की योजना बनायें।"

वे समय के साथ नहीं चलीं तो वे समाप्त हो जायेंगी।[1] इसके शीघ्र बाद महाराजा ने अपने विचारों को राजाओं को भेजे गये एक गुप्त परिपत्र में पुनः दोहराया। इसमें उन्होंने कहा कि समय बीतने के साथ ही उनको विश्वास होगा कि महाराजा के विचार सही थे या नहीं। उन्होंने जोर देकर यह बात कही कि दुविधा और विलम्ब की नीति उनके लिये विनाशकारी होगी।[2] उनकी भविष्यवाणी शीघ्र ही सत्य हो गई।

फरवरी सन् १९४६ में महाराजा ने एक बार फिर यह बात कही कि विधान निर्मात्री परिषद् में रियासतों के भाग लेने के प्रश्न पर दो मत नहीं हो सकते। बीकानेर विधान सभा को दिये गये एक सन्देश में पूर्वाभिव्यक्त विचारों को उन्होंने पुनः दोहराया। उन्होंने कहा, "बीकानेर द्वारा हमें भारत पर गर्व है। भारत की महानता की कामना करने में, अपनी मातृभूमि के प्रति अपनी देशभक्ति दिखाने में हम किसी के सामने नहीं झुकते। हमारी भी यह कम इच्छा नहीं कि भारत पूर्ण उत्थान कर राष्ट्रों के परिवार में अपना उचित और सम्मानित स्थान प्राप्त करे।"[3] उदयपुर में हुये भारतीय रियासती प्रजा सम्मेलन में पंडित जवाहरलाल नेहरू के इस कथन का उन्होंने स्वागत किया कि राजाओं के प्रति दोस्ती का भाव रखा जाना चाहिये। बीकानेर को किसी बात का डर नहीं था। बीकानेर रियासत पहले

---

१. दिनांक ३०-९-१९४५ को राजाओं की स्थाई समिति की अनौपचारिक बैठक में महाराजा सादूलसिंह का भाषण--
"दूसरी महत्वपूर्ण बात मुझे यह लगती है कि शीघ्र ही हमें यह विचार करना होगा कि भारत के भावी संविधान में रियासतों का क्या रूप होगा। ब्रिटिश भारत के राजनीतिक दलों की ओर से जनमत और दबाव डालकर तथा शिक्षा के थोड़े और विस्तार के साथ शीघ्र ही हमारी अपनी रियासतों के जनमत द्वारा और अधिक अच्छे शासन तथा और अधिक अच्छी जीवन स्थिति की मांग की जायेगी। ······· एक महान लहर आयेगी और उन रियासतों को मिटा देगी जो समयानुसार नहीं चलतीं।"

२. दिनांक २४-१०-१९४५ को राजाओं को भेजा गया महाराजा सादूलसिंह का परिपत्र।

३. महाराजा के पौत्र होने की खुशी में बीकानेर दुर्ग के गंगा निवास महल में श्री के. एम. पनिकर द्वारा महाराजा सादूलसिंह के सम्मान में दिये गये एक भोज में दिनांक १२-२-१९४६ को महाराजा का भाषण।

से ही युग के साथ चल रही थी और सभी आवश्यक सुधार लागू किये जा रहे थे। श्री के. एम. पन्निकर के अनुसार "अपने दूरदर्शी शासक के नेतृत्व में बीकानेर भविष्य का सामना करने को तत्पर और तैयार था।" पन्निकर को विश्वास था कि बीकानेर को अपने ऐतिहासिक महत्व, भौगोलिक स्थिति, आकार, जनसंख्या, राजस्व और भविष्य की सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुये वह ऐसे स्थान का अधिकारी होगा जिससे उसे आन्तरिक प्रभुसत्ता और स्वायत्तता के साथ साथ भारतीय मामलों में अपनी बात कहने का अवसर दिया जायेगा।[1]

मार्च सन् १९४६ में मन्त्री मण्डल मिशन[2] की नियुक्ति की गई। इसका उद्देश्य एक ओर अंग्रेजों और भारतीयों तथा दूसरी ओर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच गतिरोध को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करना था।[3] अंग्रेजों ने भारत को स्वतन्त्र करने का जो वचन दिया था उसकी इमानदारी का भारतीयों को विश्वास दिलाने के लिये मिशन को मौके पर ही निर्णय करने का अधिकार दिया गया। २३ मार्च सन् १९४६ को यह मिशन भारत आया।

राजाओं को पहले ही यह आश्वासन दिया जा चुका था कि सम्राट के साथ उनके सम्बन्धों या उनके साथ की गई संधियों और समझौतों में दिये गये अधिकारों में उनकी सहमति के बिना कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा। १२ मार्च सन् १९४६ के अपने पत्र में लार्ड वेवल ने इस आश्वासन को पुनः दोहराया। इस पत्र में यह कहा गया कि "बातचीत के अतिरिक्त और किसी आधार पर रियासतों को भारतीय ढांचे में मिलाने के प्रस्ताव बनाने की कोई इच्छा नहीं है।"[4] नरेन्द्र मण्डल और इसके प्रतिनिधियों के साथ पत्र व्यवहार और विचार विमर्श[5] के बाद

१. महाराजा सादूलसिंह के सम्मान में श्री के. एम. पन्निकर द्वारा दिये गये भोज में दिनांक १२-२-१९४६ को पन्निकर का भाषण।
२. इस मिशन में लार्ड पैथिक लॉरेंस, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स और मि. ए. वी एलेक्जेंडर थे।
३. लियोनार्ड मोसले, दि लास्ट डेज़ आफ दी ब्रिटिश राज, पृ. २०।
४. भारतीय रियासतों के बारे में श्वेत पत्र, पृ० २८।
५. मन्त्रिमण्डल मिशन के साथ बातचीत में भाग लेने हेतु महाराजा सादूलसिंह को भी निमन्त्रित किया गया था। इसके लिये वे २९ मार्च सन् १९४६ को बीकानेर से दिल्ली के लिये रवाना हुये।

मन्त्रिमण्डल मिशन ने १२ मई सन् १६४६[1] को एक स्मरण पत्र जारी किया। इसमें कहा गया कि नरेन्द्र मण्डल ने यह बात पुष्ट कर दी है कि तुरन्त ही भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति की अभिलाषा में भारतीय रियासतें पूरी तरह देश के साथ हैं। स्मरण पत्र में आगे कहा गया कि सम्राट के साथ अपने सम्बन्ध द्वारा रियासतों ने जो अधिकार प्राप्त कर रखे हैं वे अब आगे नहीं रहेंगे। रियासतों ने सम्राट को जो अधिकार सौंप रखे हैं वे उन्हें वापस मिल जायेंगे। भारत से ब्रिटिश सत्ता के हट जाने पर जो रिक्तता होगी उसकी पूर्ति रियासतों को नये सम्बन्ध जोड़कर करनी होगी। स्मरणपत्र में आगे चलकर उल्लेख किया गया कि भारतीय रियासतें उपयुक्त मामलों में काफी बड़ी प्रशासनिक इकाइयाँ बनाने या उनमें शामिल होने की इच्छा रखती हैं ताकि संवैधानिक योजना में वे उपयुक्त बन सकें और आंग्ल-भारत के साथ बातचीत कर सकें।[2] १६ मई सन् १६४६ को मन्त्रिमण्डल मिशन की योजना घोषित की गई। भारतीय रियासतों से सम्बन्धित प्रस्तावों में कहा गया कि भारत एक संघ होगा जिसमें ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतें दोनों होंगे। यह संघ रियासतों के विदेशी मामले, रक्षा और संचार की देखभाल करेगा। भारतीय संघ को सौंपे गये इन विषयों और अधिकारों के अलावा शेष सभी विषय और अधिकार रियासतों के पास ही रहेंगे। विधान निर्मात्री परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या ६३ से अधिक नहीं होगी और यह बातचीत द्वारा तै की जायेगी। रियासतों ने सर्व सम्मति से योजना को स्वीकार किया। लेकिन इसमें आन्तरिक कठिनाइयाँ थीं। महाराजा सादूलसिंह के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही ये आन्तरिक कठिनाइयां दूर हुईं और एक सर्व सम्मत निर्णय सम्भव हो सका।[3]

---

१. भारतीय रियासतों के बारे में श्वेत पत्र, पृ० १५२-५३।

२. वही, पृ० २६।

३. बीकानेर बुलेटिन, वर्ष ५, अंक १— अगस्त १६४७।

ता० ७-८-१६४७ को बीकानेर वाणिज्य मंडल के उद्घाटन पर श्री के. एम. पन्निकर का भाषण—

"यह नहीं सोचना चाहिये कि यह निर्णय बिना किसी आन्तरिक कठिनाई के लिया गया। राजाओं और मन्त्रियों का एक ऐसा प्रभावशाली समूह था जो भारतीय संघ के प्रश्न को इसी रूप में नहीं देखता था। उसका विचार भारतीय रियासतों का एक अलग संघ बनाने का था। यह भारत का तीसरा विभाजन होता। इससे हिन्दुस्तान के टुकड़े २ हो जाते और वह कमजोर और असमर्थ होता। इस खतरनाक विचार को महाराजा सादूलसिंह और उनके मित्रों की दृढ़ता ने आरम्भ में ही खत्म कर दिया।"

१६ मई सन् १९४६ को इस योजना की स्वीकृति की प्रशंसा करते हुये महाराजा ने इसे भारत की स्वतन्त्रता के लिये सबसे महान कदम बताया। उनके अनुसार स्वतन्त्र भारत में राजाओं को अपने पद की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, उन्हें परिवर्तन का महत्व अनुभव करना चाहियें और उसके अनुसार अपने को ढालना चाहिये।[1] जहां तक बीकानेर रियासत का सम्बन्ध था, उन्होंने कहा कि कुछ समय पूर्व मुझे महात्मा गांधी, सरदार वल्लभभाई पटेल और पंडित नेहरू से मिलने और मेरे द्वारा किये जाने वाले सुधारों[2] के बारे में बातचीत करने का अवसर मिला। उनकी प्रतिक्रिया उत्साह वर्द्धक और मैत्रीपूर्ण है।[3]

---

१. ता० २७-७-१९४६ को महाराजा सादूलसिंह का भाषण--
"१६ मई की योजना, जिसमें रियासतों और प्रान्तों दोनों को मिलाकर संघ बनाने का प्रस्ताव है, की स्वीकृति भारत की स्वतन्त्रता के लिये उठाया गया सब से महान कदम हैं। मैंने यह सदा अनुभव किया है कि यदि राजा लोग और रियासतें इस समय भारत में होने वाले परिवर्तनों की वास्तविक महत्ता को पूरी तरह ध्यान में रखें और अपने मन और नीति को उसके अनुसार बनायें तो स्वतन्त्र भारत में अपने उपयुक्त स्थान के बारे में उन्हें कोई डर नहीं होना चाहिये। यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये कि जो कुछ हो रहा है वह बहुत गम्भीर रूपान्तर है।"

२. बीकानेर संविधान एक्ट १९४७ के अन्तर्गत जिनका उल्लेख है।

३. ता० २७-७-१९४६ को महाराजा सादूलसिंह का भाषण---
"आप में से कुछ लोगों को विदित है कि अभी बम्बई से लौटने के पूर्व मैं महात्मा गाँधी, सरदार वल्लभभाई पटेल और पंडित नेहरू से मिला। इनसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने इनसे भारत की वर्तमान राजनीतिक स्थिति और सामान्यतः रियासतों की स्थिति के बारे में खुल कर लम्बी बातचीत की। इस अवसर पर मैंने उन्हें संवैधानिक सुधारों के बारे में बताया जिन्हें बीकानेर राज्य में करने की मेरी इच्छा है। जैसी मुझे आशा थी, मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि सब मिला कर उनकी प्रतिक्रिया उत्साह वर्द्धक और मैत्रीपूर्ण थी। उन्होंने मेरे द्वारा उठाये जाने वाले इस साहसिक कदम पर मुझे बधाई दी। साथ ही मैं अपने साथ यह मधुर स्मृति भी लाया कि वे रियासत की घटनाओं को गहरी रुचि से देख रहे हैं और मैंने जो महान प्रयोग करने का निश्चय किया है उसके सफल होने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

मन्त्रि-मण्डल मिशन की योजना में यह प्रस्ताव किया गया था कि भारत में एक ही सरकार होगी जो केवल सुरक्षा, विदेशी मामले और संचार के लिये उत्तरदायी होगी। अन्य बातों के लिये देश तीन वर्गों में विभाजित किया जायेगा—'अ' वर्ग में हिन्दू बहुल भाग, 'ब' वर्ग में मुस्लिम बहुल भाग और 'स' वर्ग में वह भाग होगा जहाँ मुसलमानों का बहुमत अल्प हो। मुस्लिम लीग ने इन प्रस्तावों को स्पष्ट और संक्षिप्त रूप में ग्रहण किया। वह इन्हें स्वीकार करने को तैयार थी लेकिन ज्योंही जुलाई सन् १६४६ में पंडित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष बने, उन्होंने एक सम्वाददाता सम्मेलन में यह राय प्रकट की कि योजना में संशोधन किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि कांग्रेस समझौतों से बंधी हुई नहीं है और जैसी भी परिस्थिति उत्पन्न हो उसका सामना करने को स्वतन्त्र है।[1] इस घोषणा के फलस्वरूप २७ जुलाई सन् १६४६ को मुस्लिम लीग ने मन्त्रि-मण्डल योजना की अपनी स्वीकृति वापस ले ली। १६ अगस्त का दिन सीधी कारवाई का दिन घोषित किया गया। फलस्वरूप कलकत्ता में हिन्दुओं का कत्लेआम हुआ जिससे साम्प्रदायिक उन्माद की आग भड़क उठी। अगले एक वर्ष में यह भारत के उपमहाद्वीप में फैल गई और सीमा के दोनों ओर लाखों पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे बर्बरता से कत्ल कर दिये गये।[2] लार्ड वेवल घबरा गया। कांग्रेस में मुस्लिम लीग का विश्वास जमाने के लिये उसने पंडित जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गाँधी को एक घोषणा पर हस्ताक्षर करने के लिये कहा। यह घोषणा इस प्रकार थी—

> "साम्प्रदायिक मेल के हित में कांग्रेस १६ मई की घोषणा (मन्त्रि-मण्डल मिशन की घोषणा) की इस भावना को स्वीकार करने को तैयार है कि यदि वर्ग या विभाग बने तो प्रान्तों को उनमें शामिल होने की तब तक कोई छूट नहीं दी जा सकती जब तक कि १६ मई की घोषणा के पैरा १६ (VII) के अनुसार नई संवैधानिक व्यवस्था लागू होकर और प्रथम आम

---

१. मौलाना अबुल कलाम आजाद, इन्डिया विन्स फ्रीडम, पृष्ठ १५५ और १६२।
इसके फलस्वरूप मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की अपनी मांग दोहराई और अन्त में भारत का विभाजन हुआ। मौलाना आजाद के अनुसार "सन् १६४६ की गलती और भी अधिक मँहगी सिद्ध हुई"।

२. लियोनार्ड मोस्ले, दी लास्ट डेज़ आफ दी ब्रिटिश राज, पृ० ३३-३५।

चुनाव कराकर नई व्यवस्थापिका निर्णय नहीं लेती।"[1]

लेकिन इसका परिणाम यह निकला कि अविश्वास तथा विद्वेष बढ़ गया। लार्ड वेवल, भारत में कांग्रेस और इंग्लैंड में मि० एटली दोनों का विश्वास खो चुका था। मि० एटली ने लार्ड वेवल की बात न मान कर उसे आदेश दिया कि अविलम्ब अन्तरिम सरकार की स्थापना की जाय। २ सितम्बर सन् १६४६ को अन्तरिम सरकार ने शपथ ग्रहण की। ६ दिसम्बर सन् १६४६ से विधान निर्मात्री सभा काम करने लगी। नरेन्द्र मण्डल की स्थायी समिति अपनी १० जून सन् १६४६ की घोषणा के अनुसार इस बात पर सहमत हो गई कि मन्त्रिमण्डल योजना विधान निर्मात्री सभा में रियासतों के प्रतिनिधित्व तथा संघ में उनकी अन्तिम स्थिति के बारे में बातचीत के लिये उपयुक्त आधार प्रस्तुत करती है और फलस्वरूप बातचीत करने के लिये रियासतों की वार्तालाप समिति का गठन किया।[2] २१ दिसम्बर सन् १६४६ के अपने प्रस्ताव द्वारा विधान निर्मात्री सभा ने भी एक ऐसी ही समिति नियुक्त की। रियासतों की वार्तालाप समिति का ब्रिटिश भारत की ऐसी ही समिति के साथ ८ और ६ फरवरी तथा १ मार्च १६४७ को विचार विमर्श हुआ।

२० फरवरी सन् १६४७ को मि० एटली ने हाउस आफ कामन्स में घोषणा कर दी थी कि जून १६४८ तक भारत की एक उत्तरदायी सरकार को सत्ता हस्तान्तरित कर दी जायेगी। लार्ड वेवल ने त्याग पत्र दे दिया और २४ मार्च १६४७ को लार्ड माउन्ट बैटन ने उनका पद सम्भाला। महाराजा सादूलसिंह, जो दिल्ली में थे, शपथ ग्रहण समारोह में शामिल नहीं हुये।[3] लेकिन उसी दिन बाद में वे जाकर वाइसराय से मिले। उन्होंने अपनी अनुपस्थिति का कारण बताया और कहा कि भोपाल का नवाब अन्तरिम सरकार के प्रति अपने दृष्टिकोण के कारण राजाओं में विवादास्पद मामले खड़े कर रहा है। महाराजा ने विश्वास प्रकट किया कि उनके समूह[4] द्वारा विधान निर्मात्री सभा में सम्मिलित होने से नया शासन काफी मजबूत हो

---

१. लियोनार्ड मोस्ले, दी लास्ट डेज़ आफ दी ब्रिटिश राज, पृ. ४३।
२. बीकानेर के विदेश और राजनैतिक मन्त्री श्री के. एम. पन्निकर इस समिति में बीकानेर के प्रतिनिधि थे।
३. भोपाल का नवाब भी इस समारोह में शामिल नहीं हुआ।
४. बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, पटियाला और ग्वालियर।

जायेगा।[1] भोपाल का नवाब उस समय नरेन्द्र मण्डल का अध्यक्ष था। वह इस बात पर जोर दे रहा था कि रियासतें अलग अलग कोई कारवाई न करें बल्कि वे सब सामूहिक रूप से और अध्यक्ष की सहमति से ही कारवाई करें।[2] भारत की स्वतन्त्रता के समय तीनों सम्बन्धित दलों द्वारा जो बातचीत चल रही थी उसकी सदस्यता को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है कि भारत का आरम्भ से ही धर्म निरपेक्षता में दृढ़ विश्वास रहा है। कांग्रेस, मुस्लिम लीग और भारतीय रियासतें तीनों की ओर से बातचीत करने वाले मुसलमान थे। कांग्रेस की ओर से मौलाना आजाद, मुस्लिमलीग की ओर से जिन्ना तथा राजाओं की ओर से भोपाल के नवाब हमीदुल्ला खाँ थे।

अप्रैल सन् १९४७ में राजाओं की स्थाई समिति की बैठकें हुई। इनमें दोनों वार्तालाप समितियों (रियासतों की वार्तालाप समिति और विधान निर्मात्री सभा द्वारा नियुक्त ऐसी ही समिति) द्वारा किये गये समझौते पुष्टि के लिये रखे गये और स्वीकृत हुये। लेकिन रियासतें कब विधान निर्मात्री सभा में सम्मिलित हों इस प्रश्न पर अध्यक्ष और महाराजा सादूलसिंह में मतभेद हो गया। अध्यक्ष और बहुत से राजा इस पक्ष में थे कि रियासते संघीय संविधान बनने के समय विधान निर्मात्री सभा में सम्मिलित हों। महाराजा सादूलसिंह और उनके समूह के राजा तुरन्त सम्मिलित होने के पक्ष में थे। यह देख कर कि राजाओं को समस्या की गम्भीरता अनुभव कराना उनके लिये सम्भव नहीं है, महाराजा ने अपना ऐतिहासिक बहिर्गमन (सभा त्याग) किया। उन्होंने अध्यक्ष के लिये एक टिप्पणी लिख कर छोड़ दी। इसमें उन्होंने कहा कि स्थाई समिति में और अधिक न रहने के लिये मुझे क्षमा किया जाय क्योंकि इसमें मेरी स्थिति बड़ी कठिन हो जायेगी। उन्होंने यह भी लिखा कि इस समय राजाओं और देश के सामने जो समस्यायें हैं उनके बारे में मेरे विचार अध्यक्ष और स्थायी समिति के बहुमत से बिल्कुल भिन्न हैं। न तो मैं चुप रह सकता हूँ और न अपने दृष्टिकोण के बारे में, जिसे मैं श्रीमानों के समक्ष अनेक बार स्पष्ट कर चुका हूँ, और अधिक कहना चाहता हूँ।[3]

महाराजा ने उसी दिन अपने साथी राजाओं के नाम एक

---

१. कैम्पबैल, मिशन विद माउन्ट बैटन, पृ० ४४।

२. वही पृ० ४७।

३. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल संख्या १३२०–XXI-A, ता० १–४–१९४७ की महाराजा सादूलसिंह की टिप्पणी।

अपील निकाली। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अंग्रेजों के हटने से जो रिक्तता उत्पन्न होगी उसकी जगह भारत के यथा-सम्भव बड़े से बड़े भाग के निर्माण के लिये कार्य करना ही रियासतों के लिये एक मात्र सुरक्षित नीति होगी। यह भाग रियासतों और ब्रिटिश भारत दोनों की रक्षा करेगा और शान्ति, व्यवस्था और अच्छी सरकार बनाये रखेगा। यह असैनिक गड़बड़ी भी रोकेगा। उन्होंने आगे लिखा कि यदि राजाओं द्वारा "प्रतीक्षा करो और देखो" की नीति अपनाई गई तो यह उनके घोषित विचारों के अनुसार नहीं होगी जो स्वतन्त्रता प्राप्ति में भारत की सहायता करने के लिये थे। अतः उन्होंने जोर दिया कि राजा लोग इस अवसर पर आगे आयें और भारत की स्वतन्त्रता और महानता के सहनिर्माता कहलायें।[1]

महाराजा के बहिर्गमन और अपील के फलस्वरूप एक समझौता तैयार किया गया। अंत में यह तै हुआ कि दोनों वार्तालाप समितियों के बीच हुये समझौतों की विधान निर्मात्री सभा द्वारा पुष्टि के बाद रियासतें किसी भी समय विधान निर्मात्री सभा में शामिल हो सकती हैं। महाराजा के इस ऐतिहासिक बहिर्गमन से एक तीसरी शक्ति बनाने का "भोपाल के नवाब का खेल" खत्म हो गया। महाराजा की इस कारवाई की केवल सारे समाचार पत्रों[2] ने ही प्रशंसा नहीं की बल्कि ब्रिटिश भारत के प्रसिद्ध नेताओं ने भी सराहना की। सरदार वल्लभभाई पटेल ने महाराजा के बारे में लिखा कि "वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने बातचीत में इतना महत्वपूर्ण भाग लिया है जिससे राजाओं के भारतीय संघ में मिलने का मार्ग खुल गया। महाराजा ऐसे व्यक्ति हैं जो दृढ़ स्वामी भक्ति के साथ देश के साथ रहे।"[3] स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति ने महाराजा की देशभक्ति पूर्ण कारवाई की

---

१. ता० १-४-१९४७ की महाराजा सादूलसिंह की गुप्त अपील।

२. दी टाइम्स ऑफ इंडिया ता० २-४-१९४७ और ७-४-१९४७।
नेशनल स्टैंडर्ड ता० ३-४-१९४७।
बाम्बे सेंटिनल ता० ३-४-१९४७।
फ्री प्रेस जरनल ता० ३-४-१९४७।
दी बाम्बे क्रॉनिकल ता० ४-४-१९४७।

३. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १२५२-IX, महाराजा सादूलसिंह के नाम सरदार पटेल का ता० २७-१-१९५० का पत्र।

भूरि भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा--

> "भारत के एकीकरण का महान कार्य मूलतः इसलिये हो सका क्योंकि उसमें महाराजा सादूलसिंह जैसे राजाओं ने संविधान निर्माण में भाग लेने और भारत की विधान निर्मात्री सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने की सद्भावना और तत्परता दिखाई। यह एक कठिन कार्य था। इस कठिनाई का शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। यदि इस प्रकार का हार्दिक सहयोग नहीं मिलता तो भारत शायद कई टुकड़ों में विभाजित रहता। बीकानेर के स्वर्गीय महाराजा सादूलसिंह को ही इस बात का श्रेय है कि अपने साहसी निर्णय से उन्होंने दूसरे राजाओं का ठीक और समय पर मार्ग प्रदर्शन किया। इसके फलस्वरूप अन्त में केवल बीकानेर रियासत ही भारत में सम्मिलित नहीं हुई बल्कि दूसरी रियासतें भी सम्मिलित हुईं। अतः भारत उनका ऋणी है और रहेगा।"
>
> "..........जब उस काल का इतिहास लिखा जायगा तो उसमें यह उल्लेख होगा कि जब एक ओर भारत के समक्ष विभाजन का संकट था और दूसरी ओर इसके छोटे २ टुकड़े होने की खतरनाक सम्भावना थी तो दूरदर्शिता और महान देश भक्ति से प्रभावित होकर महाराजा सादूलसिंह चट्टान की तरह अटल रहे और उस सम्भावना को मिटा दिया।"[1]

महान देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर महाराजा सादूलसिंह ने भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त होते देखने का अपना वचन निभाया। साथ ही अपने साथी राजाओं को, जो अपने विचार निश्चित नहीं कर पा रहे थे, अत्यावश्यक साहस प्रदान किया। आरम्भ से ही उन्होंने राजाओं को प्रभावित किया कि जिस मन्त्रिमंडल मिशन योजना का समर्थन करने के बारे में राजा लोग पहले ही

---

१. बीकानेर में ता० २--६--१९५४ को डा० राजेन्द्र प्रसाद का भाषण जब कि वे महाराजा सादूलसिंह की मूर्ति का अनावरण करने आये। यह मूर्ति ऐतिहासिक थी क्योंकि सन् १९५० में महाराजा के स्वर्गवास के तुरन्त बाद और एकीकरण के कुछ समय बाद बीकानेर के लोगों ने स्वेच्छा से अपने आप धन संग्रह किया और इस विशाल अश्वारोही मूर्ति को बनवा कर नगर के एक मुख्य स्थान पर स्थापित किया।

प्रतिज्ञा कर चुके हैं उसे लागू करने में सहयोग दें। मि० लियाकत अलीखाँ ने आरोप लगाया कि महाराजा ने यह कारवाई दवाव में आकर की है। महाराजा ने तुरन्त इसका खण्डन किया और कहा कि मैंने जो निर्णय लिया है वह एक मात्र देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर और राष्ट्र के सर्वोत्तम हित के लिये किया है।[1] महाराजा के इस खण्डन की समाचार पत्रों ने बहुत प्रशंसा की।[2] २८ अप्रैल सन् १९४७ को बीकानेर के प्रतिनिधि के. एम. पन्निकर ने विधान निर्मात्री सभा में अपना स्थान ग्रहण किया।[3]

---

१. मि० लियाकत अली खाँ के इस आरोप का कि रियासतें कांग्रेस के दवाव से वशीभूत हो गई थीं, ता० २४-४-१९४७ को महाराजा ने एशोसियेटेड प्रेस ऑफ इण्डिया को दिये गये अपने कथन में उत्तर दिया था। महाराजा ने कहा—

"मैं कह सकता हूं कि जहाँ तक बीकानेर रियासत का सम्बन्ध है और दूसरी रियासतें भी जिन्होंने विधान निर्मात्री सभा के काम में भाग लेने का निश्चय किया है, यह निर्णय किसी के दवाव से निश्चित रूप से नहीं किया। कांग्रेस के दवाव से तो बिल्कुल नहीं। हमने यह निर्णय इसलिये किया कि हम इसे हमारे एवं साथ साथ भारत के सर्वोत्तम हित में समझते हैं। इसके अतिरिक्त हम अपनी मातृभूमि के प्रति पूर्णतः देशभक्ति की भावना से भी प्रभावित हुये ताकि इस विकट घड़ी में जब ब्रिटिश भारत और रियासतों को प्रभावित करने वाले दूरगामी निर्णय जल्दी से लेने हैं तो हम भी इस काम में जहाँ तक बन सके अपने देश की मदद करें।"

२. इण्डियन न्यूज क्रानिकल ता० २७-४-१९४७।
लोकवाणी ता० २६-४-१९४७।

३. वी० पी० मेनन, दी स्टोरी ऑफ दी इंटीग्रेशन ऑफ दी इंडियन स्टेट्स, पृ० ७६।
बाद में कंवर जसवन्तसिंह जी दाउदसर ने भी विधान निर्मात्री सभा में बीकानेर का प्रतिनिधित्व किया।
बीकानेर विधानसभा के सदस्यों की एक समिति भी नियुक्त की गई जिसका काम विधान निर्मात्री सभा में रियासत के प्रतिनिधि के साथ निकट सम्बन्ध रखना और इसके काम के साथ सम्पर्क कायम रखना था। ये ६ सदस्य इस प्रकार थे—

१. पंडित बद्री प्रसाद व्यास, २. साँखू के ठाकुर हीरसिंह, ३. सरदार दरबारा सिंह, ४. चौधरी मोतीराम, ५. सेठ लहरचन्द सेठिया, ६. शेख निसारअहमद।

इसी बीच काश्मीर में एक गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गई थी। शेख अब्दुला ने काश्मीर छोड़ो आन्दोलन शुरू कर दिया था। फलस्वरूप वह बंदी बनाया गया और उसके विरुद्ध एक मुकदमा आरम्भ हुआ।[1] महाराजा सादूलसिंह एक शक्तिशाली और संगठित भारत में विश्वास रखते थे। काश्मीर में स्थिति सुधारने में उन्होंने अपना योग देने का प्रयत्न किया। जून सन् १९४७ में उन्होंने महात्मा गांधी को पत्र लिखा। ऐसी खबर थी कि गाँधीजी काश्मीर जाने वाले थे। महाराजा ने महात्मा गांधी को सुझाव दिया कि वे शेख द्वारा अपनाई गई मूल स्थिति से उसे हटाने में अपना प्रभाव काम में लावें। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि यदि यह सम्भव न

---

१. सन् १९६४ में जेल से छूटने पर, शेख अब्दुला प्रथम भारतीय राजनीतिज्ञ था जिसने भारतीय संघ में किसी भारतीय रियासत के शामिल होने के बारे में सन्देह प्रकट किया। लेखक ने संसद सदस्य और बीकानेर के महाराजा के रूप में समाचार पत्रों को दिये गये एक कथन में कहा कि "बीकानेर रियासत तथा जम्मू और काश्मीर के सम्मिलित होने में कोई कानूनी अन्तर नहीं था क्योंकि ज्योंहीं शासक ने सम्मिलित होने के समझौते पर हस्ताक्षर किये यह हमेशा के लिये दोनों पक्षों पर कानूनी दृष्टि से लागू और पूर्ण हो गया।
कभी कभी यह बात कही जाती है कि भारतीय संघ में सम्मिलित होने के समय भूतपूर्व रियासतों की जनता की सलाह नहीं ली गई। यह बात सच नहीं है क्योंकि "भारतीय स्वतन्त्रता कानून" में ऐसी कोई धारा नहीं है। असली भाव यह था कि अंग्रेजी सत्ता समाप्ति के बाद प्रत्येक रियासत के शासक को यह अधिकार था कि वह दो नव निर्मित देशों—भारत और पाकिस्तान—में से किसी एक के साथ सम्मिलित हो जाय। यहीं मामला खत्म हो जाता था।"

मैंने यह भी कहा कि "अपने व्यक्तिगत अनुभव से मुझे ज्ञात है कि मेरे पिता महाराजा सादूलसिंह भारतीय संघ में इसलिये सम्मिलित हुये क्यों कि वे जानते थे कि रियासत के १५ लाख लोग यही चाहते हैं। यही बात अन्य सैंकड़ों रियासतों पर भी लागू होती है। मुझे विश्वास है कि काश्मीर कोई अपवाद न था।"

मैंने यह भी कहा कि "स्वयं शेख अब्दुल्ला ने जम्मू और काश्मीर रियासत के भारत में विलय की जोरदार मांग की और बाद में भारत सरकार से सहायता मांगी। यह तथ्य सभी प्रकार के सन्देह को मिटा देता है।"

हो तो दोनों पक्षों में "बीती ताहि विसारदे आगे की सुध लेय" के आधार पर समझौता कराने का प्रयत्न किया जाय। महाराजा ने समय की आवश्यकता पर ज़ोर दिया और देश की विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखते हुये एक समझौते के हल का समर्थन किया।[1] महात्मा गांधी ने पत्र की प्राप्ति स्वीकार की और लिखा कि यदि मैं काश्मीर गया तो इस पत्र की बात ध्यान में रखूँगा।[2] इससे महाराजा की देश के प्रति दृढ़ देशभक्ति और कर्तव्य भावना का पता चलता है। साथ ही इससे यह भी प्रकट होता है कि जो लोग राष्ट्र के भाग्य का निर्माण कर रहे थे, उनके साथ महाराजा के सम्बन्ध कितने मैत्रीपूर्ण थे।

भारत विभाजन का दुष्परिणाम सामने दिखाई पड़ने लगा। २० फरवरी १९४७ को मि० एटली की ब्रिटिश सत्ता के भारत से हटने सम्बन्धी घोषणा के बाद यदि रियासतें सहयोग देने के स्थान पर दूसरा मार्ग चुनतीं तो वास्तव में ही भारत के कई खण्ड होने की खतरनाक सम्भावना थी। अतः नई सरकार ने पहला कदम ५ जुलाई सन् १९४७ को रियासती विभाग को बनाकर उठाया ताकि भारतीय रियासतों के साथ अपने सम्बन्ध को चालू रखें।[3] सरदार वल्लभ भाई पटेल इस विभाग के मन्त्री नियुक्त किये गये और उन्होंने वी० पी० मेनन को अपना सचिव बनाया।[4] रियासती विभाग के सामने तुरन्त समस्या यह थी कि भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य प्राप्त देश का दर्जा मिलने की घोषणा की तिथि से पहले जो थोड़ा सा समय बीच में है उसमें राजाओं के साथ

---

१. बीकानेर महाराजा के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ६१४--XVIII, महात्मा गांधी के नाम महाराजा सादूलसिंह का ता० १८-६-१९४७ का पत्र। परिशिष्ट ३४

२. वही, महात्मा गांधी का महाराजा सादूलसिंह के नाम १९-६-१९४७ का पत्र।

३. भारतीय रियासतों के बारे में श्वेत पत्र, पृ. ३३।

४. वही।

सरदार पटेल, सरदार अब्दुल रब निश्तर के साथ सलाह करके काम करने वाले थे और मि. इकरामउल्ला को संयुक्त सचिव नियुक्त किया गया। विचार यह था कि जब भारत और पाकिस्तान दो अलग अलग राष्ट्र बन जांय तो इस विभाग को सरलता से विभाजित किया जा सके और बिना किसी गड़बड़ी के दोनों देशों में यह विभाग काम करता रहे।

प्रत्येक व्यवस्था, जिन्हें अंग्रेजों ने रद्द करना आरम्भ कर दिया है जैसे सेना, डाक आदि, के सम्बन्ध में सफलता से कैसे बातचीत की जाय। सरदार पटेल इस बारे में चिन्तित थे। इससे राजाओं के साथ फिर से सारी बातें आरम्भ करनी पड़ती लेकिन श्री मेनन ने तुरन्त सरदार पटेल की चिन्ता दूर करदी। उन्होंने सुझाव दिया कि राजाओं से केवल तीन विषयों में ही विलय के लिये कहा जाय। ये तीन विषय रक्षा, विदेशी मामले, और संचार थे। सरदार पटेल ने अपने विभाग की नीति बताने का प्रथम अवसर प्राप्त किया। उन्होंने राजाओं से अपील की कि इन सामान्य हित वाले तीन विषयों को वे भारत सरकार को सौंप दें। उन्होंने विश्वास दिलाया कि अन्य विषयों में उनका स्वायत्त अस्तित्व निःसन्देह रूप से कायम रखा जायेगा। उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया कि रियासतों के घरेलू मामलों में किसी भी तरह से किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की कांग्रेस की इच्छा नहीं है और रियासतों के साथ बर्ताव में मेरे विभाग की नीति अधिकार की नहीं होगी। हम चाहेंगे कि राजा लोग अच्छी तरह से रहें। हम राजाओं के शत्रु नहीं है।[1]

महाराजा ने यह अनुभव किया कि यदि राजा लोग भारत के स्वराष्ट्र से बाहर रहने का निर्णय करते हैं तो उसके बुरे परिणाम होंगे।[2] उन्होंने सरदार पटेल की इस घोषणा का तुरन्त स्वागत किया। उन्होंने

---

१. हिन्दुस्तान टाइम्स ता० ७-७-१९४७।

२. बीकानेर बुलेटिन, वर्ष ५ अंक १— अगस्त १९४७, पृ० ११-१२।
भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति की खुशी में किये गये दिनांक १५-८-१९४७ को एक राजकीय भोज में महाराजा सादूलसिंह द्वारा दिया गया भाषण —
"ब्रिटिश सत्ता समाप्ति के साथ भारतीय रियासतों को यह छूट थी कि वे अलग रहें और नये स्वराष्ट्र के साथ सम्बन्धित होने से इन्कार कर दें। कानूनी दृष्टि से आज हम सभी स्वतन्त्र हो सकते थे क्योंकि हमने ब्रिटिश साम्राज्य को आधिपत्य का जो अधिकार सौंपा था वह भारतीय स्वतन्त्रता कानून के अन्तर्गत हमें वापस मिल गया था। हम अलग रह सकते थे और भारतीय स्वराष्ट्र में विलय नहीं करते। एक क्षण के विचार से ही यह स्पष्ट हो जायेगा कि इसका परिणाम कितना विनाशकारी होता। शुरू से ही मेरे दिमाग में यह बात आ गई थी कि इससे भारत छोटे २ टुकड़ों में बंट जायेगा। इसके परिणाम का पूर्ण ज्ञान रखते हुये मैंने बिना हिचकिचाहट

सरदार पटेल ने महाराजा द्वारा प्रदत्त सहायता और सहयोग के लिये भी सराहना की। सरदार पटेल ने कहा कि जब सारी योजना तोड़ी फोड़ी जा रही थी तो बीकानेर के महाराजा ने ही संयुक्त भारत के लिये अपनी अटल स्वामिभक्ति द्वारा स्थिति को बचाया। उन्होंने कहा —

"...............हैदराबाद और जूनागढ़ को छोड़कर सभी पूर्ण अधिकार प्राप्त रियासतें, जिन्हें भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिये कहा गया था, विलय के समझौते पर हस्ताक्षर कर चुकी हैं जिसे राजाओं और रियासतों के प्रतिनिधियों की वार्ता-लाप समिति ने अंतिम रूप दिया था। मैं अपने साथियों की ओर से, अपनी ओर से तथा रियासती विभाग की ओर से, श्रीमान ने उन कठिन दिनों में जो सहायता और सहयोग दिया उसके लिये अत्यधिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ। श्रीमान से बढकर और कोई इस बात को नहीं जानता कि हम सब को किस प्रकार के वातावरण में काम करना पड़ा और किन षड्-यन्त्रों का सामना करना पड़ा। ये कठिनाइयाँ और षड्यन्त्र न केवल जाते हुये प्रायः समस्त विदेश विभाग द्वारा, बल्कि, मुझे अफसोस है कि, हमारे कुछ देशवासियों द्वारा भी उपस्थित किये गये। इनमें राजा लोग और उनके मंत्री भी शामिल हैं। बारबार सारी योजना को नष्ट करने के प्रयत्न किये गये ताकि हमारे भावों के अनुसार एक मजबूत, संगठित और शक्तिशाली भारत न बन पाये। लेकिन हम सबके सौभाग्य से वे प्रयत्न असफल हो गये। इसका श्रेय, संगठित भारत के लिये, श्रीमान और दूसरे देशभक्त राजाओं और मन्त्रियों की अटल आस्था को है। राजाओं को गलत राह पर ले जाने के लिये जान बूझकर जो सन्देह और गलतफहमियाँ उत्पन्न की गईं उन्हे मिटाने में आपने जो कष्ट किया उससे मैं भलीभाँति परिचित हूँ। उस समय आपसे प्राप्त सहायता को इस अवसर पर स्मरण कर निश्चय ही मुझे खुशी होती है।"

"............अपने कठिन कार्य में मुझे आपसे जो बहुत मूल्यवान सहायता और सहयोग मिला उसके लिये भी आपको धन्यवाद है। आपका नेतृत्व निश्चय ही समयानुकूल और

जानते थे, जिन्हें परिस्थितियों से विवश होकर अवश्यम्भावी के प्रति झुकना पड़ा। इस स्थिति के समय लेखक अपने पिता महाराजा सादूलसिंह के बहुत निकट सम्पर्क में था जो कि भारतीय नेताओं के साथ अनेक महत्वपूर्ण मुलाकातें कर रहे थे और महाराजा के हमारे नेताओं के प्रति वास्तविक सद्भाव और विश्वास से लेखक सहमत था।

पंजाब के विभाजन से बीकानेर के बहुत महत्वपूर्ण हित खतरे में पड़ गये। फिरोजपुर हेडवर्कस से ही गंगनहर को पानी मिलता और नियन्त्रित होता था। यह आशंका थी कि यदि हैडवर्क्स पाकिस्तान में गया तो सतलज के पानी में रियासत के हितों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार जब निजी सूत्रों से यह बात मालूम हो गई कि मुस्लिम लीग फिरोजपुर हैडवर्क्स से पानी दिये जाने पर नियन्त्रण का दावा कर सकती है तो बीकानेर के प्रधान मन्त्री ने सरदार पटेल को एक पत्र लिखकर इस स्थिति से अवगत कराया और उन्हें बताया कि राष्ट्र के विभाजन के बाद फिरोजपुर निश्चित रूप से भारतीय क्षेत्र में रहना चाहिये। उसने यह भी लिखा कि सतलज घाटी नहरों से बीकानेर के इलाके की एक हजार वर्ग मील से अधिक भूमि सींची जाती है। यदि मुस्लिम लीग के दावे को स्वीकार किया गया तो रियासत के हितों को बहुत हानि पहुँचेगी। रियासती विभाग के मन्त्री और विभाजन के उच्च परिषद् के सदस्य होने के कारण सरदार पटेल पर उसने जोर दिया कि वे यह निश्चय कर दें कि फिरोजपुर हैडवर्क्स पूर्णतः भारत द्वारा नियन्त्रित हो।[१] महाराजा ने भी ७ जुलाई सन् १९४७ को वाइसराय, पंडित जवाहरलाल नेहरू डा० राजेन्द्र प्रसाद और सरदार पटेल को तार भेजे। इन तारों में यह अनुरोध किया गया कि जो व्यवस्था की जा रही है, उसमें इस बात का पूरा ध्यान रखा जाय कि बीकानेर रियासत के हितों में हस्तक्षेप न हों तथा रियासत के अधिकार पूरी तरह से सुरक्षित रखे जायं क्योंकि इन्हीं अधिकारों पर बीकानेर रियासत की पूर्ण आर्थिक स्थिति और समृद्धि निर्भर करती है।[२] सरदार पटेल ने उत्तर दिया कि इस बारे में उपयुक्त कदम उठाये जा रहे हैं। उन्होंने महाराजा को आश्वासन दिया कि आपसी हितों (भारत और बीकानेर रियासत के) की पूर्ण

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २६६६-बी, LIV, भाग २— भाखरा बाँध योजना, के० एम० पन्निकर का सरदार पटेल के नाम पत्रांक ४६४-सी/३८६ ता० ५-७-१९४७।

२. वही, महाराजा सादूलसिंह के ता० ७-७-१९४७ के तार।

थी क्योंकि रियासत का आर्थिक जीवन पूर्णतः इसी पर निर्भर था। महाराजा ने वाइसराय से अनुरोध किया कि मेरे प्रधानमंत्री और सिंचाई विभाग के चीफ इंजिनियर को आपके सामने तथ्य रखने का एक अवसर प्रदान किया जाय।[1] सभी सम्बधित लोगों, विशेषतः लार्ड माउन्ट वैटन को इसका श्रेय दिया जाना चाहिये कि अन्त में बीकानेर महाराजा के प्रयत्न सफल हुये और एक न्यायोचित बात मानी गई। फिरोजपुर भारत में रहा।

लम्बे संघर्ष के बाद १४ अगस्त १९४७ की मध्यरात्रि में भारत ने स्वशासन प्राप्त किया और स्वतंत्र हो गया। लार्ड माउन्ट वैटन इसके प्रथम गवर्नर जनरल बने। नेहरू ने कहा— "बहुत वर्ष पहले हमने भाग्य के साथ अभिसार किया था। अब समय आ रहा है जब हम अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करेंगे, पूर्णतः या पूरे रूप में नहीं बल्कि धीरे धीरे। मध्यरात्रि का घंटा बजने के समय जब कि संसार सोता है भारत जीवन और स्वतन्त्रता में जागेगा।"[2]

स्वतन्त्रता अब भारत के लिये एक प्राप्त तथ्य था। आजादी की लड़ाई के फलस्वरूप बिना खून खराबी के सत्ता परिवर्तन हो गया था। लेकिन ये खुशियां अल्पकालीन थीं। एक वर्ष पहले जिन्ना ने सीधी कार-वाई दिवस मनाने का जो आवाहन किया था,[3] उसने साम्प्रदायिक घृणा

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० २६६६–बी–LIV, भाग २, भाखरा बांध योजना, महाराजा सादूलसिंह का लार्ड माउन्ट वैटन के नाम ता० १०–८–१९४७ का तार।

२. कैम्पबेल, मिशन विद माउन्ट वैटन, पृ० १५७, विधान निर्मात्री सभा में ता० १४–८–१९४७ को पंडित जवाहरलाल नेहरू का भाषण।

३. लियोनार्ड मोसले, दी लास्ट डेज ऑफ दी ब्रिटिश राज, पृ० २९–३२। "आज हमने जो कुछ किया है वह हमारे इतिहास में सर्वाधिक ऐतिहासिक कार्य है। लीग के सारे इतिहास में हमने वैधानिक तरीकों और वैधानिकता के सिवा कभी कुछ नहीं किया। लेकिन अब हमें इस स्थिति के लिये मजबूर किया गया है। इस दिन हम वैधानिक तरीकों को हमेशा के लिये छोड़ते हैं—आज हमने एक पिस्तौल धारण कर ली है और हम इसे प्रयोग करने की स्थिति में हैं।"— जिन्ना

ता० ५–८–१९४६ के स्टेट्समैन में सुहरावर्दी ने एक लेख में लिखा— "यदि अच्छे काम के लिये किये जायं तो खून खराबी और अव्यवस्था अनिवार्यतः अपने आप में दोष नहीं हैं।"

बचाने का अति मानवीय कार्य पूरा किया। यह कार्य उन्होंने ऐसे समय में किया जबकि सीमाओं के पार ब्रिटिश भारत में और उससे भी अधिक पाकिस्तान में, शरणार्थियों के जीवन का कोई मूल्य न था। इस विराट समस्या का मुकाबला करने के लिये किये गये प्रबन्ध[1] ने बीकानेर के स्थानीय निवासियों के लिये बहुत सी दूसरी समस्यायें उत्पन्न कर दी। भारत से पाकिस्तान आने वाले शरणार्थियों के लिये काफी भोजन और आवास की व्यवस्था करनी पड़ी क्योंकि अधिकांश शरणार्थियों के पास वास्तव में कुछ भी न था। बीकानेर रियासत में यह कार्य सम्भवतः इसलिये अधिक सरलता से हुआ क्योंकि सदियों से बीकानेर में विभिन्न सम्प्रदायों के लोग पूर्ण प्रेम से रह रहे थे। शेष भारत में जो साम्प्रदायिक घृणा की भावना भड़की उसने राजपूताना की बड़ी रियासतों पर, किसी उल्लेखनीय सीमा तक, कोई प्रभाव नहीं डाला।

जब पाकिस्तान से हिन्दुओं का निकालना प्रारम्भ हुआ और वे भारत में आये तो भारत सरकार ने बीकानेर रियासत से अनुरोध किया कि यदि सम्भव हो तो उन्हें अस्थायी तौर पर अपने यहां तब तक रखा जाय जब तक कि उन्हें कुछ समय में पुनः स्थापित न किया जाये। कुछ अवसरों पर पाकिस्तान से भारत आने वाले शरणार्थी हवाई जहाज से भी आये और बाज़ मौकों पर विशेष वायुयानों द्वारा भी।[2] भावलपुर और उसके आसपास के स्थानों से जो हिन्दू सीधे बीकानेर में प्रविष्ट हुये उनका मुक्त हृदय से स्वागत किया गया। लेकिन दूसरे ऐसे हिन्दू भी थे जो पूर्वी पंजाब में प्रविष्ट हुये और जिन्हें अस्थायी रूप से रखा जाना था। बीकानेर रियासत ने भारत सरकार को सहयोग देना अपना कर्तव्य समझा और इन हिन्दू शरणार्थियों को रखने के लिये सहमत हो गई। उनके लिये कई स्थानों पर शिविर खोले गये। कोलायत[3], जहाँ काफी धर्मशालायें थी, शरणार्थियों

---

१. उस समय कँवर जसवन्तसिंह दाउदसर शरणार्थियों के लिये प्रबन्ध कर रहे थे। शरणार्थियों के आने जाने और उनके लिये किये गये प्रबन्ध का विवरण कँवर जसवन्तसिंह के कथन पर आधारित है।

२. बीकानेर को इस बात का गर्व था कि यहाँ के हवाई अड्डे की पटरी सीमेंट की बनी हुई और २१०० गज लम्बी थी। यहाँ बड़े से बड़े विमान उतर सकते थे।

३. कोलायत शब्द कपिलायत से बना है। कोलायत नगर बीकानेर के दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग ३० मील पर स्थित है। गाँव में एक तालाब

[illegible] ठहराया गया। धर्मशालाओं के मालिकों से कहा गया कि वे उन्हें [illegible] शरणार्थियों को सौंप दें। भोजन और जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिये बीकानेर सरकार ने यथा सम्भव पूर्ण प्रबन्ध किया। जिले के एक नगर [illegible] में [illegible] ने अपने स्वयं का भवन और उसके आसपास का [illegible] पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों को सौंप दिया।

जब भावलपुर से आने वाले शरणार्थी पास के गंगानगर जिले में [illegible] लगे तो उन्होंने बीकानेर रियासत में आते समय मार्ग में हुये जन-[illegible] और [illegible] की हृदयस्पर्शी कहानियाँ सुनाईं। इन्हें सुनकर स्थानीय हिन्दू और सिक्ख इतने क्रोधित हुये कि वे बदले की तैयारी करने लगे। महाराजा को इसकी सूचना मिली। उन्होंने बीकानेर की सेना गंगानगर [illegible] की तुरन्त आज्ञा दी ताकि उनके किसी मुस्लिम प्रजाजन को हानि न [illegible]।

जब पाकिस्तान के भावलपुर क्षेत्र से आने वाले हिन्दुओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ने लगी और उन पर हुये अत्याचारों की कहानियाँ फैलने लगीं तो बीकानेर रियासत द्वारा यह उचित समझा गया कि गंगानगर के [illegible] में बसने वाले मुसलमानों को अन्त में पाकिस्तान भेजने के लिये एक या दो स्थानों पर जमा किया जाय। थोड़े ही समय में यह अनुभव किया गया कि सीमा क्षेत्र में बसने वाले मुसलमानों के लिये वहाँ रहना असम्भव है। उन्हें सलाह दी गई कि वे भावलपुर चले जायं। उन्हें रियासत की सेना के संरक्षण में सुरक्षित पहुँचाने का भी वचन दिया गया। बीकानेर सरकार की कड़ी सावधानी और इस मामले में इसके कड़े दृष्टिकोण के [illegible] की केवल एक ही छुटपुट घटना हुई। इस एक घटना के अतिरिक्त और कोई घटना नहीं हुई और सीमा पर रहने वाले हजारों मुसलमान सुरक्षित पहुँचाये गये।

देश में जो आम उथल-पुथल हो रही थी उसका प्रभाव बीकानेर के अन्य भागों पर भी, जहाँ मुसलमान काफी संख्या में बसे हुये थे,

---

[illegible] किनारे पर कपिल मुनि का मन्दिर है। यह तालाब अजमेर के [illegible] के समान ही पवित्र माना जाता है। यहाँ एक वार्षिक मेला होता है [illegible] देश के सभी भागों से हजारों लोग आते हैं।

पड़ने लगा। यहाँ चूरू[1] का उल्लेख किया जा सकता है जहाँ सेठ और साहूकारों के यहां काफी मुसलमान नौकरी किया करते थे। जब साम्प्रदायिक घृणा से वातावरण दूषित हुआ तो चूरू के सेठों और अन्य उत्तरदायी नागरिकों ने मुसलमानों का बहिष्कार आरम्भ कर दिया। इससे उनका जीवन बहुत कठिन हो गया। पाकिस्तान जाने से पूर्व ये हजारों की संख्या में बीकानेर आये। उन्होंने महाराजा को अपनी दुखभरी कहानी सुनाई। महाराजा को यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि बहुमत सम्प्रदाय ने ऐसा व्यवहार किया। चूरू के इन हजारों मुसलमानों को शरण और भोजन दिया गया। एक विशेष भाग खोला गया ताकि बीकानेर के शिविरों में दोनों तरह के शरणार्थियों— पाकिस्तान से आने वाले हिन्दुओं और पाकिस्तान जाने के लिये बीकानेर आने वाले मुसलमानों— की देखभाल की जाय। महाराजा ने सार्वजनिक निर्माण मन्त्री कंवर जसवन्तसिंह को चूरू भेजा कि वे महाजनों को कहें कि जो मुसल-मान काम छोड़ चुके हैं उन्हें वापस लगायें और इस बात का ध्यान रखें कि उन्हें किसी प्रकार तंग न किया जाय। महाजनों ने महाराजा की बात मानली। चूरू के मुस्लिम निवासी विशेष रेलगाड़ियों द्वारा वापस भेजे गये और उनकी सम्पति उन्हें पुनः दिलादी गई।

इसी प्रकार गंगानगर जिले की सीमा की एक तहसील के मुख्य कार्यालय अनूपगढ़ में मुसलमान बसे रहना चाहते थे क्योंकि उनकी संख्या काफी थी। लेकिन पास के गांव के हिन्दुओं ने कुछ संकीर्णविचारों के अफसरों की उपेक्षा का लाभ उठाकर उन्हें तंग करना शुरू कर दिया। अपनी सम्पति पीछे छोड़ वे भी भावलपुर में चले गये। भावलपुर का इलाका बीकानेर रियासत के अनूपगढ़ कस्बे से केवल ६ मील दूर था। पुनः कंवर जसवन्तसिंह को भेजा गया कि वे अनूपगढ़ से जाने वाले मुसलमानों को विश्वास दिलाये कि यदि वे अपने घरों को वापिस लौटने का निर्णय करें तो उनकी पूरी तरह से सुरक्षा की जायेगी और इसके लिये विशेष सेना के लोग वहां लगाये जायेंगे। जिन अफसरों को दोषी पाया

---

१. चूरू बीकानेर से लगभग १०० मील दूर पूर्व की ओर स्थित है। यह नगर ज़िले का प्रधान कार्यालय है। यहां की आबादी लगभग ४०,००० है जिसमें कई करोड़पति हैं। कहा जाता है कि सम्वत् १६२० के आसपास चूहड़ नामक जाट ने इसे बसाया था। इस नगर में अनेक सुन्दर भवन और कुयें हैं।

को सुरक्षित पाकिस्तानी सीमा तक पहुँचाया गया ।[1] जब दोनों देशों में साम्प्रदायिक नर-संहार कम होने लगा तो बीकानेर रियासत इस विराट मानवीय कार्य को इतनी अच्छी तरह से करने के लिये सन्तोष और गर्व के साथ विगत पर दृष्टिपात कर सकती थी । कंवर जसवन्तसिंह के अनुसार महाराजा के इस महान कार्य के लिये भारत के नेताओं और पाकिस्तान के प्रधान मंत्री दोनों ने उन्हें बधाई दी ।

पिछले अध्याय में यह बात पहले कही जा चुकी है कि अपनी जनता के कष्टों को और कम करने की दृष्टि से तथा रियासत का आर्थिक विकास करने की दृष्टि से महाराजा गंगासिंह भाखरा बांध योजना को मूर्त रूप देने के लिये निरन्तर प्रयत्न कर रहे थे । लेकिन यह योजना उनके जीवन काल में सम्पन्न नहीं हो सकी । महाराजा सादूलसिंह अपनी जनता का कल्याण बहुत चाहते थे । अतः उन्होंने इस काम को वहां से अपने हाथ में लिया जहां उनके महान पिता ने इसे छोड़ा था । पंजाब सरकार का दृष्टिकोण पुन : बदल गया था । यह बात मालूम हो गई कि राय बहादुर खोसला द्वारा सन् १९४० में जो योजना तैयार की गई थी और जिसमें बीकानेर को एक निश्चित भाग देने का आश्वासन दिया गया था, अब परित्याग की जा रही थी । अतः महाराजा ने इस विषय में पंजाब के प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा ।[2] उत्तर में उन्हें यह बताया गया कि इस योजना के अन्तर्गत मिलने वाले पानी के लिये इतने अधिक दावे हैं कि पानी की मात्रा निश्चित करना और देना कुछ कठिनाई पैदा करता है ।[3]

महाराजा ने पंजाब के राज्यपाल सर ईवन जेनकिन्स को भी

---

१. लियोनार्ड मोसले, पूर्व उद्धृत, पृ० २४४ ।
"६ लाख मरे, १ करोड़ ४० लाख अपने घरों से निकाले गये, दोनों ओर से १ लाख जवान लड़कियों का अपहरण किया गया, जबर्दस्ती उनका धर्म परिवर्तन किया गया या निलामी कर उन्हें बेचा गया ।

२. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव कार्यालय की फाइल सं० २६६६-बी-LIV, भाग २, सर खिजर हयात खाँ के नाम महाराजा सादूलसिंह का ता० ५-१०-१९४६ का पत्र ।

३. वही, महाराजा के नाम सर खिजर हयात खाँ का पत्र सं० ७१- पी. एम ता० नवम्बर सन् १९४६ ।

किया था। बीच के समय में दोनों ने निकट सम्पर्क रखा। पत्र व्यवहार में दोनों एक दूसरे को प्रेम से आरम्भिक नामों से ही सम्बोधित करते थे। लार्ड माउन्ट बैटन महाराजा को "हीरू" लिखता था। यह नाम महाराजा गंगासिंह ने प्यार से रखा था। महाराजा सादूलसिंह लार्ड माउन्ट बैटन को "डिकी" लिखते थे। लार्ड माउन्ट बैटन के वाइसराय काल में यह निजी दोस्ती और भी बढ़ गई।[1]

स्वागत भाषण का उत्तर देते हुये लार्ड माउन्ट बैटन ने महाराजा को अपने आजीवन मित्रों में से एक बताया। उसने कहा कि हमारी मित्रता पहले पहल उस समय हुई जब महाराजा ५ वर्ष के थे और मैं ७ वर्ष का था। वाइसराय के अपने कार्यकाल का उल्लेख करते हुये कहा कि भारत आकर उसकी पहली सरकारी मुलाकात मार्च सन् १९४७ में महाराजा से ही हुई। उसने यह भी कहा कि उस समय महाराजा ने जो समझ, सहयोग और सहायता का दृष्टिकोण प्रदर्शित किया उससे भारत के भावी ढाँचे में रियासतों की स्थिति का संतोषजनक समाधान निकाल सकने का मुझे नया विश्वास हुआ।[2] स्वयं वाइसराय के शब्दों में—

> "महाराजा साहब प्रथम शासक थे जिन्होंने भारत का नया संविधान बनाने में मदद देने के लिये विधान निर्मात्री सभा में प्रतिनिधि भेजकर यह अनुभव कर लिया कि भविष्य में राजा लोगों को क्या करना है। इसी प्रकार महाराजा साहब पहले शासक थे जिन्होंने रियासतों के अपने पास के संघ में शामिल

---

१. ता० १५-१-१९४८ को महाराजा सादूलसिंह का भाषण—
"......... लार्ड माउन्ट बैटन के साथ मेरी जो जीवन भर की दोस्ती है उसका मैंने संकेत किया है। यह उस समय की बात है जब हम दोनों खिलौनों से खेलने वाले बच्चे थे। उस समय हम दोनों साथ हो गये। यदि मैं यह बात कहूं कि हम दोनों में जो प्रेम और मित्रता हुई वह आगे के वर्षों में और भी बढ़ी, तो अनुचित न होगा। मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि इंग्लैंड के साथ हमारे देश के चाहे जो राजनैतिक सम्बन्ध हों, और मुझे विश्वास है कि वे बहुत ही गहरे होंगे, हम दोनों की निजी मित्रता मृत्यु पर्यन्त बनी रहेगी।"

२. ता० १५-१-१९४८ को लालगढ़ पैलेस बीकानेर में हुये दरबार में लार्ड माउन्ट बैटन का भाषण।

होने के मेरे प्रस्तावों का समर्थन किया।"

"यह बात याद रखनी चाहिये कि सत्ता परिवर्तन के दिन से ही रियासतों का ब्रिटिश भारत के साथ जो सम्बन्ध था, वह दूर हो गया क्योंकि वह सम्बन्ध ब्रिटिश सम्राट की सर्वोच्च सत्ता पर निर्भर था। उस दिन मैंने दो बिल्कुल अलग अलग काम छोड़ दिये। इसमें एक वाइसराय का काम था और दूसरा सम्राट के प्रतिनिधि का। प्रथम रूप में मैं रियासतों के साथ व्यवहार करता था। यह बात सही है कि ये दोनों पद हमेशा एक ही व्यक्ति के पास रहे हैं जिसने कि वास्तव में रियासतों का सम्पर्क ब्रिटिश भारत के साथ रखा। इन दोनों पदों की समाप्ति से तुरन्त यह खतरा पैदा हो गया था कि भारत के टुकड़े २ हो जायेंगे।"

"·········बिना एक क्षण सन्देह किये महाराजा बीकानेर ने भारतीय संघ में अपनी रियासत के शामिल होने की घोषणा करके जिस देश भक्ति और कुशल राजनीति का परिचय देकर दूसरे राजाओं का पथ प्रदर्शन किया वह कम प्रशंसा की बात नहीं है।"

"मेरी सरकार विशेष रूप से महाराजा साहब के कुशल राजनीतिज्ञ जैसे कार्यों की प्रशंसा करती है। मुझे इस बात से और भी खुशी है कि महाराजा साहब के पहले के कामों तथा इन कार्यों से खुश होकर सम्राट ने इन्हें "नाइट ग्रांड कमान्डर आफ दी मोस्ट इक्जाल्टेड आर्डर आफ दी स्टार आफ इन्डिया" बनाया है।"[1]

लार्ड माउन्ट बैटन का दौरा गजनेर में शिकार शिविर के बाद समाप्त हुआ। गजनेर में बुटबड़ों का शिकार किया गया जिसका वाइसराय ने बहुत आनन्द उठाया। वाइसराय स्वयं एक अच्छे निशानेबाज हैं। लार्ड माउन्ट बैटन के साथ उनकी पत्नी लेडी माउन्ट बैटन और उनकी दो लड़कियां पैट्रिशिया ब्रेबोर्न तथा पमेला माउन्ट बैटन भी थीं।[2]

---

१. बीकानेर में ता० १५-१-१६४८ को लार्ड माउन्ट बैटन का भाषण।

२. बीकानेर की [illegible] बुटबड़ों का शिकार विश्व प्रसिद्ध होगया है। महाराजा गंगासिंह और महाराजा शार्दूलसिंह के राज्यकाल में प्रत्येक नया वाइसराय गजनेर में

वाइसराय के दौरे के शीघ्र बाद राष्ट्र पर एक महान संकट आ गया। ३० जनवरी सन् १९४८ को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को गोली मार दी गई। एकाएक सारा देश असीम दुःख में डूब गया। ज्योंही महाराजा ने यह दुःखद खबर सुनी उन्होंने लार्ड माउन्ट बैटन, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और दूसरों को शोक संवेदना के अनेक तार भेजे। उन्होंने अपने मास्टर आफ दी हाउसहोल्ड लेफ्टिनेंट कर्नल ठाकुर किशनसिंह और विदेश व राजनैतिक सचिव, बीकानेर सरकार, कैप्टेन के० पी० यू० मेनन को तुरन्त तार द्वारा आदेश भेजा कि वे महाराजा साहब की ओर से महात्मा गाँधी के दाह संस्कार में शामिल हों। ये लोग उस समय दिल्ली में थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने राजकीय शोक[1] मनाने का आदेश दिया और ३१ जनवरी सन् १९४८ को ४ बजे स्टेडियम में सामूहिक प्रार्थना करने को कहा। महाराजा ने स्वयं प्रार्थना का नेतृत्व किया और वे शोक मग्न हो गये। इस अवसर पर महाराजा ने सफेद साफा बाँधा जो कि शोक का प्रतीक है और राजा इसे तभी धारण करता है जब उसके अपने ही परिवार के किसी बड़े की मृत्यु हो जाती है। अन्य किसी के लिये शासक सफेद साफा नहीं बाँधता। परम्परा से इस प्रकार हटना यह सिद्ध करता है कि महाराजा सादूलसिंह और बीकानेर के लोग गाँधीजी के प्रति कितनी अधिक श्रद्धा रखते थे।

भारतीय रियासतों के भारतीय संघ में शामिल होने के प्रथम सोपान को पार कर भारत सरकार ने अब रियासतों के पूर्ण एकीकरण के कार्यक्रम को आरम्भ किया। उनका तर्क था कि रियासतों के लोग भी प्रान्तों के लोगों

बड़ी बुटबड़ों का शिकार करने के लिये बीकानेर आया। गजनेर बीकानेर से केवल २१ मील दूर है। यहाँ नखलिस्तान की तरह एक झील और सुन्दर महल तथा बड़ी शिकारगाह है। एक बार मजाक में यह बात कही गई कि "बीकानेर ने बड़ी बुटबड़ों की कृपा से" इतनी उन्नति कर ली। प्रिंस ऑफ वेल्स, जो बाद में सम्राट अष्टम एडवर्ड बने, सम्राट जार्ज पंचम और राजकुमार आर्थर सभी महाराजा गंगासिंह के मेहमान बनकर बीकानेर आये और बड़ी बुटबड़ों का शिकार किया। इन प्रसिद्ध शिकारों में भाग लेने के लिये प्रति वर्ष २०० महत्वपूर्ण विदेशी और भारतीय मेहमान आना कोई बड़ी बात न थी। इन मूल्यवान सम्पर्कों का लाभ उठाकर महाराजा गंगासिंह बीकानेर रियासत और यहाँ के लोगों का हित साधन करते थे।

१. बीकानेर राजपत्र ता० ३१-१-१९४८।

वे बराबर की स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं। यह कहा गया कि जनता की यह इच्छा रियासतों में चल रहे विभिन्न राजनैतिक आन्दोलनों से स्पष्ट होती है। दूसरा तर्क यह दिया गया कि छोटी रियासतों के शासक इच्छित प्रशासकीय सुधार नहीं कर सकते क्योंकि आवश्यक कार्य करने के लिये उनके यहाँ साधनों का अभाव है। इसलिये यह स्थिति की माँग है कि या तो वे पास के प्रान्तों में मिल कर अपने आपको एक बड़ी इकाई में गठित करलें या आपस में मिल कर एक केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्र का रूप धारण करलें।[1] समय बीतने के साथ साथ इस पद्धति का विस्तार करके बड़ी रियासतों को भी लपेटे में लिया गया और रियासतों के संघ बना कर उनकी नई पूर्ण इकाइयां बनाई गईं।[2] इन संघों की एक खास विशेषता यह थी कि ऐसे राज्य का वैधानिक प्रधान राजप्रमुख बनाया गया जो बाद में बहुत सी जगह आजीवन था। आजीवन राजप्रमुख का उत्तराधिकारी राजाओं की परिषद् में से ही चुना जाता था। लेकिन सौभाग्य से यह गैर जनतन्त्रीय पद अधिक समय तक नहीं रहा।

यह बात उस आश्वासन के विरुद्ध थी जो रियासतों के संघ में शामिल होने के समय दिया गया था। समय का प्रवाह बदल चुका था। एकीकरण का कार्य स्पष्ट रूप से राजाओं की इच्छा से आरम्भ किया गया। लेकिन यह सहमति परिस्थिति वश थी जिसे वे इन्कार नहीं कर सकते थे। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचार उद्धृत करना रोचक होगा। एक बार उन्होंने कहा कि जब स्वराज्य की प्राप्ति होगी तो पारस्परिक सहायता और सहयोग का सम्बन्ध होगा और विनाशकारी संघर्ष अतीत की वस्तु बन जायगा। स्वराज्य आने पर ब्रिटिश भारत

---

1. भारतीय रियासतों के एकीकरण के तुरन्त बाद रियासतों के संघ 'ख' भाग राज्य बन गये। राजस्थान कुछ वर्षों तक एक राजप्रमुख के शासन में 'ख' भाग राज्य रहा। बाद में राजप्रमुख का स्थान राज्यपाल ने ले लिया। राजस्थान व कुछ अन्य संघों को 'क' भाग राज्य के समान बना दिया गया। कुछ 'ग' भाग राज्य भी थे जैसे त्रिपुरा, अजमेर और हिमाचल प्रदेश। यह 'ग' भाग राज्य केन्द्र द्वारा शासित थे।
2. भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में श्वेत पत्र, पृ० १७५–७७। ता० १६-१२-१६४७ का सरदार पटेल का कथन; पृ० ३८–३६ भी देखें।

भारतीय रियासतों को मिटाना नहीं चाहेगा बल्कि उनका सहायक होगा।"[1]

आरम्भ में भारत सरकार ने यह घोषणा की थी कि १८ रियासतें ऐसी हैं कि वे भारतीय संघ की पूर्ण इकाई की शर्तों को पूरी करती हैं। विधान निर्मात्री सभा के समक्ष रखे गये संविधान के मसौदे[2] के सम्बन्धित भाग में इन १८ रियासतों के नाम भी दिये गये थे। लेकिन ज्यों २ एकीकरण और रियासतों को मिला कर एक करने का काम आगे बढा तो इन रियासतों ने अपना अपना स्वरूप खो दिया। संविधान स्वीकार होने से काफी पूर्व ही ऐसा हो चुका था। बीकानेर रियासत इन १८ पूर्ण राज्यों में से एक थी।

सन् १९४८ के वर्ष में महाराजा सादूलसिंह को दिल्ली अनेक बार जाना पड़ा। वे लगभग प्रतिमास दिल्ली जाते थे और ऐसे अवसरों पर लेखक भी उनके साथ गया। कुछ यात्रायें तो वाइसराय के बुलाने पर की गईं। कुछ अवसरों पर तो महाराजा को लाने के लिये वाइसराय ने अपना वायुयान भी भेजा। एक बार की बात तो लेखक को अच्छी तरह याद है। मई सन् १९४८ में महाराजा सादूलसिंह के साथ जाने वाला दल काफी बड़ा था। अतः दो वायुयानों का उपयोग करना पड़ा। दूसरा मौका जून सन् १९४८ में आया। इस बार फरीदकोट के शासक के विरुद्ध आरोपों की जाँच के सम्बन्ध में ग्वालियर, बीकानेर, जयपुर और पटियाला के राजाओं को दिल्ली बुलाया गया था। लेखक को अच्छी तरह से याद है कि इस बैठक में बाद में गवर्नर जनरल बनने वाले चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य भी उपस्थित थे। बैठकों में महाराजा सादूलसिंह ने यह बात कही कि जब तक फरीदकोट के शासक को गद्दी से न हटाया जाय तब तक न तो गवर्नर जनरल और न कोई दूसरा व्यक्ति ही उसे गिरफ्तार कर सकता है।

१४ दिसम्बर सन् १९४७ और बाद की तिथियों में छत्तीसगढ़ और उड़ीसा की रियासतों ने समझौतों पर दस्तखत करके भारतीय संघ को अपने शासन के पूर्ण अधिकार सौंप दिये। इससे एकीकरण का काम आरम्भ हुआ। १ जनवरी सन् १९४८ को इन रियासतों का शासन मध्यप्रदेश और उड़ीसा की सरकारों को सौंप दिया गया।[3] रियासती

---

१. एम. के गाँधी, दी इण्डियन स्टेट्स प्रोबलम्, पृ० ९–१० ।
२. कँवर जसवन्तसिंह दाउदसर का हलफनामा ।
३. भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में श्वेत पत्र, पृ० ४०–४१ ।

हिन्दुस्तान की एकीकरण की नीति की जब अखबारों में कटु आलोचना हुई तो सरदार पटेल ने वी० पी० मेनन को गांधीजी और पंडित नेहरू के पास भेजा ताकि उन्हें इस कारवाई के औचित्य में विश्वास करा दिया जाय। श्री मेनन के अनुसार गांधीजी को इस काम से पूरी तरह संतोष था।[1] भारत सरकार की इस कारवाई से राजाओं के मन में भय उत्पन्न हो गया। ७ जनवरी सन् १९४८ को जब एक सम्मेलन में कुछ राजा लार्ड माउन्टबेटन से मिले तो उन्होंने यह सवाल उठाया। इस सम्मेलन में महाराजा सादूलसिंह भी उपस्थित थे। सम्मेलन में वी० पी० मेनन ने कहा कि एकीकरण का सिद्धांत उन रियासतों पर लागू नहीं किया जायेगा जिनके विधान निर्मात्री सभा में अलग प्रतिनिधि हैं।[2] लेकिन बाद में जो हुआ उसने इस कथन को मिथ्या बना दिया।

भारतीय रियासतें तीन स्पष्ट श्रेणियों वाली थीं। कुछ रियासतें प्राचीन काल से स्थापित थीं। ये भारत में मुस्लिम अथवा अंग्रेजी राज्य से भी पहले थीं। दूसरी श्रेणी मुख्यरूप से मुस्लिम राज वंशों की रियासतों की थी और जिनका निर्माण विदेशी शासकों के सरदारों या क्षत्रपों द्वारा किया गया था। तीसरी श्रेणी बहुत बाद में बनी रियासतों की थी। इन्हें अंग्रेजों ने अपनी सत्ता दृढ़ करने के लिये अन्तिम काल में मान्यता दी थी। बीकानेर प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत थी।

राजपूताना की अधिकांश रियासतें प्राचीनकाल से स्थापित थीं। ब्रिटिश सम्राट के साथ इनका पारस्परिक मेल और सुरक्षात्मक सन्धि का समझौता था। यह बात ध्यान देने की है कि समस्त भारत में केवल ४० ही ऐसी रियासतें थीं जिन्होंने ब्रिटिश सम्राट के साथ इस प्रकार का समझौता किया था। अतः यह स्वाभाविक था कि नई सरकार की इस परिवर्तित नीति से सारी रियासतों के एकीकरण और संघ बनाने के कार्य को गति देने की नीति से राजाओं को गहरा धक्का पहुँचा। राजपूताना भी इससे बच नहीं सका क्योंकि यह काम तेजी से बढ़ रहा था। इसका एकीकरण सात सोपानों में पूरा हुआ।

---

१. वी० पी० मेनन, दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स, पृ० १९३।

२. वही, पृ० १९४।

प्रथम संयुक्त राजस्थान राज्य[1] का जिसमें दक्षिण पूर्व की नौ[2] छोटी रियासतें थीं, २५ मार्च सन् १९४८ को उद्घाटन हुआ। कोटा के महाराव भीमसिंह[3] इसके राजप्रमुख बने और कोटा इस संघ की राजधानी बनाई गई। थोड़े समय बाद मेवाड़ (उदयपुर) के महाराणा भूपालसिंह ने भी राजस्थान संघ में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। मेवाड़ (उदयपुर) राजपूताना की सबसे प्राचीन और बड़ी रियासतों में से एक थी और एक पूर्ण इकाई थी। दूसरे राजस्थान संघ का उद्घाटन १८ अप्रैल सन् १९४८ को हुआ। मेवाड़ के महाराणा[4] इसके आजीवन राजप्रमुख बने और कोटा के महाराव वरिष्ठ उप-राजप्रमुख बनाये गये। तब उदयपुर नये संघ की राजधानी बना।

अलवर, भरतपुर, धोलपुर और करोली इन चार रियासतों को मिलाकर मत्स्य नाम से एक नया संघ बनाया गया। इसका उद्घाटन १८ मार्च सन् १९४८ को हुआ। धोलपुर के महाराणा मत्स्य संघ के राजप्रमुख हुये और भरतपुर राजधानी बनाई गई। १५ मई सन् १९४९ को मत्स्य संघ को बृहद् राजस्थान में मिला दिया गया।

जेसलमेर की प्राचीन रियासत के साथ जयपुर, जोधपुर और बीकानेर तीनों की प्राचीन, बड़ी और अलग रहने लायक रियासतें अन्त तक अलग रहीं।[5] अतः रियासती मंत्रालय ने शीघ्र ही बातचीत आरम्भ की ताकि

---

१. भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में श्वेत पत्र, पृ० ५३।

२. बाँसवाड़ा, बूंदी, डूँगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा और टौंक।

३. कोटा के महाराव भीमसिंह का विवाह लेखक की भुआ और महाराजा गंगासिंह की पुत्री के साथ हुआ है।

४. लेखक की बहिन का विवाह उदयपुर के वर्तमान महाराणा भगवतसिंह जी के साथ हुआ है। महाराणा भूपालसिंह का स्वर्गवास होने पर ये सन् १९५५ में मेवाड़ की गद्दी पर विराजे।

५. वी० पी० मेनन, दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स पृ० २५० ।

"जयपुर जोधपुर और बीकानेर के शासकों की यह बड़ी इच्छा थी कि वे अपनी रियासतों को अलग रखें। लेकिन उनकी रियासतों से बड़ी रियासतें या तो प्रान्तों के साथ मिल गई थीं या दूसरों के साथ मिलाकर संघ बना दी गई थी। अतः इन रियासतों को अलग छोड़ना कठिन था।"

इन और दूसरी इकाई वाली रियासतों को मिलाकर एक वृहद् राजस्थान संघ का निर्माण किया जाय। वार्तचीत चालू रही। दिल्ली, बीकानेर, जयपुर और जोधपुर में रियासती मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री वी० पी० मेनन और इन रियासतों के शासकों के बीच अलग अलग और साथ साथ कई बैठकें हुईं। इनमें से अधिकांश बैठकों में लेखक उपस्थित था। यह बात शीघ्र स्पष्ट हो गई कि इन रियासतों का विलयन अवश्यम्भावी है और इस आशा से कि यह रियासती जनता तथा देश के व्यापक हित में होगा ये चारों शासक वृहद् राजस्थान संघ बनाने में सहमत हो गये। १४ जनवरी सन् १६४६ को उदयपुर में एक आम सभा में सरदार पटेल ने घोषणा की कि जयपुर जोधपुर और बीकानेर के शासक सिद्धान्ततः एकीकरण के लिये सहमत हो गये हैं।[1] ३० मार्च सन् १६४६ को सरदार पटेल द्वारा वृहद् राजस्थान संघ का उद्घाटन किया गया। उदयपुर के महाराणा इसके आजीवन महा राजप्रमुख बने। यह पद, जिसका कि कोई कार्य नहीं था, केवल महाराणा के लिये ही बनाया गया था। जयपुर नरेश इसके आजीवन राजप्रमुख[2] बने। कोटा के महाराव भीमसिंह वरिष्ठ उपराजप्रमुख तथा जोधपुर और बूंदी के शासक अन्य उपराजप्रमुख बनाये गये। पर दोनों ही कनिष्ठ उपराजप्रमुखों ने अपने पद की शपथ ग्रहण नहीं की। जयपुर संयुक्त राजस्थान की राजधानी बनी। यह एक विचित्र बात है कि वृहद् राजस्थान संघ के निर्माण का आरम्भ दो गम्भीर वायुयान दुर्घटनाओं से हुआ। इसमें राजस्थान बनाने वाले मुख्य व्यक्ति ग्रस्त हुये। बीकानेर, जयपुर, जोधपुर और जैसलमेर के वृहद् राजस्थान

---

1. वी० पी० मेनन, दी स्टोरी ऑफ दी इन्टीग्रेशन ऑफ दी इण्डियन स्टेट्स, पृ० २५१।
2. राजप्रमुख राजस्थान की सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति भी था। राजप्रमुख का पद समाप्त हो गया और उसके साथ ही राजस्थान में राजाओं की परिषद् भी खत्म हो गई। जब तक राजस्थान 'क' भाग राज्य नहीं बना और राजप्रमुख का पद मिटाया नहीं गया तब तक राजप्रमुख प्रति वर्ष राजस्थान के राजाओं की बैठक बुलाता था। परिषद् के शासकों की कानूनी स्थिति बहुत सन्देह जनक है क्योंकि समझौतों में इस प्रकार के संघ बनाने की बात तो लिखी है लेकिन बाद में इस परिषद् को हटाया नहीं गया है। राजप्रमुख के पद की समाप्ति के बाद न तो परिषद् की बैठक बुलाई गई है और न इसका अध्यक्ष ही चुना गया है।

में मिलने से कुछ ही सप्ताह पूर्व जयपुर के महाराजा एक दुर्घटना में मरते मरते बचे। उनका वायुयान नष्ट हो गया। दूसरी घटना में वायुसेना के एक हवाई जहाज को जिसमें सरदार पटेल और जोधपुर के महाराजा सवार थे, विवश होकर एक नदी की तलहटी में उतरना पड़ा। ये लोग वृहद् राजस्थान संघ का उद्घाटन करने जा रहे थे और बाल बाल बचे। ७ अप्रैल सन् १९४९ को बीकानेर रियासत का प्रशासन राजस्थान की नई सरकार को सौंप दिया गया।[1] इस अवसर पर नये बने संयुक्त राजस्थान को बीकानेर रियासत द्वारा ४ करोड़ ८७ लाख रु०[2] की नकद पोतेबाकी सम्भलाई गई। यह रकम राजस्थान की सभी रियासतों द्वारा दी गई रकमों से सर्वाधिक थी। इसके अतिरिक्त बीकानेर स्टेट रेलवे की सारी सम्पति भी सौंप दी गई। केन्द्रीय सरकार को सौंपी गई लगभग एक करोड़ की इस सम्पति में रेलवे लाइन, रेल के डिब्बे, इन्जन, आदि थे।

एकीकरण के समझौते में यह कहा गया कि सत्ता शासकों के पास से राजप्रमुख के पास हस्तान्तरित हो जायेगी, राजा लोग अपनी निजी सम्पति रख सकेंगे, उनकी गद्दी का उत्तराधिकार बना रहेगा, उन्हें उनके अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त रहेंगे। तथा उन्हें व उनके उत्तराधिकारियों को एक निश्चित प्रिवीपर्स मिलती रहेगी।[3] राजाओं की प्रिवीपर्स निश्चित

---

१. सन १९४८ की बीकानेर के प्रधानमन्त्री के कार्यालय की फाइल सं० ४९ (राजस्थान राज्य पुरालेख विभाग बीकानेर में), महाराजा द्वारा बम्बई से राजप्रमुख, जयपुर को ता० ७-४-१९४९ का तार।
"समझौते की धारा ६ के अनुसार संयुक्त राजस्थान का पुनर्गठन करने के लिये मैं ७ अप्रैल १९४९ से बीकानेर रियासत का प्रशासन श्रीमान को सौंपता हूं।"

२. कुछ मुख्य रियासतों द्वारा दी गई नकद पोते बाकी इस प्रकार है—

(१)	बीकानेर	–	४ करोड़ ८७ लाख
(२)	जोधपुर	–	४ करोड़ ७५ लाख
(३)	जयपुर	–	४ करोड़ ५८ लाख
(४)	कोटा	–	२ करोड़ ३४ लाख
(५)	उदयपुर	–	आँकड़े उपलब्ध नहीं

३. लेखक के राज्यारोहण के समय जो उत्तराधिकारपत्र और प्रिवी पर्स निर्णीत करने का पत्र प्राप्त हुआ वह रोचक हो सकता है। परिशिष्ट ३८ और ३९।

करने और उनकी निजी सम्पति को रियासत की सम्पति से स्पष्टतः अलग करने के लिये आवश्यक कदम उठाये गये। निजी सम्पति का निपटारा करने के लिये यह सिद्धान्त अपनाया गया कि राजा द्वारा तैयार की गई निजी सम्पति की सूची पर वह, राजप्रमुख (संघ बनाने वाली रियासतों के लिये) अथवा प्रान्तीय सरकार का एक प्रतिनिधि (प्रान्तों में मिलने वाली रियासतों के लिये) और रियासती मंत्रालय का एक प्रतिनिधि मिलकर विचार करें। सार्वजनिक हितों का पूर्ण ध्यान रखते हुये मेल की भावना से समझौता किया जाए।[1] रियासती मंत्रालय ने महाराजा सादूलसिंह को ता० १७-२-१९४९ को जो पत्र भेजा उसमें निजी सम्पति की वह स्वीकृत सूची है जो महाराजा के अधिकार में रहेगी।

राजाओं की प्रिवीपर्स, जो कि उनके द्वारा शासनाधिकार छोड़ने के एवज में दी गई थी[2], एक सिद्धान्त पर तै की गई थी यानि शासक की औसत वार्षिक आय के प्रथम एक लाख का पन्द्रह प्रतिशत, बाद के चार लाख का दस प्रतिशत और पाँच लाख से ऊपर साढ़े सात प्रतिशत लेकिन यह राशि दस लाख रु० वार्षिक से अधिक नहीं हो सकती थी।[3] कुछ

---

१. भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में श्वेत पत्र, पृ० ६३-६४।

२. वही, पृ० १२३-२४।

३. जिन राजाओं का प्रिवीपर्स एकीकरण के समय दस लाख और उससे ऊपर निश्चित किया गया वह इस प्रकार है—
हैदराबाद ५० लाख, बड़ौदा २६ लाख ५० हजार, मैसूर २६ लाख, ग्वालियर २५ लाख, मेवाड़ २० लाख, त्रावनकोर १८ लाख, जयपुर १८ लाख, जोधपुर १७ लाख ५० हजार, बीकानेर १७ लाख, पटियाला १७ लाख, इन्दौर १५ लाख, भावनगर १० लाख, भोपाल ११ लाख, कोल्हापुर १० लाख, नावानगर १० लाख, रीवां १० लाख।

राजस्थान के राजाओं का प्रिवीपर्स इस प्रकार निश्चित किया गया—
अलवर ५ लाख २० हजार; भरतपुर ५ लाख २ हजार; धौलपुर १ लाख ३६ हजार; बूंदी २ लाख ८१ हजार; डूंगरपुर १ लाख ६६ हजार; झालावाड़ १ लाख २६ हजार; किशनगढ़ १ लाख २६ हजार; कोटा ७ लाख; मेवाड़ २० लाख; प्रतापगढ़ १ लाख २ हजार; शाहपुरा ९० हजार; टोंक २ लाख ७८ हजार; जयपुर १८ लाख; जोधपुर १७ लाख ५० हजार;

बड़ी और अलग रहने वाली रियासतें इसका अपवाद थीं। उनका प्रिवीपर्स १० लाख से अधिक निश्चित किया गया और वह भी समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले शासक के जीवन काल तक ही था। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी को प्रिवीपर्स कम करके केवल १० लाख दिया जाना था।[1] चूंकि बीकानेर एक बड़ी और पूर्ण इकाई वाली रियासत थी अतः यहां के शासक का प्रिवीपर्स १७ लाख और उसके उत्तराधिकारी का १० लाख निश्चित किया गया।[2]

इस प्रकार बीकानेर के ५०० वर्ष के इतिहास का पटाक्षेप हो गया। इस अवधि में बीकानेर के राजघराने और केन्द्रीय सत्ताओं में गहरे प्रेमपूर्ण सम्बन्ध रहे। यहाँ के अन्तिम दो शासकों ने हमारे देश के एकीकरण

जैसलमेर २ लाख ८० हजार; बीकानेर १७ लाख; लावा १२ हजार ५००।

मेवाड़ के महाराणा को २० लाख रु० प्रिवीपर्स देना निश्चित हुआ। इसमें से ५ लाख दान धर्म के लिये, ५ लाख राजप्रमुख पद के लिये और १० लाख रु० निजी प्रिवीपर्स के रूप में थे।

१. भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में श्वेत पत्र, पृ० १२१।

२. एकीकरण के बाद बीकानेर पहली बड़ी रियासत थी जहाँ के शासक महाराजा सादूलसिंह का ता० २५-६-१९५० को स्वर्गवास हो गया। भारत के राष्ट्रपति ने बीकानेर रियासत की गद्दी के उत्तराधिकार का जो मान्यता पत्र भेजा वह पढ़ना मनोरंजक होगा।

महाराजा सादूलसिंह को मिलने वाले प्रिवीपर्स की रकम समझौते की शर्तों के अनुसार घटाकर १० लाख कर दी गई। यह पहला उदाहरण था जब एकीकरण के बाद १० लाख से अधिक प्रिवीपर्स पाने वाले एक शासक का स्वर्गवास हुआ था और प्रिवीपर्स की अधिक रकम कम करके १० लाख रु० कर दी गई थी पर श्वेतपत्र में लिखा है कि जिन राजाओं को १० लाख से अधिक प्रिवीपर्स मिल रहा है उनका प्रिवीपर्स बाद में निश्चित किया जायेगा। बहुत से शासक जिनका स्वर्गवास होगया उनके उदाहरण और परम्परा से यह बात विदित होती है कि जिन राजाओं को १० लाख से अधिक प्रिवीपर्स मिल रहा था उनके स्वर्गवास के बाद उनके उत्तराधिकारियों को १० लाख मिलने लगा। यह नियम सर्वत्र समान रूप से लागू हुआ। पर हैदराबाद के निजाम के मामले में अपवाद रहा। उसके पोते का प्रिवीपर्स सन् १९६४ में २० लाख रु० निश्चित किया गया है। परिशिष्ट ३८ और ३९।

और मित्र राष्ट्रों के मध्य में भारत को उसका पूर्ण गौरवशाली रूप प्राप्त कराने में महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया। महाराजा गंगासिंह ने यह कार्य उस समय किया जब कोई दूसरा राजा ऐसा नहीं कर सकता था। जहां भी और जब भी अवसर मिला वे इसके लिये लड़े। इस शानदार कार्य को महाराजा सादूलसिंह ने चालू रखा। इस उद्देश्य को शीघ्र प्राप्त करने में सहायक प्रत्येक कार्य का उन्होंने खुलकर समर्थन किया। उन्होंने अपने प्रभाव और कार्यों से अधिकतर मित्र राजाओं को प्रेरित और विवश किया कि वे बदलते हुये समय के अनुसार बदलें और भारत की आजादी के लिये लड़ने वालों को अपना सहयोग दें। इस प्रकार जब देश के समक्ष एक ओर विभाजन का खतरा तथा दूसरी ओर उसके अनेक टुकड़े होने की सम्भावना थी तो उन्होंने उसकी एकता बनाये रखने में सहायता की।[1] अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उनके देशभक्ति पूर्ण भावों और कार्यों की पूर्ण प्रशंसा न केवल भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद और सरदार पटेल जैसे नेताओं ने की बल्कि स्वतन्त्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल लार्ड माउन्ट बैटन ने भी की। आमतौर से अखबारों में भी इन कार्यों को सराहा गया। बीकानेर के राजघराने के लिये यह बड़े गौरव की बात है कि जब भारत के राजनैतिक मंच पर भारत की आजादी का नाटक खेला जा रहा था तो बीकानेर के शासकों ने अद्वितीय देशभक्ति दिखाई।

बीकानेर राज्य की प्रभुसत्ता मिटने पर यहां की सेना अनिवार्य रूप से भारतीय संघ की सेना के साथ मिला दी गई क्योंकि राजस्थान की रियासतों की सेना अस्थायी तौर से ही एक साथ की गई थी। बीकानेर को हमेशा अपनी रियासत की सेनाओं का बड़ा गर्व रहा है। रियासतों की सेना और भारतीय सेना दोनों के ही कुछ शानदार लड़ाके बीकानेर रियासत और राजपूताना के निवासी रहे हैं। राजपूत, जाट, सिक्ख और क्यामखानी जैसी प्रसिद्ध लड़ाकू जातियों के काफी सैनिक बीकानेर रियासत के हैं।

प्रथम श्रेणी की लड़ाकू सेना हुये बिना बीकानेर रियासत का अस्तित्व ही सम्भव न होता। सन् १८१८ की संधि के बाद अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप बीकानेर रियासत की सेनाओं का उत्तरोत्तर आधुनिकरण आरम्भ हुआ

---

१. बीकानेर में महाराजा सादूलसिंह की अश्वारूढ़ मूर्ति का अनावरण करते हुये ता० २-६-१९५४ को डा० राजेन्द्र प्रसाद का भाषण।

बीकनेर में गड़बड़ी को दबाने के लिये अंग्रेजी सेना ने जो कई बार कारवाई की उसकी बीकानेर के सैनिक प्रशासन पर अमिट छाप पड़ी। अंग्रेजों द्वारा रियासतों पर नियंत्रण करने का अवश्यमभावी फल था कि रियासतों की सेना पर भी उनका अधिक नियंत्रण हो।। अनेक अवसरों पर बीकानेर रियासत की सेना अंग्रेजी सेना के साथ कन्धे से कन्धा लगाकर लड़ी जैसे कि सन् १८५७ का विद्रोह, चीन का युद्ध, बोर-युद्ध, सोमाली लैंड अभियान, प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध। इससे रियासतों की सेनाओं में और भी सुधार करने और उन्हें आधुनिक बनाने में सहायता मिली। महाराजा गंगासिंह के समय बीकानेर की सेना रियासतों की सेनाओं में सबसे शानदार लड़ाकू सेनाओं में से एक थी। महाराजा गंगासिंह स्वयं भारतीय सेना में एक पूर्ण आनरेरी जनरल थे। सेनापति के रूप में बहुधा उन्होंने गर्व के साथ अपनी रियासत की सेनाओं का परेड में नेतृत्व किया।

बीकानेर की प्रसिद्ध ऊँट सेना— गंगारिसाला[1]—सम्भवतः जैसलमेर रिसाले को छोड़कर जो गंगारिसाले के काफी बाद में बना, अपनी तरह की एक ही सेना थी जो बीकानेर रियासत के बाहर सेवा के लिये चुनी हुई थी। फिर भी हमेशा यही इच्छा रहती थी कि रियासत की दूसरी सेनाओं को हमेशा तैयार रखा जावे ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे रिजर्व सेना का काम दें।

महाराजा ने हमेशा इस बात पर बहुत जोर दिया कि रियासत की सेनाओं और भारतीय सेना तथा विदेश व राजनैतिक विभाग में सम्बन्ध रहे हमेशा उनकी यही इच्छा रहती थी कि भारत सरकार का सेना विभाग कभी सीधे बीकानेर रियासत की सेनाओं पर नियन्त्रण न रखे। वाइसराय और सम्राट द्वारा भारतीय और ब्रिटिश सेना के व्यक्तियों को जैसे सजा दी जाती थी और पुष्ट की जाती थी उसी प्रकार रियासतों की सेनाओं के बारे

---

१. महाराजा गंगासिंह की आज्ञानुसार सन् १८८६ में गंगा रिसाले का पुनर्गठन किया गया और भारत सरकार द्वारा इसे शाही सेवा की सेना माना गया। उस समय इसकी संख्या ५०० थी। इसने १६०२–१६०४ में सोमाली लैंड में, १६१४–१६ के प्रथम विश्वयुद्ध में और १६४० से ४२ तक द्वितीय विश्वयुद्ध में सक्रिय भाग लिया। सन् १६५१ में इसके साथ जैसलमेर रिसाला मिलाकर इसे १३ वीं ग्रेनेडियर्स में बदल दिया गया। अब यह १३ वीं ग्रेनेडियर्स — गंगा जैसलमेर — नाम से जाना जाता है और गणतन्त्र दिवस की सभी परेडों में गर्व के साथ भाग लेता है।

है। महाराजा साहब का कहना था कि इस प्रकार के दण्ड देना उन रियासतों के शासकों का अधिकार है।

महाराजा गंगासिंह हमेशा इस बात पर जोर देते थे कि सम्राट की युद्धकाल में सेवा करने के लिये यह आवश्यक है कि बीकानेर रियासत की सेनाओं को आधुनिकतम और अच्छे हथियार दिये जायं। उन्होंने आधुनिक तोपें दिये जाने पर बल दिया जो कि उस समय भारतीयों के नीचे काम करने वाली भारतीय सेना को भी नहीं दी जाती थीं। काश्मीर को छोड़कर केवल बीकानेर रियासत ही ऐसी थी जहाँ रियासत की महत्वपूर्ण स्थिति को ध्यान में रखकर तोपें और तोपखाना रखने की छूट दी गई थी। इसके बाद पटियाला रियासत को तोपें मिलीं। महाराजा गंगासिंह ने यह बात भी कही कि बीकानेर रियासत की सेनाओं और उस दृष्टि से भारतीय रियासतों की सेनाओं पर अपनी स्थानीय सेना के नियम ही लागू किये जायें। इन नियमों में सभी कामों के लिये भारतीय सेवा कानून और सेना कानून की धारायें भी शामिल की जायें। लेकिन अंग्रेज सरकार ने अज्ञात कारणों से रियासतों के कारखानों में हथियारों की मरम्मत की इजाजत कभी नहीं दी अन्यथा आवश्यकता पड़ने पर इससे रियासतों की सेनाओं के लिये हथियार बनाने में भी मदद मिलती।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद एक ओर सेना के प्रधान कार्यालय के अफसरों तथा दूसरी ओर राजाओं द्वारा यह विचार किया गया कि यदि भारतीय रियासतों की सेनाओं का अच्छी तरह से गठन होता तो युद्ध के मैदान में वे अधिक सफलता से योग देतीं और अपना प्रभाव प्रदर्शित करतीं। राजा लोग निश्चय ही सेना रखने में स्वतन्त्र थे पर वे उतनी ही सेना रख सकते थे जितनी से उनकी आर्थिक स्थिति पर कोई गम्भीर प्रभाव न पड़ता। सेना मुख्य रूप से सेवा, आन्तरिक सुरक्षा और रिजर्व रखने के लिये गठित की जा सकती थी। राजाओं को यह छूट नहीं थी कि बिना सेना के प्रधान कार्यालय को सूचित किये वे अपनी सेना को भंग कर दें या उसकी संख्या बढ़ा दें। इसके लिये तर्क दिया गया कि आन्तरिक सुरक्षा की दृष्टि से, एक तरह से भारतीय सेना की शक्ति में गड़बड़ी होती। प्रशिक्षण और हथियार देने जैसे सभी मामलों में मुख्य सैनिक सलाहकार मिलिटरी विंग और राजनैतिक विभाग के द्वारा भारतीय रियासतों की सेनाओं और भारतीय सेना के बीच सम्बन्ध जोड़ने वाले अफसर का काम करता था।

सन् १६४६ में जब बीकानेर रियासत राजस्थान में मिली तो बीकानेर रियासत के सैनिकों की कुल संख्या ३,५०० थी। यह बात सभी सम्बन्धित लोगों के लिये खेदजनक थी कि राजपूताना की रियासतों के एकीकरण के तुरन्त बाद विभिन्न रियासतों की सेनाओं का भी एकीकरण हुआ। रियासती सेनाओं के शानदार लड़ाकों के साथ अशोभनीय व्यवहार हुआ। आरम्भ में राजस्थान का राजप्रमुख रियासती सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति बनाया गया। राजप्रमुख के बाद दूसरे वरिष्ठतम अधिकारी बीकानेर रियासत की सेनाओं के प्रधान सेनापति जनरल जयदेवसिंह थे। इसके बाद जब सन् १६५१ में राजस्थान की सेनाओं को भारतीय सेना में मिलाकर एक करने का निर्णय किया गया तो इन सेनाओं की संख्या कम कर दी गई और सेना के काफी लोगों को शारीरिक योग्यता के बहाने नौकरी से छुट्टी दे दी गई।[1] भारत पर अभी हाल में चीन ने जो आक्रमण किया उसको ध्यान में रखते हुये यदि हम पीछे दृष्टिपात करें तो यह बात दृढ़ता से कही जा सकती है कि सीमाओं की रक्षा के लिये उक्त शानदार लड़ाकू सैनिकों ने भारत की काफी सहायता की होती।

किसी कारण भारतीय सेना ने निर्णय किया कि वरिष्ठता निश्चित करने या भारतीय सेना में पदोन्नति के लिये रियासती सेना के अफसरों की नौकरी की अवधि घटा दी जाय। यह बात उन छोटी रियासतों के लिये तो तर्कपूर्ण हो सकती थी जहाँ की सेनायें भारतीय सेना के बराबर नहीं रखी गईं। लेकिन यह नियम बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, हैदराबाद, पटियाला, कोटा और उदयपुर जैसी रियासतों के लिये दुर्भाग्यपूर्ण था, क्योंकि इन रियासतों में प्रथम श्रेणी की सेना थी। इस प्रकार भारतीय सेना में जो अफसर लिये गये उनमें से बहुत सों की बाद में पदावनति कर दी गई और उन्हें आर्थिक हानि उठानी पड़ी। इस बात से एकीकरण हुई रियासतों, और इस नियम से बुरी तरह से प्रभावित सेना के लोगों, दोनों, के ही हृदय को कष्ट हुआ। राजस्थान की सेनाओं के भारतीय सेना के साथ मिलने से राजप्रमुख भी राजस्थान की सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति न रहे।

भारत के एकीकरण के नाम पर भारतीय रियासतों के अलग

---

१. ट्रेकोमा, आँखों में दाने पड़ जाना, राजस्थान में एक आम नेत्र रोग है। यह सेनाके लोगों के लिये अयोग्यता का एक कारण माना गया और इसके आधार पर उन्हें नौकरी से छुट्टी दे दी गई।

शासन की नीतियों के इस दूसरे दौर को ठीक तरह से समझने के लिये यह आवश्यक है कि कुछ समय पहले की घटनाओं के संदर्भ में उन लोगों की मनःस्थिति [illegible] जो उस समय रियासती विभाग में सर्वेसर्वा थे । जब सरदार पटेल को भारतीय रियासतों के राजाओं के भारतीय संघ में सम्मिलित होने के [illegible] समझौते के बारे में शंका हुई तो उन्होंने इस बारे में अपना सन्देह श्री वी० पी० मेनन को बताया । श्री वी० पी० मेनन ने तुरन्त कहा कि राजा लोग सम्मिलित होने से इन्कार नहीं कर सकते । मेनन का कहना था कि सर्वोच्च सत्ता की समाप्ति भारत के लिये छिपे रूप में एक वरदान है क्योंकि इसके साथ ही राजाओं के बहुत से विशेषाधिकार भी समाप्त होगये हैं जो कि उन्हें विभिन्न सन्धियों और समझौतों के अन्तर्गत प्राप्त थे । यदि सर्वोच्च सत्ता राजाओं को हस्तान्तरित की जाय तो सन्धियों में विशेषाधिकारों के साथ कई ऐसे कर्तव्य भी हैं जिनका पालन राजाओं को करना होगा । उसने सरदार पटेल को यह भी कहा कि रियासतों में राजनैतिक या साम्प्रदायिक आन्दोलन होने पर, लोगों द्वारा विद्रोह कर आजादी मांगने पर, या भारत में मिलने की मांग करने पर या जन आन्दोलन आरम्भ करके शासन और राजाओं के जीवन को खतरा पैदा होने पर राजा लोग भारत सरकार को छोड़ बचाव के लिये और किसके पास जायेंगे । उसने कहा कि अब हमारी बारी है कि हम राजाओं से कहें कि वे कैसा व्यवहार करें ।' इस बात को समझने में सरदार पटेल ने विलम्ब नहीं किया । स्पष्ट शब्दों में इसका यह तात्पर्य था कि इच्छित परिणाम प्राप्त करने के लिये इनमें से कोई भी स्थिति उत्पन्न की जा सकती है और इसके उदाहरण भी कम नहीं हैं । जब त्रावनकोर का दीवान वाइसराय को यह सूचित करने आया कि त्रावनकोर का महाराजा अपनी रियासत की स्वतन्त्रता की घोषणा करना चाहता है तो वाइसराय ने उसे वी. पी. मेनन से मिलने के लिये कहा । मेनन ने तुरन्त दीवान को याद दिलाया कि त्रावनकोर में तो साम्यवाद बढ़ रहा है और इन परिस्थितियों में यदि कुछ हुआ तो भारत सरकार मदद नहीं कर सकेगी । घटनाओं ने इस कथन को सत्य सिद्ध कर दिया । रियासत की कांग्रेस समिति ने तुरन्त त्रावनकोर के महाराजा के विरुद्ध प्रदर्शन संगठित किया । दीवान को छुरा भोंक कर उसे गम्भीर रूप से घायल कर दिया गया । त्रावनकोर के महाराजा ने तुरन्त भारत में सम्मिलित होने के समझौते पर हस्ताक्षर कर

---

१. [illegible], पूर्व उद्धृत, पृ० २६६–७० ।

दिये।[1] दूसरा प्रत्यक्ष उदाहरण जोधपुर का है। यह बात जान कर कि जोधपुर का महाराजा श्री जिन्ना से मिल चुका है और पाकिस्तान के साथ मिलने की सम्भावना पर सोच रहा है, वी. पी. मेनन तुरन्त महाराजा से मिलने के लिये दिल्ली में उनके होटल पर गया। वह उन्हें वाइसराय भवन में ले गया। वहां वाइसराय ने उसकी प्रशंसा की और अन्त में वह भारत में मिलने के समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिये सहमत होगया।[2] भोपाल का नवाब और मैसूर का महाराजा अन्त तक समय को देखते रहे पर अन्त में उन्हें भी झुकना पड़ा।

जब रियासतें तीन विषयों—सुरक्षा, विदेशी मामले और संचार—की दृष्टि से भारतीय संघ में सम्मिलित हो गई तो इसके बाद में शीघ्र ही ५०० से अधिक रियासतों के भारत में पूर्ण विलय के दूसरे अंक का पर्दा उठाया गया। इससे लोगों के मन में यह संदेह उत्पन्न हुआ कि स्वतंत्र भारत के निर्माताओं ने राजाओं के प्रति पूर्ण ईमानदारी नहीं दिखाई थी। उन्होंने अपने मन के भाव छिपा कर पहले तो भारतीय संघ में मिलने की ही बातचीत की ताकि थोड़े समय बाद रियासतों का पूर्ण एकीकरण कर दिया जाय। यह बात तो समझ में आती है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लोग जैसा उच्च और अच्छा प्रशासन चाहते थे वैसा बहुत छोटी रियासतें नहीं प्रस्तुत कर सकती थीं अतः छोटी रियासतों को मिलाकर समूह बनाये जायं या उन्हें पास के प्रान्तों या केन्द्रीय शासित प्रदेश में मिलाया जाय। वास्तव में महाराजा सादूलसिंह ने तो बहुत पहले ही रियासतों की बड़ी इकाइयां बनाने का समर्थन किया था ताकि वे अपने आप को प्रशासकीय सुधारों के साथ चला सकें। यह बड़े खेद की बात है कि उनकी बात समय पर नहीं सुनी गई। लेकिन बड़ी और अलग रहने लायक इकाइयों को मिलाने का प्रश्न एक बिल्कुल भिन्न बात थी।

भारतीय संघ में मिलने और एकीकरण दोनों बातों का अन्तर अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। रियासतों के भारतीय संघ में मिलने का तात्पर्य भारत के एक तिहाई और भाग को भारत के झंडे के नीचे लाना था। वह भी ऐसे समय जबकि एक तीसरी शक्ति सम्भव थी और विभाजन की उथल-पुथल

---

१. लियोनार्ड मोसले, पूर्व उद्धृत, पृ० १७४ और ७६।

२. वही, पृ० १७६-८०।

तथा नीति के द्वारा भारतीयों को सत्ता सौंपे जाने के कारण केन्द्र कुछ कमजोर था। इस प्रकार महाराजा शार्दूलसिंह ने भारतीय संघ में मिलने के लिये जो तत्परता दिखाई वह एक महान देशभक्ति का कार्य था। लेकिन एकीकरण का मामला बिल्कुल भिन्न सवाल था क्योंकि इससे देश के अन्दर की सीमा में परिवर्तन होता था और एक राजा एक रियासत के प्रधान से उतर कर आजीवन राजप्रमुख बनता था। वास्तव में इस बात को गाँधीजी, जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल जैसे आजादी के लिये लड़ने वाले सभी नेताओं ने मान लिया था कि यदि जनता स्वीकार करे तो राजाओं को वैधानिक प्रधान रख कर सरकारें काम कर सकती हैं।

प्रसंगवश यहाँ इस का उल्लेख किया जा सकता है कि विभाजन के आवश्यक परिणामों से होने वाली घटनाओं को ध्यान में रख कर जून सन् १९४७ में लोहारू के नवाब ने सम्राट के प्रतिनिधि की सहमति से बीकानेर रियासत के साथ प्रशासकीय प्रबन्ध का समझौता कर लिया था। यह प्रबन्ध विभाजन के कुछ समय बाद तक चालू रहा। विभाजन के तुरन्त बाद देश में जो गड़बड़ी हुई और जिसके फलस्वरूप अल्प संख्यक लोग बहुत बड़ी संख्या में एक देश से दूसरे देश गये, बीकानेर ने लोहारू की रियासत और वहाँ की जनता को पूर्ण संरक्षण प्रदान किया। दिसम्बर १९४७ में जब छोटी रियासतों के विलय का प्रश्न उठा तो लोहारू के नवाब ने यह इच्छा प्रकट की कि लोहारू को बीकानेर रियासत के साथ मिला दिया जावे। जब यह मामला रियासती मंत्रालय को बताया गया तो यह कहा गया कि उन्हें कोई एतराज नहीं है तथा बातचीत चालू रखी जा सकती है। लेकिन जनवरी १९४८ में जब बीकानेर रियासत के प्रधानमन्त्री श्री पन्निकर दिल्ली गये तो वे अपने साथ इन प्रस्तावों के बारे में रियासती मंत्रालय का जो समझौता ले गये वह तुरन्त नहीं माना गया। उन्होंने महाराजा को सलाह दी कि जब वे अगली बार दिल्ली जावें तो इस मामले के बारे में निजी रूप से वहां बात करें। महाराजा ७ फरवरी १९४८ को दिल्ली गये। उन्होंने इस बारे में सरदार पटेल से बात की। सरदार पटेल ने कहा कि मुझे बीकानेर के साथ लोहारू के मिलने पर कोई एतराज नहीं है लेकिन लोहारू के कुछ लोग ऐसा नहीं चाहते अतः यह बात नहीं मानी जा सकती। इस पर महाराजा ने बताया कि प्रस्तावित विलय के विरुद्ध में केवल लोगों का एक छोटा सा भाग है। महाराजा इस बात पर सहमत हो गये कि वे इस बारे में प्रतीक्षा करेंगे और जनता की

राय देखेंगे। दूसरे दिन प्रातः ८ फरवरी सन् १९४८ को महाराजा ने श्री वी० पी० मेनन को सरदार पटेल से हुई अपनी बात चीत से अवगत कराया। श्री मेनन ने महाराजा को विश्वास दिलाया कि उनकी सलाह लिये बिना लोहारू के विलय के सम्बन्ध में कोई कारवाई नहीं की जायेगी।

महाराजा उसी दिन दोपहर के भोजन से पूर्व हवाई जहाज से बीकानेर के लिये रवाना होगये और दोपहर के तीन बजे तक अर्थात् कुछ ही घंटों में लोहारू के नवाब को, जो उस समय दिल्ली में थे, रियासती मंत्रालय के एक वरिष्ठ सचिव श्री सी० सी० देसाई ने हस्ताक्षर के लिये एक मसौदा दिया। इसमें लिखा था कि नवाब अपनी रियासत का प्रशासन केन्द्रीय सरकार को सौंपने के लिये सहमत है। नवाब ११ फरवरी सन् १९४८ को बीकानेर लौटे। उन्होंने महाराजा को सारी स्थिति समझाई। महाराजा ने तुरन्त सरदार पटेल को एक पत्र लिखा। इसमें सारे तथ्य बताये गये और इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया गया कि महाराजा ने भारत सरकार और रियासती मंत्रालय को हमेशा पूर्ण सहयोग दिया लेकिन उनके साथ इस मामले में ऐसा व्यवहार किया गया।[1] लेकिन इसका कोई परिणाम न निकला। सरदार पटेल ने महाराजा को उत्तर में लिखा कि रियासती मंत्रालय के अधिकारियों ने किसी प्रकार का दवाव नहीं डाला है।[2] इसी पत्र में लोहारू के नवाब द्वारा विलय के समझौते पर हस्ताक्षर करने की सूचना भी महाराजा को दी गयी थी। यह दूसरा उदाहरण है जिससे पता चलता है कि विलय का काम किस तरीके से किया गया।

यह बात समझानी बड़ी कठिन है कि जिन बड़ी रियासतों को संविधान के मसौदे[3] में अलग रहने योग्य इकाइयां मान लिया गया था और जो अपना अलग अस्तित्व रख सकती थीं उनके बारे में भारत की नयी सरकार की नीति में एकाएक परिवर्तन क्यों हुआ।

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १२५२/IX सन् १९४७। महाराजा सादूलसिंह का ता० १२–२–१९४८ का सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम पत्र।

२. वही, सरदार वल्लभ भाई पटेल का महाराजा के नाम ता० २०–२–१९४८ का पत्र।

३. कँवर जसवन्तसिंह दाउदसर का हलफ़ नामा। सन् १९४८ से वे संविधान निर्मात्री सभा में बीकानेर के मनोनीत प्रतिनिधि थे।

विशेषकर जब कि भारतीय नेताओं और इन मामलों से सम्बन्धित अन्य अधिकारियों की घोषित नीति इस बारे में बिल्कुल स्पष्ट थी। महात्मा गांधी ने एक बार सर मिर्जा इस्माइल को कहा था कि वे तो राजाओं से केवल यही चाहते हैं कि वे अपनी रियासतों के वैधानिक प्रधान बन जायें और उनकी देख रेख में उनकी जनता अपना शासन चलाये।[1] पं० जवाहरलाल नेहरू ने दिसम्बर सन् १९४६ में विधान निर्मात्री सभा में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि रियासतों में कैसी सरकार बने यह बात वहां के लोग सोचें। अगर वे राजतंत्र को पसंद करते हैं तो उन्हें इस बात की छूट है और मैं इसमें हस्तक्षेप नहीं करूंगा।[2] अप्रैल सन् १९४७ में पं० नेहरू ने पुनः उसी जगह कहा कि सारे भारत के लिये गणतन्त्र होने का निर्णय लिया जा रहा है पर इससे किसी राज्य में राजतन्त्रीय सरकार चालू रहने में बाधा नहीं पड़ेगी यदि यह स्वतन्त्रता के व्यापक रूप में ठीक बैठ जाय।[3] ५ जुलाई सन् १९४७ के अपने कथन में सरदार पटेल ने राजाओं को आश्वासन दिया था कि जिन विषयों में रियासतों को भारतीय संघ में मिलने के लिये कहा गया है, उनके अतिरिक्त दूसरे मामले में रियासतों का स्वायत्त रूप पूरी तरह से कायम रक्खा जायेगा। सरदार पटेल ने यह बात महाराजा सादूलसिंह को लिखे गये अपने पत्रों[4] में भी बिल्कुल स्पष्ट कर दी थी कि विलय का कोई प्रस्ताव रियासती मंत्रालय तभी स्वीकार करेगा जब उसे विश्वास हो जायेगा कि ऐसे प्रस्ताव को शासक और जनता दोनों का समर्थन प्राप्त है। श्री वी० पी० मेनन ने भी २९ मार्च १९४८ को दिल्ली में अपने सम्वाददाता सम्मेलन में बताया कि कोचीन, त्रावणकोर, मैसूर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर और भोपाल जैसी बड़ी २ रियासतें स्वतन्त्र

---

1. सर मिर्जा इस्माइल–माई पब्लिक लाइफ, पृ० १२३।
2. विधान निर्मात्री सभा की बहस, पृ० ५६–६१। १३ दिसम्बर सन् १९४६ को संविधान के उद्देश्यों के सम्बन्ध में प्रस्तुत पं० जवाहरलाल नेहरू का प्रस्ताव।
3. वही, पृ० ३५१– १८ अप्रैल सन् १९४७ को रियासतों सम्बन्धी कमेटी की रिपोर्ट पर प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये पं० जवाहरलाल नेहरू।
4. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १२५२/IX सन् १९४७ और सं० ४१२–डी० एन० XXV, महाराजा सादूलसिंह के नाम सरदार पटेल के ता० ५–१–१९४८ और २०–२–१९४८ के पत्र जो लेखक के अधिकार में हैं।

इकाइयों के रुप में अलग रहेंगी और ऐसे संघों और इकाइयों की संख्या २५ होगी। १५ मार्च १९४८ को रियासती मंत्री की ओर से संसद में बोलते हुये श्री गाडगिल ने सरकार की घोषित नीति पुनः दोहराई। उन्होंने कहा कि जिन रियासतों के विधान निर्मात्री सभा में अलग प्रतिनिधि थे, उन्हें अलग रहने योग्य इकाई माना जायेगा और यदि वे चाहें तो उनके अलग स्वायत्त इकाइयों के रुप में रहने पर कोई एतराज न होगा।

इस दृष्टि से बीकानेर हर तरह से अलग रहने योग्य इकाई थी। यह आबादी, राजस्व और विधान निर्मात्री सभा में अलग प्रतिनिधि होने की सभी शर्तें पूरी करती थी। इसका प्रशासन प्रगतिशील और प्रजातांत्रिक था। यहाँ शासक हमेशा गहन देश भक्ति की भावना से परिपूर्ण था। उसने हमेशा भारत की स्वतंत्रता का समर्थन किया। बीकानेर के लिये यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि अधिक अच्छी सरकार बनाने की जनता की मांग पर यह कदम उठाया गया क्योंकि यहाँ पहले से ही, सन् १९१३ से ही, विधान सभा थी जो कि न केवल राजपूताना की रियासतों में अपनी तरह की सर्व प्रथम विधान सभा थी बल्कि भारत की सारी रियासतों में से उन कुछ रियासतों में जिनमें सर्वप्रथम विधान सभायें बनाई गई, एक थी। यहाँ पर न्यायपालिका अलग थी जो एक अच्छी सरकार का एक रूप है। इसके अतिरिक्त रियासत में अस्पतालों और औषधालयों का जाल बिछा हुआ था। बीकानेर को इस बात का गर्व था कि यहाँ के अस्पताल उत्तरी भारत के सबसे बढ़िया और सुसज्जित अस्पतालों में से थे। लोगों की शिक्षा की ओर पूरा ध्यान दिया जाता था, बीकानेर में अनेक कालेज थे और सभी स्तर की अनेक स्कूलें थीं। रियासत के सभी मुख्य नगरों में नगरपालिकायें व जिला बोर्ड थे और पंचायतें व सहकारी समितियाँ भी काम कर रही थीं। बीकानेर को इस बात का विशेष गर्व था कि यहाँ रेलों और संचार का व्यापक जाल बिछा हुआ था और नगरों व गाँवों में बिजली का प्रकाश था। बीकानेर रियासत के उत्तरी भाग की सिंचाई होने से यहां के लोगों की स्थिति और भी सुधर गयी थी। यह सम्भावना थी कि निकट भविष्य में ही भाखरा नहर के आने से बीकानेर की वार्षिक आय ५ करोड़ रुपये हो जायेगी। रियासत समृद्ध थी और जनता की सुविधाओं के लिये खर्च करने को उसके पास काफी धन था। इस की पुष्टी इससे होती है कि बीकानेर रियासत द्वारा राजस्थान के खजाने में चार करोड़ ८६ लाख रु० दिये गये। यह रकम राजपूताना की रियासतों द्वारा दी गई रकमों

[illegible] थी।[1] सन् १९०२ से ही शासक की प्रिवी पर्स अलग [illegible] गई थी और वह एक उचित प्रतिशत (राज्य की आय की) पर [illegible] की गई थी। इस प्रकार रियासत व्यावहारिक दृष्टि से एक [illegible] पद्धति से काम कर रही थी। यहां नागरिक स्वतंत्रता [illegible] थी और सरकार का मुख्य उद्देश्य लोगों को अधिक से अधिक [illegible] देना था।

[illegible] नवम्बर सन १९४८ में रियासती मंत्रालय और इसके [illegible] श्री वी० पी० मेनन द्वारा बातचीत चालू की गयी। पहले [illegible] उन शर्तों के बारे में थी जो यहां के शासक को मंजूर [illegible] और वह राजस्थान के साथ एकीकरण का निर्णय ले। तब दिसम्बर १९४८ में श्री वी० पी० मेनन बीकानेर आये। यहां वे कुछ मुख्य नागरिकों से मिले और बीकानेर के एकीकरण के सम्बन्ध में उनकी इच्छा मालूम की। इस मीटिंग की कार्यवाई से सम्बधित रिपोर्ट[2] से पता चलता है कि इसमें बीकानेर के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री सी० एस० वेंकटाचार भी उपस्थित थे। इस मीटिंग में श्री मेनन ने रियासत के एकीकरण से होने वाले लाभों से श्रोताओं को परिचित कराया। उन्होंने कहा कि इससे प्रशासन का खर्चा कम हो जायेगा। उन्होंने यह बात जोर देकर कही कि पं० जवाहरलाल और सरदार पटेल जैसे देश के नेता ही इस बात का सही निर्णय कर सकते हैं कि लोगों की भलाई किस में है। उन्होंने आगे कहा कि जब ये नेता कहते हैं कि रियासत का एकीकरण [illegible] के लोगों के हित में है तो वह वास्तव में हित में ही है और लोगों को उनके कथन का विश्वास करना चाहिये। रिपोर्ट में लिखा है कि

---

१. यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि बीकानेर 'थार' रेगिस्तान में है। जब सन् १८८७ में महाराजा गंगासिंह गद्दी पर विराजे तो रियासत की आय १८ लाख थी। महाराजा गंगासिंह और महाराजा सादूलसिंह के शासन काल में यह आय बढ़कर साढ़े तीन करोड़ के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गयी। यह केवल कठिन श्रम और अच्छी योजना से ही सम्भव था। प्रकृति और भूमि सभी समृद्धि के विरुद्ध थे। लेकिन दृढ़ निश्चयी लोगों ने इस समृद्धि को पाने में सफलता प्राप्त की।

२. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१२–XXV, भाग २– राजपूताना की रियासतों का एकीकरण। लेखक ने भी दरबार हाल के बरामदे से यह विचार विमर्श सुना था।

श्रोताओं में उपस्थित बीकानेर के एक प्रसिद्ध वकील और प्रतिष्ठित नागरिक पं० लक्ष्मीनारायण ने यह सवाल उठाया कि जनमत संग्रह द्वारा लोगों की राय मालूम की जाय तो वी० पी० मेनन ने इस बात का विरोध किया। उन्होंने कहा कि अन्य किसी भी रियासत में ऐसी माँग नहीं की गयी है। उन्होंने एक बार फिर श्रोताओं से कहा कि वे अपने नेताओं में विश्वास रक्खें और जैसा नेता चाहते हैं वैसा करें। एकीकरण के विरुद्ध यह भावना इस बात से समझ में आ जाती है कि बीकानेर एक सुसंचालित रियासत थी। केवल एक महीने पहले सरदार पटेल ने स्पष्ट रूप से कहा था कि किसी रियासत के लोगों की सलाह लिये बिना एकीकरण नहीं किया जायेगा। यह बात इसके बिलकुल विरुद्ध थी। श्रोताओं में से एक अन्य व्यक्ति पं० सूरजकरण आचार्य ने, जो कि बहुत बड़े वकील थे, पूछा कि क्या एकीकरण का मामला पहले ही तय किया जा चुका है अथवा अभी उनकी सलाह लेनी बाकी है। रिपोर्ट में लिखा है कि इस पर श्री मेनन ने उत्तर दिया कि यह मामला पहले ही तय किया जा चुका है और भारत सरकार एकीकरण की योजना को पूरा करेगी। श्री वी० पी० मेनन ने यह भी कहा कि सुविधा के लिये ही आरम्भ में भारत सरकार रियासतों का भारतीय संघ में सम्मिलित होना चाहती थी। भारत सरकार ५६० रियासतों को स्वतन्त्र छोड़ना नहीं चाहती थी।[1]

भारतीय संघ में सम्मिलित होने के समझौतों का उल्लेख करते हुये श्री वी० पी० मेनन ने कहा कि कोई भी जनतांत्रिक सरकार इस प्रकार के आश्वासनों से देश का भविष्य नहीं बाँध सकती। जब यह प्रश्न किया गया कि जब इस मामले में इकतरफा फैसला किया जा चुका है तो इस पर महाराजा के हस्ताक्षर कराने क्यों जरूरी हैं। कहा जाता है कि श्री मेनन ने बताया कि कानूनी दृष्टि से हस्ताक्षर कराने जरूरी हैं।

---

१. यह सम्भव है कि अलग रहने योग्य रियासतें राज्यपालों के नीचे रह सकती थीं। इससे जीवन को अस्त व्यस्त किये बिना उनके प्रशासकीय क्षेत्र की सीमा कायम रक्खी जा सकती थी।

इसकी जगह आरम्भ में कुछ वर्षों के लिये अलग रहने योग्य इकाइयों के राजाओं को नियुक्त राज्यपालों के रूप में रक्खा जा सकता था। हम मैसूर की ओर देखें तो पता चलेगा कि कैसे मैसूर के महाराजा को वहाँ का राज्यपाल बनाया गया और वे इस रूप में १५ वर्ष तक रहे। इसी तरह का दूसरा उदाहरण जम्मू और काश्मीर के सदरे रियासत का है।

इन तथ्यों से कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि रियासतों के साथ वैधानिक सम्पर्क कायम करने और ब्रिटिश सत्ता के हटने से उत्पन्न रिक्तता को भरने के लिये जो नीति अपनाई गयी थी उसमें एकाएक परिवर्तन करके रियासतों के पूर्ण एकीकरण की नीति अपनायी गयी। विदित होता है कि यह पूर्व निर्धारित नीति थी और भारत के नये संघ को, मन में कुछ और भाव रखकर वचन देने से, रोकने वाला कोई न था।[1] लेकिन यह सम्भव है कि कुछ रियासतों को अलग इकाइयों के रूप में चालू रखने के स्थान पर उनके पूर्ण एकीकरण का भारत सरकार ने जो एकाएक दृष्टिकोण बदला वह हैदराबाद, जूनागढ़ और जोधपुर में हुई दुर्भाग्य पूर्ण घटनाओं के कारण जरूरी हो गया हो।[2]

अलग रहने योग्य इकाइयों को रखने के स्थान पर उनके एकीकरण के बारे में सरकार की परिवर्तित नीति से महाराजा सादूलसिंह को आश्चर्य हुआ। यह बात उनकी गुप्त टिप्पणी[3] से बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। उसमें महाराजा सादूलसिंह ने स्पष्ट लिखा है, "बीकानेर को अलग रहने योग्य इकाइयों की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। अब तक यह ऐसी ही मानी जाती रही है। एकाएक यह परिवर्तन कैसे हो गया है? तब यह बलपूर्वक नियंत्रण क्यों?" सूची में लिखी अन्य बातों से पता चलता है कि अखिल भारतीय रियासती जनता की राजपूताना प्रादेशिक परिषद ने एकीकरण की मांग पर बल दिया था। संयोग से उसमें बीकानेर का एक ही प्रतिनिधि श्री रघुवर दयाल गोयल[4] था और वह भी बीकानेरी नहीं था। इस प्रादेशिक परिषद में सिरोही के गोकुल भाई भट्ट और जयपुर के हीरालाल शास्त्री का

---

१. लियोनार्ड मोसले, पूर्व उद्धृत, पृ० १७३।

"सत्ता परिवर्तन के बाद नये संघ को रोकने वाला कोई न था रियासती विभाग के द्वारा अपने कार्यों को बढ़ाकर यह इन प्रतिबद्धताओं और अधिकारों को थोड़े ही समय में व्यर्थ बना सकता था, वास्तव में शीघ्र ही ऐसा हो गया।

२. वी० पी० मेनन, दी स्टोरी आफ दी इन्टीग्रेशन आफ दी इण्डियन स्टेटस् पृ० ११२-११३।

३. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१२-जी० एन-XXV।

४. प्रथम आम चुनाव से पूर्व श्री गोयल राजस्थान मन्त्री मण्डल में एक मन्त्री थे। वे प्रथम आम चुनाव में हार गये।

गहरा प्रभाव था। गोकुल भाई भट्ट प्रथम आम चुनाव में हार गये। बीकानेर के लोगों के प्रतिनिधि रूप में श्री गोयल को लोग कितना कम चाहते थे इसका प्रमाण सन् १९५२ के प्रथम आम चुनाव के परिणाम से मिलता है। इसमें बीकानेर – चूरू संसदीय क्षेत्र से लेखक को १,१७,९२६ वोट मिले जब कि उसके विरुद्ध खड़े हुये श्री गोयल को केवल ६००० वोट मिले।[1]

सरदार पटेल और श्री मेनन के साथ ५ दिसम्बर और २१ दिसम्बर १९४८ को और आगे बातचीत हुयी। केवल दो महीने बाद ही फरवरी १९४९ में एकीकरण का पूर्ण निश्चय कर लिया गया। ७ अप्रैल सन् १९४९ को बृहद् राजस्थान में बीकानेर रियासत का एकीकरण हो गया। रियासती मन्त्री के रूप में सरदार पटेल की इस घोषणा की कि अलग रहने योग्य इकाइयाँ चालू रहेंगी, और सन् १९४९ में रियासतों के एकीकरण के मध्य, कुल १८ मास ही लगे।

रियासतों के एकीकरण के प्रश्न पर पीछे की ओर दृष्टिपात करते समय हम रियासतों के एकीकरण की आलोचना नहीं करते। हम तो भारत के चोटी के नेताओं द्वारा अपनी जबान से दिये गये आश्वासन के विरुद्ध जिस तरीके से एकीकरण किया गया, उसकी आलोचना करते हैं।

स्वयं लेखक भारतीय रियासतों में जनतांत्रिक संस्थायें प्रविष्ट कराने का और एकीकरण पद्धति का पक्का समर्थक रहा है। लेकिन बिना उनकी सलाह लिये रियासतों की जनता पर एकीकरण थोपना जनतांत्रिक नहीं। यह बात और भी उचित होती यदि भारत सरकार रियासतों के भारतीय संघ में सम्मिलित होने के समय ही अपनी नीति घोषित कर देती कि चाहे शीघ्र या धीरे २ उनका लक्ष्य रियासतों का एकीकरण है। यह मानना होगा कि इससे कुछ कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती थीं पर सरदार पटेल जैसे कुशल राजनीतिज्ञ के लिये इन कठिनाइयों को पार करना और भारत का पूर्ण एकीकरण करना कठिन न था।

हमारे देश में जो तीव्र परिवर्तन आया, भारत में जो रक्त हीन

---

१. लेखक १९५२ से १९५७ तक बीकानेर–चूरू क्षेत्र से संसद सदस्य रहा है। सन् १९५७ में वह बीकानेर, चूरू और गंगानगर के द्वि–सदस्यीय चुनाव क्षेत्र से पुनः चुना गया। इसमें उसने अपने कॉंग्रेसी प्रतिद्वन्दी को लगभग ६६,००० वोटों के अन्तर से हराया। सन् १९६२ में लेखक बीकानेर – चूरू चुनाव क्षेत्र से पुनः चुना गया। इस बार कॉंग्रेस ने उम्मीदवार खड़ा नहीं किया। तीनों आम चुनाव लेखक ने निर्दलीय रूप में लड़े और वह तीनों में जीता।

क्रांति से आजादी आयी, संसार का एक सबसे महान् परिवर्तन हमारे यहाँ हुआ, इन सबके बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार के गौरव के लिये अनिवार्य था कि लोगों को दिये हुये वचन निभाकर देश भक्त लोगों के मन में विराग उत्पन्न किया जाता। जिन लोगों ने अपने देश की भक्ति से सेवा करनी चाही थी, उन्हें शीघ्र परिवर्तनों, वचन भंग, और अस्थिर वैधानिक परिवर्तनों से सरकार के प्रति विश्वास न रहा।

हम जानते हैं कि पं० जवाहरलाल नेहरू एक स्पष्ट वक्ता और पूर्ण इमानदार व्यक्ति थे। रियासतों के भविष्य के बारे में १३ दिसम्बर सन् १९४६ को जब विधान निर्मात्री सभा में उन्होंने अपने मन की बात कही तो हम उससे प्रभावित हुये। अतः यह जानने का प्रयत्न करना बड़ा रोचक होगा कि किस समय भारत सरकार की विचार धारा में परिवर्तन आरम्भ हुआ और अलग रहने योग्य इकाइयों को कायम रखने की नीति को बदल कर पूर्ण एकीकरण की नीति को अपनाया गया। पं० नेहरू ने विधान निर्मात्री सभा में कहा—

> "रियासतों के सम्बन्ध में हमारी इच्छा अच्छी तरह से समझी जानी चाहिये। यह (प्रस्ताव) रियासतों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं थोपता।.........यह सम्भव है कि लोग अपने राजाओं को रखना चाहें। यह निर्णय उन्हें ही करना है। ....यदि इस (गणतंत्र) के भीतर का कोई भाग अपने खुद के तरह का प्रशासन चाहता है तो उसे ऐसा करने की स्वतन्त्रता होगी। .... यदि रियासतों में जनता सच्चे अर्थ में देख रेख करने वाली हो, वहाँ पूर्ण स्वतन्त्रता और उत्तरदायी सरकार हो तो किसी विशेष प्रकार के प्रशासन के लिये यह अयोग्यता या असम्भवता की बात न होगी। यदि किसी विशेष रियासत की जनता अपने यहाँ के राजा को प्रधान स्वीकार कर लेती है तो मैं निश्चय ही उसमें हस्तक्षेप नहीं करूंगा चाहे मैं उसे पसंद करूं या न करूं।"[1]

साढ़े चार महीने बाद रियासती समिति की रिपोर्ट पर ता० २८

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१२- G.N. XXV, राजपूताना की रियासतों का एकीकरण।
विधान निर्मात्री सभा की बहस ता० १३ दिसम्बर १९४६, पृ० ५६, ६०, ६१।

अप्रैल १६४७ को प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये उन्होंने फिर कहा—

"....यद्यपि हम सारे भारत के लिये एक गणतन्त्र का निर्णय ले रहे थे पर इससे किसी रियासत में राजतन्त्र की सरकार चालू रहने में कोई रुकावट नहीं पड़ेगी लेकिन शर्त यह है कि जहां तक उसका सम्बन्ध है वे रियासतें स्वतन्त्रता के व्यापक चित्र में उचित लगें और वहां पर उतनी ही आजादी तथा उत्तरदायी सरकार हो।"[1]

केवल ६ हफ्ते बाद ५ जुलाई सन् १६४७ को सरदार पटेल ने श्वेत पत्र के एक कथन में इस प्रकार कहा—

"रियासतों ने पहले ही इस मूल सिद्धांत को मान लिया है कि सुरक्षा, विदेशी मामले और संचार में वे भारतीय संघ में सम्मिलित होंगी। देश के सामान्य हितों से सम्बन्धित इन तीन विषयों में सम्मिलित होने के अलावा हम उनसे और कुछ नहीं चाहते। अन्य मामलों में हम उनके स्वायत्त अस्तित्व का निसंदेह सम्मान करेंगे।"[2]

६ महीने बाद ५ जनवरी सन् १६४८ को महाराजा सादूलसिंह को लिखे एक पत्र में सरदार पटेल ने स्थिति को और स्पष्ट किया—

"मैं श्रीमान को यह बात साफ बता देना चाहता हूँ कि हम स्वयं एकीकरण के किसी प्रस्ताव को प्रेरणा या बढ़ावा नहीं देते। हम ऐसे किसी प्रस्ताव को तब तक स्वीकार नहीं करते जब तक हमें संतोष न हो जाय कि इसे सम्बन्धित जनता और शासक दोनों का समर्थन प्राप्त है।"[3]

७ जनवरी १६४८ को श्री वी० पी० मेनन ने कहा कि प्रत्येक रियासत के लिये एक कसौटी बनायी गयी है जिसमें उसकी आय, आबादी और विकास की सम्भावना को ध्यान में रक्खा जायेगा और यह कसौटी लागू की जायेगी। जिन रियासतों के विधान निर्मात्री सभा में अलग प्रतिनिधि थे उनको एकीकरण में शामिल करने के सुझाव का

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१२- G. N. XXV, राजपूताना की रियासतों का एकीकरण।

२. भारतीय रियासतों के बारे में श्वेत पत्र, पृ० १५८। परिशिष्ट ५।

३. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१२- G. N. XXV।

प्रश्न ही नहीं उठता।[1]

६ हफ्ते बाद २० फरवरी सन् १९४८ के अपने पत्र में सरदार पटेल ने बीकानेर के महाराजा को लिखा—

"मैं इस बात को एक से अधिक बार स्पष्ट कर चुका हूँ कि रियासती मंत्रालय एकीकरण की योजना का तभी समर्थन करेगा जब इस विषय पर जनता और शासक दोनों सहमत हों। हमने लगातार इस स्थिति को बनाये रक्खा है।"[2]

लगभग ३ सप्ताह बाद १५ मार्च १९४८ को संसद में रियासती मंत्री की ओर से बोलते हुये श्री एन० वी० गाडगिल ने कहा—

"जिन रियासतों के विधान निर्मात्री सभा में अलग प्रतिनिधि हैं, उन्हें समय-समय पर भारत सरकार ने आश्वासन दिया है कि वे अलग रहने योग्य इकाइयाँ मानी जायेंगी······· विलय या एकीकरण के लिये अपनी ओर से किसी प्रकार का दबाव डालने या डराने की हमारी कोई इच्छा नहीं है।"[3]

दो सप्ताह बाद २६ मार्च १९४८ को एक सम्वाददाता सम्मेलन में श्री वी० पी० मेनन ने कहा—

"कोचीन, त्रावणकोर, मैसूर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, भोपाल आदि बड़ी २ रियासतें स्वतन्त्र इकाइयों के रूप में रहेंगी और इन संघों और इकाइयों की संख्या २५ होगी। ····कोचीन, त्रावणकोर, मैसूर, जोधपुर, बीकानेर, भोपाल, पटियाला जैसी बड़ी रियासतों में से किसी को छूने का सरकार का इरादा नहीं था।···सरकार रियासती मंत्रालय द्वारा दिये गये इस वचन को मानती है कि अलग रहने योग्य इकाइयों को अपने आप में अलग रहने दिया जायेगा जब तक कि वे

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१२- G. N. XXV, ता० ७-१-१९४८ को माननीय गवर्नर जनरल के साथ राजाओं और प्रतिनिधियों की बैठक की कार्यवाई।

२. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० १२५२-IX, सन् १९४७।

३. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१२- G. N. XXV, ता० १५ मार्च १९४८ का संसद में वक्तव्य।

स्वेच्छा से शामिल न हो ....."[1]

१५ मार्च १६४८ के अपने पूर्व कथन के केवल साढ़े आठ महीने बाद १४ नवम्बर १६४८ को श्री मेनन ने दिल्ली में विचार विमर्श के समय बीकानेर, जोधपुर, जयपुर आदि के विलय का प्रश्न उठाकर अपनी ही बात का खण्डन कर दिया।[2]

महाराजा सादूलसिंह ने रियासती मंत्रालय के साथ बातचीत के लिये ता० ६-११-४८ को प्रस्तुत बातों की एक गुप्त सूची[3] बनायी। इससे पता चलता है कि लगभग इसी समय रियासत के विलय का सुझाव दिया गया था। इस सूची में नम्बर २ में लिखा है—

> "२- बीकानेर अलग रहने योग्य इकाइयों की श्रेणी में सम्मिलित की गयी है और अब तक ऐसी ही मानी जाती रही है। एकाएक यह परिवर्तन कैसे हो गया? तब यह दबाव क्यों?"

रिकार्ड से पता चलता है कि बीकानेर, जयपुर और जोधपुर के राजाओं के साथ हुयी बैठकों में जब रियासती मंत्रालय ने विलय का प्रश्न रक्खा तो ६ दिसम्बर सन् १६४८ को महाराजा बीकानेर ने श्री वी० पी० मेनन को शर्तों की एक सांकेतिक सूची दी। यदि ये राजा एकीकरण के लिये सहमत हो जांय तो इन शर्तों को मानने की मांग की गयी थी। श्री वी० पी० मेनन सहमत हो गये। ७ दिसम्बर १६४८ को श्री वी० पी० मेनन ने बीकानेर में लालगढ़ पैलेस के दरबार हाल में यहां के कुछ मुख्य नागरिकों से बात चीत की। इस बैठक के समय उन्होंने जो कुछ कहा उससे स्पष्ट पता चलता है कि भारत सरकार ने अलग रहने योग्य रियासतों के विलय के सम्बन्ध में भी पहले ही एक तरफा फैसला कर लिया था। अब केवल इतना ही करना बाकी था कि राजाओं से विधिवत् और कानूनी स्वीकृति ले ली जाय। दिसम्बर सन् १६४८ और उसके बाद के महीनों में कुछ और बैठकें हुयीं तथा अन्त में बीकानेर, जोधपुर, जयपुर और जैसलमेर का विलय तय कर दिया गया। ७ अप्रैल १६४६ को उनका विलय हो गया।

---

१. महाराजा बीकानेर के निजी सचिव के कार्यालय की फाइल सं० ४१२- G. N. XXV।

२. वही, दिल्ली में ता० १४-११-१६४८ को श्री वी० पी० मेनन के साथ महाराजा सादूलसिंह की बैठक की टिप्पणियाँ।

३. वही।

भारत सरकार ने राजाओं से विलय स्वीकार कराने के लिये उनके स्वाभिमान को छूने वाले जो तरीके अपनाये उन्हें देखकर एक इतिहासकार को बहुत आश्चर्य हो सकता है। उदाहरण के लिये भारत में राजाओं को तोपों की सलामी दी जाती है। तोपों की सलामी न दी जाने वाली रियासतों को छोड़कर कम से कम ९ और अधिक से अधिक २१ तोपों की सलामी वाली रियासतें थीं।[1] ऐसा विश्वास है कि अंग्रेजों ने बहुधा वंशानुगत तोपों की सलामी की संख्या बढ़ाकर और निजी रूप से तोपों की सलामी मंजूर करके एक प्रकार का लालच देने का काम किया था। बहुत से मामलों में आजीवन राजप्रमुख का पद देना एक शासक के लिये विलय स्वीकार करने का बहुत बड़ा प्रलोभन था। ये आजीवन राजप्रमुख के पद भी बाद में केवल कुछ ही वर्षों तक रहे। राजाओं ने स्पष्ट रूप से इस बात को जान लिया था। लेकिन सवाल यह था कि सबसे पहले कौन विलय को स्वीकार करे और इस प्रकार आजीवन राजप्रमुख के

---

१. राजस्थान की रियासतों के शासकों की तोपों की सलामी की संख्या।

१९ तोपों की सलामी	—	१. उदयपुर के महाराणा
१७ तोपों की सलामी	—	१. बीकानेर के महाराजा
		२. भरतपुर के महाराजा
		३. बूंदी के महाराजा
		४. जयपुर के महाराजा
		५. जोधपुर के महाराजा
		६. करौली के महाराजा
		७. कोटा के महाराव
		८. टोंक के नवाब
१५ तोपों की सलामी	—	१. अलवर के महाराजा
		२. बाँसवाड़ा के महारावल
		३. धोलपुर के महाराज-राणा
		४. डूँगरपुर के महारावल
		५. जैसलमेर के महारावल
		६. किशनगढ़ के महाराजा
		७. प्रतापगढ़ के महारावल
		८. सिरोही के महाराव
१३ तोपों की सलामी	—	१. झालावाड़ के महाराज-राणा

रूप में, शायद कुछ अधिक प्रिवीपर्स के रूप में, मुफ्त बिजली और पानी जैसी कई प्रकार की सुविधाओं के रूप में अथवा निजी सम्पति की सूची में कुछ और अधिक महलों के रूप में कुछ लाभ प्राप्त करे। कुछ राजाओं को, जिनका स्वास्थ्य खराब था, विशेष प्रिवीपर्स दी गयी। यह अतिरिक्त रक़म भी वार्तालाप के लिये खुली रक्खी गयी। बीकानेर और कुछ अन्य उन्नत रियासतों से भिन्न बहुत सी ऐसी रियासतें थीं जिनकी एकीकरण के समय तक रियासत के खजाने से अलग कोई निश्चित प्रिवीपर्स न थी। राजा की निजी सम्पति की श्रेणी में क्या हो और रियासत की रकम क्या मानी जाय, यह मामला विशुद्ध रूप से बातचीत द्वारा तय होना था। इसके अतिरिक्त यह बात भी बातचीत द्वारा तय होनी थी कि दोवागर महारानियों को कितना भत्ता दिया जाय। समझौते के अनुसार उन्हें रियासत से अलग भत्ता मिलना था। महाराजकुमारों को राज्य की रकम में से रकम देना भी बात चीत द्वारा तय किया जाने वाला था, विशेषतः उन रियासतों में जहां निश्चित प्रिवीपर्स निर्धारित नहीं थे। दोवागर महारानियों को रियासत से अलग भत्ते दिये गये। लेकिन वे सब महारानियां जो एकीकरण के बाद दोवागर हुयीं, उनका भत्ता राजाओं के निजी प्रिवीपर्स में से मिला। चाहे जो हो इससे कुछ राजाओं को, जो पीढ़ियों से वरिष्ठता के लिये प्रतिस्पर्धा कर रहे थे और जो राजप्रमुख बन कर अपने संघ की सारी रियासतों के राजाओं से अपने आप को ऊँचा राजा मानते थे, अपने दीर्घकालीन अहं को सन्तुष्ट करने का मौका मिला। स्पष्टतः यह इच्छा पूरी हुयी क्योंकि आजीवन राजप्रमुख की पारिभाषिक स्थिति इसी रूप में स्वीकार की गई थी। सौभाग्य से यह अजनतांत्रिक, एतराज-जनक और अवांछनीय पद बड़ी जल्दी समाप्त हो गया।

निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये हमें भारत सरकार और इसके नये नेताओं द्वारा दिये गये विभिन्न आश्वासनों की सावधानी से जांच करनी होगी। इससे पता चलता है कि भारतीय रियासतों के भारतीय संघ में मिलने के कार्य को पूरा करके भारत सरकार और अधिक दृढ़ स्थिति में होगयी थी जिससे कि रियासतों के एकीकरण के सम्बन्ध में वह अपनी शर्तें मनवा सके। इतिहास के विद्यार्थी के रूप में हमें स्थिति को निष्पक्ष दृष्टि से देखना पड़ेगा। इस बारे में दो मत नहीं कि शेष ब्रिटिश भारत के साथ रियासतों को बराबर लाने के लिये जनतांत्रिकरण का सिद्धान्त ठीक था। लेकिन जो रियासत या रियासतें सदियों से अस्तित्व में थीं उनका बने रहना भी उतना ही उचित था जितना आजादी के बाद

भारत के किसी नये राज्य का बने रहना। एक राष्ट्र के इतिहास में परिवर्तन होते रहते हैं। किसी विशेष समय जो बात सामान्य लगती है वही कालान्तर में असामान्य मानी जा सकती है अथवा इसके विपरीत बात हो सकती है।[1] इसी प्रकार यदि बड़ी रियासतों को कायम रहने दिया जाता और वे मैसूर की तरह बाद में "क" भाग राज्य बनकर देश के दूसरे राज्यों की भांति होतीं तो यह कथन अनुचित न होगा कि जनमत उन्हें तुरन्त मान लेता। बहुत सी सुशासित अलग रहने योग्य रियासतों में जनमत विलय के पक्ष में नहीं था। इस बात का प्रमाण आम चुनाव से मिलता है। हम देखते हैं कि सन् १९५२ और उसके बाद के आम चुनावों में प्रायः प्रत्येक राजा जिसने चुनाव लड़ा अपने शक्तिशाली कांग्रेसी विरोधी को हराकर विजयी हुआ। जनतन्त्र में आम चुनाव के अतिरिक्त जनता की इच्छा जानने का और कोई अच्छा साधन नहीं हो सकता। रियासतों के एकीकरण के कुछ महीने बाद जब महाराजा सादूलसिंह इंगलैंड से लौटे और श्री लक्ष्मी-नाथ जी के मन्दिर में दर्शनों के लिये गये तो जनता ने उनका इतना जोरदार भव्य स्वागत किया जैसा बहुधा देखने में नहीं आता। लेखक अपने पिता महाराजा सादूलसिंह के साथ मोटर में था। लोगों का उत्साह और प्रेम इतना अधिक था कि सामान्यरूप से मार्ग में जहां आधा घण्टा लगता वहां पांच घण्टे लगे।

सरदार पटेल ने बहुधा कहा था कि सरकार विलय के प्रस्तावों को तब तक नहीं मानेगी जब तक उसे विश्वास न हो जाय कि उन्हें सम्बन्धित जनता और राजा दोनों का समर्थन प्राप्त है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि राजाओं पर एकीकरण स्वीकार करने के लिये, जहां दबाव डाला गया और प्रलोभन दिया गया वहाँ सम्बन्धित जनता की कभी सलाह नहीं ली गयी। ऐसा कोई उपयुक्त साधन भी नहीं था जिसके द्वारा भारत सरकार जनता से सलाह ले सकती थी। यह तर्क कि प्रजापरिषद जनता की

---

१. पंजाब को पंजाबी सूबे और हरियाना राज्य में अलग करना सरदार पटेल के एकीकरण के कार्य से बिल्कुल विपरीत है। पंजाबी सूबा और हरियाना राज्य दोनों का ही क्षेत्रफल बीकानेर से कम है, दोनों का अलग कायम रहना बहुत सन्देह पूर्ण है पर सिद्धांततः इसे सन् १९६५ में लोकसभा के अध्यक्ष की अध्यक्षता में नियुक्त संसदीय समिति जैसे महत्व पूर्ण अंग ने स्वीकार किया है। लेखक भी इस समिति का एक सदस्य था।

आवाज थी, प्रथम आम चुनावों के परिणामों से बिल्कुल धरासायी हो जाता है। प्रथम आम चुनाव में प्रजा परिषद् के बड़े २ नेता राजस्थान में हार गये।

अलग रहने योग्य इकाइयों के पास अपनी रियासतों को विकसित करने के लिये काफी आय थी जिससे कि वे भारतीय संघ के अन्य अधिक उन्नत राज्यों के समान वन जाती। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि एकीकरण के बाद इन राज्यों के विकसित करने के लिये केन्द्र पंचवर्षीय योजना की धनराशि और दूसरे स्रोतों से केन्द्रीय सहायता के रूप में करोड़ों रुपये दे रहा है। यह तर्क भी गलत सिद्ध हो गया है कि रियासतों के विभिन्न प्रशासकीय सीगों बनने पर जो धन बरबाद होता था वह एक संयुक्त राज्य से बच जायेगा। राजस्थान बनने के बाद यहाँ की सरकार के पास प्रति वर्ष धन की कमी रहती है। यह बात ध्यान में रखने की है कि किसी भी भारतीय रियासत को चाहे वह बड़ी हो या छोटी भारत सरकार से केन्द्रीय सहायता या पंचवर्षीय योजना की राशि के रूप में कोई सहायता नहीं मिलती थी।[1]

यदि अलग रहने योग्य इकाइयां कायम रहतीं और उन्हें भी अन्य राज्यों[2] जितनी ही केन्द्रीय सहायता मिलती तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि ये दोनों प्रकार के राज्य समान रूप से उन्नत न होते।

दूसरी ओर राजाओं की ईमानदारी और देश के व्यापक हित में उनका त्याग, विशेषतः महाराजा सादूलसिंह का, भारत के प्रथम राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद से बढ़ कर किसी अन्य के शब्दों में नहीं

---

१. यह बात स्मरणीय है कि सन् १९२७ में गंगनहर योजना की पूरी रकम बीकानेर रियासत ने ही लगाई थी। उस समय इसकी आय बहुत कम थी। केन्द्रीय सहायता सम्भव न थी। आज राजस्थान नहर का खर्च बहुत सीमा तक केन्द्र द्वारा किया जाता है। पहले रियासतों की रेलें केन्द्र के आधीन न थीं। उस समय बिना किसी केन्द्रीय सहायता के रियासत के खजाने से बीकानेर रियासत की लगभग १ हजार मील रेलवे लाइन का खर्चा दिया गया। यही बात रियासत की सेनाओं के लिये भी थी। राजस्थान संघ के लिये अब ये बोझ बहुत कम हो गये हैं क्योंकि रेलों, स्वरक्षा और कुछ बड़ी सिंचाई और दूसरी योजनाओं को केन्द्र ने अपने हाथ में ले लिया है।

२. भूतपूर्व प्रांत।

बताया जा सकता । डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा —

"अपने निजी हितों से ऊपर देश के हित को रख कर राजाओं ने भारत के एकीकरण में एक स्मरणीय कार्य किया। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय महाराजा सादूलसिंह जी ने जो सहायता प्रदान की वह तत्कालीन रियासती मन्त्री और महान् भारतीय नेता सरदार वल्लभ भाई पटेल द्वारा कृतज्ञता से स्वीकार की गयी है।"[1]

स्वर्गीय महाराजा अपनी जनता के कल्याण का प्रयत्न करते हुये असमय स्वर्ग सिधारे। अपनी मातृ भूमि के महान् गौरव के लिये अपनी प्राचीन वंश परम्परा को निभाते हुये वे इस संसार से चले गये। बीकानेर के लोगों ने स्वेच्छा से धन संग्रह कर उनकी स्मृति में, यह मूर्ति स्थापित की। इस प्रकार ५०० वर्ष पुराना बीकानेर का गौरव पूर्ण इतिहास समाप्त होता है। बीकानेर की मरुधरा ने सच्चे और शक्तिशाली योद्धा उत्पन्न किये। अतः भारत की एकता में बीकानेर ने जो काम किया, वह हम सबके लिये गौरव की बात है।

---

१. बीकानेर में ता० २-६-१६५४ को महाराजा सादूलसिंह जी की मूर्ति का अनावरण करते हुये डा० राजेन्द्र प्रसाद का भाषण।

परिशिष्ट--१

ईश्वर महान् है

अकबर

मोहर – ईश्वर महान् है

साम्राज्य के महत्व पूर्ण अंग, महान् साम्राज्य के स्तम्भ, शाही कृपाओं के योग्य राय रायसिंह को मालूम हो कि हमें ज्ञात हुआ है कि वह (राय रायसिंह) अभी तक जैतोर के इलाके में है। यह बात बड़ी विचित्र और आश्चर्यजनक लगती है। उसकी सचाई, काम की लगन, श्रद्धा और मित्रता को क्या हो गया है? उसको स्वयं को क्या हो गया है? क्या कुछ गड़बड़ी है अथवा अधिक शराब पीने से वह अयोग्य हो गया है? क्या किसी बीमारी से उसकी काम करने की सारी शक्ति और उत्साह चला गया है अथवा अपने आरामतलब स्वभाव के कारण वह भटियाणी के वश में होगया है अथवा नौकर तीजिया ने उसको गुमराह कर दिया है।

अगर वास्तव में वह काम करने से थक गया है तो उसे सारी बात स्पष्ट रूप से लिख देनी चाहिये ताकि हम उसके पुत्र को भेजदें और उसके (राय रायसिंह के) सेवकों के साथ उसका पुत्र काम कर सके।

चाहे जो बात हो हम अपने विश्वासपात्र (नौकर) मोहनदास को भेजते हैं कि वह हमें सही स्थिति बताये। हम एक हकीम भी भेजना चाहते थे पर चूंकि उक्त व्यक्ति डाक चौकी से भेजा गया है अतः हकीम उसके साथ नहीं भेजा जा सका। लेकिन यदि उसका स्वास्थ्य सब प्रकार से ठीक हो और वह दक्षिण के अभियान पर जाना चाहता हो तो हम उसकी सफलता की कामना करते हैं। अन्यथा शाही कृपापात्र सभी सैनिक, राजपूत और दूसरे लोगों के साथ, हर कीमत पर राय मालवा तक पहुँच जाय। वहाँ उज्जैन में वह शाही आज्ञा से भेजी गयी विश्व विजयिनी सेना के पहुंचने की प्रतीक्षा करे और उन्हें दिये आदेश के अनुसार काम करे।

सन् ४० ता० २२ अस्फन्दारमज,
(फरवरी, १५६५)

परिशिष्ट--२

ईश्वर महान् है

हुमायूं के पुत्र अकबर के पुत्र सुल्तान सलीम की मोहर।
विजयी सुल्तान सलीम जहाँगीर गाजी, जिसके पिता का आदेश विश्व मानता है।

साम्राज्य के विश्वास-पात्र, शाही सम्मानों के योग्य राय रायसिंह ने जिसे शाही कृपाओं तथा उपकारों की प्रतिष्ठा प्राप्त है, अपनी गत सेवाओं को भूलकर शाह को अपनी स्मृति दिलाना बन्द कर दिया है।

तथापि (उसकी लापरवाही का कुछ भी विचार न करके) शाह के हृदय में साम्राज्य के सबसे बड़े शुभचिन्तक (रायसिंह) की प्रायः हरेक शुभ अवसर पर स्मृति आती रही है।

अतएव, रायसिंह को उचित है कि गत समय के आचरण के विरुद्ध अब अब से सदैव पत्र भेजा करे जिनके उत्तर में उसे शाही कृपा पत्रों से सम्मानित किया जायेगा।

उस हितैषी (मित्र) को सूचित किया जाता है कि एक जौहरी हमें भेंट देने के लिये एक मानिक ला रहा था लेकिन उसे उसने (राय रायसिंह ने) अनजान में उससे खरीद लिया। यद्यपि हम उस विश्वास-पात्र की सम्पत्ति को हमारी ही समझते हैं पर यदि वह उस मानिक को भेंट करना न चाहे तो उसे हमारे विश्वास-पात्र (नौकर) लालमियां द्वारा इसकी कीमत चुका दी जावेगी।

हमें हमारे प्रति उसकी श्रद्धा में पूरा विश्वास है कि वह लालमियां को वह मानिक उसी दिन (जिस दिन वह वहां पहुंचे) सौंप देगा ताकि वह उसे हमारे पास ला सके।

इसके साथ रेशमी खिलअत भेजी जा रही है।

इलाही सन् ४७ ता: ४ आजर
(नवम्बर, १६०२)

परिशिष्ट--३

ईश्वर महान् है

जहाँगीर

हुमायूँ के पुत्र अकबर शाह के पुत्र सुल्तान सलीम की मोहर।
विजयी सुल्तान सलीम, जहाँगीर गाजी, जिसके पिता का आदेश
विश्व मानता है।

साम्राज्य के आधार-स्तम्भ, शाही कृपाओं के योग्य तथा बहुत से उपहारों से सम्मानित रायसिंह को सूचित किया जाता है कि शहंशाह गत कुछ दिनों से बहुत कमजोर हो गये हैं और उनकी कमजोरी अब तक वैसी ही बनी हुई है।

अतएव यह आवश्यक है कि साम्राज्य का आधार (रायसिंह) शाही दरबार में शीघ्रातिशीघ्र रात और दिन अधिक से अधिक चलकर पहुँच जावे। किसी भी कारण से उसे रुकना नहीं चाहिये।

इलाही सन ५० ता० २६ मेहर
(सितम्बर, १६०५)

परिशिष्ट--४

ईश्वर महान् है

हुमायूं के पुत्र अकबर के पुत्र सुल्तान सलीम की मोहर।
विजयी सुल्तान सलीम जहांगीर गाजी, जिसके पिता का आदेश विश्व मानता है।

शाही कृपा तथा उपकार के योग्य, शाही प्रतिष्ठा प्राप्त रायसिंह को मालूम हो कि हमने सुना है कि ढीठ दलपत ने उसके (रायसिंह के) प्रति बहुत ही खराब, नीचता पूर्ण और दुर्भाग्यपूर्ण व्यवहार किया है और फलस्वरूप उसने (रायसिंह ने) सेना लेकर उसे घेर लिया है।

हम यह बर्दाश्त नहीं कर सकते कि कोई पुत्र अपने पिता के प्रति ऐसा अभद्र व्यवहार करे। हमारे मन में आया कि हम अपनी विजयी सेनाएँ भेज कर उसे ऐसा दण्ड दें जो दूसरे ऐसे ढीठ लोगों के लिये भी एक सबक हो।

लेकिन इस मामले में हमें उसकी (रायसिंह की) ओर से कोई खबर नहीं मिली अतः हमने सोचा कि शायद यह बात झूठ हो। इसीलिये हमने अपनी विजयी सेनाएं नहीं भेजीं।

यदि वास्तव में यह खबर सत्य हो कि दलपत गड़बड़ी करना चाहता है तो उसे (रायसिंह को) फरमान मिलने के दिन ही सारे हालात हमें भेज देने चाहिये ताकि हम यहां से शाही सेना भेज दें जो दलपत को हरा कर उसे कड़ा दण्ड दें।

हमने बहाउद्दौला के वंशज को शाही कृपा के योग्य रायसिंह को दरबार में लाने के लिये नियुक्त किया था लेकिन बीमार होने के कारण उसके आने में कुछ दिनों का विलम्ब हो गया है। उसे यह भी आज्ञा दी गयी थी कि वह इस मामले की रिपोर्ट करे ताकि उसके नाम से आदेश जारी किया जाय कि वह शाही सम्मानों के योग्य रायसिंह को अपने साथ शाही दरबार में ले आये।

उसे (रायसिंह को) यह हमेशा विश्वास रखना चाहिये कि ऐसे मामलों में हम उसी का पक्ष लेंगे।

ता० २ आबान
रजब-उल-मुरज्जब, हिजरी सन् १०१५
(नवम्बर, १६०७)

परिशिष्ट--५

अकबर

अमीर तैमूर साहिब किरन के पुत्र मीरां शाह, उसके पुत्र सुल्तान अबू सैयद मिर्जा, उसके पुत्र अमर शेख मिर्जा, उसके पुत्र बाबर, उसके पुत्र हुमायूँ बादशाह उसके पुत्र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह की मोहर।

हमने अभी-अभी यह हुक्म जारी किया है कि इलाही सन् ४१ के बीची-इल की खरीफ (सियालू) की फसल के आरम्भ में ताहाड़, कसूर और आटगढ़ के परगनों के बदले में साम्राज्य के सार तत्व राय रायसिंह को निर्याद का परगना जागीर के रूप में दिया जाय। जैसा कि इस फरमान के पीछे लिख दिया गया है। उसे इसकी उपज लेकर अपना कर्त्तव्य पूर्ण निष्ठा से पालन करना चाहिये।

उक्त परगने के चौधरियों, मुखियाओं, कानूनगों, रैयत और किसानों का यह कर्तव्य है कि वे इस लिखित आदेश का पालन कर राय-सिंह को अपना जागीरदार समझें तथा उसके वकीलों (प्रतिनिधियों) के कथन और सुझावों की उपेक्षा न करें। उनके कथन और सुझाव सर्वमान्य शाही आज्ञा के पूर्णतः अनुकूल हैं और प्रशासकीय कार्यों की दृष्टि से हैं।

उन्हें बिना कोई बहाना या सावधानी किये सारे आवश्यक कर भी चुका देने चाहिये और उनके चुकाने में विलम्ब या कमी नहीं करनी चाहिये। उन्हें इसे बहुत ही महत्वपूर्ण समझना चाहिये और बिना विवाद के इसके पालन का उद्यम करना चाहिये।

हमारी शुभ आज्ञा के समान उन्हें चाहिये कि वे इस आदेश को मानें और उससे हटें नहीं।

इलाही सन् ४१ ता० ५ उर्दी बिहिश्त
(अप्रैल १५९६)

परिशिष्ट--६

अकबर

जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह वल्द हुमायूं बादशाह वल्द बाबर बादशाह वल्द उमर शेख मिर्जा वल्द सुल्तान अबू सैयद मिर्जा वल्द मीरांशाह वल्द अमीर तैमूर साहिब किरन की मोहर ।

अपरिचितों के प्रति नम्रता दिखाना और दोषियों को क्षमा करना चूंकि शासक का प्रशंसनीय गुण है अतः हमने शाही प्रतिष्टा प्राप्त और कृपाओं के योग्य रायसिंह का अपराध क्षमा कर दिया है। जैसा इस फरमान के पीछे लिखा है इलाही सन् ४३ की रबी की फसल के आरम्भ से हमने उसे जूनागढ़ और दूसरे जिलों की जो जागीर दी थी वह उसे वापस लौटाने के बाद उसे जाने की छूट दी जाती है ।

गुजरात प्रांत के लिपिकों तथा विशेषतः सोरठ के जागीरदारों का कर्त्तव्य है कि ज्योंही उन्हें इस शाही आज्ञा का ज्ञान हो त्योंही वे इसका पालन करें और फरमान के पीछे दिये गये विवरण के जिले उस (रायसिंह) के आदमियों को सौंप दें। लिखित और प्रमाणित आज्ञा के अभाव में उन्हें इस आदेश के पालन में हिचकिचाहट नहीं दिखानी चाहिये क्योंकि इसके पूर्ण होने पर वह आज्ञा भी शीघ्र ही जारी की जायेगी ।

उक्त परगनों के किसानों को रायसिंह को अपना जागीरदार समझना चाहिये और सभी राजस्व देने और दूसरे कामों में उसकी आज्ञा माननी चाहिये ।

लाहौर, राजधानी से प्रेषित सन् जुलूस ४२ ता० ६ दे
(फरवरी १५९७)

परिशिष्ट--७

ईश्वर महान् है

जलालुदीन मोहम्मद अकबर बादशाह वल्द हुमायूं बादशाह वल्द बाबर बादशाह वल्द ऊमर शेख मिर्जा वल्द सुल्तान अबू सैयद मिर्जा वल्द मीरांशाह वल्द अमीर तैमूर साहिब किरन।

जलालुदीन मोहम्मद अकबर बादशाह-ए-गाजी का फरमान।

इस महत्वपूर्ण तथा शुभ हुक्मनामे के जारी किये जाने के लिये अभी अभी यह आज्ञा दी गई है कि अब से शमसाबाद के परगने के दो भाग होंगे-- एक पहले की भांति शमसाबाद कहलायेगा व दूसरा नूरपुर कहलायेगा। गंगा नदी के इस ओर के गांव नूरपुर परगने में होंगे और उनको इसी नाम से पुकारा जायेगा अथवा उनके लिये लेखों में यही नाम प्रयोग होगा। गंगा के दूसरी ओर के गांव शमसाबाद के परगने में होंगे।

ये दोनों परगने मालगुजारी के लिहाज से सामंतों में श्रेष्ठ राय रायसिंह राठौड़ को बतौर जागीर बख्शे जाते हैं और सब प्रकार के परिवर्तनों से मुक्त समझे जाने चाहिये।

क्योंकि यह महल (जिले) बहुत काल से राठौड़ों की जागीर में सम्मिलित थे, हमने हमारी कृपा के चिन्ह स्वरुप ये दोनों परगने उस को बतौर रिहायशी जागीर बख्शे हैं।

माननीय सूबेदार, प्रतिष्ठित एवम् योग्य दीवान, कर वसूल कर्ता, जागीरदार, दीवानी के मुख्तार खास व सर्वोच्च दीवान के पेशकार, इस आज्ञा को प्रमाणित मानकर इसका अमलदरामद अपने रजिस्टरों में करें और इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन व कमी न होने दें।

चौधरी लोग, कानूनगो, मुखिया, किरायेदार व काश्तकार हमारी पवित्र आज्ञा के अनुसार और उसके पालनार्थ अब से इस महल (जिले) को अपनी हिसाब की किताबों में इनका दो भागों में उल्लेख करेंगे और रायसिंह को अपना जागीरदार मानकर वाजिब लगान उसको देंगे।

उन्हें इस आज्ञा की अवहेलना नहीं करनी चाहिये।

—ता० २१ खुर्दाद इलाही ४६
मई, १६०४

परिशिष्ट—८

औरंगजेब

समकालीनों में श्रेष्ठ, अनूपसिंह, इस्लाम के सामने नत होने वाले और शाही कृपाओं की इच्छा रखने वाले, को यह मालूम होना चाहिये कि अपने सौभाग्य से वनमालीदास, उसका भाई, हमारी स्वर्ग के समान ड्योढ़ी पर हाज़िर हुआ तथा उसे हमें कोर्निश करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और शाही कृपापात्र बना। साम्राज्य के प्रबन्धकर्ता, सब वजीरों में से अत्यधिक विश्वस्त, उच्च खानों में सर्वोच्च, साम्राज्य और शासन के प्रबन्धकर्ता, उन्नति और गौरव के पथ का दिग्दर्शक, अनेक कृपाओं का पात्र, अनेक इज्जत के योग्य, खुशकिस्मत प्रधान, साम्राज्य में श्रेष्ठतम और मुदार-उल-मुहम (विशेष कार्यों का कर्णधार) जफर खां के द्वारा उसकी (अनूपसिंह की) अविचलित श्रद्धा व स्वामिभक्ति के विषय में हमें ज्ञात हुआ।

हमें यह भी ज्ञात हुआ कि राव करणसिंह सामन्तों में श्रेष्ठ (अनूपसिंह) के विषय में सन्देहशील हो गया है और उससे नाराज़ हो गया है और उसे नुकसान पहुँचाने की चेष्टा में रत है और यह कि कृपा पाने योग्य वह (अनूपसिंह) प्रार्थना करता है कि यदि उसे अपने पिता का उत्तराधिकारी बनाये जाने की कृपा हुई तो वह सदा श्रद्धावान व स्वामिभक्त बना रहेगा।

अतः हमने अपने मन्त्रियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मन्त्री (जफर खां) को आज्ञा दी थी कि वह हमारी आज्ञा के पालन में उसको पत्र लिख कर इस विषय की जानकारी प्राप्त करे। उच्च पदों को सुशोभित करने वालों में से इस युवक (युवक राजा अनूपसिंह) ने लिखा कि यदि उस पर बादशाह सलामत की कृपा हुई और यदि शुभ पंजा लगा हुआ फरमान उसके नाम से जारी किया गया तो वह इस इलाके के प्रशासन को सुव्यवस्थित करने और बीकानेर के गढ़ की सुरक्षा करने में सफल होगा। इससे हमारी महरबानियां और भी बढ़ गईं।

जब कि पूर्व उल्लिखित राव करण ने इन दिनों कोई कार्य नहीं किया और अपने अभाग्यवश हमारी आज्ञाओं के पालन करने में शिथिलता प्रदर्शित की और एक बार फिर से दोषी बना, अतः हमारी कृपाओं में हमने सामंतों के नेता (अनूपसिंह) को २००० जात व १५०० घोड़ों का

मनसब बख्शा जो कि राव करण को राव सूर की मृत्यु के बाद बादशाह फिरदौस आशियानी (स्वर्गीय शाहजहां), जो कि अब बहिश्त में निवास कर रहे हैं, के राज्यकाल में बख्शा गया था।

इसी प्रकार हमने उसकी पदोन्नति राव की पदवी देकर, खिलअत, झंडा लेकर चलने वाला घोड़ा व बीकानेर और उसके आसपास के जिले, जो कि पहले राव करण की जागीर थे, देकर की है और जिसके लिये अलग फरमान जारी किया गया है जो इसी फरमान के साथ भेजा जायेगा।

उस सामंतों में श्रेष्ठ की तसल्ली के लिये व उसकी पदोन्नति करने के विचार से हमने इस प्रकाशमान फरमान पर अपना पंजा लगाया है। उसे कृपाओं के पात्र और शाही दरबार के विश्वस्त कर्मचारी सैफुल्ला के साथ भेज रहे हैं।

यह श्रेष्ठ फरमान मिलने पर और हमारी कृपाओं का ध्यान रख कर उसको इन उपहारों व कृपाओं के लिये धन्यवाद देना चाहिये। उसको करण के नौकरों को चुप करने व अपनी ओर मिलाने का और वहां के गढ़ और बीकानेर के जिलों की सुरक्षा के लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिये।

उसको अपने आपको हर प्रकार से सन्तुष्ट रखना चाहिये तथा अपने आपको विश्वास के मार्ग पर दृढ़ रखना चाहिये और निरन्तर स्वामिभक्त बना रहना चाहिये। फतहपुर और झूंझनू के परगने के जागीरदार अलफ खां, समृद्धिशाली नगर अजमेर के फौजदार अमानत खां और चकला हिसार के मुतसद्दी रसकदास को एक आदेश जारी कर दिया गया है कि युद्ध के समय कृपाओं के पात्र (अनूपसिंह) की मदद के लिये वे बड़े लश्कर के साथ तैयार रहें।

साम्राज्य के विश्वस्त (जफर खां) के द्वारा भेजे गये और सैफुल्ला द्वारा बताये गये दूसरे विषयों की जानकारी प्राप्त होने पर उसे वैसा ही करना चाहिये और अपना उत्तर शाही दरबार में उनके द्वारा भेजना चाहिये।

कृपा के पात्र (अनूपसिंह) की सिफारिश पर उसके भाई बनमालीदास को शाही कृपा का पात्र बनाकर ढाढस दिया गया है और छुट्टी दे दी गई है।

—६ रबी-उल-अव्वल, १०
११ जनवरी १६६७

परिशिष्ट--९

राजपूताना स्थित गवर्नर जनरल के कार्यवाहक एजेंट ब्रिगेडियर जनरल जी० सेन्ट० पी० लारेन्स के ता० २७ जुलाई १८५८ के भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव जी० एफ० एडमँसटन के नाम पत्र का अंश ।

—

× × ×

२८. १ जून को आबू छोड़ने पर मैंने सहायक लेफ्टिनेंट माइल्डमे को जिसका स्वास्थ्य ठीक न था, कार्यालय की देखरेख के लिये छोड़ दिया था। लेकिन १५ दिन बाद जब उसका स्वास्थ्य सुधर गया तो मैंने उसे बीकानेर भेजा ताकि वह उस रियासत की सेनाओं का नेतृत्व करे। यह सेना सिरसा, हिसार और हांसी के विद्रोही जिलों में जनरल वान कोर्टलेंड को पंजाब आक्रमण में सहयोग दे रही थी। लेफ्टिनेंट माइल्डमे ने महाराजा को अपनी सीमा के किले भादरा में अपनी सेना का सेनापतित्व इतने उत्साह से करते हुये पाया जो एक देशी राजा में विरल है। वहाँ से लेफ्टिनेंट माइल्डमे ८०० बीकानेरी अश्वारोही सेना लेकर जनरल वानकोर्टलेंड के शिविर के लिये रवाना हुआ।

२९. थोड़े समय के लिये बीकानेर की सेना ने हाँसी और हिसार की रक्षा की। १९ अगस्त को जब हाँसी में हमारे सिपाहियों पर विद्रोही गांव वालों ने लगभग तीन हजार की संख्या में हमला किया तो लेफ्टिनेंट माइल्डमे ने बीकानेरी सेना का सेनापतित्व किया। आक्रमणकारियों को पीछे हटा दिया गया और उनका मार्ग रोक दिया गया। लेफ्टिनेंट माइल्डमें जनरल वानकोर्टलेंड के आदेशानुसार कार्य कर रहा था। उसने जनरल वानकोर्टलेंड को जो रिपोर्ट भेजी वह निसंदेह जनरल वानकोर्टलेंड द्वारा सरकार के ध्यान में लाई गयी है।

३०. इन आक्रमणों में लेफ्टिनेंट माइल्डमे और महाराजा बीकानेर दोनों ने समान कठिनाइयों का अनुभव किया। जैसा मैं पहले लिख चुका हूँ यही बात मेवाड़ और मारवाड़ के लिये भी समान थी। वे अपनी ओर से आक्रमण नहीं करेंगे लेकिन महाराजा बीकानेर के समर्थन और निजी

उदाहरण तथा उनकी सेना की उपस्थिति से हमारा पक्ष मजबूत हो गया।

३१. बीकानेर के कुछ धनवान व प्रभावशाली घरानों द्वारा किये गये झगड़े और षड्यन्त्रों ने महाराजा की शक्ति को काफी कमजोर बना दिया। लेफ्टिनेंट माइल्डमे ने जब यह बात मुझे बताई तो मैंने अवसर पाकर इन घरानों के एक सदस्य को बर्खास्त कर दिया जो कि इस एजेंसी में वकील था और जिसने बहुत वर्षों तक अपने पद का उपयोग अपने ही हितों के लिये किया था।

३२. लेफ्टिनेंट माइल्डमे अक्टूबर के महीने तक बीकानेर द्वारा सहायता के लिये भेजी गयी सेना के साथ मैदान में रहा। जब उसका स्वास्थ्य पुनः खराब होने लगा वह मुझसे और पंजाब के मुख्य आयुक्त से धन्यवाद पाकर एवं बीमारी का प्रमाण पत्र देकर इंग्लैंड चला गया।

× × ×

परिशिष्ट--१०

गवर्नर जनरल के राजपूताना स्थित सहायक एजेंट लेफ्टिनेंट ए० जी० होम माइल्डमे जो बीकानेर में विशेष ड्यूटी पर था, द्वारा ता० २४ सितम्बर १८५७ को गरुड शिविर से गवर्नर जनरल के राजपूताना स्थित एजेंट ब्रिगेडियर जनरल सेंट पैट्रिक लारेंस के नाम भेजे गये पत्र की प्रतिलिपि।

जनरल वान कोर्टलेंड ने बीकानेर महाराजा की सेना के एक बड़े भाग को सेवा में न रख कर केवल २०० पैदल और १५० घुड़सवारों को ही रक्खा है, मैं स्वयं कई बार और लम्बे समय तक बुखार से पीड़ित रहा हूँ। सेना के साथ के डॉ० लैम्ब ने मुझे लड़ने के बिलकुल अयोग्य घोषित कर दिया है। १६ तारीख को हांसी से रवाना होने से एक दिन पहले तक मुझे बिस्तर पर ही रक्खा गया। बीकानेर लौटने पर मैं महाराजा की सेना के साथ बीकानेर लौट आया हूँ। मैं ससम्मान उनके द्वारा की गयी सेवाओं को आप के ध्यान में ला रहा हूँ। मुझे आशा है कि आप अपने अधिकार द्वारा महाराजा को अपनी ओर से एक खरीता भेज कर कृतज्ञता प्रकट करेंगे और गवर्नर जनरल से भी एक ऐसा ही सम्मान का पत्र उन्हें भिजवायेंगे।

२. यह दुर्भाग्य की बात थी कि बीकानेर की सेना ओढवाला और खैसाकाज की लड़ाइयों में भाग लेने के लिये बहुत ही देर से पहुंची। यह सिरसा में केवल उसी समय पहुंची जिस समय जनरल वान कोर्ट लेंड की सेना ने वहां प्रवेश किया। लेकिन उनके वहां पहुँचने के कुछ दिन बाद जनरल वान कोर्ट-लेंड ने उनमें से ५०० की एक टुकड़ी को लेफ्टिनेंट पियर्स के सेनापतित्व में हिसार पर अधिकार करने भेजा। बाद में इस सेना की संख्या बढ़ा कर १७०० कर दी गयी। चाहे उस समय इसकी आवश्यकता होने या न होने का प्रश्न रहा हो लेकिन बाद में हिसार पर मंगली और पड़ौसी राँघड़ ग्रामीणों ने हमला किया तो अब उस समय सैनिकों की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता के बारे में सन्देह नहीं रह जाता।

३. तीन सप्ताह तक बिना विरोध के इस सेना ने हिसार की रक्षा की। वे नगर के और चारों ओर के गाँवों के दुष्ट प्रवृति वाले लोगों को तब तक डराते रहे जब तक कि जनरल वान कोर्टलेंड की सेना वहाँ

नहीं पहुँच गयी। इस सेना के पहुँचने के पहले बहुत से लम्बरदार आये और उन्होंने लेफ्टिनेंट पियर्स की अधीनता मान ली।

४. जनरल वान कोर्टलेंड की सेना तीन सप्ताह तक हिसार में रही। इस अवधि में बीकानेर के घुड़सवार लगातार अपराधियों का भय मिटाने और राजस्व वसूल करने के काम में लगाये गये। २१ जुलाई को जनरल की आज्ञा से मैं एक हजार सैनिक और २ तोपें लेकर हाँसी को मुक्त कराने गया। इस पर विद्रोहियों ने हमला कर दिया था। मैंने वहाँ ५०० सैनिकों की टुकड़ी छोड़ दी। ८ अगस्त को वहाँ जनरल के पहुँचने तक – तीन सप्ताह तक – इन सैनिकों ने नगर की रक्षा की।

५. इस टुकड़ी की मदद करने के लिये २०० बीकानेरी सैनिक भी भेजे गये थे क्योंकि ४ अगस्त को एक सम्भावित आक्रमण की सूचना मिली थी। २३ अगस्त को हजीमपुर जलाने के समय बीकानेर के सारे घुड़सवार मेरे साथ उपस्थित थे। हिसार में मेरे सेनापतित्व में सेना ने जो लड़ाई लड़ी उसमें विद्रोही सेना को शहरपनाह से पीछे हटाने में महाराजा के अंगरक्षकों ने मदद दी। उसी महीने की १६ ता० को चिमनराम पुरोहित के आधीन बीकानेरी टुकड़ी ने शहरपनाह पर अधिकार कर लिया था। लेफ्टिनेंट पियर्स के साथ वाटूल लेने में जो थोड़े से बीकानेरी थे, उनमें से एक शामपुरा के राठौड़ खेतसिंह ने अपनी अद्भुत वीरता दिखाई। दुश्मनों की लगातार गोलाबारी के बीच वह शहरपनाह पर चढ़ गया। उसकी इस अद्भुत वीरता ने जिलाधीश मि० फोर्ड का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया जो वहाँ उपस्थित था।

६. जनरल की इच्छा पर मंगली पर आक्रमण करने के लिये बीकानेर की दो तोपें भेजी गयीं। बीकानेर की एक टुकड़ी ने कुछ समय तक तोशाम की तहसील की रक्षा की। यद्यपि अन्त में उन्हें वहां के मुसलमान निवासियों ने धोखा दिया और विद्रोही सेना फाटकों पर हावी हो गयी तो भी तहसीलदार और थानेदार को बचाने के लिये यह टुकड़ी तहसील में बहादुरी से लड़ी। इसमें वहां उपस्थित इनके तीन सरदार मारे गये इनमें नीमराणाँ के मोहकमसिंह, कूंजला के मिट्ठूसिंह राठौड़ और बिरकाली के खुमानसिंह राठौड़ थे। इनके अलावा गुमानसिंह जाटू और दूसरे लोग बहुसंख्यक विद्रोहियों से लड़ते मारे गये।

७. जनरल वान कोर्टलेंड के जाने के बाद वे हिसार में सेना

के एक अंश रहे और उन में से २०० तो अब भी उस रूप में काम कर रहे हैं।

८. जमालपुर लेने के समय बीकानेर की सारी घुड़सवार सेना उपस्थित थी। यहाँ उनका एक व्यक्ति घायल हुआ। न तो इन्हें और न किसी दूसरी घुड़सवार सेना को वहां लड़ाई करनी पड़ी।

९. कुछ समय तक स्वयं महाराजा एक बड़ी सेना के साथ सीमा के पास उपस्थित था। उसमें उनको काफी व्यक्तिगत असुविधा हुई और काफी खर्चा हुआ। उनके जाने के बाद, जो घटनायें हुई उन्होंने प्रत्यक्ष कर दिया है कि वहां उनके उपस्थित रहने से मंगली, श्रीवैसु तथा उसके पास के दूसरे गांव के दुष्ट प्रवृति के रांघड़ उस समय शांत रहे।

१०. ज्वर के कारण हांसी में लगभग सारी सेना लड़ने में अयोग्य होगई। उनके बहुत से आदमी ज्वर से मर गये। मुझे यह कहते हुये अफसोस होता है कि इनमें उनके प्रधान मोतमिद साह लालचन्द्र और लक्ष्मीचन्द सुराणा थे। इन दोनों के और उनके रिश्तेदार और साथी फतेह चन्द सुराणा और ठाकुर हुकमसिंह भाटी के आने के बाद न तो जनरल वान कोर्टलेंड को और न मुझे एक बार भी ऐसा मौका मिला कि हम उनके विलम्ब की शिकायत करते अथवा और कोई भी मांग करने पर अपनी पूर्ण योग्यता के साथ तुरन्त उसे पूरा करने की चेष्टा न करने की शिकायत करते। मुझे यह कहते हुये अफसोस होता है कि उनके पहले वाले लोगों के साथ यह बात न थी।

११. अन्त में मुझे विश्वास है कि यद्यपि मैंने किसी अद्भुत बहादुरी के काम का उल्लेख नहीं किया है तो भी महाराजा की सेना द्वारा दी गयी सहायता आप द्वारा ऐसी समझी जाय कि आप महाराजा को धन्यवाद और इस सहायता की स्वीकृति का एक खरीता भेजना जरूरी समझेंगे। जिनकी सेवाओ का मैंने विशेष रूप से उल्लेख किया है मैं उनके नाम लिखे जाने की नीति का सुझाव दूँगा ताकि किसी भावी अवसर पर और भी अधिक उत्साह दिखाया जाय। स्वयं महाराजा ने हमारे लिये जो प्रेम ओर सहृदयता दिखाई है वह निश्चय ही इस स्वीकृति के योग्य है।

१२. मैं स्वयं आप को पहिले ही लिखता लेकिन बीमारी से बुरी तरह जकड़े होने के कारण ऐसा नहीं कर सका। मैं अब तक बैठने में समर्थ नहीं हूँ। मेरे पास कोई अंग्रेजी लिखने वाला भी नहीं है अन्यथा मैं यह पत्र पहले लिखा देता।

परिशिष्ट--११

गवर्नर जनरल के राजपूताना स्थित एजेन्ट द्वारा ता० २१ दिसम्बर १८६० को भारत सरकार के विदेश विभाग के सचिव को भेजा गया पत्र ।

—

इस पत्र के साथ मैं एक मूल खरीता और उसका अंग्रेजी अनुवाद जो इसके संलग्न था, भेज रहा हूँ । यह बीकानेर के महाराजा ने महामहिम भारत के वाइसराय और गवर्नर जनरल को भेजा है। मैं आप से अनुरोध करता हूँ कि क्या आप कृपा करके निम्नलिखित बातें महामहिम के विचार हेतु प्रस्तुत करने की कृपा करेंगे ?

विद्रोह के समय जिन लोगों ने अच्छी सेवाये की उन्हें नवम्बर सन् १८५६ में आगरा में हुये एक विशाल दरबार में महामहिम ने पुरस्कार दिये। इससे पुरस्कार देने का विषय सम्भवतः समाप्त माना जाता है। इस को पुनः उठाना अनियमित माना जा सकता है। उस समय गवर्नर जनरल के कार्यवाहक एजेंट मेजर ईडन ने जो सिफारिशें की उनका उल्लेख करना भी अशिष्ट लगे। पर सरकारी ढंग के परम्परागत नियमों से बाहर जाने वाला कहलाने का खतरा उठाकर भी मैं अनुभव करता हूँ कि यदि मैं एक भूल की ओर महामहिम का ध्यान आकर्षित न करूं तो सरकार के प्रति अपने कर्त्तव्य से च्युत होऊंगा । सरकार ने वहुत ही उदारता से योग्य व्यक्तियों को सम्मान और पुरस्कार दिये हैं लेकिन उस समय बीकानेर के मामले में एक भूल हो गयी। इसे मैं इस आशा से ध्यान में ला रहा हूँ कि यदि सम्भव हो तो इसे सुधारा जाय।

मेरे लौटने पर यह बात मुझे स्पष्ट हो गयी है कि राजपूताना में जयपुर ही केवल ऐसी रियासत है जिसका दरबार प्राप्त पुरस्कारों से संतुष्ट है। उनको जो धन और सम्मान मिला है उससे बीकानेर और दूसरे स्थानों, जिन्होंने मेरे मत में जयपुर से अधिक सेवायें की हैं, में एक निराशा की भावना पैदा की है क्योंकि उनकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना जयपुर की ओर दिया गया। झालावाड़ के राजघराने ने विद्रोही सेना को रसद देने से इन्कार कर दिया था अतः उसे बहुत नुकसान उठाना पड़ा और बड़ी मुश्किल

से उसके प्राण बचे। वास्तव में जब मैं यह पत्र लिख रहा हूँ राजराना ने एक निजी मुलाकात में मेरे से इस बात की कड़ी शिकायत की है कि उसके खिलअत के केवल दो हजार रुपये ही निश्चित किये गये जबकि उसके ससुर जयपुर के मन्त्री को ५००० रुपये मिले।

मेजर ईडन पहले जयपुर में पोलिटिकल एजेंट रह चुके हैं और महाराजा के उन पर बहुत अहसान हैं। सम्भवतः इसी से उत्सुक होकर उन्होंने जयपुर की इच्छाओं की ओर काफी ध्यान आकर्षित किया। लेकिन ऐसा लगता है कि बीकानेर, करौली, आदि की तुलनात्मक सेवाओं का उन्होंने ध्यान नहीं रक्खा। विद्रोह के समय ये सेवायें तुरन्त उनके ध्यान में नहीं लायी गयी थीं। लेकिन मैंने इनके द्वारा की गयी सेवाओं का कार्यालय में रेकार्ड छोड़ा था और मैं सोचता हूँ कि इस रेकार्ड से उन्हें अधिक मार्ग दर्शन लेना चाहिये था।

अतः जहां तक महाराजा बीकानेर की शिकायत का सम्बन्ध है मैं महामहिम गवर्नर जनरल से सरकारी रेकार्ड के निरीक्षण करने का अनुरोध करूँगा। ६ जनवरी १८५६ के अपने मुरासिला में मैंने लिखा था—

"बीकानेर के महाराजा सरदारसिंह ने विद्रोह के आरम्भ से ही सक्रिय रूप से अंग्रेज सरकार के प्रति सबसे अधिक स्वामिभक्ति, मित्रता और निष्ठा दिखाई है। युद्ध में उन्होंने हमें हार्दिक सहयोग दिया।

राजा ने कई यूरोपियनों को बचाने, शरण देने और उनको भोजन आदि देने में जो सेवायें की उनसे भारत सरकार पहले से ही भली भाँति परिचित है। इस प्रांत की सेना जनरल वान कोर्टलेंड की अधीनता में हांसी और हिसार में रक्खी गयी। महाराजा अपनी सेना के साथ अपनी सीमा पर गया और उसके बाद जहां और जब भी आवश्यकता हुई हमारी मदद के लिये तत्पर रहा। महाराजा के इस सर्वश्रेष्ठ व्यवहार ने केवल अपने वंशजों के लिये ही नहीं बल्कि राजपूताना के राजाओं के लिये एक अपूर्व उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने ऐसा साहस और शक्ति दिखाई जो अन्यत्र देखने में नहीं आयी। मैं सोचता हूँ कि महाराजा उस सर्वोच्च पुरस्कार को पाने के अधिकारी हैं जो सरकार प्रसन्न होकर सर्वाधिक प्रशंसनीय राजपूत रियासतों को देना स्वीकार करे। दिल्ली में जब्त महलों में से भी एक महल पुरस्कार में दिया जा सकता है।"

२१ जुलाई सन् १८५८ की मेरी रिपोर्ट में इस राजा की अच्छी सेवाओं का उल्लेख है। महाराजा और उसकी सेना ने हमें जो सहायता

प्रदान की उसका विवरण जानने के लिये मैंने अपनी रिपोर्ट में पंजाब सरकार और जनरल वान कोर्टलैंड की रिपोर्टों की ओर सरकार का ध्यान दिलाया है।

महाराजा ने जो पत्र अब अंग्रेजी में भेजा है उसमें परिस्थितियों का बढ़ाकर वर्णन नहीं है। मैं महाराजा द्वारा कही गयी सभी बातों से सहमत होने में लाचार हूँ। विद्रोह आरम्भ होते ही महाराजा तुरन्त हमारी सहायता के के लिये अपनी सुदूर सीमा के लिये रवाना होगया। उन्होंने अपने साहस और अपनी स्वामिभक्ति के उदाहरण से असंतोष को रोक दिया और अस्थिर चित्त लोगों को विश्वास प्रदान किया। बिना हिचक के बीकानेर को छोड़कर राजपूताने का अन्य कोई राजा हमारे लिये स्वयं लड़ने नहीं आया। यद्यपि सभी ने आतिथ्य पूर्ण आश्रय और सहायता दी पर किसी अन्य राजा ने शरण चाहने वालों की खोज करने और बचाने में ऐसी सहायता नहीं की। हमें अपनी सक्रिय सहायता देने में किसी अन्य राजा ने ऐसी विशुद्ध निस्वार्थ भावना नहीं दिखाई। विशुद्ध रूप से हमारे लिये लड़ते हुये और किसी राजा को राजपूत वीरों और सरदारों का इतना भारी नुकसान नहीं उठाना पड़ा जितना बीकानेर के राजा को।

इन्हीं कारणों से मैंने माना और अब भी मानता हूँ कि बीकानेर के राजा की स्वामिभक्ति और अच्छी सेवाएं जयपुर सहित राजपूताना के किसी अन्य राजा से अधिक श्रेष्ठ हैं। मेरे मत में ये सेवाएं ऐसी हैं कि उन्हें रीवां और चरखारी के राजाओं की श्रेणी में ही रक्खा जाय जिन्हें खिलअत और अन्य आनरेरी सम्मान देने के साथ-साथ जागीर भी दी गयी है।

मैं महामहिम का ध्यान महाराजा के पत्र के उत्तरार्ध की ओर आकर्षित करने का अनुरोध करूंगा। इसमें उन्होंने दरबा आदि ४५ गांवों का संकेत किया है जो बीकानेर के इलाके से छीन लिये गये थे। अपने कार्यालय में रेकार्ड के अभाव में मैं यह बताने में असमर्थ हूँ कि उपर्युक्त गांव क्यों जब्त किये गये अथवा पहले इन गांवों को वापस लौटाने के बारे में जो पत्र व्यवहार हुआ उसमें विलम्ब के क्या कारण थे। महाराजा का जो वकील मेरे पास रहता है, कहता है कि इन गाँवों की वार्षिक आय ३०,००० रु० है। ये गांव ३०० वर्षों तक उसके मालिक के कब्जे में रहे लेकिन जब अंग्रेजी सेना उस इलाके पर अधिकार करने के लिये भुटियाना में प्रविष्ट हुयी तो कुछ स्वार्थी लोगों ने यह झूठी बात कही कि दरबा जिला भी भट्टियों का था। फलस्वरूप इस पर अधिकार कर लिया गया।

बिना और जांच किये मैं उपर्युक्त कथन की सत्यता निकालने में

असमर्थ हूँ। लेकिन यदि महामहिम गवर्नर जनरल विद्रोह के समय बीकानेर के महाराजा के व्यवहार पर एक नई दृष्टि डालकर उसके मामले को सहानुभूति से देखें तो मैं यह सुझाव देने की विनम्र छूट चाहता हूँ कि महाराजा साहब द्वारा मांगे गये गाँव हिसार में स्थित होने के कारण जागीर में देना असुविधा-जनक लगे तो भुट्टियाना के क्षेत्र का इतनी ही मूल्य का भूभाग दिया जा सकता है। यह उत्तर पश्चिम की ओर स्वतन्त्र रियासतों के बीच एक काफी लम्बी पट्टी के रूप में फैला हुआ है।

यदि मैंने इस मामले को महामहिम (गवर्नर जनरल) के सम्मुख रखने में अपने कर्तव्य की सीमा का उल्लंघन किया हो तो सच्चे सहायक के प्रति न्याय बुद्धि और मेरा यह विश्वास कि मेरी सरकार बीकानेर राजा की अमूल्य सेवायें खाली न जाने देगी, मेरे इस अनुरोध के कारण समझे जांय। मुझे विश्वास है कि मेरा यह अनुरोध श्रीमान लाट साहब द्वारा माना जायेगा।

परिशिष्ट--१२

इन्डिया हाउस
लंदन।
१५ दिसम्बर, १८५६

श्रीमान,

महारानी ने मुझे आज्ञा प्रदान की है कि मैं श्रीमान के पत्र की प्राप्ति स्वीकार करूँ और इसमें लिखित मित्रता के आपके आश्वासन के लिये महारानी की ओर से कृतज्ञता प्रकट करूँ।

भारत में अभी विद्रोह के समय श्रीमान ने जिस राजभक्ति और मैत्री का परिचय दिया, उसका महारानी को पूरा पूरा ज्ञान है। इस अवसर पर आपने अंग्रेजी सेना तथा सरकार को जो सहायता पहुंचाई उसकी वे हार्दिक प्रशंसा करती हैं। ऐसे समय में ही मित्रता के सच्चे गुणों की परीक्षा होती है। आपने और राजपूताने के अन्य प्राचीन घरानों ने विद्रोह के समय जिस दृढ़ मित्रता का परिचय दिया, वह महारानी की सबसे प्रिय यादगार रहेगी।

मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि श्रीमान दीर्घायु और समृद्ध हों।

श्रीमान का सच्चा मित्र और हितैषी
चार्ल्स वुड

परिशिष्ट--१३

लार्ड रिपन द्वारा महाराजा डूँगरसिंह को ता० ३१ दिसम्बर सन् १८८३ को भेजा गया खरीता

इस वर्ष श्रीमान की रियासत में जो गड़बड़ी हुयी है, उसके बारे में मैंने अपने राजपूताना स्थित एजेंट कर्नल ब्रेडफोर्ड से सुना है और मुझे बहुत चिन्ता हुयी है। अब मुझे कर्नल ब्रेडफोर्ड से गड़बड़ी के कारणों और बीकानेर में पुनः व्यवस्था स्थापित करने के लिये उसके द्वारा सुझाये उपायों के बारे में पूर्ण रिपोर्ट मिल चुकी है। ऐसा लगता है कि सारी चेतावनी के बावजूद श्रीमान उल्टे गलत सलाहकारों के हाथों में खेल रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में रियासत के प्रशासन में कोई सुधार नहीं हुआ है। अनेक दोष बढ़ने दिये गये हैं तथा रियासत की दशा उत्तरोत्तर गम्भीर होती गयी है। अन्त में श्रीमान की सत्ता को भी खुली चुनौती दी गयी है। श्रीमान की प्रार्थना पर अंग्रेज सरकार के लिये यह जरूरी है कि वह सेना भेजकर आपके इलाके में विद्रोह को दबा दे।

मेरे दोस्त, अंग्रेज सरकार इस तरह की स्थिति फिर होने की इजाजत नहीं दे सकती। अन्यायपूर्ण विद्रोह के विरुद्ध भारत के देशी राजाओं की उचित सत्ता कायम रखने के लिये मैं सदा तत्पर रहूँगा। लेकिन मेरा यह कर्तव्य है कि मैं देशी राजाओं के राज्यों को गड़बड़ी और अव्यवस्था की स्थिति में पड़ने से रोकूँ क्योंकि इन्हीं से विद्रोह सम्भव होता है। वर्तमान मामले में मुझे यह बात साफ नजर आती है कि जब तक श्रीमान को अपने इलाके में प्रशासन में मदद देने के लिये, चाहे कुछ ही समय के लिये हो, एक अंग्रेज अफसर निरन्तर उपस्थित नहीं रहेगा तब तक भविष्य में बीकानेर रियासत को अव्यवस्था से नहीं बचाया जा सकता। मैंने कर्नल ब्रेडफोर्ड से श्रीमान को सूचित करने के लिये कहा है कि अब बीकानेर में एक रेजीडेंट पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त किया जायेगा। देशी राज्यों के आंतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप करते में बहुत हिचकिचाता हूँ। इस पद के लिये मैंने कप्तान तालबोट को चुना है। उसे सरकार पर सीधा नियंत्रण करने की आज्ञा नहीं होगी। लेकिन यह जरूरी है कि श्रीमान खुलकर उससे सलाह लें और उसकी सलाह के अनुसार चलें। कर्नल ब्रेडफोर्ड श्रीमान को वे मामले बता देगा जिनके बारे में मैं यह जरूरी समझता हूँ कि वह श्रीमान को अपनी सलाह

परिशिष्ट--१४

लार्ड डफरिन द्वारा महाराजा डूँगरसिंह को ता० २ फरवरी १८८७ को भेजा गया खरीता।

कुछ मास पूर्व मुझे अपने राजपूताना स्थित एजेन्ट से सूचना मिली कि श्रीमान की रियासत का काम भारत सरकार की इच्छा के अनुसार नहीं हो रहा है। इस बारे में लार्ड रिपन के ३१ दिसम्बर १८८३ के खरीते में श्रीमान को समझाया गया था। ऐसा लगा कि आम तौर पर आपने बीकानेर स्थित पोलिटिकल एजेंट की सलाह माननी जरूरी नहीं समझी। इस नासमझी के काम में कुछ लोगों ने आपको बढ़ावा दिया। इनमें से कुछ विदेशी थे जो पोलिटिकल एजेंट की सहमति के बिना रियासत में नौकर रक्खे गये। अन्य लोग बीकानेर के निवासी थे। मुझे यह गुप्त सूचना पाकर चिन्ता और असंतोष हुआ। इससे प्रतीत होता है कि श्रीमान ने उन प्रतिबन्धों का खुलकर उल्लंघन किया है जो जानबूझ कर आपकी सत्ता पर लगाये गये थे। ये प्रतिबन्ध श्रीमान की प्रार्थना पर उस समय लगाये गये जब जरूरी समझ कर अंग्रेजी सेना के हस्तक्षेप से आपकी सत्ता का समर्थन किया गया। अतः मैंने सर एडवर्ड ब्रेडफोर्ड को निर्देश दिया कि श्रीमान को एक मौका देकर इस मामले में आपकी कार्यवाही समझी जाय। इसके साथ ही मैं उसके मार्फत श्रीमान को एक स्पष्ट चेतावनी देना चाहता था। सन् १८८३ के अन्त में लार्ड रिपन ने जो प्रबन्ध स्वीकार किये थे यदि स्पष्ट रूप से आप उनके अनुसार काम करने को तैयार नहीं हों, जो प्रबन्ध आपकी रियासत में सीधा हस्तक्षेप रोकने के उद्देश्य से किये गये थे, तो यह जरूरी हो सकता है कि उन प्रबन्धों को इस तरीके से बदल दिया जाय जो श्रीमान को अरुचिकर हो सकते हैं। भारत सरकार के लिये यह सम्भव नहीं होगा कि वह श्रीमान को ऐसे तरीके से काम करने दे जिससे आपकी रियासत का प्रशासन अस्त-व्यस्त हो जाय। मैंने सर एडवर्ड ब्रेडफोर्ड को यह भी सूचित किया कि यदि किसी बीकानेर के अफसर का बुरा प्रभाव पड़ रहा हो तो पोलिटिकल एजेंट को उसे श्रीमान की राजधानी से हटाने के लिये आवश्यक कदम उठाने की छूट होगी।

मेरी आज्ञा के अनुसार सर एडवर्ड ब्रेडफोर्ड और पोलिटिकल एजेंट ने जो कदम उठाये उनसे सर ब्रेडफोर्ड ने अब मुझे अवगत करा दिया

है। उसने मुझे श्रीमान-द्वारा गत २७ अक्टूबर को उसको लिखे गये खरीते की नकल पेश की है। श्रीमान ने जो कारण और तर्क प्रस्तुत किये उन पर मैंने सावधानी से विचार किया है। बड़ी अनिच्छा और विवशता के साथ मैं आपको सूचित करता हूँ कि बिना पोलिटिकल एजेंट को बताये अपनी रियासत में विदेशियों को नौकर रखने के विवरण को मैं सही नहीं मान सकता। मुझे यह लिखते दुख होता है कि बीकानेर के जिन अधिकारियों की उपस्थिति के बारे में पोलिटिकल एजेंट ने एतराज किया उन्हें आपकी राजधानी से हटाने में कठिनाई हुयी।

मेरे दोस्त, तुम्हें अब मेरे लिखने का उद्देश्य यही है कि एक बार पुनः ईमानदारी के साथ उन कामों के विरुद्ध सावधान कर दूँ जिनका परिणाम श्रीमान के लिये बहुत ही अरूचिकर होगा।

जैसा लार्ड रिपन ने श्रीमान को बताया, भारत सरकार देशी रियासतों के आंतरिक प्रशासन में हस्तक्षेप करने की बहुत कम इच्छुक है। लेकिन साथ ही वह प्रशासन को अव्यवस्थित दशा में भी नहीं जाने देना चाहती। इन सिद्धांतों पर मेरे सम्मानित पूर्व पदाधिकारी ने प्रतिबन्ध बनाये जो उसने एक राजा के रूप में आपकी सत्ता पर लगाये। सर एडवर्ड ब्रेडफोर्ड ने उन्हें सही रूप में आपको बता दिया है। मुझे विश्वास और निश्चय है कि उनका पालन होगा। अतः मैं आशा करता हूँ कि मुझे इस विषय पर दुबारा लिखने के लिये विवश नही किया जायेगा। भविष्य में श्रीमान विशेषतः अपने अफसरों के चयन के सम्बन्ध में बीकानेर स्थित पोलिटिकल एजेंट की सलाह ईमानदारी से चाहेंगे और मानेंगे। इसी आशा में मैंने अधिक कड़े कदम उठाने का वचार छोड़ने का निश्चय किया है, यदि श्रीमान मुझे सलाह के लिये इस कष्ट कार्य से छुटकारा देंगे तो मैं सुख और कृतज्ञता अनुभव करूँगा।

बहुत ख्याल के साथ, मैं हूँ,

आपका सच्चा मित्र
डफरिन
भारत का वाइसराय और गवर्नर जनरल

परिशिष्ट--१५

राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेंट के प्रथम सहायक लेफ्टिनेन्ट कर्नल ए० डी० मैक्फरसन आई० ए० द्वारा ता० २६ मार्च सन् १६१६ को आबू से बीकानेर स्टेट कौंसिल के राजनीतिक सदस्य को लिखा गया पत्रांक १३०८--१३०६ ।

....

मुझे आपको यह सूचित करने का निर्देश मिला है कि भारत सरकार के निर्देशानुसार बीकानेर और सिरोही रियासत की राजनीतिक देख रेख का काम अस्थायी तौर पर राजपूताना स्थित गवर्नर जनरल के माननीय एजेंट को हस्तांतरित किया गया है। अतः आपके कार्यालय से होने वाला सारा पत्र व्यवहार जो अब तक पश्चिमी राजपूताना रियासतों के पोलिटिकल एजेंट के साथ होता था भविष्य में माउन्ट आबू स्थित राजपूताना में गवर्नर जनरल के एजेंट के प्रथम सहायक के साथ किया जाय। इस पद का कार्य भार इसी २६ ता० से मैंने संभाल लिया है।

मारवाड़ और जैसलमेर की रियासतों के इन्चार्ज और पश्चिमी राजपूताना की रियासतों के रेजीडेंट के पद पर मि० एल० डब्लू० रेनोल्ड्स, एम० सी०, सी० आई० ई०, आई० सी० एस०, को लगाया गया है।

परिशिष्ट--१६

सेवा में

महामहिम सम्राट

बकिंघम महल

लंदन

मैंने अभी अभी सुना है कि रूस, फ्रांस, और जर्मनी के बीच युद्ध आरम्भ हो गया है। अत्यधिक कर्तव्यपूर्ण होकर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि ग्रेट ब्रिटेन को भी युद्ध में शामिल होना पड़े तो मुझे लड़ने के लिये अपनी सेवायें श्रीमान को सौंपने की इजाजत दी जाय। चाहे मुझे श्रीमान के स्टाफ का एक सदस्य होने के नाते उस रूप में सेवा ली जाय अथवा मेरी सेना और राजपूतों का नेतृत्व करते हुये सेवा ली जाय। मैं और मेरे सैनिक सभी श्रीमान के लिये, श्रीमान की सुरक्षा, सम्मान और कल्याण के लिये तथा आपके राज्यों के लिये योरुप में, भारत में या अन्य किसी भी जगह लड़ने को तैयार हैं। मुझे किसी भी अन्य भारतीय राजा की तुलना में अधिक समय तक श्रीमान के ए० डी० सी० रूप में सेवा करने का महान सम्मान और गौरव मिला है। चाहे इस समय मेरी सेना कहीं लगाई जाय या न लगाई जाय मैं श्रीमान से सच्चे हृदय से निवेदन करता हूँ कि यदि साम्राज्य का सवाल हो तो मुझे निजी सैनिक सेवा का एक अवसर दिया जाय। सैनिक सेवा एक राठौड़ राजपूत राजा की सबसे बड़ी अभिलाषा है। आप कृपा कर मुझे आदेश दें कि मैं तुरन्त योरुप में मोर्चे के लिये रवाना हो जाऊँ। युद्ध के समय श्रीमान के स्टाफ में काम करके मैं इसे सर्वोच्च सम्भव सम्मान समझूँगा। लेकिन जैसे पिछले १२ वर्षों में शान्ति में सम्राट की सेवा की है, वैसे ही किसी भी रूप में कहीं भी युद्ध में अपने सम्राट की सेवा के लिये जाने के लिये तैयार हूँ। ऐसा अवसर जीवन में एक बार ही आता है। मैं विनम्रता से श्रीमान से प्रार्थना करूँगा कि यदि साम्राज्य की सेनायें लड़ें तो मुझे निष्क्रिय न रक्खा जाय। एक राठौड़ राजा का कर्तव्य मुझे युद्ध के लिये पुकार रहा है। मेरी अनुपस्थिति में मेरी रियासत के प्रशासन का मैंने पूरा प्रबन्ध कर लिया है। मैं तुरन्त समुद्र से यात्रा करने को तैयार हूँ। सरकारी तौर पर अपनी और अपनी सेना की सेवायें अर्पित करते हुये मैं वाइसराय को तार दे रहा हूँ।

गंगासिंह

बीकानेर

ता० ३--८--१९१४

परिशिष्ट--१७

सेवा में

महामहिम वाइसराय
वाइसराय शिविर--भारत

मैं और मेरी सेना तुरन्त किसी भी जगह जाने के लिये तत्पर और तैयार हैं। हमारे सम्राट और उनके राज्यों की सुरक्षा, सम्मान और कल्याण के लिये योरुप में, भारत में अथवा जहां भी हमारी सेवाओं का ठीक प्रकार से सहयोग हो, हम जाने को तैयार हैं।

श्रीमान राठौड़ बीका राजपूतों की परम्परा को जानते हैं। हम जल्दी ही मोर्चे पर पहुंचना चाहते हैं।

लेकिन इस समय चाहे मेरी सेना का उपयोग हो या न हो, मैं सच्चे हृदय से श्रीमान से अनुरोध करता हूँ कि मुझे स्वयं सम्राट और साम्राज्य की व्यक्तिगत रूप में सैनिक सेवा करने का एक अवसर दिया जाय। सम्राट के स्टाफ का एक सदस्य और एक राठौड़ राजा होने के कारण यह मेरी सबसे बड़ी इच्छा है।

मेरी अनुपस्थिति में रियासत के प्रशासन का पूर्ण प्रबन्ध कर दिया गया है और मैं तुरन्त रवाना हो सकता हूँ।

महाराजा बीकानेर

ता० ३-८--१९१४

परिशिष्ट–१८

४ अगस्त १६१४ को सम्राट द्वारा बीकानेर के महाराजा को भेजा गया तार।

—

अपनी बहुमूल्य सेवाओं को मेरी इच्छा पर प्रस्तुत करने के आपके सन्देश के लिये मैं श्रीमान को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। सैनिक कार्यवाहियों के सम्बन्ध में अभी तक कोई निर्णय नहीं हुआ है, लेकिन आपकी अर्जी भुलाई नहीं जायेगी।

जार्ज आर० आई०

परिशिष्ट--१९

भारत के वाइसराय और गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग द्वारा महाराजा गंगासिंह को ता० ४-८-१९१४ को भेजे गये एक तार का अंश ।

अत्यधिक हार्दिक स्वामिभक्ति से श्रीमान ने जो सेवायें अर्पित की हैं, उन्हें मैं कृतज्ञता पूर्ण धन्यवाद के साथ स्वीकार करता हूँ । ..... मैं जानता था कि मैं आप पर और बीकानेर के अन्य बहादुर राठौड़ों पर भरोसा कर सकता हूँ ।

परिशिष्ट--२०

महाराजा गंगासिंह को प्राप्त सम्मानों, उपाधियों, तमगों आदि की सूची।

१.	आनरेरी मेजर बनाये गये	१६००
२.	कैसरे हिन्द स्वर्णपदक (रियासत में अकाल सहायता कार्य के लिये)	१६००
३.	चीन पदक (जून १६०२ में इंग्लैंड में राज्याभिषेक के समय जार्ज पंचम द्वारा दिया गया)	१६०१
४.	के० सी० आई० ई० बनाये गये	१६०१
५.	राज्याभिषेक पदक	१६०२
६.	के० सी० एस० आई० बनाये गये	१६०४
७.	जी० सी० आई० ई० बनाये गये	१६०७
८.	आनरेरी लेफ्टिनेंट कर्नल बनाये गये	१६०६
६.	आनरेरी कर्नल बनाये गये	१६१०
१०.	जी० सी० एस० आई० बनाये गये	१६११
११.	केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से आनरेरी एल० एल० डी० उपाधि प्राप्त की	१६११
१२.	के० सी० बी० (सैनिक विभाग) बनाये गये	१६१४
१३.	१६१४ स्टार	
१४.	एडिनबरा विश्वविद्यालय से आनरेरी एल० एल० डी० की उपाधि प्राप्त की	१६१७
१५.	आनरेरी मेजर जनरल बनाये गये	१६१७
१६.	लंदन, एडिनबरा, मेनचेस्टर और ब्रिस्टल नगरों की मुक्ति प्राप्त की	१६१७
१७.	जनरल सेवा पदक	१६१८
१८.	विक्टरी पदक	१६१८
१६.	नील का ग्रांड कोर्डन	१६१८
२०.	जी० सी० वी० ओ० बनाये गये	१६१६
२१.	आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से आनरेरी डी० सी० एल० उपाधि प्राप्त की	१६१६
२२.	जी० बी० ई० (सैनिक विभाग) बनाये गये	१६२१
२३.	बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय से आनरेरी एल० एल० डी० उपाधि प्राप्त की	१६२७

२४.	आनरेरी लेफ्टिनेंट जनरल बनाये गये	१९३०
२५.	आनरेरी जनरल बनाये गये	१९३७
२६.	१९३९–४५ स्टार	मरणोपरान्त दिया गया
२७.	अफ्रीका स्टार	”
२८.	भारतीय सेवा पदक	”
२९.	युद्ध पदक	”

परिशिष्ट--२१

२४ अप्रैल सन् १६१७ को हाउस आफ कॉमन्स के हारकोर्ट कमरे में साम्राज्य संसदीय संघ (ब्रिटिश शाखा) द्वारा भारतीय प्रतिनिधियों को दिये गये मध्यान्ह भोज के अवसर पर महाराजा गंगासिंह द्वारा दिये गये भाषण का अंश।

× × ×

"मुझे आरम्भ में ही यह कहने दें कि पहले पहल भारत को शाही युद्ध मन्त्री परिषद और शाही युद्ध सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजने का निमंत्रण मिला है, इस बात से व्यापक हर्ष हुआ है। मुझे यह कहने की छूट दी जाय कि भारत की अपने सम्राट के प्रति जो अटल स्वामिभक्ति और श्रद्धा है, साम्राज्य में उसकी जो स्थिति है और उसने अतीत की तरह सबसे बड़े संकट के समय अपने सम्राट और साम्राज्य की सेवा करने का जो मौका प्राप्त किया है उससे उसे मिलने वाला यह सम्मान उचित है पर यह कुछ विलम्ब से मिला है। मैं भारत के दावों पर जोर देने के लिये इंग्लैंड नहीं आया हूँ। भारत के प्रतिनिधियों में चुना जाना मेरे लिये सम्मान की बात है। हमारा चयन अपने स्थानीय आनुभव और विचार देने के लिये हुआ है ताकि इनसे युद्ध को सफलता पूर्वक और शानदार परिणाम के साथ समाप्त करने में साम्राज्य को मदद मिले। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस क्षण भारत के सभी सम्बन्धित लोगों का प्रथम विचार अपनी सारी शक्ति और सारे साधन युद्ध में लगा देने का है।......"

"......हमारी इच्छा भी ब्रिटेन के पथ प्रदर्शन में और जैसा मि० चेम्बरलेन ने कहा, ब्रिटेन की सहायता से वैधानिक तरीके से अपने देश की भौतिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रगति करना है। हम भी अन्त में अपने सम्राट के नीचे वह स्वतन्त्रता और स्वायत्तता प्राप्त करना चाहते हैं जो आप लोगों ने इस देश में बहुत पहले प्राप्त की और जो पिछले कुछ समय से हमारे अधिक सौभाग्यशाली साथी राज्य प्राप्त कर चुके हैं।"

× × ×

"श्रीमानो और सज्जनों! क्या यह आश्चर्य की बात है कि भारत अपने राजनैतिक पुनर्जीवन को लक्ष्य बनाये? आपने भारतीयों को पाश्चात्य ढंग से शिक्षा प्रदान की है। ग्रेट ब्रिटेन उदार परम्पराओं और लोकप्रिय

संस्थाओं का देश है। ग्रेट ब्रिटेन के साथ भारत का सदियों का निकट का और गहरा सम्बन्ध है। इस देश में आप के राजनीतिक जीवन में जो श्रेष्ठ है उसकी ओर यदि हम भारतीय ध्यान न दें तो यह हमारी मूर्खता होगी। हमारी मूर्खता तब और भी अधिक होगी जब आपकी राष्ट्रीय जीवन की अच्छी बातों को ग्रहण करने के बाद जहाँ और जब हमारी परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो हम उन सब को पाने और पचाने की इच्छा न करें जो आपकी संस्थाओं और पद्धति में श्रेष्ठ हैं।

ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत पूर्ण स्वराज्य और स्वायत्तता के लिये भारत की इच्छा के सम्बन्ध में मैं यह मानने को तैयार हूँ कि यह एक कठिन समस्या प्रस्तुत करती है लेकिन क्या यह एक ऐसी कठिनाई है जिसे ब्रिटिश कुशल राजनीतिज्ञ और ब्रिटिश सदभावना व सहानुभूति हल नहीं कर सकती? क्या भारत में वर्तमान परिस्थितियाँ भारतीय भावनाओं के साथ इतनी निराशा पूर्ण और बेमेल हैं जिससे कि यह प्रश्न गम्भीर विचार के लायक न रह कर केवल शास्त्रीय बन जाता हो? क्या यह प्रश्न इस योग्य है कि इसे पृष्ठभूमि में फेंक दिया जाय और सुदूर और धुँधले भविष्य में ही बाहर लाया जाय? निश्चय ही हमारे देश में जातियों की भिन्नता है लेकिन क्या इंग्लैंड में भी तीन अलग २ जातियाँ नहीं हैं? क्या कनाडा में इतनी ही जातियों और राष्ट्रीयताओं की भिन्नता नहीं है? और दक्षिणी अफ्रीका में क्या है? जब हम भारत में वर्तमान विभिन्न जातियों और रिवाजों की बात करते हैं तो हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि भारत एक देश नहीं है बल्कि वास्तव में एक विशाल महाद्वीप है। यह एक राज्य नहीं है बल्कि साम्राज्य के भीतर एक साम्राज्य है।"

"...... भारत में जो अशांति है वह दो प्रकार की है। एक तो विप्लवकारी अशांति फैलाने का प्रयत्न करते हैं। सौभाग्य से बहुत कम लोग उनके अनुकूल हैं। अधिकारियों को इसका मुकाबला करना है और इसे ठीक तरह से हल करना है। वे इसका मुकाबला कर रहे हैं। यह भारत में हमारी सच्ची आशा है कि इसे मिटाने में हम धीरे २ अनुकूल परिस्थितियों में हो सकेंगे। यह कैंसर की तरह बढ़ने वाला है जो केवल मेरे ही देश में नहीं है। यदि मैं गल्ती नहीं करता तो दूसरी अशाँति वह है जिसका कुछ वर्ष पहले एक कुशल ब्रिटिश राजनीतिज्ञ ने ठीक ढंग से वर्णन किया है। यह न्यायोचित अशांति है। भारत में जिस मात्रा और जिस तरह से राजनैतिक विकास हुआ है यह उसी मात्रा के अधैर्य से उत्पन्न होती है, यह उन लोगों

के मन में है जो सही या गलत यह मत रखते हैं लेकिन जो उतने ही स्वामिभक्त है जितने आप और मैं हूँ।"..........."इस विषय में जिन्होंने सोचा है उन बहुत सों का यह सुचिन्तित मत है कि जिन क्षेत्रों में भारतीयों ने अपनी योग्यता प्रदर्शित की है उनमें यदि उन्हें अधिक सत्ता और छूट मिले तो हमें अशाँति-आंदोलन और अनुत्तरदायी आलोचना बहुत कम सुनने को मिलेगी ....
... ... आपकी ओर हम सहानुभूति और सहायता के लिये देखते हैं। हम चाहते हैं कि आप तत्परता से उन परिवर्तनों को पहिचानें जो भारत में हो रहे हैं और भारत को और अधिक प्रगति प्राप्त करने तथा समय पर अपनी इच्छित भावनाओं को पूर्ण करने में योग दें।"......"भारत की मांगों के रूप के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है लेकिन इस बात में कोई मतभेद नहीं हो सकता कि वे मांगें पूर्णतः ठीक और न्यायोचित हैं।......"

× × ×

परिशिष्ट--२२

महाराजा गंगासिंह द्वारा ता० १०-५-१६१७ को टाइम्स अखबार के साथ की गयी एक भेंट के अंश।

—

२ मई के टाइम्स में लिखा है कि ब्रिटिश नीति भारत के लिये स्वराज्य कार्य को आगे उत्तरोत्तर बढाने की है। यह बात प्रगति के लिये बहुत ही उत्साह-वर्धक मानी जायगी। हमने जिस नये दृष्टिकोण के बारे में इतना अधिक सुना है यह उस दृष्टिकोण की वास्तविकता का पक्का प्रमाण है। लेकिन यह नीति बहुधा शर्तों में व्यक्त की जाती है। इसे घोषित करने का समय अभी है जब कि युद्ध चल रहा है। जब युद्ध समाप्त हो जाय तो आँदोंलन का उत्तर देने के लिये इसे घोषित करना उपयुक्त समय न होगा।

इन विचारों का समर्थन करते हुये मैं कहूँगा कि संसार के बहुत से अन्य भागों में ब्रिटिश नीति ने उदार और व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है, यह प्रगति भी उसी तरह होनी चाहिये। जहां तक मुझे ब्रिटेन के उपनिवेशवादी विस्तार के इतिहास का स्मरण है उसे कभी पछताने का अवसर नहीं आया। भारत में भावना को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है और जो परिवर्तन किया जाय वह ऐसा होना चाहिये जो वहां के लोगों की कल्पना के अनुकूल हो। अभी वाइसराय ने कहा है कि भारत सरकार ने वैधानिक सुधार विचार हेतु राज्य मंत्री को भेजे हैं। इन पर यह प्राचीन कहावत पूरी तरह आनन्द के साथ लागू होती है "शुभस्य शीघ्रम्"। तुरन्त और बिना सोचे प्रस्तावों को स्वीकार करना उतनी ही बड़ी गल्ती होगी जितनी इनके बारे में बहुत अधिक सावधानी बरतना। लार्ड कर्जन ने घोषणा की है कि शाही सम्मेलन और मंत्री परिषद की बैठकें वार्षिक करने का विचार है। भारत के आंतरिक राजनैतिक विकास के लिये कुछ और कदम उठाना केवल वांछनीय ही नहीं है बल्कि उस शानदार निर्णय का एक अनिवार्य परिणाम भी है कि युद्ध की तरह शान्ति में आप स्वराज्य प्राप्त देशों की तरह भारत की भी उपर्युक्त सम्मेलनों में नियमित रूप से सलाह ली जाय। भारत के आंतरिक मामलों को परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बनाने में आगे जो अनेक कठिनाइयाँ हैं उन्हें मैं कम बनाना नहीं चाहता। लेकिन वे हल न होने योग्य नहीं हैं। व्यवस्थित विकास के मार्ग पर चलने से ब्रिटिश और भारतीय कुशल राजनीतिज्ञों को इससे रुकना नहीं चाहिये।

इस विचार से बढ़कर और कोई भूल नहीं हो सकती कि इस राजनैतिक विकास से भारतीय राजा नाराज या भयभीत हो जायेंगे। इसके विपरीत ब्रिटिश झंडे के नीचे वैधानिक तरीके से भारत की राजनैतिक प्रगति को देख कर उन्हे खुशी होगी, यद्यपि प्रत्येक रियासत ने इस बात को अधिक पसंद किया है कि स्थानीय परिस्थितियों, विचित्रताओं, परम्पराओं और भावनाओं के लिये सर्वाधिक उपयुक्त तरीके से उसे अपने आंतरिक मामलों को चलाने की छूट हो यद्यपि उन रियासतों में प्रशासकीय योग्यता के विभिन्न स्तर और विभिन्न आदर्श हैं तो भी इनमें से बहुत सी प्रशासन और कानून बनाने के काम में जनता को सम्मिलित करने में तीव्र प्रगति कर रही हैं।

कुछ वर्ष पूर्व हमने अपनी रियासत में एक प्रतिनिधि सभा के आरम्भ का उद्घाटन किया। इसमें चुने हुये और गैर सरकारी मनोनीत सदस्य हैं। सन् १९०९ के सुधारों में ब्रिटिश भारत के विधान मण्डलों को जो कानून बनाने के अधिकार थे उसी तरह से इसे भी है। बजट के सम्बन्ध में तो इसे वे ही अधिकार हैं जो लैंसडाउन सुधारों के द्वारा ब्रिटिश भारत में सर्वोच्च और प्रांतीय विधान मण्डलों को दिये गये और जो १८९३ से १९०९ तक लागू रहे। इस प्रतिनिधि सभा के निर्माण की अपनी इच्छा घोषित करते समय मैंने सूचना दी कि ज्यों ही लोग अपनी योग्यता दिखायेंगे उनको अधिक अधिकार दिये जायेंगे। इसके अनुसार जब प्रथम त्रैवार्षिक अवधि समाप्त होने पर चुनाव होगें, हम अनावश्यक प्रतिबंधों को हटाने और अधिक स्वतंत्रता देने की दिशा में नियम संशोधित कर रहे हैं।

× × ×

परिशिष्ट--२३

लार्ड चेम्सफोर्ड द्वारा महाराजा गंगासिंह को ता० १५ नवम्बर १६१८ को भेजा गया तार।

मेरे और लंदन के बीच हुये विचारों के आदान प्रदान के परिणाम स्वरूप अब मैं इस स्थिति में हूँ कि तुरन्त इंग्लैंड प्रस्थान के लिये श्रीमान से कहूँ। यह बहुत जरूरी है कि श्रीमान चिन्दवाड़ा जहाज पर जो इसी महीने की २३ तारीख को रवाना हो रहा है स्थान प्राप्त करलें। सिन्हा चिन्दवाड़ा से जा रहा है। यात्रा के बाद के भाग में तुरन्त संक्रमण के लिये नाव और विशेष प्रबन्ध कर दिया जायेगा। श्रीमान को यह जानकर खुशी होगी कि स्वयं प्रधानमंत्री ने इच्छा प्रकट की है कि आपको अब लंदन जाना चाहिये। श्रीमान की सेवायें किस रूप में ली जायेंगी इस बारे में अभी तक कोई स्पष्ट बात नहीं बतायी गयी है। लेकिन मैं जानता हूँ कि वर्तमान स्थिति में वर्तमान समय स्पष्ट रूप से किसी बात को मालूम करना कितना असम्भव है इसे श्रीमान समझ जायेंगे। कृपया मेरी हार्दिक बधाई और शुभ कामना स्वीकार करें। कृपया इस सन्देश की प्राप्ति तार से स्वीकार करें। यदि रवाना होने से पूर्व किसी तरह श्रीमान का दिल्ली आना सम्भव हो तो सचमुच मुझे खुशी होगी। यात्रा के सम्बन्ध में राजनैतिक सचिव हर सम्भव सहयोग देगा।

परिशिष्ट--२४

मि० मोन्टेग्यू द्वारा महाराजा गंगासिंह को भेजा गया तार।

—

भारत की स्थिति के बारे में राष्ट्र संघ समझौते को पढ़कर मुझे कुछ अशान्ति हुयी है। मुझे केवल इसी बात का सन्तोष है कि आपने, जो निजी रूप में इस मामले को देख रहे थे, मुझसे कोई चिन्ता प्रकट नहीं की है। क्या आप लार्ड रोबर्ट सेसिल और मि० हर्स्ट से मिल कर मुझे सूचित करेंगे कि क्या भारत ठीक है और उसकी स्थिति कैसे सुरक्षित रक्खी गयी है। कृपया संकेत में तार दें क्योंकि यदि कोई चिन्ता की बात हो तो बुधवार को लौटने से पहले मैं प्रधान मन्त्री से अवश्य मिल लूँ।

परिशिष्ट–२५

वाइसराय और भारत के लिये राज्य मन्त्री की संयुक्त रिपोर्ट के अध्याय १० (भारतीय रियासतों से सम्बन्धित) पर की गयी टिप्पणी के अंश ।

—

× × ×

१६. दूसरी बात जो मैं अनुकूल विचार हेतु महामहिम वाइसराय और मेरे बन्धु राजाओं के सामने रखना चाहूँगा वह द्वितीय श्रेणी में आने वाले राजाओं के सम्बन्ध में है।

२०. यद्यपि उनके अधिकार और स्तर अधिक बड़ी रियासतों के राजाओं के समान नहीं हैं तो भी इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि उनके इलाके भी भारत के उसी एक तिहाई भाग में हैं जो इस समय भारतीय रियासतों के नाम से जाना जाता है। ये शासक ब्रिटिश प्रजा नहीं हैं और निसंदेह उनके इलाके वास्तविक ब्रिटिश भारत में शामिल नहीं हैं। ऐसे शासक और उनकी प्रजा स्पष्ट रूप से ब्रिटिश भारत के उच्च पदाधिकारियों और लोगों से भिन्न हैं। ब्रिटिश भारत में इस समय जो सुधार करने सोचे जा रहे हैं या जो वहाँ भविष्य में लागू होंगे उनसे उन्हें लाभ नहीं हो सकता। बड़े राजाओं और बड़ी रियासतों के अँग्रेज सरकार के साथ सौ वर्षों से अधिक समय तक अत्यधिक समान ढ़ंग के सम्बन्ध रहे हैं। जब इन सम्बन्धों का नियन्त्रण करने वाली व्यवस्था में संशोधन और सुधार करना आवश्यक समझा गया है तो मैं अनुरोध करता हूँ कि इन छोटे राजाओं और उनके इलाकों के लिये भी इसी प्रकार की आवश्यकता समझी जाय। यदि प्रस्तावित विभाजन के अन्तर्गत, जिसमें उनके अधिक महत्व पूर्ण और सौभाग्य शाली बन्धु भाग लेने की आशा कर रहे हैं, किसी लाभ से उन्हें बिलकुल वंचित रक्खा गया तो वे शीघ्र ही एक मजबूत श्रृंखला में कमजोर कड़ी की तरह लगेंगे। इतना ही नहीं वे अपने आपको बंधी हुयी स्थिति में पायेंगे। दोनों श्रेणियों के राजाओं के बीच अन्तर को मैं पूरी तरह समझता हूँ। लेकिन मैं यह बात अपनी पूरी ताकत और पूर्ण सम्मान के साथ कहना चाहता हूँ कि कोई ऐसा तरीका निकाला जाय जिससे उन्हें भी इन सुधारों के क्षेत्र में लिया जा सके। वे अनुभव करें कि सर्वोच्च सत्ता और उनके अधिक सम्मानित बन्धु उनके और उनकी रियासतों के हितों की उपेक्षा नहीं कर रहे हैं।

× × ×

परिशिष्ट--२६

महाराजा गंगासिंह द्वारा ता० १७-७-१६३८ को लार्ड लिनलिथगो को लिखे पत्र का अंश।

—

× × ×

१७. पर मैं अपने इस विश्वास को दोहराना चाहता हूँ कि भारत का व्यवस्थित राजनीतिक विकास, जिसे पाने के लिये राजा लोग भी ब्रिटिश भारत के लोगों से कम इच्छुक नहीं हैं, केवल एक उचित ढंग के संघ द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। मेरी यह भी सच्ची आशा है कि भारत के राजनैतिक विकास की समस्या ऐसे तरीके से हल करनी है जो सभी के हितो में संतोषप्रद हो और रियासतों की प्रभुसत्ता, स्वायत्तता और समझौते में दिये गये अधिकारों की उचित और पूर्ण सुरक्षा करता हो।

× × ×

परिशिष्ट--२७

महाराजा गंगासिंह द्वारा जोधपुर रियासत के तत्कालीन मुख्य मन्त्री सर डी०एम० फील्ड को लिखे गये एक बहुत ही गोपनीय पत्राँक २०१--पी० ५४--३७ ता० २१ फरवरी १९३७ के अंश।

—

× × ×

.....अपने इस पत्र के द्वारा मैं अपने विचार समझाना चाहता हूँ जो मैंने बहुधा एक बहुत ही उग्र और विरोधी वक्ता के सम्बन्ध में प्रकट किये हैं। जनमत की देहली पर राजाओं का इस प्रकार के व्यक्ति से कभी मुकाबला नहीं हुआ। यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे सार्वजनिक जीवन में अत्यधिक असहिष्णुता है। इसी कारण श्री जयनारायण व्यास के लिये यह विश्वास करना कभी सम्भव नहीं हुआ कि उसके विरोधी भी उसके समान ही सच्चे और देश भक्त हो सकते हैं। यदि मैं यह बात कहूँ कि यद्यपि श्री जयनारायण व्यास और उसके साथी सामान्य रूप से राजाओं के और विशेष रूप से मेरे विरुद्ध हलचलकारी, बिना सोचे समझे और भद्दा प्रचार करते हुये बहुत कड़ा और जबरदस्त प्रहार करते रहे हैं तो भी श्री व्यास के प्रति मेरे हमेशा स्पष्ट रूप से उच्च विचार रहे हैं, तो बहुत कम राजनीतिज्ञ इस पर विश्वास करेंगे। कई बार इन लोगों ने बात को बहुत बढ़ाने, झूठ को फैलाने, तथ्यों को जानबूझ कर तोड़ने, निन्दा करने और भद्दी गालियाँ देने का भी काम किया है। ये लोग राजाओं को मूर्ख, प्रजापीडक, विद्रोही और दमनकारी, अपनी जनता का खून पीने वाले और अपराधियों से भी अधिक बेईमान और असंदिग्ध, कुकर्मी तथा धरती पर होने वाले प्रत्येक अपराध के दोषी कहते रहे हैं। कोई भी व्यक्ति जो आंतरिक रूप से रियासतों से परिचित है और जिसे राजाओं की सद्भावना का ज्ञान है वह इस संगठित, उद्दण्ड, उकसाने वाले और जबरदस्त प्रचार के एक शब्द को भी सत्य नहीं मानेगा। लेकिन वे लोग जो एक संयुक्त और विशाल भारत को प्रगति के पथ पर अपने--अपने लक्ष्य की ओर कन्धे से कन्धा मिला कर चलते हुये देखना चाहते हैं, वे उन लोगों के भविष्य के बारे में चिंतित हुये बिना नहीं रह सकते जो आजकल एक तरह से इन इलाकों के राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन पर छाये हुये हैं।

सर डोनाल्ड ! मैं आपको बता दूँ कि इन सर्वहारा उग्रवादियों के

सामने न तो राजतन्त्र के शानदार स्तम्भ टिकेंगे और न उन्नत राज प्रतिनिधि का मण्डल अपितु भारत में सदियों पुरानी प्रभुसत्ता का भार इनके कन्धों पर पड़ेगा और इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि हम में से भी कुछ लोग न्याय और ठीक व्यवहार के लिये उनका मुंह ताकेंगे। रूस में जनता के अव्यवस्थित शासन ने जो आतंक फैलाया, वह सारे संसार के लिये आँखें खोल देने वाला है। मुझे विश्वास है कि आप यह नहीं चाहेंगे कि भारतीय रियासतों में ऐसा हो। यह तभी सम्भव है जब भारतीय रियासतों में एक स्वस्थ जनमत वर्तमान हो जिसके पीछे सच्चे देशभक्त और गम्भीर मन वाले नागरिक हों जो शान्ति के मार्ग पर चलने वाले हों। इनका सच्चा और प्रशंसनीय लक्ष्य अपने साथ की जनता का राजनीतिक विकास करना और उनकी मांगों को संवैधानिक तथा तर्कपूर्ण ढंग से निर्मित कर उनकी वास्तविक शिकायतों को दूर करना और प्रशासन के दायित्व में भाग लेकर उनकी न्यायोचित भावनाओं को पूरा करना हो।

जैसा आप स्वयं जानते हैं भारतीय रियासतों ने अधिकाँशतः ऐसे नेता उत्पन्न किये हैं जो अपने आप नेता बने हैं या असंतुष्ट और अप्रभावित तथाकथित राजनीतिज्ञ जो बहुधा राजनैतिक निर्वासन का जीवन बिताते हैं। कई बार ऐसे लोग नेता बन गये हैं जिन्हें अपनी रियासतों से निकाल दिया गया था या किसी गम्भीर अपराध के लिये सजा दी गयी थी। ऐसे लोग चाहे पूर्ण रूप से न सही पर मुख्य रूप से राजाओं और रियासतों के विरुद्ध बदले की भावना से प्रेरित हैं। निसंदेह व्यास जयनारायण भी राजाओं के राज का ऐसा ही कड़ा और क्रूर आलोचक है। पर ऐसा होते हुये भी वह पूर्ण ईमानदार, भ्रष्ट न होने योग्य और अपनी आत्मा और राजनैतिक मत के प्रति सच्चा है। सैकड़ों और हजारों धोखेबाजों, दुश्चरित्रों और बेईमान किराये के लोगों में जो अपने आपको राजनीतिज्ञ और शास्त्री कहते हैं और भारतीय रियासतों में बसने वाले लाखों लोगों को बहकाते हैं, आप शायद ही ऐसे भले आदमी से मिले होंगे जो राजाओं के विरुद्ध अपनी जन्मजात घृणा और उग्र क्रोध के बावजूद कम से कम भारतीय रियासतों के इलाके का अच्छी तरह प्रशासन करने में ईमानदार और विश्वसनीय हो सकता है। इस प्रकार वह सबका भला कर सकता है। मुझे आशा है कि आप मेरी इस बात से सहमत होंगे कि जिन रियासतों का प्रशासन अब हम लोग देखते हैं वे अन्त में हमारे शत्रुओं के पास चली जायेंगी। यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम देखें कि जब हम हटें तो शत्रु पक्ष के अधिक अच्छे तत्व कायम और काफी मजबूत रहें ताकि वे राजनैतिक मंच पर छाये रहें। व्यास जयनारायण ही केवल ऐसा व्यक्ति है अपने हजारों साथियों

और सहयोगियों पर काफी प्रभाव डाल सकता है। यदि इन दूसरे लोगों को अपनी मनमानी करने की छूट मिल जाय तो ये राजपूताना के सभी वर्गों के लोगों के विनाश पर अपना सिंहासन स्थापित करेंगे। चाहे जयनारायण व्यास हमसे सह–मत हो या न हो लेकिन निश्चय ही उसमें जिम्मेवारी की भावना है जो अकेली ही एक राजनीतिज्ञ को इस बात की प्रेरणा दे सकती है कि वह अपनी देखरेख में रक्खे गये लोगों के प्रति न्यायी हो। चूंकि न तो आप और न आपके दूसरे साथी मारवाड़ की रियासत को भेड़ियों के आगे फेंकना चाहते हैं, इसलिये आप यह पूरी तरह अनुभव करेंगे कि जब आप शासन की देखभाल करने वाले नहीं होंगे तो उस समय लाखों लोगों की देखभाल के लिये व्यास जयनारायण जैसे श्रेष्ठ लोगों की बहुत अधिक आवश्यकता होगी। इन्ही तर्कों के समक्ष मैं आप से मेरी बात ध्यान से सुनने का अनुरोध करता हूँ। आप अपने सबसे खराब शत्रु जयनारायण व्यास के प्रति अच्छे बनने की भरसक कोशिश करें, उसके लिये या उसके सह-योगियों के लिये नहीं बल्कि निश्चय ही उस इलाके की शान्ति और स्थिरता के लिये जो आज आपके द्वारा प्रशासित है।

जैसा आप स्वयं जानते हैं व्यास जयनारायण एक बहुत ही साधन-हीन घराने से सम्बन्ध रखता है। इसलिये उसे आर्थिक सहायता की स्थायी रूप से गहरी आवश्यकता रहती है। अपने सहयोगियों और साथियों की तरह वह झूठी धमकी देकर पैसा वसूल करने अथवा अनुचित तरीके से धन लेने में विश्वास नहीं करता। उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही रहा है कि उसके सबसे अच्छे मित्र जिनका वह विश्वास करता है, बहुधा उसे धोखा देते हैं। वह एक बिना सिखलाये हुये अनाड़ी की तरह इन सब धोखों को वास्तविक तथ्य मान लेता है।

× ÷ ×

वह राजनैतिक चालों को सीखने से इन्कार करता है क्योंकि वह बहुत ही कड़ा और साथ ही साथ अपने सद्विवेक या मत के प्रति सच्चा है। अतः उसे उन लोगों के हाथों कष्ट उठाना पड़ा है जो अपने आप को उसके मित्र कहने का दम भरते हैं। कई बार के धोखे से विवश होकर उसने अपना "अखंड भारत" पत्र बन्द कर दिया है। वह शायद एक लेखक या अभिनेता के रूप में सिनेमा में शामिल होने की सोच रहा है। मुझे यह बताया गया है कि वह एक बहुत अच्छा नर्तक और संगीतज्ञ है।

जब मैं सोचता हूँ कि जयनारायण व्यास राजनीति से अलग

होकर सिनेमा में शामिल हो रहा है तो मेरे हृदय में बड़ा दुख होता है। वह मेरा सबसे खराब शत्रु रहा है, इस तथ्य के बावजूद मैं उसे एक श्रेष्ठ व्यक्ति मानता हूँ। एक दिन अपने अथक प्रयत्नों से वह राजपूताना के इस बंजर इलाके में शांति और समृद्धि लायेगा। सम्भव है आज हम उसके पतन पर प्रसन्न हों लेकिन वह दिन तेजी से निकट आ रहा है जब हम अनुभव करेंगे कि हमारे हटने पर उत्पन्न रिक्तता को केवल वही भर सकेगा।

मैने अपनी ओर से फलौदी के एक राय साहब से जो हम दोनों का समान मित्र है, यह अनुरोध किया है कि वह व्यास जयनारायण से सम्पर्क करें और उसे सिनेमा में शामिल होने से रोकें। इस स्वनिर्मित व्यक्ति द्वारा निराश होकर फिल्म में पूँजी लगाने वालों के हाथों में अपने आपको फैंक देने के विचार मात्र से मेरे मन में विद्रोह पैदा होता है। मैंने उसे आर्थिक सहायता भी देनी चाही पर उसने साहस से इन्कार कर दिया। अतः मेरे पास इसके सिवाय और कोई चारा नहीं कि आपको लिखने की सोचूं कि आप उसका जोधपुर वापस लौटना और अपनी भावी गतिविधियों के लिये वहां बसना सम्भव बना दें। अगर उसे जोधपुर में रहने और अपने आपको प्रशासन की समस्या से सम्बंधित करने की इजाजत दी जाती है तो यह बहुत ही उपयुक्त होगा।

अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिये सम्भवतः सफाई का एक शब्द आवश्यक है। मैं चाहता हूँ कि एक ईमानदार, अपने सद्विवेक के प्रति सच्चे और स्वयंनिर्मित व्यक्ति की किसी भी तरह मदद की जानी चाहिये जिससे कि वह अपने आपको राजपूताना के साथ निकट सम्पर्क में रक्खे और आवश्यक घटनाओं में जनता का भला कर सके। मैं चाहता हूँ कि मैं व्यास जयनारायण को पकड़ पाता और उसके साथ अकेले में राजपूताना के बालू के टीलों पर बैठ कर अखबारों और सभाओं में उसने मुझे जो गालियाँ निकाली हैं उनके बारे में दिल खोल कर उससे बात करता। चाहे हम असहमति के लिये सहमत हों या सहमति के लिये असहमत हों पर एक दूसरे से विपरीत जाने वाले मार्ग पर खड़े होकर भी हम किसी न किसी तरह यह अनुभव करेंगे कि चाहे हमारे मन में भ्रम और जबरदस्त गलत धारणायें हों हम दोनों अपने अपने तरीके से लाखों लोगों का कल्याण और सामाजिक भलाई करना चाहते हैं। यह सच है कि हम दोनों भिन्न प्रकार के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं लेकिन यह मानने का कोई कारण नहीं कि यदि हितों का संघर्ष हो तो एक प्रकार के हित बिलकुल मिटा दिये जाय।

अतः मैं आपको सुझाव देता हूँ कि व्यास जयनारायण की गति-विधियों के लिये एक उदार दृष्टिकोण अपनाया जाय, विशेषतः ऐसे समय जबकि अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण वह इतना दुखी है। उसे जोधपुर आने और प्रशासन की जिम्मेदारी में भाग लेने की भी छूट दी जानी चाहिये। आप भारत में एक प्रजातांत्रिक देश के प्रतिनिधि हैं। आपको हमेशा अपने शत्रुओं का भी गर्व होना चाहिये। यदि वे आत्महत्या भी करना चाहें तो आपको ऐसा नहीं करने देना चाहिये। मैं कहता हूँ कि वह लाभप्रद सिद्ध होगा। अपने विरोधी की सहायता करके आपको कभी अफसोस नहीं करना पड़ेगा क्योंकि आप जानते हैं कि आपके जाने के बाद वही बचेगा और राजनीति में एक अधिक महत्वपूर्ण भाग अदा करेगा।

परिशिष्ट--२८

जोधपुर स्थित पश्चिमी राजपूताना की रियासतों के रेजीडेंट को बीकानेर मन्त्री परिषद् के राजनैतिक सदस्य द्वारा सतलज नहर योजना के बारे में ता० २-२-१९१६ को भेजे गये पत्र संख्या ३३० सन् १९१६ का अंश।

—

१०. भावलपुर राज्य द्वारा प्रस्तुत किये गये सन् १९१४ और १९१५ के वर्णन निसंदेह काफी लम्बे हैं लेकिन इस सब के बावजूद बीकानेर दरबार ऐसा महसूस करते हैं कि ये सारे तर्क जो बीकानेर को पूरी तरह और हमेशा के लिये सतलज नहर योजना में भाग लेने से अलग रखने के लिये प्रस्तुत किये गये हैं, और वास्तव में इन प्रतिवेदनों का असली लक्ष्य यही है, चार भागों में बाँटे जा सकते हैं :—

१. ऐसा करना इंग्लैंड और अमेरिका में मालिकों से सम्बन्धित नदी तट सम्बन्धी कानून के विपरीत होगा।

२. पंजाब सरकार की योजनाएं हानिकारक हैं और गलत निष्कर्षो पर आधारित हैं।

३. भावलपुर का एक बड़ा इलाका जिसे पंजाब के इंजीनियरों ने सिंचाई के लिये अनुपयुक्त बताया है, वास्तव में सींचे जा सकने योग्य है।

४. अतः हेडवर्क्स नदी के और भी नीचे की ओर ले जाया जाय ताकि बीकानेर को अलग करके नदी का सारा अतिरिक्त जल भावलपुर के उपर्युक्त इलाके को मिल जाय।

११. पहले तर्क के सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने की है कि बार बार इसका उल्लेख करके भी भावलपुर राज्य ने इस बात पर वास्तविक विचार विमर्श करने से अपने को अलग रक्खा है। ऐसा उन्होंने समझदारी से किया है क्योंकि उनके तर्क निश्चय ही अर्थहीन हैं और किसी तथ्य के सुदृढ़ आधार पर स्थित नहीं हैं। वास्तव में हम भारत की स्थितियों को हल कर रहे हैं न कि इंग्लैंड या अमेरिका की। अंग्रेजी कानून की पाठ्य पुस्तकों से उद्धरण देना और उन्हें भारत की भूत या वर्तमान में प्रचलित व्यवहारिकता पर लागू करने का प्रयत्न न करना उचित नहीं है। इन उद्धरणों से भावलपुर राज्य

यह निष्कर्ष निकालना चाहता है :—

(१) भारत में नदी तट के मालिकों के लिये ऐसा कानून व्यवहार में है ।
(२) मालिकों के लिये नदी तट सम्बन्धी यह कानून बड़ी नदियों और सिंचाई की योजना के मामले में भी लागू होगा । यह इंग्लैंड में, अमेरिका में या इस देश में, राज्यों में विवाद होने पर भी लागू होगा । ऐसा एक भी उदाहरण नहीं दिया गया है जिसमें मालिकों से सम्बन्ध नदी तट सम्बन्धी अंग्रेजी कानून भारत में लागू किया गया हो । इस प्रकार के किसी निर्णय का इस देश के सभी रीति रिवाज और व्यवहार द्वारा पूर्ण विरोध किया जायेगा । पंजाब में साधारण छोटे मालिकों का उदाहरण लीजिये । छोटी पहाड़ी धाराओं से सिंचाई का अधिकार क्या केवल उन्हीं मालिकों तक सीमित है जिनकी भूमि नदी के तले के पास है ? नदी तट से दूर मालिक क्या अनन्त काल से नदी तट के मालिकों के साथ सिंचाई का समान अधिकार नहीं भोग रहे हैं । एक और उदाहरण पंजाब में शाहपुर निजी नहरों का दिया जा सकता है । ये नहरें झेलम नदी से निकाली गयीं हैं और शायद एक या दो अपवादों के उनके विभिन्न मालिकों की उस नदी के तट पर कोई जमीन नहीं है । तो भी नदी तट से दूर उन मालिकों द्वारा सिंचाई के लिये दूसरे मालिकों को पानी वेचने के अधिकार को कभी चुनौती नहीं दी गयी है । बताया गया है कि ब्रिटिश सरकार ने यह सिद्धांत मान लिया है कि यदि उनके इस अधिकार को कोई हानि पहुँची तो उनको मुआवजा दिया जायेगा ।

यदि मालिकों के नदी तट सम्बन्धी अंग्रेजी कानून को इस देश की बड़ी नदियों पर लागू किया गया तो एक भी सरकारी सिंचाई योजना ऐसी न होगी जिस पर सफलता से एतराज न किया जा सके । यदि नदी तट के मालिक अपनी हानि सोचकर नदी से दूर की भूमि के लिये पानी निकालने से सदा इन्कार कर सकते और उस पानी को उन व्यक्तियों को वेचने से इन्कार करते जिनका नदी पर कोई दावा नहीं है और यदि यह कानून कड़ाई से लागू किया जाता तो पंजाब में एक भी नहरी बस्ती नहीं हो सकती थी ! अगर यह कानून इस देश में नदी तट के मालिकों पर लागू नहीं होता तो यह तर्क कैसे दिया जा सकता है कि इसे नदी तट की रियासतों पर लागू किया जाय ? ये रियासतें सम्भवतः अपने आपको कानूनी दृष्टि से अकेली मालिक समझती हैं । जब ब्रिटिश सरकार ने इसी सतलज नदी की सरहिन्द नहर से फुलकियाँ रियासतों और फरीदकोट को, जो नदी तट

वाली रियासतें नहीं हैं, पानी दिया तो ऐसा कोई दावा नहीं किया गया।

फिरोजशाह के समय से बीकानेर के उत्तर पूर्व कोने का एक छोटा भाग पश्चिमी यमुना नहर से सींचा जाता रहा है। यद्यपि अब इससे सींचा जाने वाला क्षेत्र बहुत ही कम— केवल ४६० एकड़ है लेकिन यह बात पहले कभी नहीं सुनी गयी कि बीकानेर नदी तट वाली रियासत नहीं है अतः उसे इस पानी का उपयोग करने से रोका जाना चाहिये। मुगल बादशाहों ने बिना नदी तट वाली रियासत जिन्द को भी पश्चिमी यमुना नहर से पानी दिया। वास्तव में नदी तट सम्बन्धी अंग्रेजी कानून जैसा कोई कानून भारत में नहीं है। वास्तव में सन् १६१५ के भावलपुर के प्रतिवेदन के पैरा ४३ (११) (बी) और (सी) से ऐसा लगता है कि भावलपुर राज्य यह मानने को तैयार है कि इस देश में पहले कभी न तो ऐसा कानून सुना गया और न लागू किया गया। लेकिन शायद वह यह कहने को तैयार है कि भारतीय रियासतों पर भारतीय रिवाज या कानून लागू न किये जांय बल्कि इंग्लैंड या किसी और जगह का कोई ऐसा कानून लागू किया जाय जो कि उनको अपनी बात के लिये सुविधाजनक लगे। ऐसी धारणा के लिये किसी उत्तर की आवश्यकता नहीं है।

१२. भारत में अनन्तकाल से सर्वोच्च सत्ताधारी ही हमेशा भारतीय नदियों के सारे जल का स्वामी रहा है। ब्रिटिश साम्राज्य भारत का अधिपति होने से इस कर्तव्य से बंधा हुआ है कि वह उस जल का उपयोग ऐसे तरीके से करे जो भारत के हितों के लिये सबसे अधिक लाभदायक हो और जो विभिन्न हितों को सबसे अधिक फायदा पहुँचाये। उत्तरी भारत नहर और नाली कानून ८ सन् १८७३ की भूमिका में अंग्रेज सरकार की स्थिति ठीक प्रकार से समझायी गई है। यह इस प्रकार है :—

> "जहाँ यह कानून लागू है उस सारे इलाके में सरकार को प्राकृतिक धाराओं में बहने वाली सारी नदियों और झरनों के तथा स्थिर पानी के अन्य प्राकृतिक भण्डारों और सारी झीलों के जल को सार्वजनिक कामों के लिये काम में लाने और नियन्त्रण करने का अधिकार है। इन इलाकों में सिंचाई, जहाजरानी और नालियों से सम्बंधित कानून में संशोधन करना उचित है।"

इस कानून के भाग ५ में स्थानीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह कानून बनाकर उक्त पानी का उपयोग कर सकती है।

यह इस देश का कानून है। इस कानून के अतिरिक्त इस देश

में प्राचीन रिवाज है जिसे "सारोवापियाना" कहा जाता है। इसमें नदी तट से दूर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह किसी धारा के जल का किसी भी रूप में प्रयोग करे। सर्वोच्च सत्ताधारी की मान्य जिम्मेवारी और कर्तव्य के अतिरिक्त यही प्राचीन रिवाज है जिसने अंग्रेज सरकार को कानून बनाने का अधिकार दिया। बीकानेर राज्य तत्परता से और पूरी तरह से सहमत है कि सतलज नदी का पानी प्राप्त करने के लिये भावलपुर को पूर्ण विचार करने के लिये कहने का अधिकार है लेकिन इतना अधिक स्वीकार करके भी हम एक क्षण के लिये भी नहीं मान सकते कि भावलपुर राज्य को जहाँ इस पानी की सबसे अधिक आवश्यकता है, उसे देने से अधिपति सत्ता को रोकने अथवा बीकानेर को हमेशा के लिये सिंचाई के लाभ से वंचित करने का कोई अधिकार है।

परिशिष्ट--२६

६३, बालीगंज सर्कुलर रोड,
कलकत्ता
२५ फरवरी, १६१२

प्रिय महाराजा साहब,

मैं आपके पहले पत्र का उत्तर दूँ उससे पहले ही मुझे दूसरा पत्र लिखना वास्तव में आप की बहुत ही भलमनसाहत है। लेकिन तथ्य यह है कि इस मास के आरम्भ से ही मेरे स्वास्थ्य से मेरे डाक्टर को बहुत अधिक चिन्ता हो रही है। १५ दिन पहले वह मुझे सारा काम तुरंत रोकने और इलाज के लिये तुरन्त फ्रांस के दक्षिण में जाने की आज्ञा देने की सोच रहा था। गत १४ वर्षों से मैं मधुमेह से पीड़ित हूँ। अब तक इस की शिकायत तुलनात्मक रूप में साधारण रही। इस मास एकाएक उसने अधिक गम्भीर रूप धारण करने का भय उत्पन्न कर दिया। पर अब मैं पहले से ठीक हूँ और मेरे स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर सुधार हो रहा है। केवल डाक्टर ने मुझे इस बात से बांध दिया है कि मैं बहुत निश्चित और नियमित घंटों के अंतर से भोजन करूं। उसने मेरे काम की सीमा भी अधिक से अधिक ६ घंटे प्रतिदिन, जिसमें पत्र व्यवहार भी शामिल है, बाँध दी है। यह सीमा जल्दी ही आ जाती है अतः मुझे आशा है कि मुझे आपको पत्र लिखने में जो देर हुई है उसके लिये श्रीमान क्षमा करेंगे।

आपने राजाओं और प्रधानों को जो सर्कुलर पत्र और तार भेजे, उनके उत्तरों की प्रतिलिपियां तथा श्रीमान ने वाइसराय को जो पत्र लिखे उनकी प्रतिलिपियां आपने कृपा कर मुझे भेजीं इसके लिये अनेक धन्यवाद। मैं आपसे सहमत हूँ कि आन्दोलन पूर्ण सफल रहा, मैं सोचता हूँ कि हमें संतोष अनुभव करने का कारण है कि इसका उद्घाटन करके हमने अपने देश के लिये शुभ कार्य किया है। इस मामले में हमारे सहयोग की स्मृति रूप में क्या मैं ये प्रतिलिपियां अपने पास रख सकता हूँ?

जब आप यहां थे तो आपने एक से अधिक बार यह इच्छा प्रकट की कि मैं वाइसराय के और भी निकट सम्पर्क में आऊँ ताकि वे मुझे और अधिक अच्छी तरह से समझने में समर्थ हो सकें। आप द्वारा प्रकट इस इच्छा को मैं हर्ष और कृतज्ञता से स्मरण करता हूँ। उस दिशा में जाने

के लिये अभी एक घटना हुई है। मैं इसे इस पत्र में इस लिये लिख रहा हूँ क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि श्रीमान इसे जानना चाहेंगे। मुसलमानों के एक प्रतिनिधि मण्डल के सामने ढाका में वाइसराय ने यह घोषणा की कि भारत सरकार ने ढाका में एक अलग विश्वविद्यालय बनाने के लिये राज्य मन्त्री से सिफारिश करने का निर्णय किया है। इससे शहर में बड़ी उत्तेजना फैली। अलग विश्वविद्यालय के विचार से इतनी उत्तेजना नहीं फैली जितनी उस रहस्यात्मक ढंग से जिसमें सारी बात छिपी हुई लगती थी। अखबारों ने पहले बताया कि प्रतिनिधि मण्डल की मुलाकात गुप्त है। इससे यहां के हिन्दुओं में आशंका उत्पन्न हुई क्योंकि इससे मामला ऐसा लगा मानो सरकार और मुसलमानों के बीच एक समझौता हो रहा हो। वाइ-सराय ने जो कुछ किया था उसका तुरन्त चारों ओर से तीव्र विरोध हुआ। इस जगह के एंग्लो-इंडियन जो राजधानी वापस दिल्ली ले जाने के लिये वाइसराय से बहुत नाराज हैं, तुरन्त इस स्थिति का लाभ उठाने लगे। उन्होंने हिन्दू जाति से प्रस्ताव किया कि दोनों जातियों द्वारा मिलकर वाइसराय की उच्छृं-खलता का विरोध किया जाय और राज्य मन्त्री को आवेदन किया जाय कि वाइसराय को वापस बुला लिया जाय। यह खेल लगभग सफल हो चुका था क्योंकि यहां भारतीय नेताओं ने कल अर्थात् २४ फरवरी को टाउन हाल में वाइसराय के विरुद्ध एक बड़ा प्रदर्शन करने का प्रबन्ध आरम्भ कर दिया था। इसके बाद सारे वर्गों की एक सार्वजनिक सभा होनी थी जिसमें वाइसराय के अनियंत्रित शासन का विरोध किया जाना था। इस स्थिति पर गम्भीरता से विचार करने के लिये जब मैं और सर लारेंस जेनकिंस मिले तो मामला अन्धकारमय लगा। हमारा उद्देश्य यह मालूम करना था कि इस कठिनाई से बचने का क्या कोई उपाय नहीं हो सकता। हमारी बातचीत के अन्त में सर लारेंस ने मुझ पर बहुत दबाव डाला कि मैं वाइसराय से मुलाकात के लिये समय मांगूं और जैसा हमने सोचा कि हमें जो २ ज्ञात होना चाहिये वह हरएक चीज उनके सामने रक्खूँ। लेकिन मैंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। मुझे उसी भावना ने रोका जो मैं श्रीमान को, जब आप यहां थे, बता चुका था। पर मैंने डी० एन० बोनले, जिन्हें मैं बम्बई में जानता था और सर गाई फ्लीटवुड विल्सन, जो मेरे घनिष्ट मित्र हैं, से मिलने की बात मान ली। इसके अनुसार मैं डी० एन० बोनले से उनके कार्यालय में मिला। मैंने उन्हे प्रभावित लोगों को अपना मत प्रकट करने का मौका दिये बिना महत्वपूर्ण निर्णयों की घोषणा का अनौचित्य जोर देकर बताया। मैंने उन्हें यह भी बताया कि ढाका के मामले पर बंगाली कितने उत्तेजित हैं और

किस प्रकार उनमें और एंग्लो–इंडियन जाति में वाइसराय के विरुद्ध एक समझौता होने ही वाला है। इससे वाइसराय के विरुद्ध एक ऐसा तूफान उठेगा जैसा लार्ड रिपन के समय से नहीं देखा गया। लगभग १० मिनट तक डी० एन वोनले ने मेरी बात बिलकुल खामोशी से सुनी। तब वह एकाएक खड़ा हुआ। उसने मुझसे कहा कि आधे मिनट के लिये मुझे क्षमा करो। वह वाइसराय के कमरे में चला गया और जब वह लौटा तो उसने मुझे महान् आश्चर्य में डालते हुये कहा–– 'मि० गोखले, आप जो कुछ मुझे कह रहे थे क्या वही सब आप जाकर वाइसराय के सामने दोहरा देंगे ? मेरे पास आपको देने के लिये कोई जबाब नहीं है क्योंकि मैं आपसे सहमत हूँ। मैं सोचता हूँ वे बहुत जल्दबाज हैं।' खैर, इसके बाद मेरे पास इसके सिवा कोई चारा न रहा कि मैं वाइसराय के कमरे में जाऊँ और सारा मामला उनके सामने प्रस्तुत करूँ। मेरे प्रति उन्होंने बड़ा सद्व्यवहार दिखाया और हममें आधे घण्टे तक अच्छी तरह बातचीत हुई। उन्होंने मुझे स्पष्ट रूप से बताया कि इस नये विश्वविद्यालय की स्थापना करने की इच्छा के पीछे वास्तविकता क्या थी। मैंने उन्हें वे सारे एतराज बताये जो इस तरह अपनाई गई पद्धति के विरुद्ध थे। अन्त में मैंने उन्हें बताया कि वे इस विषय पर तुरन्त एक स्पष्ट और सान्त्वना देने वाली घोषणा करें। उन्होंने कहा कि उनका विचार १६ मार्च को ऐसी घोषणा करने का है जबकि कलकत्ता विश्वविद्यालय का दीक्षांत समारोह होगा। मैंने उन्हें बताया कि तब तक तो बहुत देर हो चुकी होगी क्योंकि उस समय दुषप्रभाव को मिटाना संभव न होगा। मैंने उनसे पूछा कि यदि इस विषय में एक प्रतिनिधि मंडल का उन से मिलने का प्रवंध किया जाय तो क्या वे उससे मुलाकात करेंगे। उन्होंने तुरन्त इस विचार का स्वागत किया और कहा कि यदि इस तरह निर्मूल आशंकाओं को हटाने का उन्हें मौका मिले तो वे बहुत प्रसन्न होंगे। अन्त में उन्होंने मुझे बताया कि यदि प्रतिनिधि मण्डल आया तो वे उसे क्या कहेंगे। तब एक से अधिक बार उन्होंने कहा कि वे मेरे इस विचारपूर्ण हस्तक्षेप की बहुत सराहना करते हैं और इसके लिये बहुत कृतज्ञ हैं। बाद में उन्होंने मेरे हस्तक्षेप के बारे में सर गाई विल्सन से भी यही शब्द कहे। उसी दिन शाम मैं कुछ बंगाली नेताओं से मिला। तुरन्त एक प्रतिनिधि मण्डल का प्रवन्ध किया गया। श्रीमान् ने यह कार्यवाही अखबारों में पढ़ी होगी। उसके बाद स्थिति काफी सुधर गयी है। यद्यपि कुछ बंगाली हल्कों में अभी काफी कड़वाहट है पर वाइसराय के विरुद्ध व्यक्तिगत भावना, जहां तक हिन्दू जाति का सम्बन्ध है, प्रायः पूरी तरह से मिट चुकी है।

मैंने घटना का विवरण कुछ विस्तार से दिया है क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि श्रीमान यह सब जानना चाहेंगे। इस मामले में पड़ने का मेरा मुख्य उद्देश्य भारतीय जनता को एक गम्भीर गलती करने से और वाइसराय को कम या अधिक हमारे विरुद्ध होने से रोकना था। वाइसराय के साथ मुलाकात बिलकुल अपूर्वचिंतित थी। लेकिन अब मुझे खुशी है कि यह मुलाकात हुई।

विश्वास करता हूँ कि श्रीमान बिल्कुल ठीक होंगे। ससम्मान,

आपका

जी० के० गोखले

पुनश्चः— क्या आप कृपा करके उस सज्जन से कहेंगे जिसे आप के० पी० (मुझे अफसोस है कि मैं उसका नाम भूल गया हूँ) नाम से सम्बोधित करते हैं कि वह मेरी 'इंडिया लिस्ट' की प्रति, जो मैंने उसे यहां दी थी, लौटा दे? ऐसे छोटे मामले में श्रीमान को कष्ट देते हुये मुझे अफसोस होता है लेकिन आगामी आर्थिक बहस के सम्बन्ध में कुछ निर्देश के लिये मुझे उस पुस्तक की जरूरत है। यहां कहीं यह पुस्तक मुझे नहीं मिल सकती, यद्यपि मैंने उसकी एक प्रति पाने की पूरी कोशिश की।

परिशिष्ट--३०

महाराजा गंगासिंह द्वारा लालगढ़ पैलेस बीकानेर से ता० ६ जुलाई १६३१ को महात्मा गाँधी, मणिभवन, लबुरनाम रोड, बम्बई, को भेजा गया पत्र ।

—

आपके ७ तारीख के पत्र के लिये धन्यवाद । १० जून को जब मुझे बम्बई स्थित अपने निवास पर आप से मिलने का सौभाग्य मिला उस समय आपने जो मुझे बताया उस बारे में मेरी ओर से कोई गलतफहमी नहीं रही है । मैं अच्छी तरह से समझ गया कि इंग्लैंड जाने के बारे में आप के लिये कोई निश्चित निर्णय करना सम्भव न था । इन परिस्थितियों में मैंने आपको जहाज में एक खाली कमरा देने और उसे आपकी सुविधा पर छोड़ने की जो बात कही थी उसे आप निश्चित रूप से नहीं मान सके । यह कमरा मैंने अस्थाई रूप से प्राप्त किया था ।

इसके साथ ही आपको याद होगा मैंने आप पर इस बात के लिये बहुत जोर दिया था कि हमारे देश के हित में यह आवश्यक है कि गोलमेज सम्मेलन और संघ--निर्माण समिति में काँग्रेस का प्रतिनिधित्व हो और आप वहां उपस्थित हों । मैंने आपको इस बात की आवश्यकता भी बताई थी कि आप अपने लिये और अपने दल के लिये स्थाई रूप से जहाज पर स्थान प्राप्त कर लें अन्यथा स्थान पाने में बहुत कठिनाई होगी क्योंकि समुद्र मार्ग से जाने वालों की बड़ी भीड़ है और "मुल्तान" एक आस्ट्रे- लियन जहाज है ।

यह अनुभव करके कि निश्चित रूप से जहाज पर स्थान सुरक्षित करवाना अभी समय से पूर्व होगा, अतः, आप को याद होगा, मैंने एक खाली कमरा आपको देने की बात कही थी । मैंने आपकी रसोई के लिये भी प्रबंध की बात कही थी । मैंने जो आपको वचन दिया था उसी के अनुसार मैंने ऐसा अस्थायी प्रबंध किया और आपको लिखा ।

अतः मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इसमें मुझे कोई तकलीफ नहीं हुयी । मुझे तो जो कुछ मैं कर सका उसे करके अत्यधिक खुशी हुयी क्योंकि यह काम मैंने ऐसे व्यक्ति के लिये किया जिसे, मैं आशा करता हूँ, अब मुझे अपना निजी मित्र कहने का सौभाग्य मिलेगा ।

मुझे केवल यही आशंका है कि बाद में आपको जहाज में स्थान पाने में कठिनाई अनुभव होगी। मुझे इस बात का और भी अफसोस है कि अब भी आपका इंग्लैंड जाना निश्चित नहीं है यदि इसे सीमा उल्लंघन न समझा जाय तो मैं आप से अनुरोध करता हूँ कि देश के हित में आप इस मामले पर और भी विचार करें। निसंदेह आप इस पर विचार कर रहे हैं। सौभाग्य से शायद अन्त में आपके लिये इंग्लैंड जाना और संघ निर्माण समिति तथा गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना सम्भव हो सके।

आपने मेरे पोते के बारे में, जो बीमार था, पूछा उसके लिये आपको अनेक धन्यवाद। मैं कृतज्ञता से यह कहना चाहता हूँ कि वह अब स्वस्थ है और मेरे सभी पोते पोती अगले सप्ताह यहां आ रहे हैं।

आशा है आप स्वस्थ होंगे। मुझे इस बात की और भी अधिक आशा है कि मुझे "मुल्तान" पर आपके साथ यात्रा करने का आनन्द मिलेगा।

भवदीय
गंगासिंह

परिशिष्ट--३१

महाराजा गंगासिंह द्वारा ३८ नेपियन सी रोड बम्बई से ता० ४-७-१६३१ को महात्मा गाँधी को भेजा गया निजी पत्र ।

—

आपको याद होगा कि १० जून को मुझे आप से मिलने का सौभाग्य मिला तो मैंने आप से खुलकर और लम्बी बातचीत की। मैंने इससे बहुत आनन्द प्राप्त किया। उस समय आपने मजाक में मुझे "मित्रों के लिये समुद्री यात्रा का आम प्रबन्धक" कहा। पर अधिक काम होने के कारण और अपने पोते पोतियों से, जिनमें एक बीमार है, मिलने के लिये आबू पहाड़ पर जाने के कारण मैं आपको पहले नहीं लिख सका। मुझे डर है कि आप शायद सोचें कि मैं आपके लिये मुल्तान जहाज पर स्थान प्राप्त करने और आपकी रसोई के प्रबन्ध करने के सहायता देने के बारे में अपने वचन को बिलकुल भूल गया हूँ।

उसी दिन शाम मैंने अपने मास्टर आफ हाउस होल्ड को आदेश दे दिया था और वह जाकर जहाज के प्रधान अधिकारी और हमारे यात्रा एजेंट मेसर्स काक्स एन्ड किंग्स, होर्नबी रोड बम्बई से मिला। फलस्वरूप १५ अगस्त को छूटने वाले मुल्तान जहाज के ए डेक पर एक प्रथम श्रेणी के दो बर्थ वाला कमरा आरक्षित हो गया है। इसी प्रकार आपके अलग भोजन बनाने का भी विशेष प्रबन्ध कर दिया गया है। इसके लिये डेक पर जगह सुरक्षित कर दी गयी है जो जहाज छूटने से पहले आपके रसोइये को दिखा दी जायेगी। यदि आप चाहें तो एक तेल का चूल्हा भी दे दिया जायेगा।

आपके साथ जो आपके सचिव और नौकर आयेंगे उनके लिये अतिरिक्त स्थान प्राप्त करने के लिये क्या मैं आपको याद दिलाऊँ? मुझे याद है कि मुल्तान में जगह के लिये बहुत अधिक मांग होने के कारण मैंने आपको इस मामले में अविलम्ब कार्यवाही करने की आवश्यकता बताई थी। यह बात मैं आपको याद दिलाने के लिये लिखता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि आप पहले ही ऐसा कर चुके होंगे। यदि नहीं तो आप एजेंट अथवा जहाज के मुख्य अधिकारी को अपने दल के लोगों के नाम सीधे लिख दें। उन्हें साधारणतयः अपनी सूची के लिये इन नामों की आवश्यकता होती है।

अभी मैं यहाँ कुछ ब्रिटिश भारतीय मित्रों और भोपाल के नवाब

से मिला। इनकी तरह मैं भी पूर्ण आशा करता हूँ कि आप मुल्तान से यात्रा करने में समर्थ होंगे। इससे मार्ग में हम अपने आपको आगे जो संघ निर्माण समिति और गोलमेज सम्मेलन का कार्य है उसके लिये तैयार कर सकेंगे।

आपकी जानकारी के लिये मैं जहाज के नक्शे की एक प्रतिलिपि इस पत्र के साथ भेज रहा हूँ। मैं आज रात बीकानेर के लिये रवाना हो रहा हूँ। मैं आपको सुझाव दूँगा कि आप अब एजेंट अथवा जहाज के मुख्य अधिकारी से सीधा सम्पर्क करें। यदि मैं यहां रहता तो आप की किसी तरह की मदद करके मुझे बहुत खुशी होती।

आशा है आप स्वस्थ होंगे। जल्दी में,

भवदीय
गंगासिंह

परिशिष्ट—३२

महाराजा सादूलसिंह जी को प्राप्त सम्मानों, उपाधियों और पदकों की सूची।

—

१.	आनरेरी लेफ्टिनेंट कर्नल बनाये गये	१९४३
२.	आनरेरी मेजर जनरल बनाये गये	१९४५
३.	१९३९–४५ स्टार	१९४५
४.	बर्मा स्टार	१९४५
५.	सुरक्षा पदक	१९४५
६.	युद्ध पदक	१९४५
७.	ऐसोसियेट नाइट आफ दि आर्डर आफ सैंट जान आफ जेरुसलम	१९४५
८.	जी० सी० आई० ई० बनाये गये	१९४६
९.	लेफ्टिनेंट जनरल बनाये गये	१९४६
१०.	जी० सी एस० आई० बनाये गये	१९४८

परिशिष्ट--३३

भूतपूर्व बीकानेर रियासत के कुछ अफसरों के नामों की सूची जो राजस्थान संघ बनने पर विभागाध्यक्ष अथवा ऐसे ही वरिष्ठ पदों पर नियत किये गये।

--

१. श्री के० एम० पन्निकर, प्रधान मन्त्री बीकानेर। बाद में चीन में राजदूत बने।
२. कुँवर जसवन्तसिंह, दाउदसर, बीकानेर के प्रधान मन्त्री। बाद में राजस्थान विधान सभा में विरोधी दल के नेता बने।
३. श्री सी० एल० कपूर, मैनेजर बीकानेर स्टेट रेलवे। राजस्थान रेलवे के जनरल मैनेजर हुये।
४. डाक्टर एस० के० मेनन, प्रिंसिपल मेडीकल आफीसर, बीकानेर। मेडिकल कालेज जयपुर के प्रिंसिपल और प्रिंसिपल मेडिकल आफीसर बने।
५. मेजर जनरल जयदेवसिंह, बीकानेर रियासत की सेनाओं के जनरल आफीसर कमांडिंग। राजप्रमुख, जो राजस्थान राज्य सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति भी थे, के नीचे सबसे वरिष्ठ सैनिक अफसर बने।
६. श्री कन्हैयालाल सांघी, वित्त सचिव बीकानेर। राजस्थान सरकार के वित्त सचिव हुये।
७. श्री एम० यू० मेनन, महाराजा सादूलसिंह के निजी सचिव। राजस्थान सरकार के एकीकरण सचिव बने।
८. लाला कामता प्रसाद, सचिव रसद विभाग बीकानेर। राजस्थान सरकार के पुनर्वास विभाग के संचालक बने।

परिशिष्ट--३४

महाराजा सादूलसिंह द्वारा बीकानेर हाउस आबू से ता० १८-६-१९४७ को महात्मा गाँधी को भेजा गया पत्र ।

—

मुझे अखबारों से पता चला है कि आप थोड़े ही समय के बाद काश्मीर जाने वाले हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि अपनी सदा की युक्ति और दूरदर्शिता से आप काश्मीर सरकार और रियासत के सम्बन्धित राजनैतिक दलों के बीच एक संतोषजनक समझौता कराने में समर्थ हो सकेंगे। इससे वहाँ का राजनैतिक गतिरोध हल होगा और स्थिति सुधरेगी।

आप जैसे संसार के गहरे अनुभवी व्यक्ति को सुझाव देना मेरे लिये एक साहस की बात होगी। काश्मीर के महाराजा को मैं बहुत वर्षों से जानता हूँ। उनके प्रति मेरे मन में सच्चे प्रेम और आदर की भावना है। उनका महान् हितैषी होने के कारण मैं भी इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करता रहा हूँ। इसके अतिरिक्त अपनी मातृभूमि के प्रति देश भक्ति की भावना ने भी मुझे प्रेरित किया कि मैं इस गतिरोध को मिटाने के लिये एक गम्भीर प्रयत्न करने का सुझाव दूँ।

इसे हल करने के लिये एक सम्भव तरीका मेरे दिमाग में आया है। यह कितना ठीक है इस पर विचार करने के लिये इसे मैं आपके सामने रखता हूँ। काश्मीर की असली स्थिति मैं नहीं जानता। लेकिन विभिन्न गैर सरकारी सूत्रों से मैं जो कुछ जान पाया हूँ उस पर विचार करने पर मुझे ऐसा लगता है कि शेख अब्दुल्ला ने जो "काश्मीर छोड़ो" की पुकार और प्रचार आरम्भ किया था, सम्भव है कि वह न तो इसे छोड़ना चाहे और न माफी माँगना चाहे। आचार्य कृपलानी और दूसरे जिम्मेवार नेताओं ने काश्मीर के लोगों और नेशनल कांफ्रेंस के कार्यकर्ताओं को खुले रूप में सलाह दी है कि वे "काश्मीर छोड़ो" का नारा त्याग दें और काश्मीर के महाराजा की देखरेख में उत्तरदायी सरकार के रूप में वे काम करें। सेशन जज के सामने अपने मामले की सुनवाई के समय शेख अब्दुल्ला ने भी कहा बताते हैं कि "काश्मीर छोड़ो" की मांग खुद महाराजा के विरुद्ध नहीं थी। आरम्भ में उसने जो स्थिति अपनायी थी, इन परिस्थितियों में यदि वह उससे हट सकता है तो और भी अच्छा हो, अन्यथा समझौते का एक सम्भव तरीका यह होगा कि दोनों पक्ष बीती बातों को भुलाने के लिये सहमत हो जाँय और पहले

जो कुछ हो चुका है उसे फिर आरम्भ न करें। लेकिन शेख अब्दुल्ला को यह वचन देना होगा कि भविष्य में वह "काश्मीर छोड़ो" आन्दोलन से कोई मतलब नहीं रक्खेगा। उसे इस बारे में भी आवश्यक उचित आश्वासन देना होगा कि वह काश्मीर के महाराजा और राजघराने के प्रति स्वामिभक्ति और राजभक्ति रक्खेगा। सम्भव है इससे काश्मीर रियासत के अधिकारियों के लिये शेख अब्दुल्ला और दूसरे राजनैतिक कैदियों को छोड़ना सम्भव हो सके और एक नया अध्याय आरम्भ हो सके।

इस क्षण संकट का जैसा समय है और विशेषतः काश्मीर में जैसी स्थिति है उसकी माँग है कि बिना और अधिक समय बर्बाद किये काश्मीर में एक समझौता कराया जाना चाहिये। यदि दोनों पक्ष एक प्रेम पूर्ण समझौते पर पहुँचने की वास्तविक इच्छा से समस्या को लें तो मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि आपकी मध्यस्था से हल सम्भव हो सकेगा।

लेकिन मैं यह बात स्पष्ट करना चाहता हूँ कि इस मामले पर महाराजा काश्मीर या उनके प्रधान मन्त्री से विचार विमर्श करने का मुझे कोई अवसर नहीं मिला है। अतः काश्मीर सरकार द्वारा अपनाई गयी वर्तमान नीति के कारण मुझे ज्ञात नहीं है। मैं यह सुझाव या पत्र महाराजा या उनकी सरकार के कहने से नहीं लिख रहा हूँ। लेकिन चूँकि आप अपनी अगली काश्मीर यात्रा के समय इस सवाल पर चर्चा कर सकते हैं अतः आप को अपने विचार बताने और काश्मीर रियासत तथा हमारी राष्ट्र-भूमि के व्यापक हितों में मेरे दिमाग में समझौते का जो सम्भव तरीका आया वह बताने के लिये मैं आपको लिख रहा हूँ।

अब हम खुशी से एक समान उद्देश्य से और कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रहे हैं। हमारे हित समान हैं, इससे भी बड़ी बात यह है कि आप और शेष भारत के मेरे भाई, मैं स्वयं और मेरी प्यारी प्रजा—जिसकी सेवा में मैंने अपने सारे जीवन को, जब तक ईश्वर चाहे, समर्पित कर दिया है— एक ही धरती से पैदा हुये हैं और सभी भारतीय हैं।

आपके और आपके उच्च आदर्शों के लिये मेरे हृदय में हमेशा सर्वोच्च सम्मान और गहरा आदर व प्रशंसा की भावना रही है। इसी अभिव्यक्ति के साथ।

परिशिष्ट--३५

ता० ८--७--१९४७ को जारी की गयी महाराजा सादूलसिंह की प्रेस विज्ञप्ति का अंश।

—

.........अपने आधीन नये रियासती विभाग और कांग्रेस की नीति का कुशल राजनीतिज्ञ की तरह स्वरूप बताने के लिये मैं पूर्ण सच्चाई के साथ उन्हे बधाई देने का शीघ्रत्तम अवसर प्राप्त करना चाहता हूँ।

उन्होने जो कुछ कहा है उससे मैं स्वयं पूर्णतः सहमत हूँ। यह वहुत उपयुक्त शब्दों का कथन है। जब हमारी मातृ भूमि अपनी आजादी की ओर बढ रही है और जब रियासत के साथ उसका सम्बंध सक्रिय रूप से बन रहा है तो रियासत के प्रति उस समय उससे बढ़कर सच्ची मित्रता और सद्भावना का दूसरा कोई कथन नहीं हो सकता।

उससे भी बड़ी बात यह है कि इसमें राजाओं और उनकी प्रजा को निम्नलिखित आश्वासन दिये गये हैं :—

(१) हम उन से इससे अधिक और कुछ नहीं चाहते कि वे तीन विषयों, जिनमें देश के समान हित हैं, में भारतीय संघ में सम्मिलित हो जायँ। अन्य मामलों में हम निसंदेह रूप से उनके स्वायत्व स्थित्व का पालन करेंगे।

(२) रियासत के घरेलू मामलों में किसी भी तरह से हस्तक्षेप करने का कांग्रेस का कोई इरादा नहीं है।

(३) वे राजाओं की व्यवस्था के शत्रु नहीं हैं। उसके विपरीत वे चाहते हैं कि राजाओं की देखरेख में उनकी प्रजा पूर्ण समृद्धि, संतोष और सुख को प्राप्त करें।

(४) मेरी यह नीति नहीं होगी कि नये विभाग द्वारा रियासतों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाय जिससे एक का दूसरे पर अधिकार प्रतीत हो।

× × ×

यह संतोष की बात है कि अधिकांश रियासतें विधान निर्मात्री सभा में सम्मिलित हो चुकी हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सरदार पटेल के उक्त कथन से दूसरी भी जल्दी ही सम्मिलित होने का निर्णय करेंगी। अतः मैं अपने वंधु राजाओं से कहूँगा कि कांग्रेस ने इस प्रकार स्वेच्छा से मित्रता का जो हाथ बढाया है, उसे थामें और उसे अपना पूर्ण समर्थन और सहायता दें ताकि भारत शीघ्रता से अपनी "नवीन महानता" पर पहुँच जाय।

परिशिष्ट—३६

बीकानेर रियासत का भारतीय संघ में सम्मिलित होने का समझौता।

—

चूँकि भारतीय स्वतन्त्रता कानून १९४७ में व्यवस्था है कि १५ अगस्त सन् १९४७ से भारत नाम से एक स्वतन्त्र संघ की स्थापना की जायेगी, भारत सरकार का १९३५ का कानून, ऐसे लोप, योग, अनुकूलता और संशोधन के साथ जैसा गवर्नर जनरल आदेश द्वारा बतायें, भारतीय संघ पर लागू होगा।

चूँकि भारत सरकार के १९३५ के कानून, जिसे गवर्नर जनरल ने ऐसा अनुकूल बनाया है, में व्यवस्था है कि एक भारतीय रियासत अपने शासक द्वारा किये गये संघ में सम्मिलित होने के समझौते द्वारा भारतीय संघ में मिल सकती है।

अतः मैं महाराजा सादूलसिंह, बीकानेर रियासत का शासक, मेरी उक्त रियासत में और पर अपनी प्रभुसत्ता के अधिकार से यहाँ संघ में सम्मिलित होने का यह समझौता करता हूँ, और

१. मैं यह घोषणा करता हूँ कि मैं इस इच्छा से भारत के संघ में सम्मिलित होता हूँ कि भारत के गवर्नर जनरल, संघ की व्यवस्थापिका, संघीय-न्यायालय और संघ के उद्देश्यों के लिये स्थापित संघ का अन्य कोई अधिकारी मेरे इस संघ में सम्मिलित होने की रू से, लेकिन हमेशा उसकी शर्तों के अनुसार और केवल संघ के उद्देश्यों के लिये, बीकानेर रियासत (इसके बाद जिसे "यह रियासत" कहा गया है) के सम्बन्ध में ऐसे काम करने का अधिकार होगा जो उन्हें भारत सरकार के १९३५ के कानून, जो भारत के संघ में १५ अगस्त १९४७ से चालू है (यह कानून जो चालू है इसके बाद "कानून" कहा गया है), के द्वारा अथवा अन्तर्गत दिये जांय।

२. मैं इसके द्वारा इस बात का जिम्मा लेता हूँ कि मेरे इस संघ में सम्मिलित होने के समझौते की रू से जहां तक वे उसमें लागू होंगी, मैं इस रियासत में कानून की धाराओं के लागू करने का पूर्ण ध्यान रक्खूंगा।

३. साथ की सूची में दिये गये विषयों के लिये मैं मानता हूँ कि इन विषयों के लिये संघ की व्यवस्थापिका इस रियासत के लिये कानून बना सकती है।

४. मैं इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि मैं इस आश्वासन पर भारतीय संघ में सम्मिलित होता हूँ कि यदि गवर्नर जनरल और इस रियासत के शासक के बीच कोई ऐसा समझौता किया जाता है जिसके द्वारा भारतीय व्यवस्थापिका का कोई कानून इस रियासत में लागू करने का काम इस रियासत के शासक द्वारा किया जायेगा तो वह समझौता इस समझौते का हिस्सा माना जायेगा और उसके अनुसार ही इसकी व्याख्या की जायेगी और मान्य होगा।

५. संघ में सम्मिलित होने के मेरे इस समझौते की शर्तें भारत के भारतीय स्वतन्त्रता कानून १९४७ अथवा 'कानून' में कोई संशोधन करके बदली नहीं जायेगीं जब तक कि इस समझौते के एक अनुपूरक समझौते द्वारा मैं ऐसे संशोधन को स्वीकार न करूं।

६. इस समझौते से संघ व्यवस्थापिका को यह अधिकार नहीं होगा कि किसी काम के लिये अनिवार्य भूमि ग्रहण का अधिकार देने वाला कोई कानून इस रियासत के लिये बनाये। लेकिन मैं इसके द्वारा जिम्मा लेता हूँ कि यदि किसी संघीय कानून के लिये जो इस रियासत पर लागू होता है, संघ किसी भूमि को प्राप्त करना जरूरी समझे तो उनके अनुरोध पर मैं उनके खर्चे से भूमि प्राप्त कर लूँगा अथवा यदि भूमि मेरी हुयी तो सहमत शर्तों पर उन्हें हस्तांतरित कर दूँगा। यदि सहमति न हो तो भारत के मुख्य न्यायधीश द्वारा नियुक्त किसी पंच द्वारा तय की गयी शर्तें मान लूँगा।

७. इस समझौते का यह अर्थ नहीं होगा कि मैं भारत के किसी भावी संविधान को स्वीकार करने लिये किसी भी प्रकार बाध्य हूँ और न ही इस समझौते के कारण भारत सरकार के साथ किसी भावी संविधान के अंतर्गत समझौता करने की मेरी स्वतन्त्र इच्छा पर कोई बंधन लगता है।

८. इस रियासत पर और रियासत में मेरी प्रभुसत्ता चालू रहने पर इस समझौते का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और न ही इस रियासत के शासक के रूप में अब मेरे द्वारा जो अधिकार और सत्ता बर्ते जाते हैं उन पर इस समझौते में उल्लिखत व्यवस्था के अलावा कोई प्रभाव पड़ेगा।

९. मैं इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि इस रियासत की ओर से मैं यह समझौता करता हूँ। इस समझौते में मेरे बारे में अथवा रियासत के शासक के बारे में जो उल्लेख है उसका तात्पर्य है कि उसमें उत्तराधिकारियों का उल्लेख भी शामिल है।

आज ७ अगस्त १९४९ को इस पर हस्ताक्षर किये।

सादूलसिंह
महाराजा बीकानेर

संघ में सम्मिलित होने के इस समझौते को स्वीकार करता हूँ।

तां० १६ अगस्त १९४७
मोहर
भारत सरकार
रियासती मंत्रालय

मांउंटवैटन आफ बर्मा

सूची

विषय जिनके बारे में संघ व्यवस्थापिका रियासत के लिये कानून बना सकती है।

अ– सुरक्षा

१. संघ की जल सेना, थल सेना और वायु सेना एवं संघ द्वारा निर्मित अथवा रक्खी गयी कोई अन्य सेना, जिसमें किसी वर्तमान राज्य द्वारा निर्मित या रक्खी गयी सेना भी शामिल है, जो संघ की किसी सेना के साथ जोड़ी गयी है या काम करती है।

२. जल सेना, थल सेना और वायु सेना के काम; छावनी इलाकों का प्रशासन।

३. हथियार :– अग्नि अस्त्र (तोप बन्दूक), युद्ध सामग्री।

४. विस्फोटक.

ब– विदेशी मामले

१. विदेशी मामले, दूसरे देशों के साथ हुये समझौतों और सन्धियों को लागू करना, अपराधियों और दोषारोपित व्यक्तियों को भारत से बाहर सम्राट के संघ को सौंपना और निर्वासन।

२. भारत में ऐसे व्यक्तियों को जो किसी वर्तमान रियासत में बसे अंग्रेज नागरिक नहीं हैं, प्रवेश देना, दूसरे देश में बसना और निष्कासन तथा भारत में उनके आने जाने पर नियंत्रण तथा भारत से बाहर तीर्थ यात्रा की जगहों पर जाने देना।

३. स्वाभाविक नागरिक बनाने का कार्य ।

स-- संचार

१. डाक और तार जिसमें टेलीफोन, वेतार का तार, प्रसारण और संचार के ऐसे दूसरे साधन ।

२. संघ रेलवे, छोटी रेलवे के अलावा सभी दूसरी रेलों की सुरक्षा, किराये की अधिकतम और न्यूनतम दर, स्टेशन और सेवाओं के टर्मिनल कर का नियन्त्रण । ट्राफिक की अदला बदली, माल और मुसाफिरों के ले जाने में रेलवे प्रशासन के उत्तरदायित्व का नियन्त्रण। सुरक्षा की दृष्टि से छोटी रेलों का नियंत्रण और ऐसी रेलों द्वारा माल और मुसाफिर ले जाने की व्यवस्था की जिम्मेवारी का नियंत्रण ।

३. समुद्रीय जहाजरानी और जहाजी विद्या जिसमें नदी जल में जहाज और नाव चलाना भी शामिल है, नौ सेना अधिकार क्षेत्र ।

४. बन्दरगाहों पर संक्रामक रोग से ग्रस्त होने पर यात्रा करने की रुकावट ।

५. बड़े बन्दरगाह, ऐसे बन्दरगाहों और स्टेशनों के सीमा क्षेत्र की घोषणा और न्यायालय का वहाँ अधिकार ।

६. विमान और आकाश में उड़ान, हवाई अड्डों के नियंत्रण की व्यवस्था और हवाईयातायात और हवाई अड्डों का संचालन ।

७. प्रकाश गृह जिनमें प्रकाश जहाज, आकाश दीप और दूसरी व्यवस्थायें हों ताकि जहाज और विमान बच सकें ।

८. यात्रियों और माल का समुद्री मार्ग अथवा वायु मार्ग से ले जाया जाना ।

९. उस इकाई से बाहर के किसी भी इलाके के पुलिस वालों के सीमा क्षेत्र अधिकारों का विस्तार ।

द-- आधीन

१. कानून की धाराओं और उसके अन्तर्गत दिये गये किसी आदेश के अनुसार संघीय व्यवस्थापिका के लिये चुनाव ।

२. उपर्युक्त मामलों में से किसी से सम्बन्धित कानूनों के विरुद्ध अपराध ।

३. उपर्युक्त मामलों में से किसी के लिये जांच और आँकड़े ।

४. उपर्युक्त मामलों में से किसी के सम्बन्ध में सभी कार्यालयों के अधिकार और सीमा क्षेत्र । वर्तमान रियासत के शासक की सहमति बिना उस रियासत में अथवा रियासत के बारे में समान्यतः अधिकार और सीमा क्षेत्र रखने वाले दूसरे किसी न्यायालय का सीमा क्षेत्र और अधिकार न होगा ।

परिशिष्ट--३७

बीकानेर रियासत और भारतीय संघ के बीच हुआ समझौता ।

चूंकि यह बात भारतीय संघ और भारतीय रियासतों के लिये लाभकारी और फायदेमन्द है कि भारतीय संघ अथवा उसके किसी भाग तथा भारतीय रियासतों के बीच समान हितों वाले मामलों में वर्तमान समझौते और प्रशासकीय व्यवस्थाएँ कुछ काल तक चालू रहें :

अतः अब बीकानेर रियासत और भारतीय संघ के बीच यह समझौता किया जाता है कि :—

१. (१) जब तक इस बारे में नये समझौते नहीं हो जाते, इस समय सम्राट और किसी भारतीय रियासत के बीच समान हितों के मामलों के बारे में जो समझौते और प्रशासकीय व्यवस्थाएँ हैं, वे, जहां तक उपयुक्त हो, भारतीय संघ अथवा उसके किसी भाग, जैसी भी स्थित हो, और रियासत के बीच चालू रहेंगे ।

(२) इस धारा की उपधारा (१) की सामान्यता से हटे बिना, विशेषतः ऊपर जिन विषयों का उल्लेख किया गया है उनमें वे विषय शामिल होंगे जो इस समझौते की सूची में बताये गये हैं ।

२. इस समझौते अथवा अब तक चालू समझौतों और प्रबंधों के बारे में कोई विवाद उत्पन्न होने पर गवर्नर जनरल अथवा राज्यपाल के अलावा किसी अन्य अधिकारी की मध्यस्थता का जब तक उसमें प्रावधान न किया जाय तो ऐसा विवाद जहां तक हो सके भारतीय मध्यस्थता कानून १८९९ की पद्धति के अनुसार मध्यस्थता द्वारा निपटाया जायेगा ।

३. इस समझौते में किसी आधिपत्य कार्यों के अधिकार सम्मिलित नहीं हैं ।

के० एम० पन्निकर
प्रधान मंत्री
बीकानेर रियासत

मोहर
भारत सरकार
रियासती मंत्रालय

हस्ताक्षर --
सचिव भारत सरकार

सूची

१. आकाश संचार
२. शस्त्र और सामग्री
३. वस्तुओं का नियंत्रण
४. मुद्रा और सिक्के
५. जकात
६. भारतीय रियासती सेनाएँ
७. विदेशी मामले
८. निष्कासन
९. आयात और निर्यात नियंत्रण
१०. सिंचाई और विद्युत् शक्ति
११. मोटर गाड़ियाँ
१२. राष्ट्रीय मार्ग
१३. अफीम
१४. डाक, तार और टेलीफोन
१५. रेलवे (कर सम्बंधी दूसरे प्रबंध और पुलिस सहित)
१६. नमक
१७. निर्मित पदार्थों पर केन्द्रीय कर, दोहरे आयकर से रक्षा और कर सम्बंधी दूसरे प्रबंध
१८. बेतार का तार।

परिशिष्ट--३८

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली
ता० १८ अक्टूबर १९५०

मेरे सम्मानित मित्र,

श्रीमान को लिखते हुये मुझे बहुत खुशी है कि मेरे द्वारा बीकानेर रियासत की गद्दी पर आपका उत्तराधिकार मान लिया गया है। इस अवसर पर मैं श्रीमान को अपनी हार्दिक बधाई प्रेषित करता हूँ।

अधिक भावना के साथ मैं हूँ

भवदीय
राजेन्द्र प्रसाद
भारत का राष्ट्रपति

हिज हाईनेस महाराजाधिराज
राज राजेश्वर शिरोमणि महाराजा
श्री करणीसिंह जी बहादुर
महाराजा बीकानेर

परिशिष्ट–३६

रियासती मंत्रालय

नई दिल्ली
१८ फरवरी १६४६

प्रिय महाराजा साहब,

राजस्थान के संयुक्त राज्य द्वारा श्रीमान को आपके जीवन काल तक १७ लाख रुपये वार्षिक निजी प्रिवीपर्स दिया जाना तय हुआ है।

श्रीमान के उत्तराधिकारी को १० लाख रु० वार्षिक मिलेंगे।

भवदीय
एन० एम० बुच

लेफ्टिनेंट जनरल हिज हाइनेस महाराजाधिराज
राज राजेश्वर शिरोमणि महाराजा श्री सर सादूलसिंह जी बहादुर,
जी. सी. एस. आई, जी. सी. आई. ई., सी. वी. ओ.,
महाराजा बीकानेर

सहायक ग्रंथ

१---- मूल स्रोत

क -- अप्रकाशित

अ) राजस्थान राज्य पुरालेख विभाग, बीकानेर

(i) फरमान (ii) निशान (iii) मंसूर (iv) वकील रिपोर्टें (v) अखबारात (vi) खतूत (vii) खरीते (viii) खरीता फाइलें (ix) विदेश और राजनैतिक विभाग की फाइलें (x) फौज बहियाँ (xi) परवाना बहियाँ।

ब) भारत का राष्ट्रीय पुरालेखा विभाग, नई दिल्ली

(i) विदेश और राजनैतिक विभाग की फाइलें।

(ii) रेजीडेंसी रेकार्ड।

स) बड़ा कारखाना, तोशाखाना और हजूरी दफ्तर रेकार्ड, लालगढ़ पैलेस, बीकानेर

(i) फरमान (ii) निशान (iii) मंसूर (iv) खरीते (v) संधियां (vi) समझौते, लड़ाइयां (vii) सनद (viii) खरीता बहियाँ (ix) हकीकत बहियाँ।

द) महाराजा बीकानेर के निजी सचिव का कार्यालय, लालगढ़ पैलेस, बीकानेर

(i) बीकानेर के शासकों और ब्रिटिश राजनैतिक अधिकारियों के बीच हुये अर्ध सरकारी पत्रों के पत्र व्यवहार की फाइलें।

(ii) बीकानेर के शासकों द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य को दी गई सेवाओं से सम्बन्धित रेकार्ड।

(iii) सन् १६१६ के शांति समझौते, राष्ट्र संघ, नरेन्द्र मण्डल, बटलर समिति, गोलमेज सम्मेलन, संघ, विधान निर्मात्री सभा, संघ—प्रवेश का समझौता और राजस्थान के निर्माण से सम्बन्धित फाइलें।

) अनूप संस्कृत पुस्तकालय, लालगढ़ पैलेस बीकानेर

(i) फारसी तवारीखें

(ii) ख्यातें

(iii) भाटों के इतिहास (कवियों द्वारा वर्णन)

ख--प्रकाशित

) संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी

१- बाँकीदास, कविराजा; ऐतिहासिक बातों का संग्रह

२- भट्ट, होसिंग: कर्णावतंस

३- भट्ट, रणछोड़; राज्य प्रशस्ति महाकाव्य
४- बीठू सूजा: राव जैतसी रो छन्द
५- ब्रजरत्नदास; मआसिरुलूउमरा (शाहनवाज खां की पुस्तक का हिन्दी अनुवाद)
६- देवीप्रसाद, मुँशी; शाहजहांनामा (हिन्दी)
७- देवीप्रसाद, मुँशी; हुमायूँनामा (हिन्दी)
८- देवीप्रसाद मुँशी; औरंगजेबनामा (हिन्दी)
९- जयानक; पृथ्वीराज विजय महाकाव्य
१०- जयसोम; कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्
११- मैथिल, गंगानन्द; कर्णभूषण
१२- नाहटा, अगरचन्द; बीकानेर जैन लेख संग्रह
१३- नैणसी, मुंहणोत; मुंहणोत नैणसी री ख्यात
१४- रामभट्ट; अनूप कौतुकार्णव
१५- रायसिंह, महाराजा; रायसिंह महोत्सव और बालबोधिनी
१६- सिंढायच, दयालदास; दयालदास री ख्यात
१७- सिंढायच, दयालदास; आर्याख्यान कल्पद्रुम
१८- अज्ञात- दलपत विलास
१९- राजा रायसिंह री वेल
२०- महाभारत
२१- जोधपुर राज्य की ख्यात
२२- जयपुर राज्य की ख्यात

(ब) फारसी

१- अबुलफजल; अकबरनामा
२- अबुलफजल; आईन-इ-अकबरी
३- अब्दुल हमीद लाहौरी; बादशाहनामा
४- अल्बदायूनी; मुंतखबुत्तवारीख
५. गुलबदन बेगम; हुमायूँनामा
६. जौहर; तजकिरतुल वाकयात
७. ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद; तबकात-इ-अकबरी
८. मुहम्मद सईद अहमद; उमरायहनूद
९. मुहम्मद शरीफ; इकबालनामा जहाँगीरी
१०. शाहनवाज खाँ; मआसिरुलउमरा

(स) अंग्रेजी

१. अहमद, मौलवी काबिल अलदीन; मुंतखब-अल-लुबाब

२. एचिसन, सी० यू०; कलेक्शन आफ ट्रीटीज, इन्गेजमेंट्स एन्ड सनदस्
३. वेवरिज, एच०; अकबरनामा
४. वेवरिज, एच०; तुजुक–इ–जहाँगीरी
५. ब्लोकमैन, एच०; आईन–इ–अकबरी
६. वोयलू, ए० एच० ई०; पर्सनल नरेटिव आफ ए टूर थ्रू दि वेस्टर्न स्टेट्स आफ राजवाड़ा
७. डे, बी०; तबकात–इ–अकबरी
८. इलियट, सर एच० एम०; दि हिस्ट्री आफ इन्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स
९. फ्रैंकलिन, विलियम; मिलिटरी मेमोयर्स आफ जार्ज थामस
१०. जैरेट, कर्नल एच० एस०, आइन–इ–अकबरी
११. खड़गावत, नाथूराम; ए डिस्क्रिप्टिव लिस्ट आफ फरमान्स, मंसूर्स एन्ड निशान्स एड्रेस्ड बाइ दि इम्पीरियल मुगल्स टू दि प्रिंसेज आफ राजस्थान
१२. लो, डब्लू० एच०; मुंतखबुत्तवारीख
१३. स्टिवर्ट, सी०; तजकरातुल-वाकयात
१४. टैसिटोरी, डा० एल० पी०; जैतसी रो छन्द
१५. टैसिटोरी, डा० एल० पी०; ए प्रोग्रेस रिपोर्ट ओन दि वर्क डन ड्यूरिंग दि इयर १९१७ इन कनेक्शन विद दि वार्डिक एन्ड हिस्टोरिकल सर्वे आफ राजपूताना
१६. वहशत, रजाअली और खान, मुहम्मद यूसुफ; सेलेक्शन्स फ्रोम दरबार–इ–अकबरी

२ — गौण स्रोत

(अ) संस्कृत और हिन्दी

१. देवीप्रसाद, पंडित, शास्त्री; गंगासिंह कल्पद्रुम
२. देवीप्रसाद, मुन्शी; राव बीकाजी का जीवन चरित्र
३. देवीप्रसाद, मुन्शी; राव लूणकर्णजी का जीवन चरित्र
४. देवीप्रसाद, मुन्शी; राव कल्याणमल जी का जीवन चरित्र
५. देवीप्रसाद, मुन्शी; राव जैतसी का जीवन चरित्र
६. ज्वालासहाय, मुन्शी; वकाए राजपूताना
७. लक्ष्मीचन्द्र; जैसलमेर की तवारीख

८. ओझा, डा० गौरीशंकर हीराचन्द; बीकानेर राज्य का इतिहास
९. ओझा, डा० गौरीशंकर हीराचन्द; राजपूताने का इतिहास
१०. श्यामलदास, कविराजा; वीरविनोद
११. सोहनलाल; तवारीख बीकानेर

(ब) अंग्रेजी

१. अलखधारी; राजा रायसिंह
२. आजाद, मौलाना अबुलकलाम; इण्डिया विन्स फ्रीडम
३. बनर्जी, ए० सी०; दि राजपूत स्टेट्स एन्ड दि ईस्ट इण्डिया कम्पनी
४. बनर्जी, एस० के०; हुमायूँ बादशाह
५. बील, थामस विलियम; एन ओरियंटल बिब्लियोग्राफीकल डिक्शनरी
६. बीटसन, ब्रिगे० जन० स्टुअर्ट; ए हिस्ट्री आफ दि इम्पीरियल सर्विस ट्रुप्स आफ दि नेटिव स्टेट्स
७. बेनीप्रसाद, डा०; हिस्ट्री आफ जहाँगीर
८. केम्पबेल, जानसन एलन; मिशन विद माउन्टबैटन
९. चक्रवर्ती, यादवचन्द्र; दि नेटिव स्टेट्स आफ इण्डिया
१०. कोलब्रुक, सर टी० ई०; लाइफ आफ एलफिन्सटन
११. कॉम्पटन, एच०; यूरोपियन मिलिटरी एडवेंचर्स आफ हिन्दुस्तान
१२. कमिंग, सर जॉन; पोलिटिकल इन्डिया १८३२-१९३२
१३. डोडवेल, एच. एच.; दि केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया, भाग ६
१४. एडवर्ड, माइकेल; दि लास्ट इयर्स आफ ब्रिटिश इन्डिया
१५. एलफिन्सटन, माउन्टस्टुअर्ट; हिस्ट्री आफ हिन्दुस्तान
१६. एलफिन्सटन; हिस्ट्री आफ इन्डिया
१७. अर्सकिन, के० डी०; गजेटियर आफ बीकानेर
१८. गाँधी, एम० के०; दि इन्डियन स्टेट्स प्रोबलम
१९. गोएट्स, हरमन; दि आर्ट एन्ड आर्किटेक्चर आफ बीकानेर स्टेट
२०. ग्रे, बेसिल, राजपूत पेंटिंग्स
२१. ज्वाला सहाय; लॉयल राजपूताना
२२. खड़गावत, नाथूराम; राजस्थान्स रोल इन दि स्ट्रगल आफ १८५७
२३. लो, नरेन्द्रनाथ; दि इन्डियन हिस्टोरीकल क्वार्टरली
२४. ली वार्नर, सर विलियम; दि नेटिव स्टेट्स आफ इन्डिया
२५. मेलिसन, जी० ए०; ए हिस्टोरीकल स्केच आफ दी नेटिव स्टेट्स आफ इन्डिया

२६. मैरी, काउंटेस आफ मिन्टो; इन्डिया मिन्टो एन्ड मोर्ले १६०५-१६१०
२७. मेहता, डा० मोहनसिंह; लार्ड हेस्टिंग्स एन्ड दि इन्डियन स्टेट्स
२८. मेनन, वी० पी०; दि स्टोरी आफ दी इन्टीग्रेशन आफ दी इन्डियन स्टेट्स
२६. मेनन, वी० पी०; दि ट्रांसफर आफ पावर इन इन्डिया
३०. मिर्जा इस्माइल, सर; माई पब्लिक लाइफ
३१. मोसले, लियोनार्ड; दि लास्ट डेज आफ दि ब्रिटिश राज
३२. निकल्सन, ए० पी०; स्क्रेप्स आफ पेपर
३३. पन्निकर, के० एम०; हिज हाईनेस दि महाराजा आफ बीकानेर, ए बायोग्राफी
३४. पन्निकर, के० एम०; ब्रिटिश पालिसी टुवार्ड्स इन्डियन स्टेट्स
३५. पाउलेट, कर्नल, पी० डब्लू०; गजेटियर आफ दी बीकानेर स्टेट
३६. प्रिंसेप, एच० टी०; ए० हिस्ट्री आफ दी पोलिटिकल एन्ड मिलिटरी ट्रांजेक्शन्स इन इन्डिया ड्यूरिंग दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स
३७. रघुवीरसिंह, एम० के०; इन्डियन स्टेट्स एन्ड दि न्यू रेजीम
३८. रैले, सर थामस; लार्ड कर्जन इन इन्डिया
३६. रीड, हन्नाह; रंगमहल
४०. सरकार, सर जे० एन०; हिस्ट्री आफ औरंगजेब भाग ३
४१. सरकार, सर जे० एन०; ए शोर्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब
४२. सरकार, सर जे० एन०; फाल आफ दि मुगल एम्पायर
४३. शास्त्री, के० आर० आर०; इन्डियन स्टेट्स
४४. सक्सेना, डा० बनारसी प्रसाद; हिस्ट्री आफ शाहजहां आफ दिल्ली
४५. स्कॉट, जोनाथन; हिस्ट्री आफ डेकन
४६. शर्मा, डा० दशरथ; राजस्थान थ्रू दि एजेज
४७. शावर्स; ए मिसिंग चेप्टर इन दि इन्डियन म्युटिनी
४८. स्मिथ, वी० ए०; दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया
४६. सोढ़ी, राव बहादुर हुकमसिंह; ज्योग्राफी आफ बीकानेर
५१. श्रीवास्तव, डा० ए० एल०; दि मुगल एम्पायर
५२. टैसिटोरी, डा० एल० पी०; बार्डिक एन्ड हिस्टोरीकल मैन्युस्क्रिप्ट्स
५२. थामसन, एडवर्ड; दि मेकिंग आफ दि इन्डियन प्रिंसेज
५३. थामसन, एडवर्ड; दि अदर साइड आफ दि मेडल
५४. टॉड, कर्नल जेम्स; एनल्स एन्ड एन्टीक्युटीज आफ राजस्थान

५५. जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल
५६. जर्नरल आफ इन्डियन हिस्ट्री जिल्द ४ भाग १ से ३
५७. इडियन रिफोर्म सीरीज ट्रेक्ट्स, सीरीज ४ से ६
५८. इन्डियन रिफोर्मस
५९. रिपोर्टस आन दि पोलिटिकल एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि राजपूताना स्टेट
६०. इम्पीरियल गजेटियर आफ इन्डिया, जिल्द ८
६१. ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ बीकानेर, एड्सन (प्रिंटर्स) लिमिटेड, लंदन
६२. सेन्सस रिपोर्ट, १९४६, बीकानेर स्टेट जिल्द १
६३. चीफ्स एन्ड लीडिंग फेमिलीज इन राजपूताना
६४. दि हाऊस आफ बीकानेर
६५. ए ब्रीफ स्टेटमेंट आफ बीकानेर्स सर्विसेज इन दि ग्रेट वार १९१४-१
६६. दि ब्रिटिश क्राउन एन्ड दि इन्डियन स्टेट्स
६७. व्हाइट पेपर आन इन्डियन स्टेट्स, १९५०
६८. इन्डियाज इम्पीरियल पार्टनरशिप
६९. बीकानेर एन्ड दि वार १९३९-१९४५
७०. दि गवर्नमेंट आफ बीकानेर एक्ट १९४७(एक्ट नं. ३ आफ १९४७)
७१. प्रोसीडिंग्स आफ प्लेनरी सेशन्स आफ दि राउंड टेबल कांफ्रेंस
७२. प्रोसीडिंग्स आफ फीडरल स्ट्रक्चर कमेटी एन्ड माइनोरिटीज कमेटी आफ दि राउंड टेबल कॉफ्रेंस
७३. प्रोसीडिंग्स आफ दि कॉफ्रेंसेज आफ दि रूलिंग प्रिंसेज एन्ड चीफस
७४. प्रोसीडिंग्स आफ दि चैम्बर आफ प्रिंसेज
७५. बीकानेर बुलेटिन्स